वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 450
ISBN 978-93-84003-61-6

श्री गौतमस्वामी विरचित

श्री गौतम गणधर वाणी

(अमृतवर्षिणी टीका समन्वित)

(भाग–1)

–संकलन एवं टीका–

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य
प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की सुशिष्या, जैन समाज की सर्वोच्च
साध्वी, चारित्रचन्द्रिका, तीर्थोद्धारिका, राष्ट्रगौरव, युगप्रवर्तिका,
सिद्धान्तचक्रेश्वरी, 400 ग्रंथों की लेखिका, दो बार डी.लिट्.
की मानद उपाधि से अलंकृत वाग्देवी, दिव्यशक्ति
पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

भाग–1 **अध्याय–1, 2**

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित
''श्री गौतम गणधर वर्ष' 2014–2015 के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2541	मूल्य
500 प्रतियाँ	माघ कृष्णा चौदस, 19 जनवरी 2015	200/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशक एवं सम्पादक :-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

——— सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन ———

- कम्पोजिंग -

ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या

प्रस्तावना आदि की विषय-सूची

1.	सम्पादकीय	7
2.	आद्य वक्तव्य	9
3.	प्रस्तावना	13
4.	दो शब्द	23
5.	अमृतवर्षिणी टीका एक महान कृति	24
6.	हार्दिक उद्‌गार	25
7.	पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय	26
8.	हस्तिनापुर तीर्थ परिचय	34
9.	दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय	36
10.	वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के सहयोगियों की सूची	42
11.	स्वाध्याय प्रारम्भ एवं समापन की विधि	47
12.	शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण	48

ग्रंथ की विषय-सूची

1.	मंगलाचरण	1
2.	श्री गौतमस्वामी का परिचय	6
3.	गणधरदेव ही द्वादशांग श्रुत के कर्ता होते हैं	7
4.	द्वादशांग जिनवाणी को ग्रंथरूप में नहीं लिखा जा सकता	12
5.	भगवान महावीर स्वामी के बाद 683 वर्ष तक ही द्वादशांग रहे हैं	17
6.	श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय एवं प्रतिक्रमण पाठ के प्रमाण	27
7.	''श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित विद्विषे।''	31
	(1) भगवान महावीर का परिचय	31
8.	प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का जीवन परिचय	43
9.	चौबीस तीर्थंकरों का अन्तराल	49
10.	''यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा''	51
	(1) ज्ञान के भेद	51

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
11.	"त्रैलोक्यं गोष्पदायते"	56
	(1) तीन लोक का वर्णन	56
12.	षट्काल परिवर्तन	70
13.	ऊर्ध्वलोक	78
14.	सिद्धशिला	83
15.	भगवान महावीर स्तोत्र	84

चैत्यभक्ति अपरनाम

जयति भगवान महास्तोत्र (अध्याय १)

16.	चैत्यभक्ति (पद्यानुवाद एवं अर्थ सहित)	88
17.	जयति भगवान् हेमाम्भोज.....	100
	(1) भगवान के समवसरण का संक्षिप्त वर्णन	100
18.	अमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ	102
	(1) 4 प्रकार के देवों के 32 इन्द्र	102
19.	कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ता.....	103
22.	परिणतनयस्यांगी.....	104
	(1) नयों का विवेचन	104
21.	अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा.....	120
	(1) पंचपरमेष्ठी का वर्णन	120
22.	क्षान्त्यार्जवादिगुणगण.....	127
23.	मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोकैक.....	127
24.	भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोक.....	128
25.	भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य.....	128
	(1) अकृत्रिम जिनरचना	128
	(2) नंदीश्वर द्वीप के जिनमंदिर	129
26.	इति पंचमहापुरुषाः प्रणुता.....	137
	(1) नवदेवों की संख्या	137
27.	श्रीमद्भावनवासस्था.....	
	(1) देवों के भेद एवं भवनवासी देव का वर्णन	138
28.	यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि.....	139

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
	(1) जम्बूद्वीप एवं मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या	139
	(2) कृत्रिम जिनालयों का वर्णन	140
29.	ये व्यंतरविमानेषु स्थेयांसः.....	145
	(1) व्यंतरदेव	145
30.	ज्योतिषामथ लोकस्य.....	145
	(1) ज्योतिर्वासी देव का वर्णन	145
31.	वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छाया.....	148
	(1) ऊर्ध्वलोक एवं कल्पवासी देव का वर्णन	148
32.	चैत्यभक्ति (अपरनाम) जयति भगवान् महास्तोत्रम् (श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित संस्कृत टीका एवं हिन्दी टीका सहित)	151
33.	प्रथम अध्याय (चैत्यभक्ति) का सार	174
	(1) तीन लोक के अकृत्रिम जिनमंदिरों की संख्या	176
34.	समवसरण स्तोत्र	177
35.	श्री महावीर स्तोत्र	179
36.	नवदेवता स्तोत्र	180
37.	चैत्यवन्दनाष्टक	183

कृतिकर्म विधि (अध्याय २)

38.	कृतिकर्म प्रयोग विधि	187
	(1) सामायिक दण्डक एवं थोस्सामि स्तव	187
39.	लघु कृतिकर्म विधि/कायोत्सर्ग विधि	192
40.	कृतिकर्म विधि के विषय में वर्णन	194
41.	णमोकार मंत्र एवं चत्तारि मंगल पाठ (अनादि निधन है)	196
42.	लघु सिद्धभक्ति (अमृतवर्षिणी टीका)	200
43.	कृतिकर्म विधि के प्रमाण (विभिन्न ग्रंथों से) (जैन साधु एवं श्रावकों के लिए)	203
44.	सामायिक दण्डकः (संस्कृत एवं हिन्दी टीका)	213
45.	थोस्सामि स्तवः (संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित)	221
46.	''अड्ढाइज्जदीव दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु''	224
	(1) मध्यलोक का वर्णन	224

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
47.	''आदियराणं''	228
	(1) भगवान ऋषभदेव के द्वारा विद्या, शिक्षा आदि	228
	(2) शिल्प क्रिया के अन्तर्गत वास्तुविद्या में–जिनप्रतिमा निर्माण विधि	241
48.	''तित्थयराणं''	247
	(1) तीस चौबीसी एवं विद्यमान बीस तीर्थंकर भगवान	247
	(2) तीस चौबीसी के सात सौ बीस वन्दना मंत्र	247
	(3) पाँच महाविदेह सम्बन्धी विद्यमान बीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र	262
49.	''जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं''	263
	(1) भरत चक्रवर्ती	263
	(2) चक्रवर्तियों का वैभव	267
	(3) बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण	269
	(4) मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र	272
55.	''णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं।।''	277
	(1) ज्ञान, दर्शन, चारित्र की कृतिकर्मविधि पूर्वक वन्दना	277
	(2) कायोत्सर्ग के 32 दोष	277
	(3) वंदना के 32 दोष	278
51.	लोयस्सुज्जोययरे....	281
52.	'उसहमजियं च वंदे.....।''	283
	(1) चौबीस तीर्थंकर का संक्षिप्त परिचय	283
53.	कृतिकर्म विधि का सार	287
54.	सामायिक प्रयोग विधि	288
55.	सामायिक (देववन्दना)	290
56.	धर्मतीर्थ की उत्पत्ति	300
57.	श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में तथा अन्य ग्रंथों में समानता व अन्तर	302
58.	श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन–परिवर्धन उचित नहीं है	324
59.	पाठ परिवर्तन–परिवर्धन का चार्ट	328
60.	पं. श्री लालाराम जी के चैत्यभक्ति के विषय में उद्‌गार	336
61.	प्रशस्ति	337
62.	श्री गौतम गणधर वाणी के 10 अध्याय पद्यानुवाद सहित	339
63.	श्री गौतमस्वामी स्तोत्र	367
64.	जिनवाणी स्तुति	368

सम्पादकीय

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदाद्यौ, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

भगवान महावीर स्वामी हम सभी का मंगल करें। श्री गौतम गणधर स्वामी हम सभी का मंगल करें। श्री कुंदकुंद आदि पूर्वाचार्य हम सभी का मंगल करें और जैनधर्म हम सभी के लिए मंगलकारी होवे।

इस एक मंगलाचरण में श्री महावीर स्वामी से लेकर परम्परागत सभी पूर्वाचार्यों की स्तुति की गई है। आज हम सभी का परम सौभाग्य है कि हमें भगवान महावीर की साक्षात् वाणी को पढ़ने-सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तीर्थंकर की परम्परा, गणधर की परम्परा, चतुर्विध संघ-मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका (श्रावक-श्राविका) की परम्परा अनादि है। यह अनादि काल से चली आ रही है और अनंतकाल तक चलती रहेगी।

वर्तमान में बीसवीं शताब्दी में परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का हम सभी पर परम उपकार हैं, जो कि हमें नित्य नई-नई बातों से, प्राचीन रहस्यों से अवगत कराती हैं। इनके जीवन का हरपल नई-नई कृतियों को, नई-नई रचनाओं को लिए रहता है। जिनकी लेखनी में, वाणी में सरस्वती का वास है तभी तो षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ की 16 पुस्तकों पर संस्कृत टीका लिखकर जैनसमाज को एक महान कृति प्रदान की है। अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद किया है। 400 ग्रंथों की रचना की है। जिनमें अभी कई ग्रंथ अप्रकाशित हैं। आज सारे विश्व में जिनके द्वारा रचित इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र आदि विधानों की धूम मची है।

जिन्होंने चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके जैन भूगोल-जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप एवं तीनलोक की रचना को धरती पर साकार किया है। जिनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद से मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर 108 फुट उत्तुंग ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। भगवान का चेहरा पूर्णरूप से बन गया है आधी प्रतिमा बन चुकी है। वीर नि. सं. 2540, आश्विन शुक्ला पूर्णिमा, शरदपूर्णिमा 8 अक्टूबर 2014 को पूज्य माताजी के मुखारविन्द से मांगीतुंगी में बन रही 108 फुट की ऋषभदेव प्रतिमा की वीर नि. सं. 2542 माघ शु. तृतीया से दशमी, दिनांक 11 फरवरी से 17 फरवरी 2016 तक अंतर्राष्ट्रीय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव की घोषणा भी हो चुकी है।

प्रस्तुत ग्रंथ 'गौतम गणधर वाणी' पर अमृतवर्षिणी टीका एक अनुपम कृति है। इसमें 10 अध्याय में से 2 अध्याय (मंगलाचरण समन्वित) चैत्यभक्ति और कृतिकर्म पर अमृतवर्षिणी टीका है। श्री गौतमस्वामी के मुख से निकले वचन अनन्त अर्थ से गर्भित है। ऐसे अनंत अर्थ से सहित गौतम गणधर वाणी पर परम पूज्य चारित्र चन्द्रिका गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अमृतवर्षिणी टीका लिखकर

एवं संकलन करके जिनवाणीरूपी अमृत का पान कराया है। यह अमृतवर्षिणी टीका सभी के जीवन में ज्ञानरूपी अमृत का पान करावे और इसे पढ़कर सभी भव्यजीव अपने सम्यग्दर्शन को शुद्ध करें, यही मंगल भावना है।

परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी स्वस्थ रहें, दीर्घायु प्राप्त करें और अपने ज्ञानामृत से हम सभी को सिंचित करती रहें। वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला दिनदूनी रात चौगुनी वृद्धि करे, जिनेन्द्रदेव से यही मंगल प्रार्थना है।

आभार

पुण्य स्मृति

पुण्य स्मृति

परमपूज्य त्रिकाल वन्दनीय परम आराध्य गुरु माँ गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति-अनुनय-विनय रखते हुए यह ग्रंथ श्रद्धेय स्व. श्रीमती इन्द्रादेवी जैन एवं स्व. श्री कांतिप्रसाद जैन, सरधना (मेरठ) उ.प्र. की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री सतीशचंद जैन, पुत्रवधु श्रीमती कुसुम जैन, सुपुत्रियाँ श्रीमती बीना जैन-विनोद जैन, श्रीमती संतोष जैन-नवीन जैन, दामाद श्री संजय जैन-श्रीमती समता जैन (स्व.) तत्पुत्र संयम जैन (जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर), पौत्री श्रीमती प्रिंसी जैन एवं श्री संजय कुमार जैन-ग्वालियर (म.प्र.), श्रीमती वैशाली जैन एवं श्री अभिषेक जैन सर्राफ-सरधना, श्रीमती प्रियंका जैन एवं श्री प्रियांक जैन-मेरठ, पौत्र श्री वैभव जैन, परनाती कु. एंजिल जैन, आगम जैन, अर्हम् जैन परिवार ने प्रकाशित करवाकर पूज्य माताजी के श्रीकरकमलों में प्रदान करने का पुण्य अर्जित किया, अतः संस्थान की ओर से इस ज्ञानदान की अत्यन्त सराहना करते हुए हम आपके प्रति धन्यवाद एवं आभार ज्ञापित करते हैं। आगे भी संस्थान को साहित्य प्रकाशन एवं ज्ञानदान के क्षेत्र में आपका सहयोग प्राप्त होता रहे, यही भावना है।

-सम्पादक

आद्य वक्तव्य

–गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

आज से 2571 वर्ष पूर्व श्रावण कृष्णा एकम् को चैत्यभक्ति की रचना हुई है। उसी दिन श्री गौतमस्वामी ने दीक्षा लेकर गणधर पद प्राप्त किया है व उसी दिन भगवान महावीर की प्रथम दिव्यध्वनि खिरी है।

चैत्यभक्ति आदि रचनाएँ श्री गौतमस्वामी प्रणीत हैं, इनके प्रमाण देखिए–

चैत्यभक्ति के प्रारंभ में टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य कहते हैं–

''श्री वर्धमानस्वामिनं'' प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी स्तुतिमाह–

श्रीवर्धमान को प्रत्यक्ष देखकर-उनका प्रथम दर्शन प्राप्तकर श्री गौतमस्वामी स्तुति करते हुए कहते हैं–

हरिणी छंद–**''जयति भगवान्''**.....इत्यादि।

दैवसिक प्रतिक्रमण की टीका करते हुए श्री प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं–

''श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवता–विशेषं नमस्करोति–

'श्रीमते वर्धमानाय नमो'' इत्यादि।

इन उद्धरणों से भी ये रचनायें श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

श्री गौतम स्वामी की मूल रचनाएँ चार हैं–

1. श्री चैत्यभक्ति **2. दैवसिक प्रतिक्रमण**

3. पाक्षिक प्रतिक्रमण **4. श्रावक प्रतिक्रमण**

इसमें चैत्यभक्ति स्वतंत्र है।

पुनः तीन रचनाओं से 9 रचनाएँ उद्धृत की गई हैं।

1. **कृतिकर्म विधि** (सिद्धभक्ति) 2. **निषीधिका दण्डक**
3. **पडिक्कमामि भंते!** 4. **वीरभक्ति**

ये चार रचनाएँ दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत हैं।

5. **गणधरवलय मंत्र** 6. **सुदं मे आउस्संतो!** (श्रावकधर्म)
7. **सुदं मे आउस्संतो!** (मुनिधर्म) 8. **इच्छामि भंते!**

ये चार रचनाएँ पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत हैं।

9. **एकादश प्रतिमा**

यह रचना श्रावक प्रतिक्रमण से उद्धृत है।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय

1. **चैत्यभक्ति—**श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत है।

2. **निषीधिका दण्डक**–इस दैवसिक प्रतिक्रमण के अन्तर्गत प्रतिक्रमण भक्ति में ''निषिधिका दण्डक'' आता है। इसमें प्रथम पद जो **''णमो णिसीहियाए''** है, उसका अर्थ टीकाकार ने 17 प्रकार से किया है।

इस निषीधिका दण्डक में श्रीगौतमस्वामी ने अष्टापदपर्वत, सम्मेदशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी आदि की भी वंदना की है।

जब चारज्ञानधारी सर्वऋद्धि समन्वित गौतम गणधर इन तीर्थ क्षेत्रों की वंदना करते हैं, तब आज जो अध्यात्म की नकल करने वाला कोई यह कहे कि ''यदि साधु के तीर्थ वंदना का भाव हो जाये तो उसे प्रायश्चित्त लेना चाहिए। ऐसा कथन सर्वथा अनुचित है।

3. **वीरभक्ति—**सर्वज्ञ का लक्षण, धर्म का लक्षण आदि इसमें बहुत ही महत्वपूर्ण विषय हैं।

4.**गणधरवलय मन्त्र**–बड़ा प्रतिक्रमण जो कि पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिकरूप में किया जाता है, उसकी टीका के प्रारम्भ में टीकाकार कहते हैं–

'श्रीगौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषानां निराकरणार्थं वृहत्प्रतिक्रमण–लक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलाद्यर्थमिष्टदेवता-विशेषं नमस्कुर्वन्नाह णमो जिणाणमित्यादि''।

ये **''णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं''** आदि 48 मंत्र गणधरवलय मन्त्र कहे जाते हैं।। बृहत्प्रतिक्रमणपाठ में प्रतिक्रमणभक्ति में इनका प्रयोग है।

इन मंत्रों का मंगलाचरण धवला की नवमीं पुस्तक में है–

एवं दव्वट्ठिय जणाणुग्गहट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्म–पयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठियाणुग्गहट्ठमुत्तर सुत्ताणि भणदि।[1]

दूसरे सूत्र की उत्थानिका में विशेष स्पष्टीकरण हो रहा है।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय से जनों के अनुग्रहार्थ गौतम भट्टारक महाकर्म प्रकृति प्राभृत के आदि में नमस्कार करके पर्यायार्थिक नय युक्त शिष्यों के अनुग्रहार्थ उत्तर सूत्रों को कहते हैं–

णमो ओहिजिणाणं।।2।।

ये मंत्र आदि श्रीगौतमस्वामी द्वारा रचित ही हैं। इसके लिये षट्खंडागम आदि के प्रमाण देखिये।

षट्खंडागम में ये मंत्र 44 हैं और प्रतिक्रमण पाठ में 48 हैं।

(48) णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स।।44।

वर्धमान बुद्ध ऋषि को नमस्कार हो।।44।।

शंका–जबकि वर्धमान भगवान् को पूर्व में नमस्कार किया जा चुका है तो फिर यहाँ दुबारा नमस्कार किसलिये किया गया है ?

समाधान— जस्संतियं धम्मपहं णिगच्छे, तस्संतियं वेणयियं पउंजे।
कायेण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए तं सिरपंचमेण[2]**।।**

'जिनके समीप धर्मपथ प्राप्त हो, उनके निकट विनय का व्यवहार करना चाहिये तथा उन्हें सिर झुकाकर पांच अंग–पंचांग एवं काय, वचन और मन से नित्य ही सत्कार–नमस्कार करना चाहिये।' इस

1. धवला पुस्तक 9 पृ. 12। 2. षट्खण्डागम (धवला टीका) पु. 9 पृ. 103।

आचार्य परंपरागत नियम को बतलाने के लिये पुनः नमस्कार किया गया है।

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में यह मंत्र ऐसा है–

णमो भयवदो महदिमहावीर वड्ढमाणबुद्धरिसिणो चेदि।

जो भगवान सहज विशिष्ट मति, श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञान के धारी और पूजा के अतिशय को प्राप्त हैं, महतिमहावीर और वर्धमान नाम के धारक अंतिम तीर्थंकर हैं, बुद्धर्षि–प्रत्यक्षवेदी–केवलज्ञान के धारी हैं। रुद्र के द्वारा किये गये उपसर्ग को जीतने से 'महतिमहावीर' यह नाम प्रसिद्ध हुआ है। इन अंतिम तीर्थंकर के वर्धमान, वीर, महावीर, सन्मति और महतिमहावीर ऐसे पांच नाम विख्यात हैं। ऐसे वर्धमान भगवान को नमस्कार होवे।

5. **सुदं मे आउस्संतो!**—इसमें मुनिधर्म एवं श्रावक धर्म का वर्णन है।

6. **श्रावक प्रतिक्रमण**—इसमें पाक्षिक श्रावक से लेकर उत्कृष्ट श्रावक, क्षुल्लक, ऐलक तक की ग्यारह प्रतिमाओं का प्रतिक्रमण है।

7. **दैवसिक प्रतिक्रमण**—मुनि–आर्यिका आदि जिस प्रतिक्रमण को प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल में करते हैं वह दैवसिक–रात्रिक प्रतिक्रमण है।

8. **पाक्षिक प्रतिक्रमण**—पन्द्रह दिन में होने वाला या चार महीना या वर्ष में होने वाला बड़ा प्रतिक्रमण है। अष्टमी क्रिया में होने वाली आलोचना–ये तीनों प्रतिक्रमण श्री गौतम स्वामी द्वारा रचित हैं। यह रचनायें साक्षात् उनके मुखकमल से विनिर्गत हैं।

ऐसे ही पाक्षिक प्रतिक्रमण में एक स्थल पर स्वयं श्रीगौतमस्वामी ने अपने नाम को संबोधित किया है। यथा–

जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोदम। सारं झाणं त्ति णामेण, सव्वबुद्धेहिं देसिदं।।

श्री गौतम ! सर्वसारों में भी जो सार है वह सार 'ध्यान' इस नाम से कहा गया है ऐसा सभी सर्वज्ञ भगवंतों ने कहा है।

इस उद्धरण से भी ये रचनायें श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

पं. लालाराम जैन शास्त्री ने भी वीर निर्वाण संवत् 2557 ईसवी सन् 1931 में चैत्यभक्ति का अनुवाद करके 'दशभक्त्यादि संग्रह' पुस्तक में आज से 84 वर्ष पूर्व ये वाक्य लिखे थे-

''चैत्यभक्ति की टीका के प्रारंभ में लिखा है कि—

श्री वर्द्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी ''जयति भगवान्'' इत्यादि स्तुतिमाह।

अर्थ—गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी के प्रत्यक्ष दर्शन कर **'जयति भगवान्'** इन शब्दों से प्रारंभ करते हुए स्तुति की।

बृहद्द्रव्यसंग्रह की संस्कृत टीका में भी लिखा है :—

ततश्च जयति भगवान् इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचनानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोपि (गौतम-अग्निभूत-वायुभूत-नामानः) गणधरदेवाः संजाताः। गौतमस्वामी भव्योपकारार्थैः द्वादशांगश्रुतरचनां कृतवान्।

तदनन्तर गौतम–अग्निभूति–वायुभूति इन तीनों विद्वानों ने ''जयति भगवान्'' इत्यादि शब्दों से स्तुति करते हुए भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया। जिनदीक्षा ग्रहण की और केशलोच करने के अनन्तर

ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान चारों ज्ञान उनको प्रगट हो गये तथा सातों प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं। इस प्रकार वे तीनों ही मुनि उसी समय भगवान् महावीर स्वामी के गणधर हुए। उनमें से गौतमस्वामी ने भव्य जीवों का उपकार करने के लिए द्वादशांग श्रुतज्ञान की रचना की।

इस ऊपर के कथन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि यह चैत्यभक्ति महावीर स्वामी के केवलज्ञान के समय की बनी हुई है अर्थात् चतुर्थकाल में जब तेतीस वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रह गये थे, उस समय की यह रचना है। ऐसी-ऐसी चतुर्थकाल की रचनाएँ न जाने कितनी हैं, जो अज्ञानता के कारण हमें मालूम नहीं हैं।''

वर्तमान में वीर नि. सं. 2541 चल रहा है। भगवान महावीर स्वामी को निर्वाण प्राप्ति से 30 वर्ष पूर्व केवलज्ञान हुआ था, अतः आगे आने वाली श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को इस चैत्यभक्ति के 2571 वर्ष पूर्ण होकर 2572वीं चैत्यभक्ति जयंती आयेगी।

आप प्रतिवर्ष श्रावण कृ. 1 को वीरशासन जयंती पर्व के साथ-साथ चैत्यभक्ति-जयंती पर्व भी मनाएं।

भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में प्रभु के प्रथम गणधरदेव श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से निकली हुई यह 'श्री गौतम गणधर वाणी' अतिशय महिमापूर्ण है।

इसकी अमृतवर्षिणी टीका में अनेक प्रमाणों से यह स्पष्ट किया है कि ये सभी रचनाएँ श्री गौतम स्वामी की हैं। वास्तव में आज जितने भी वाङ्मय जैनग्रंथ उपलब्ध हैं वे सभी पंचमकालीन महान–महान आचार्यों द्वारा लिखित हैं। एक ये ही रचनायें श्री गौतमस्वामी की होने से चतुर्थकालीन हैं। श्री गौतमस्वामी के मुख से निकले एक–एक शब्द अनंत अर्थ से गर्भित हैं।

आप सभी लोग इसे पढ़कर असंख्यात गुणा पुण्य का संपादन करें यही मेरी मंगल भावना है। 25–30 वर्षों से श्री गौतमस्वामी के प्रतिक्रमण सूत्रों में संशोधन, परिवर्तन व परिवर्धन देखा जा रहा है जो कि अनुचित कार्य है। इसमें मैंने परिवर्तित पाठों का उल्लेख किया है। सभी साधुओं एवं विद्वानों से मेरा यह कहना है कि इस ग्रंथ का स्वाध्याय कर और इस बात को जानकर अब शुद्ध एवं प्राचीन पाठ ही पढ़ें, परिवर्तित पाठ न पढ़ें। यह श्री गौतम गणधर वाणी और उस पर अमृतवर्षिणी टीका आप सभी के जीवन में मंगलकारी हो, यही मंगल कामना है।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जैनधर्म के वर्तमान कालीन अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हुए हैं। भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी हुए हैं। जिन्होंने भगवान की दिव्यध्वनि को सुनकर अन्तर्मुहूर्त में—48 मिनट में द्वादशांग की रचना कर दी थी। श्री गौतमस्वामी के मुख से निकली चैत्यभक्ति का सभी साधु एवं व्रती श्रावकगण प्रतिदिन सामायिक में पाठ पढते हैं। परम्परा से मौखिकज्ञान से प्राप्त श्री गौतमस्वामी के मुख से निकली हुई अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ—चैत्यभक्ति, वीरभक्ति, गणधरवलय मंत्र, दैवसिक प्रतिक्रमण, पाक्षिक प्रतिक्रमण, अष्टमी प्रतिक्रमण एवं श्रावक प्रतिक्रमण आदि आज हम सभी को पढ़ने के लिए मिल रही हैं, यह हम सभी का परम सौभाग्य है।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, सिद्धान्तचक्रेश्वरी, चारित्रचन्द्रिका, युगप्रवर्तिका, राष्ट्रगौरव, दिव्यशक्ति, परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में वी. नि. सं. 2540, श्रुतपंचमी पर्व पर श्री गौतम गणधर वर्ष मनाने की घोषणा की एवं श्रावण कृ. एकम् (13 जुलाई 2014) को श्री गौतमस्वामी के 2571 वें 'गणधर दिवस' पर विधिवत् 'श्री गौतम गणधर वर्ष' का उद्घाटन किया गया, जो कि श्रावण कृ. एकम् (1 अगस्त 2015 तक) मनाया जा रहा है। जिसे व्यापक स्तर पर मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने पारस चैनल एवं पत्राचार के माध्यम से सभी दिगम्बर जैन संस्थाओं को प्रदान की है।

इस 'श्री गौतम गणधर वर्ष' में श्री गौतम स्वामी के गुणों का गान करने के लिए अनेक पुस्तकों का जैसे—'श्री गौतम गणधर वाणी' पुस्तक, श्री गणधरवलय विधान, श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन विचारणीय विषय, श्री गौतमगणधर अभिषेक विधि एवं पूजा, श्री गणधरवलय स्तोत्र एवं श्री गणधर– वलय मंत्र स्तोत्र संग्रह आदि ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है। आश्विन शुक्ला पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा) पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 81वें अमृत महोत्सव में 'श्री गौतम गणधर उपकार महोत्सव' का आयोजन रखा गया जिसमें लगभग 200 विद्वानों ने पधारकर श्री गौतम स्वामी की कृतियों पर अपने–अपने विचार व्यक्त किये। इस शुभ अवसर पर 108 गणधरवलय मण्डल विधान का आयोजन हुआ जिसमें प्रत्येक मण्डल पर श्री गौतम स्वामी की प्रवचन मुद्रा की मूर्ति एवं चरण विराजमान किए गए। विधान करने वाले सभी महानुभावों को श्री गौतमस्वामी के चरण घर में विराजमान करने हेतु भेंटस्वरूप प्रदान किए गए। गणधरवलय यंत्र भी पूज्य माताजी की प्रेरणा से बनवाए गए जिसे लोगों ने श्रद्धापूर्वक लेकर अपने घर में विराजमान किया। यह ऋद्धि यंत्र रोग–शोक को दूर करने वाला एवं समस्त कार्यों की सिद्धि करने वाला है।

श्री गौतमस्वामी का इतना प्रचार–प्रसार करने के बाद भी पूज्य माताजी सदैव कहती हैं कि भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में जिन्होंने तीस वर्ष व्यतीत किया सम्पूर्ण द्वादशांग का ज्ञान प्राप्त किया। ऐसे श्री गौतमस्वामी के गुणों का वर्णन करना, उनके उपकारों का स्मरण करना अति आवश्यक

है इसीलिए उन्होंने गौतमस्वामी की कृतियों के कुछ अंशों को लेकर 'गौतम गणधर वाणी' का संकलन कर, उस पर 'अमृतवर्षिणी टीका' लिखकर प्रदान की है। दस अध्यायों में विभक्त इस 'गौतम गणधर वाणी' के एक-एक अध्यायों पर विस्तृत टीका लिखी है। जिसे चार भागों में विभक्त किया गया है, उसी में से यह प्रथम भाग आपके हाथों में स्वाध्याय हेतु, ज्ञानवर्धन हेतु पहुँच रहा है।

इस अमृतवर्षिणी टीका में सर्वप्रथम श्री गौतमस्वामी प्रणीत मंगलाचरण को लेकर उस पर विस्तृत टीका लिखी गई है—

1. मंगलाचरण— **श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित विद्विषे।**
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।

इस मंगलाचरण में चारों अनुयोग—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग समाहित हैं। इसका खुलासा इसमें पूज्य माताजी ने किया है।

2. श्री गौतमस्वामी परिचय—मंगलाचरण की व्याख्या करते हुए श्री गौतमस्वामी का जीवन परिचय दिया है, जो कि ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी महाप्रकाण्ड विद्वान, चौदह महाविद्याओं के पारगामी थे, पर महा अभिमानी थे, लेकिन जब उन्होंने भगवान महावीर के समवसरण में मानस्तंभ का दर्शन किया कि उनका सारा मान गलित हो गया, सम्यक्त्व प्रगट हो गया और भगवान का दर्शन कर, उनकी स्तुति कर, उनकी शिष्यता स्वीकार कर भगवान के पादमूल में जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली, अन्तर्मुहूर्त में ही मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो गया और वे भगवान के प्रथम गणधर हो गए।

3. गणधरदेव ही द्वादशांग श्रुत के कर्ता होते हैं—षट्खण्डागम (धवला पु. 1) में लिखा है कि अर्थकर्ता भगवान महावीर हैं और ग्रंथकर्ता श्री गौतम स्वामी हैं। श्री गौतम स्वामी ने आचारांग आदि बारह अंगों की एवं सामायिक आदि अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकों की श्रावणमास के कृष्ण पक्ष में युग के आदिम प्रतिपदा में पूर्व दिन में रचना की थी। अतः श्री गौतमस्वामी भगवान महावीर के तीर्थ में ग्रंथकर्ता हुए। ऐसा धवला पु. 9 में लिखा है। इस विषय को इसमें सप्रमाण लिखा है।

4. द्वादशांग जिनवाणी को ग्रंथरूप में नहीं लिखा जा सकता—दिगम्बर जैन परम्परा में भगवान महावीर के बाद 683 वर्ष तक ही द्वादशांग श्रुत एवं उसके ज्ञाता आचार्य रहे हैं। आज द्वादशांग उपलब्ध नहीं है क्योंकि द्वादशांग लिखे ही नहीं जा सकते। आज उपलब्ध जैन वाङ्मय उस द्वादशांग का अंश मात्र ही है।

5. भगवान महावीर स्वामी के बाद 683 वर्ष तक द्वादशांग रहे हैं—इस विषय को कषायपाहुड़ (जयधवला टीका) पुस्तक—1, धवला पुस्तक—9 के प्रमाण से सिद्ध किया है। इसमें सार में भी सार बताते हुए अनुबद्ध केवली, केवली, चारणऋद्धि, प्रज्ञाश्रमण, अवधिज्ञानी, श्रुतकेवली, दसपूर्वधारी, आचारांग के धारी आदि का भी वर्णन है।

6. श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय एवं प्रतिक्रमण पाठ के प्रमाण—इस विषय में धवला पु. 9, श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी से प्रमाण दिए हैं कि चैत्यभक्ति, पाक्षिक प्रतिक्रमण, दैवसिक प्रतिक्रमण, श्रावक प्रतिक्रमण आदि गौतम स्वामी की रचनाएँ हैं।

7. ''श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित विद्विषे''—इसमें भगवान महावीर स्वामी का परिचय पुरुरवा भील से दिया है। यह पुरुरवा भील का जीव ही भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीचि कुमार हुआ। सम्यग्दर्शन का लक्षण, पंचाणुव्रत का लक्षण, तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने वाली सोलहकारण भावनाओं का वर्णन, भगवान महावीर के पंचकल्याणक का वर्णन एवं पुरुरवा भील से लेकर भगवान महावीर के 34 भव के नाम भी दिए गए हैं।

8. प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का जीवन परिचय—प्रथम कर्मभूमि, भोगभूमि, कुलकरों की उत्पत्ति, अयोध्या नगरी की रचना, भगवान ऋषभदेव के पंचकल्याणक का वर्णन, श्री ऋषभदेव के द्वारा कर्मभूमि की व्यवस्था, समवसरण का वर्णन आदि विषयों को इसमें लिया है।

9. चौबीस तीर्थंकरों का अन्तराल—भगवान ऋषभदेव के अनन्तर अजितनाथ से लेकर महावीर पर्यंत 24 तीर्थंकर हुए हैं। श्री ऋषभदेव के मुक्त हो जाने के पश्चात् पचास लाख करोड़ सागरों के व्यतीत हो जाने पर अजितनाथ भगवान ने मोक्ष प्राप्त किया। इसी तरह से चौबीसों तीर्थंकरों के मोक्ष जाने का अन्तराल एवं किस तीर्थंकर के काल में धर्म व्युच्छित्ति हुई है इसे भी बताया है।

10. ''यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा''—इसमें ज्ञान के पाँच भेद–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान एवं केवलज्ञान का वर्णन है।

11. ''त्रैलोक्यं गोष्पदायते''—इसमें तीन लोक का वर्णन है। लोक की ऊँचाई–चौड़ाई का प्रमाण, त्रस नाली का प्रमाण, अधोलोक के राजू का वर्णन, ऊर्ध्वलोक में राजू का प्रमाण, वातवलयों का वर्णन, लोक का घनफल, त्रस नाली का वर्णन, अधोलोक में नरक के दुखों का वर्णन, नारकियों की जघन्य, उत्कृष्ट आयु, तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके नरक जाने वालों का एवं नरक में अवधिज्ञान का वर्णन है। मध्यलोक में ढाईद्वीप का वर्णन है जिसमें जम्बूद्वीप, सुमेरुपर्वत, लवण समुद्र, 170 कर्मभूमि, 30 भोगभूमि, 96 कुभोगभूमि, कुमानुष आदि का वर्णन है। जम्बूद्वीप एवं मध्यलोक के अकृत्रिम जिनालयों की संख्या बताते हुए पूज्य माताजी ने उनमें स्थित सर्व जिनप्रतिमाओं को मन, वचन, काय से नमन किया है।

12. षट्काल परिवर्तन—मध्यलोक में भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के षट्कालों से मनुष्यों की आयु, अवगाहना आदि में जो वृद्धि, ह्रास होता है उन सबका वर्णन है। कुलकरों की उत्पत्ति, त्रेसठ शलाका पुरुष, भरत, ऐरावत क्षेत्र के म्लेच्छ खंडों की व्यवस्था आदि का वर्णन है।

13. ऊर्ध्वलोक—इसमें 16 स्वर्ग, 9 ग्रैवेयक, 9 अनुदिश, पाँच अनुत्तर का वर्णन है। कल्प और कल्पातीतों के स्थान, विमानों की संख्या, भेद, प्रमाण, वर्ण एवं विमानों के आधार का वर्णन है। देवों के प्रासाद, परिवार देव, सौधर्म इन्द्र का परिवार, ऐरावत हाथी, सौधर्म इन्द्र की देवियाँ, सुधर्मा सभा, शरीर की अवगाहना, उत्कृष्ट आयु, विक्रिया, अवधिज्ञान, प्रवीचार सुख, देवियों की उत्पत्ति स्थान, देवों का आहारकाल, लौकांतिक देव, एक भवावतारी देव आदि का वर्णन है।

14. सिद्धशिला—लोक के अग्रभाग पर मनुष्यलोक—ढाईद्वीप प्रमाण—45 लाख योजन प्रमाण सिद्धशिला है, जहाँ पर अनंतानंत सिद्ध भगवान विराजमान हैं, उन अनंतानंत सिद्धों को मेरा नमस्कार हो।

इस प्रकार से गौतम गणधर वाणी (अमृतवर्षिणी टीका) में पूज्य माताजी ने एक मंगलाचरण पर चारों अनुयोगों का विस्तृत वर्णन करते हुए प्रथम अध्याय के अन्तर्गत मंगलाचरण नाम के प्रकरण को पूर्ण किया है।

इसकी पूर्णता पर 'भगवान महावीर स्तोत्र' का पाठ है, जिसमें 9 काव्यों में भगवान महावीर का जीवन चरित्र गागर में सागर की भाँति समाहित है।

श्री गौतम स्वामी के मुख से सर्वप्रथम भगवान महावीर की स्तुति के रूप में चैत्यभक्ति निकली जिसे पूज्य माताजी ने गौतम गणधर वाणी में प्रथम अध्याय के रूप में लिया है। इस चैत्यभक्ति का विस्तृत विवेचन अमृतवर्षिणी टीका में किया है—

15. चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् महास्तोत्र—इसमें चैत्यभक्ति, उसका पद्यानुवाद एवं अर्थ दिया है। इसमें श्री गौतमस्वामी जिनेन्द्र धर्म की, भगवान के ज्ञान की, नवदेवों की, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वन्दना कर रहे हैं। भगवान की वीतरागता का बहुत ही सुन्दर वर्णन श्री गौतमस्वामी ने इस चैत्यभक्ति में किया है।

16. ''जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभितौ''—चैत्यभक्ति के प्रारम्भ में श्री गौतम स्वामी भगवान की जय बोलते हुए कहते हैं भगवन् ! आपके चरण कमल स्वर्ण कमलों पर विहार करते हैं। इस एक पंक्ति को लेकर पूज्य माताजी ने इसमें भगवान के समवसरण का संक्षिप्त वर्णन किया है।

17. ''अमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ''—इसकी टीका में 4 प्रकार के देवों के 32 इन्द्र का वर्णन है जो कि अपने असंख्य देव-देवी परिवार के साथ भगवान के चरणों में नमस्कार करते हैं।

18. ''कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणः''—भगवान के चरण का आश्रय लेने वाले पशु एवं मनुष्य परस्पर में शत्रुता का भाव छोड़कर प्रीति भाव रखते हैं। इस बात को उदाहरण देकर बताया है।

19. ''परिणतनयस्यांगी-भावाद्विविक्तविकल्पितं''—इसमें नयों का विवेचन है। नय का लक्षण, नय के मूलभेद, द्रव्यार्थिक नय, पर्यायार्थिक नय, शुद्ध-अशुद्ध निश्चय नय, उपनय, निश्चयनय, व्यवहारनय, सुनय और दुर्नय आदि का वर्णन है। नय मोक्ष का कारण है इस बात को भी सिद्ध किया है।

20. ''अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः''—सर्व जगत में वंद्य अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पंचपरमेष्ठी का विशेष वर्णन नियमसार ग्रंथ से इसमें किया है।

21. ''क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुम्।''—इसमें उत्तम क्षमा आदि दशधर्म की, जो कि सबका हित करने वाला है उस धर्म की वन्दना की गई है।

22. ''मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोकैकज्योतिर्मितगमयोगि''—श्री गौतम स्वामी ने इस श्लोक में जिनागम-शास्त्र की वन्दना की है। पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत जितना भी जैन वाङ्मय है, वे सभी जिनागम हैं।

23. ''भवनविमानज्योति-र्व्यन्तरनरलोकविश्वचैत्यानि''—श्री गौतमस्वामी ने चार प्रकार के देवों के यहाँ तथा नरलोक में होने वाली अकृत्रिम-कृत्रिम सभी जिनचैत्य—जिनप्रतिमाओं की वन्दना की है।

24. ''भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य तीर्थकर्तृणाम्''—तीन भुवन में जितने भी जिनमंदिर

हैं, उन सबकी इसमें वन्दना की गई है। अकृत्रिम जिनमन्दिर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य कितने बड़े है उनका माप दिया है। नंदीश्वर द्वीप के जिनमंदिर का वर्णन त्रिलोकसार ग्रंथ से दिया है। सिद्ध प्रतिमा और अरिहंत प्रतिमा में क्या अन्तर है ? इस बात को वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ, जयसेन प्रतिष्ठापाठ, प्रतिष्ठासरोद्धार आदि से सिद्ध किया है।

25. ''इति पंचमहापुरुषाः प्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि''—इस श्लोक में श्री गौतम स्वामी ने नवदेवों की संख्या बताई है और कहा है–पाँच परमेष्ठी, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और चैत्यालय ये नव देव मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति करावें।

26. ''श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयं भासुरमूर्तयः''—इसमें भवनवासी देवों के विमानों में स्थित प्रतिमाओं की वन्दना की गई है। देवों के भेद एवं भवनवासी देवों के स्थान, भेद, भवनों का प्रमाण एवं जिनमंदिर का वर्णन किया है।

27. ''यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।'' —इस तिर्यग्लोक में जितने भी कृत्रिम–अकृत्रिम मन्दिर हैं उनकी वन्दना इसमें की गई है। जम्बूद्वीप एवं मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या बताते हुए कृत्रिम जिनालयों का वर्णन है। जैसे कि—युग की आदि में इन्द्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमन्दिर बनाये, कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने महारत्नों से जिनमंदिर बनवाए, सुलोचना ने जिनमन्दिर व जिनप्रतिमाएँ बनवाईं, हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित मंदिर बनवाए, श्री रामचन्द्र ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाए, धाराशिव नगर में 1008 खम्भों के जिनमन्दिर का वर्णन आराधना कथाकोष में है। लवण समुद्र में लंका नगरी में अनेकों जिनमंदिर एवं दशानन के घर में सुवर्णमयी हजारों खम्भों से सुशोभित शान्तिनाथ जिनालय था। इन सभी विषयों का इसमें सुन्दर वर्णन शास्त्रोक्त प्रमाण सहित है।

28. ''ये व्यंतरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः''—इसमें व्यंतर देवों के आवासों में विराजमान असंख्यात प्रतिमागृहों को दोषों की शान्ति के लिए कहा है। इसमें सात प्रकार के व्यंतर देवों का वर्णन है, वे कहाँ–कहाँ रहते हैं ? और उनके भवन, भवनपुर, आवास कहाँ है ? आदि का वर्णन है।

29. ''ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः''—ज्योतिषी देवों के विमानों में स्थित अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हन्तों को विभूति प्राप्ति हेतु नमन किया है। ज्योतिर्वासी देवों के 5 भेद, ज्योतिष्क देवों के विमान की भूमि से ऊँचाई एवं प्रमाण का चार्ट भी दिया है। इसके साथ ही वाहन जाति के देव, ज्योतिष्क देवों की गति, सूर्यादि की किरणें, विमान और जिनमन्दिरों का प्रमाण, सूर्य का गमन क्षेत्र, दक्षिणायन–उत्तरायण, एक मिनट में सूर्य का गमन, चक्रवर्ती द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन, चन्द्र का गमन क्षेत्र, एक मिनट में चन्द्र का गमन, कृष्णपक्ष–शुक्लपक्ष, एक चन्द्र का परिवार एवं दिन–रात्रि का विभाग आदि सभी विषयों को लिया है।

30. ''वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम्''—इसमें वैमानिक देवों के विमान सम्बन्धी प्रतिमाओं को मुक्ति प्राप्ति हेतु नमन किया है। ऊर्ध्वलोक का वर्णन, कल्पवासी देव, 16 स्वर्गों के नाम, 12 कल्प, कल्पातीत, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश, पाँच अनुत्तर विमान, कल्प और कल्पतीतों के स्थान, विमानों की

संख्या, विमानों के भेद आदि का वर्णन है। इस विषय के अंत में तीन लोक में कुल अकृत्रिम जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमाओं की संख्या देते हुए उन्हें एवं मध्यलोक में संख्यात कृत्रिम जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमाओं को नमन किया है।

31. चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् महास्तोत्र—श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित संस्कृत टीका एवं हिन्दी टीका सहित पूरी चैत्यभक्ति को विद्वत्जन के ज्ञान वर्धन हेतु एवं संस्कृत ज्ञान हेतु दिया है। इसे पढ़कर सुधीजन चैत्यभक्ति का अर्थ हृदयंगम कर महान पुण्य का संचय करें।

32. प्रथम अध्याय (चैत्यभक्ति) का सार—इसमें पूज्य माताजी ने चैत्यभक्ति पर अमृतवर्षिणी टीका लिखते हुए अन्त में चैत्यभक्ति का सार बताते हुए सम्पूर्ण कृत्रिम-अकृत्रिम जिनचैत्य, चैत्यालयों की वन्दना की है। पुनः तीन लोक में अकृत्रिम जिनमंदिरों की संख्या बताते हुए लिखा है—

त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।

इस प्रकार से श्री गौतम गणधर वाणी की अमृतवर्षिणी टीका में मंगलाचरण समन्वित चैत्यभक्ति नामक प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ। अध्याय की पूर्णता पर पूज्य माताजी ने **समवसरण स्तोत्र, श्री महावीर स्तोत्र**, **नवदेवता स्तोत्र एवं चैत्यवन्दनाष्टक** दिया है जिसे पढ़कर सभी भव्यजीव भगवान महावीर की, समवसरण की एवं नवदेवताओं की वन्दना, भक्ति का फल प्राप्त करें और तीन लोक के समस्त कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वन्दना करें।

33. कृतिकर्म विधि—चैत्यभक्ति के बाद अध्याय-2 में कृतिकर्म विधि को लिया है जिसका ज्ञान सभी साधुओं एवं व्रती श्रावकों को होना चाहिए कि जब हम सामायिक करते हैं, स्वाध्याय की भक्ति पढ़ते हैं उस समय किस विधि से हमें भक्ति पढ़ना चाहिए। इसमें 1 कृतिकर्म में 12 आवर्त, 4 शिरोनति और 2 प्रणाम होते हैं। इन सबका खुलासा शास्त्रोक्त प्रमाण सहित इस कृतिकर्म विधि में दिया है। सर्वप्रथम कृतिकर्म प्रयोगविधि को बताया है। उसके बाद लघु कृतिकर्म विधि भी दी है।

इस कृतिकर्म विधि में ही पृ. 241 से 46 तक ''शिल्पक्रिया के अन्तर्गत वास्तुविद्या में—जिनप्रतिमा निर्माण विधि'' नामक प्रकरण बहुत अच्छा है, इसमें यह भी संकेत है कि मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र की अखण्डपर्वत शिला में सन् 1996 में दी गई पूज्य माताजी की प्रेरणा के आधार पर निर्मित हो रही भगवान ऋषभदेव की 108 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा का माप इसी आधार से निश्चित किया गया है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि युग-युगों तक जब भी इस प्रतिमा का इतिहास स्मरण किया जाएगा तो पुरातत्त्वविद, शोधकर्ता पर्यटक एवं श्रद्धालु भक्त इस तथ्य से परिचित होंगे कि केवल शिल्पी की शिल्पकला ही प्रतिमा के साथ नहीं जुड़ी है, प्रत्युत आगमोक्त माप के साथ इसका निर्माण होने के कारण इसमें अतिशय चमत्कार प्राप्त हुआ है। चूँकि ज्ञानमती माताजी ने सदा-सदा ही प्रत्येक कार्य में आगम को साक्ष्य बनाकर ही कार्य सम्पन्न किये हैं, यह इसका बेमिसाल उदाहरण प्रस्तुत होगा।

34. कृतिकर्म विधि के विषय में वर्णन—अंग बाह्य के 14 भेदों में से जो 'कृतिकर्म' नाम से छठा प्रकीर्णक है। वह कृतिकर्म विधि का विस्तार से वर्णन करता है। यद्यपि आज अंग बाह्य नाम से 14

प्रकीर्णक हमारे पास उपलब्ध नहीं है। तो भी इनका अंश-अंश ज्ञान उपलब्ध शास्त्रों से प्राप्त होता है। वर्तमान में यह कृतिकर्म विधि षट्खण्डागम धवला पु. 13 में वर्णित है। यह कृतिकर्म विधि श्री गौतमस्वामी द्वारा प्रणीत है इसके प्रमाण इसमें पूज्य माताजी ने दिए हैं।

35. णमोकार मंत्र एवं चत्तारि मंगल पाठ—णमोकार मंत्र एवं चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है इस बात को इसमें सिद्ध किया है। चत्तारि मंगल पाठ का प्राचीन पाठ और वर्तमान में परिवर्तित पाठ-नया पाठ भी इसमें दिया है जो कि विभक्ति लगाकर बनाया गया है और लगभग 40 वर्षों से दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। प्राचीन पाठ-अनादि निधन पाठ में परिवर्तन, संशोधन अनुचित कार्य है। इस विषय को इसमें स्पष्ट किया है।

36. लघु सिद्धभक्ति—इसकी अमृतवर्षिणी टीका में 'तप से सिद्ध' में बाहुबली स्वामी का उदाहरण दिया है। क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध, बोधित बुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इसके द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं। इस बात को तत्त्वार्थवृत्ति से विशेषरूप से सिद्ध किया है।

37. कृतिकर्म विधि के प्रमाण—जैन साधु एवं श्रावकों के लिए इसमें कृतिकर्म विधि के प्रमाण कषायप्राभृत, षट्खण्डागम धवला पुस्तक 1, पुस्तक-9, गोम्मटसार जीवकाण्ड, मूलाचार, आचारसार, चारित्रसार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अनगार धर्मामृत आदि प्राचीन ग्रंथों से दिए गए हैं। मुनियों के कृतिकर्म, व्रती श्रावकों के कृतिकर्म एवं सामान्य श्रावकों के कितने-कितने कृतिकर्म होते हैं इनका वर्णन किया है।

38. सामायिक दण्डक—इसमें 'क्रियाकलाप' से सामायिक दण्डक की संस्कृत टीका एवं 'सामायिक भाष्य' से हिन्दी है। इसमें पंचपरमेष्ठी के गुणों का स्पष्टीकरण है। यह श्री गौतम स्वामी द्वारा प्रणीत है।

39. थोस्सामि स्तव—इसमें भी 'क्रियाकलाप' से थोस्सामि स्तव की संस्कृत टीका एवं सामायिक भाष्य से हिन्दी टीका है। इसमें 24 तीर्थंकरों की स्तुति की है। यह भी श्री गौतमस्वामी द्वारा प्रणीत है।

40. ''अड्ढाइज्जदीव दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु''—इसकी अमृतवर्षिणी टीका में मध्यलोक का वर्णन है। जम्बूद्वीप, विदेह क्षेत्र, 170 कर्मभूमियाँ, एक साथ अधिकतम तीर्थंकर 170 एवं कम से कम 20 होते हैं इस विषय का वर्णन है। ढाईद्वीप और दो समुद्र तक पंचपरमेष्ठी होते हैं इस बात को इसमें सिद्ध किया है।

41. ''आदियराणं''—इसकी टीका करते हुए भगवान ऋषभदेव के द्वारा विद्या, शिक्षा आदि का आदिपुराण ग्रंथ से विशेष वर्णन किया है। भगवान ऋषभदेव ने प्रजा को असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन षट्क्रियाओं का उपदेश दिया। इन सभी का वर्णन इसमें है। शिल्प क्रिया के अन्तर्गत वास्तुविद्या में जिनप्रतिमा निर्माण विधि का वर्णन भी इसमें दिया है। प्रतिमा के किस अंग का माप कितना होना चाहिए, सभी का अलग-अलग विस्तार बताया है। पद्मासन प्रतिमा, सिद्ध प्रतिमा, आचार्यादि की प्रतिमा, यक्ष की प्रतिमा आदि का भी कथन है।

42. ''तित्थयराणं''—इस शब्द की टीका करते हुए तीस चौबीसी एवं विद्यमान बीस तीर्थंकर भगवान कहाँ–कहाँ हैं बताते हुए तीस चौबीसी के 720 वन्दना मंत्र एवं पाँच महाविदेह संबंधी विद्यमान बीस तीर्थंकर के 20 वन्दना मंत्र भी दिए हैं। जिन्हें पढ़कर ज्ञान का वर्धन करें और 740 तीर्थंकरों की वन्दना करते हुए बारम्बार नमन करें।

43. ''जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं''—इसकी टीका में भरत चक्रवर्ती का वर्णन किया है। जिसमें भरत की दिग्विजय का वर्णन, भरत–बाहुबली का युद्ध, बाहुबली का वैराग्य, भरत महाराज का चक्रवर्ती पट्ट पर महासाम्राज्य अभिषेक, भरत द्वारा बाहुबली महामुनिराज की पूजा, बाहुबली का केवलज्ञान, भरत चक्रवर्ती द्वारा ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति, भरत के सोलह स्वप्न, चक्रवर्तियों का वैभव आदि का वर्णन है। द्वादश चक्रवर्ती के वैभव का चार्ट, नौ बलभद्र, नौ नारायण एवं नौ प्रतिनारायण की ऊँचाई, आयु, गति आदि का चार्ट भी दिया है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र के जीवन चारित्र का वर्णन भी इसमें दिया है। लंकानगरी का वर्णन, सीता का विवाह, रामचन्द्र का वनवास, रावण की मृत्यु, सीता का निष्कासन, रामचन्द्र का पुत्रों के साथ युद्ध, सीता की अग्नि परीक्षा, सीता की आर्यिका दीक्षा, रामचन्द्र की दीक्षा और निर्वाण गमन आदि का सुन्दर, रोमांचक वर्णन है।

44. ''णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं''—इसमें ज्ञान, दर्शन और चारित्र की कृतिकर्म विधि पूर्वक वन्दना की है। इसमें कायोत्सर्ग का लक्षण, कायोत्सर्ग के 32 दोष, वन्दना के 32 दोष का वर्णन करते हुए लिखा है कि इन दोषों से रहित वन्दना ही शुद्ध वंदना है जो कि विपुल निर्जरा का कारण है।

45. ''लोयस्सुज्जोययरे''—लोक में उद्योतकारी, धर्मतीर्थंकर, जिनवर, केवली, अर्हंत भगवान उत्तम हैं। इसकी विशेष व्याख्या मूलाचार से की गई है। लोक शब्द का निरुक्ति अर्थ भी दिया है। जिस हेतु से जिनेन्द्रदेव द्वारा यह सब कुछ अवलोकित किया जाता है, इसीलिए यह 'लोक' कहा जाता है।

46. 'उसहमजियं च वंदे''—थोस्सामि स्तव में 24 तीर्थंकरों की वन्दना की गई है अतः यहाँ पर 24 तीर्थंकरों के संक्षिप्त परिचय में भगवान की जन्मभूमि, माता–पिता के नाम एवं पंचकल्याणक की तिथियाँ दी हैं।

47. कृतिकर्म विधि का सार—पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने कृतिकर्म विधि पर अमृतवर्षिणी टीका लिखते हुए अन्त में सार में कहा है कि कृतिकर्म विधि पूर्वक वन्दना करना अनादि व्यवस्था है। अतः इस विधि को अच्छी तरह से समझकर करना और दूसरों को भी बताकर कराना है।

इस प्रकार श्री गौतमस्वामी प्रणीत श्री गौतम गणधर वाणी की अमृतवर्षिणी टीका में गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित एवं संकलित कृतिकर्म विधि नाम का द्वितीय अध्याय पूर्ण हुआ।

इस अध्याय की पूर्णता करते हुए सामायिक प्रयोग विधि, वन्दना योग्य मुद्रा एवं सामायिक (देववंदना) को विधिवत् करने हेतु दिया है।

48. धर्मतीर्थ की उत्पत्ति—वर्धमान तीर्थंकर ने तीर्थ की उत्पत्ति की है, अट्ठारह महाभाषा और सात सौ क्षुद्र भाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक, उन अनेक बीज पदों के प्ररूपक अर्थकर्ता हैं तथा बीज पदों

में लीन अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्ता गणधर भट्टारक ग्रंथकर्ता हैं। इस बात को पूज्य माताजी ने धवला पुस्तक 1, धवला पुस्तक 9, तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से सप्रमाण दिया है।

49. श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में तथा अन्य ग्रंथों में समानता व अन्तर—श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में जो नव पदार्थ, द्वादश तप, बंध के कारण, श्रावक के बारह व्रत व पच्चीस भावनाएँ वर्णित हैं, इन्हीं के अनुसार षट्खण्डागम ग्रंथ व श्री कुंदकुंद देव रचित समयसार, प्रवचनसार, मूलाचार आदि ग्रंथों में समानता है। आगे के तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रंथों में अन्तर आया है। इस विषय को यहाँ पर अनेक ग्रंथों के उद्धरण सहित दिया है। पूज्य माताजी ने यह भावना व्यक्त की है कि जिस ग्रंथ में जैसा पाठ है उसे वैसा ही रखना चाहिए, उनमें परिवर्तन, परिवर्धन, संशोधन नहीं करना चाहिए।

50. श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन, परिवर्धन उचित नहीं है—आज-कल कुछ साधु-साध्वियाँ प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तित पाठ पढ़ने लगे हैं जैसे 'करोम्यहं' को कुर्वेऽहं। प्राचीन जितने भी शास्त्र है उन सभी में 'करोम्यहं ' पाठ ही है अतः प्राचीन पाठ को ही पढ़ना चाहिए। इस बात को इसमें पूज्य माताजी ने आचारसार, अनगार धर्मामृत, चारित्रसार, क्रियाकलाप आदि प्राचीन ग्रंथों से सप्रमाण बताया है।

इसके साथ ही पाठ परिवर्तन का चार्ट दिया है जिसमें 11 पुस्तकों से 27 विषयों को लिया है जिसमें प्राचीन ग्रंथों में—क्रियाकलाप, धर्मध्यान दीपक, यतिक्रियामंजरी आदि में एक जैसा पाठ है और वर्तमान की पुस्तकें जैसे श्रमणचर्या, विमलभक्ति संग्रह, श्रमणाचार, सुज्ञान श्रमणचर्या, दिनचर्या आदि पुस्तकों में परिवर्तित, परिवर्धित पाठ है।

51. पं. श्री लालाराम जी के चैत्यभक्ति के विषय में उद्‌गार—वीर नि. सं. 2458 (सन् 1932) में पं. श्री लालाराम जी शास्त्री मोरेना (म. प्र.) ने दशभक्ति संग्रह पुस्तक में भक्तियों की हिन्दी टीका लिखी है। इसकी प्रस्तावना में इन्होंने लिखा कि चैत्यभक्ति महावीर स्वामी के केवलज्ञान के समय की बनी हुई है अर्थात् चतुर्थकाल में जब तेतीस वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रह गये थे, उस समय की यह रचना है। अतः यह स्पष्ट है कि चैत्यभक्ति श्री गौतम स्वामी की रचना है।

इसके बाद पूज्य माताजी ने इस ग्रंथ की प्रशस्ति लिखी है जिसमें लिखा है—

वीराब्द पचीस शतक चालिस, शुभ ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी धन्य।
'श्री गौतम गणधर वाणी' में, कृतिकर्म विधि यह पूर्ण मान्य।।
इस पर 'अमृतवर्षिणी' नाम टीका से अतिशय ग्रंथ बना।
इसमें संकलित अध्याय दोय, जिनवचनामृतमय पूर्ण घना।।

अर्थात् श्री गौतम गणधर वाणी के दो अध्याय 'चैत्यभक्ति और कृतिकर्म' पर अमृतवर्षिणी टीका पूज्य माताजी ने वीर नि. सं. 2540, ज्येष्ठ शु. पंचमी को पूर्ण की। यह टीका ग्रंथ वास्तव में जिनवचनरूपी अमृत की वर्षा करने वाला ग्रंथ है इसका स्वाध्याय, मनन, चिन्तन जीवन में अवश्य एक नई दिशा, नया ज्ञान प्रदान करेगा।

अन्त में पूज्य माताजी ने श्री गौतम गणधर वाणी की 10 अध्यायों का मूल एवं पद्यानुवाद दिया है जिसे कि एक साथ पढ़कर या एक दिन में एक-एक अध्याय का पाठ करके महान पुण्य का संचय करें और श्री गौतमस्वामी के ज्ञानरूपी अमृत का पान करें।

10 अध्याय के बाद श्री गौतम स्वामी का संस्कृत में स्तोत्र है जो कि मात्र 8 श्लोक का होते हुए भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित है। शास्त्र स्वाध्याय के अंत में अर्थात् समापन पर पढ़ने हेतु जिनवाणी स्तुति भी दी गई है।

यह ग्रंथ **''यथा नाम तथा गुण''** से समन्वित है। आज के पंचमकाल में चतुर्थकाल की गणधर वाणी को प्राप्त करके वास्तव में हम सभी भव्यात्माओं को गौरव की अनुभूति होनी चाहिए और श्रीगौतमस्वामी के उपकारों का स्मरण करके उनसे प्राप्त श्रुतज्ञान से अपने सम्यग्ज्ञान को वृद्धिंगत करना चाहिए। पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना की जीवन्त प्रतिमा हैं तभी तो आज 80 वर्ष की आयु में, अति कमजोर शरीर में भी सतत ज्ञानाराधना करके उसका फल हम सबको प्रदान कर रही हैं। उन्होंने सन् 2013-14 में ऐसी 20-25 कृतियाँ उपलब्ध कराई हैं जो जिनागम ग्रंथों से निकाले गये मक्खन के समान सारभूत हैं, ये साहित्यिक कृतियाँ निश्चितरूप से भावी शोध करने वाली पीढ़ी के लिए नींव का पत्थर सिद्ध होंगी।

प्रस्तुत ग्रंथ की सामग्री अति विशिष्ट एवं शोधात्मक है, इसमें अति परिश्रमपूर्वक विषयों का चयन करके पूज्य माताजी ने इसे सर्वजनोपयोगी बना दिया है। इसका प्रूफ संशोधन करने में संघस्थ आर्यिका सुव्रतमती ने पूरे मनोयोग के साथ परिश्रम किया है उनके लिए श्रुतज्ञान प्राप्ति का खूब मंगल आशीर्वाद है, अन्य सभी संघस्थ शिष्याओं को भी गुरुभक्ति स्वरूप किञ्चित् भी सहयोग प्रदान करने हेतु शुभाशीर्वाद।

यह अमृतवर्षिणी टीका समन्वित गौतम गणधर वाणी ग्रंथ हम सबको ज्ञान अमृत का पान करावे जिससे हमारी आत्मा अजर-अमर मोक्षधाम को प्राप्त कर सके यही भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना है तथा ज्ञानामृत प्रदात्री पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी चिरकाल तक हमें इसी प्रकार की अमूल्य कृतियाँ प्रदान करती रहें, यही मंगल भावना है।

दो शब्द

–आर्यिका सुव्रतमती (संघस्थ)

मंगलं स्यान्महावीरो, श्री गौतमश्च मंगलम्।
जिन शासनमाचंद्रं, स्थेयात् कुर्याच्च मंगलम्।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक चारित्रचक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। उनके 3 बार दर्शन करने वाली एवं उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त करने वाली और उनके प्रथम पट्टशिष्य चारित्र चूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा को प्राप्त करने वाली, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, वर्तमान में पीछीधारी सभी साधुओं में सबसे प्राचीन दीक्षित, परम पूज्य 105 गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी हैं, जिन्होंने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना की है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि किस तरह से मैं वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से, पूर्वाचार्यों की वाणी से सिंचित करूँ।

सच्चे ज्ञान की प्राप्ति धर्म गुरुओं से सहज ही हो जाती है जैसा कि श्री पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है–

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः।।

अर्थात् अज्ञानी की उपासना–संगति से प्राणी अज्ञान प्राप्त करता है तथा ज्ञानी की उपासना से ज्ञान प्राप्त करता है, क्योंकि 'जिसके पास जो कुछ है वह वही वस्तु प्रदान करता है' यह सुप्रसिद्ध वचन है।

किसी भी शास्त्र को पढ़ते समय यदि अर्थ समझ में नहीं आता है तो पूज्य माताजी कहती हैं कि मेरे गुरू आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज कहा करते थे–

'पठितव्यं खलु पठितव्यं अग्रे अग्रे स्पष्टं भविष्यति' अर्थात् हमेशा पढ़ते रहो–पढ़ते रहो, आगे-आगे विषय स्पष्ट होगा। जैसे श्रावक की दैनिक षट् क्रियाओं में स्वाध्याय एक क्रिया है, उसी प्रकार मुनियों के 6 अंतरंग तपों में स्वाध्याय नाम का एक तप है। कहा भी है-**'स्वाध्यायः परमं तपः।'**

इस गौतम गणधर वाणी का संकलन करके और उस पर अमृतवर्षिणी टीका लिखकर पूज्य माताजी ने जैन समाज पर महान् उपकार किया है। श्री गौतम स्वामी के मुखारविन्द से निकली वाणी, चतुर्थकाल की वाणी को पढ़कर और उस पर पूज्य माताजी द्वारा की गई अमृतवर्षिणी टीका को पढ़कर और उसे हृदयंगम कर हम अपने सम्यग्दर्शन को शुद्ध करें और परम्परा से एक दिन मोक्ष पद को प्राप्त करें। पूज्य माताजी स्वस्थ रहें, दीर्घायु को प्राप्त करें और अपने ज्ञानरूपी आलोक से सभी भव्यजीवों को प्रकाशित करती रहे, जिनेन्द्रदेव से यही मंगल प्रार्थना है–

है यही प्रार्थना जिनवर से, यह प्रभा सदा दिन दूनी हो।
भारत माता की गोदी, इन माँ से कभी न सूनी हो।।

'अमृतवर्षिणी टीका' एक महान कृति

—आर्यिका स्वर्णमती

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात् , जीयात् श्री शान्तिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात् , जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं–इक्कीसवीं शताब्दी में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी युगप्रवर्तिका, चारित्र–चन्द्रिका, आर्यिका शिरोमणि परम पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना करते हुए विपुल साहित्य का निर्माण किया है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि मैं किस तरह से वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से सिंचित करूँ। इसके लिए पूज्य माताजी ने पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित शास्त्रों के आधार से जैनभारती, ज्ञानामृत, आगम दर्पण, जिनागम रहस्य, जिनागम में नवपदार्थ, द्वादशानुप्रेक्षा आदि अनेक ग्रंथों की रचना की है।

मूलाचार में श्री कुंदकुंददेव ने बहुत सुन्दर बात लिखी है—

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणबाहिवेयण–खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।843।।

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के वचन ही महाऔषधि हैं, ये विषय सुख का विरेचन कराने वाले हैं, अमृतरूप है, जरामरणरूपी व्याधि की वेदना और सर्वदुःखों का क्षय करने वाले हैं।

स्वाध्याय के विषय में पूज्य माताजी कई बार कहा करती हैं—

शास्त्राग्नौ मणिवद्भव्यः विशुद्धो भाति निर्वृतः।
अंगारवत्खलो दीप्तो, मली वा भस्म वा भवेत्।।

अर्थात् आचार्यों के शास्त्र—श्रुत को अग्नि की संज्ञा दी है। अग्नि भोजन भी पकाती है और जलाने का भी काम करती है। हम चाहे उसका यथायोग्य सदुपयोग करके उसे जीवनोपयोगी बना लें और चाहे उसका दुरुपयोग करके अपने शरीर को जला भी सकते हैं। इसी प्रकार सच्चे शास्त्रों को भव्य सम्यग्दृष्टि प्राणी पढ़कर अपने मन को विशुद्ध करके कर्मों का क्षयकर लेते हैं और खल—मिथ्यादृष्टि जन अपने चित्त को मलिन कर लेते हैं।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत 'गौतम गणधर वाणी' की अमृतवर्षिणी टीका एक महान कृति है जिसे पढ़कर सर्वांगीण–प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग चारों अनुयोगों का ज्ञान हो जाता है। एक मंगलाचरण में ही चारों अनुयोग समाहित हैं जिसे पूज्य माताजी ने इस अमृतवर्षिणी टीका में विस्तृत विवेचन किया है।

मैं अपना परम सौभाग्य मानती हूँ जो कि मुझे पूज्य माताजी के चरण सानिध्य में रहकर आगम के ज्ञान को प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है। माताजी का एक–एक वचन शास्त्रानुसार ही होता है। आगम से हटकर कोई बात वे न तो कहती हैं और न लिखती हैं। इस पंचमकाल में साक्षात् चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज का दर्शन करने वाली, उनका अनुभव ज्ञान प्राप्त करने वाली माताजी का चरण सानिध्य प्राप्त कर मैं अपने को धन्य मानती हूँ।

पूज्य माताजी अपने उद्बोधन से हमें रत्नत्रय की वृद्धि कराती रहें, जिससे हमारा मोक्षमार्ग प्रशस्त हो, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के चरणों में बारम्बार वन्दामि।

हार्दिक उद्गार

–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

नमः श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते।।

बीसवीं शताब्दी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज हुए हैं। जिनकी चर्या चतुर्थकालीन मुनियों के समान थी। इनके प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा प्राप्त कर, आर्यिका ज्ञानमती नाम पाकर, स्वनाम को सार्थक करते हुए परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके, ग्रंथों का खूब स्वाध्याय करके, अपने ज्ञान को परिपक्व करके 'सहस्रनाम मंत्र' की रचना से अपनी लेखनी का शुभारम्भ करके अब तक छोटे–बड़े सभी ग्रंथों को मिलाकर 400 ग्रंथों की रचना की है।

आज के वैज्ञानिक युग में पारस टी. वी. चैनल के माध्यम से लोग घर बैठे पूज्य माताजी के मुखारविन्द से प्रतिदिन ज्ञानामृत का पान करते हैं। जब वे हस्तिनापुर आकर पूज्य माताजी का दर्शन करते हैं, तो गद्गद होकर कहते हैं कि माताजी हम तो आपके शुद्ध शास्त्रीय, आगमानुसार प्रवचन सुनकर धन्य हो गए।

वास्तव में पूज्य माताजी ने भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से निकली द्वादशांग वाणी को जिन्हें पूर्वाचार्यों ने ग्रंथरूप में लिपिबद्ध किया है उसी को आत्मसात करके, जन–जन के हिताय प्रवचन के द्वारा तथा ग्रंथों के द्वारा प्रदान कर रही हैं। अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट न्याय के ग्रंथ का अनुवाद करके पूज्य माताजी ने एक महान् कार्य किया है। विद्वद्वर्ग, युवावर्ग, बालवर्ग सभी के लिए पूज्य माताजी ने समयसार, नियमसार की टीका, कल्पद्रुम, इन्द्रध्वज आदि विधान, प्रतिज्ञा, परीक्षा, जीवनदान आदि उपन्यास एवं बालविकास के 4 भाग जैसी पुस्तकें लिखकर सर्वांगीण ज्ञान का प्रचार प्रसार किया है।

श्रावकों के लिए षट् कर्तव्य का पालन एवं साधुओं के लिए ध्यान एवं अध्ययन मुख्य है। जैसा कि श्री कुंदकुंद स्वामी ने रयणसार ग्रंथ में लिखा है—

दाणं पूया मुक्खं, सावय धम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं, जई धम्मे तं विणा तहा सो वि।।

अर्थात् श्रावक धर्म में दान और पूजा ये दो मुख्य हैं एवं मुनिधर्म में ध्यान और अध्ययन मुख्य होते हैं।

गौतम गणधर वाणी पर अमृतवर्षिणी टीका सभी के लिए, साधुओं के लिए एवं श्रावकों के लिए स्वाध्याय हेतु परम औषधि है क्योंकि गणधर देवों की महिमा महान हैं जिन्हें कि भगवान के समवसरण में दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त होता है, दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो जाता है, चौंसठ ऋद्धियों के स्वामी हो जाते हैं और भगवान की दिव्यध्वनि को सुनकर अन्तर्मुहूर्त में द्वादशांग की रचना कर देते हैं।

मेरा परम सौभाग्य है कि पूज्य माताजी की कुल परम्परा में जन्म लेकर, उन्हें गुरुरूप में पाकर उनसे ज्ञानामृत को प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य किया है। यह ग्रंथ मेरे जीवन में एक दिन श्रुतज्ञान को प्राप्त करावे, यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के चरणों में कोटि-कोटि नमन।

गौतम गणधर वाणी अमृतवर्षिणी टीका, दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधियों से अलंकृत प्रथम ऐतिहासिक साध्वी

परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

1. जन्म, वैराग्य और दीक्षा-22 अक्टूबर सन् 1934, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में ''मैना'' का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र 18 वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् 1952 में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया। उसी दिन से इस कन्या के जीवन में 24 घंटे में एक बार भोजन करने के नियम का भी प्रारंभीकरण हो गया।

नारी जीवन की चरमोत्कर्ष अवस्था आर्यिका दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् 1956 में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके **''आर्यिका ज्ञानमती''** नाम प्राप्त किया।

2. अध्ययन और अध्यापन-ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-

पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

3. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से-भगवान महावीर के पश्चात् 2600 वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् 1969-70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज लगभग 250 से भी अधिक संख्या हो चुकी है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास, चारों अनुयोगोंरूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि अनेकानेक भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

4. सिद्धांत चक्रेश्वरी-पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की सोलहों पुस्तकों के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' का लेखन करके महान कीर्तिमान स्थापित किया है। क्रम-क्रम से हिन्दी टीका सहित इन पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य चल रहा है। आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा 1000 वर्ष पूर्व लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

5. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर-जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत् वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् 1969 में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् 1978 में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग 100 विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

6. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-सन् 1985 में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ, पुनः अनेक संगोष्ठियाँ सम्पन्न होती रहीं और सन् 1998 में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुँचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ (Proceedings) प्रस्तुत हो चुकी हैं।

7. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ-किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा 5 फरवरी 1995 को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर जैन साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं। पुनः इसके उपरांत 8 अप्रैल 2012 को पूज्य माताजी के 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस के अवसर पर तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद में विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह आयोजित करके विश्वविद्यालय द्वारा पूज्य माताजी के करकमलों डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्मसाधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

8. पूज्य माताजी की प्रेरणा से त्याग में बढ़े कदम-त्यागमार्ग में अग्रसर सम्यग्दृष्टी जीव की यह विशेषता रहती है कि वह संसार परिभ्रमण से आक्रान्त अन्य भव्यजीवों को भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाने हेतु विशेषरूप से प्रयासरत रहता है। इसी भावना की परिपुष्टी करते हुए पूज्य माताजी ने अनेकानेक शिष्य-शिष्याओं का सृजन किया।

संघस्थ साधुओं-मुनिजनों एवं आर्यिकाओं को अध्ययन कराते हुए सन् 1956-57 में ब्र. राजमल जी को राजवार्तिक आदि अनेक ग्रंथों का अध्ययन कराकर पूज्य माताजी ने उन्हें मुनिदीक्षा लेने की प्रेरणा प्रदान की। पुनश्च ब्र. राजमल जी कालांतर में आचार्य अजितसागर जी महाराज के रूप में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सन् 1967 में सनावद चातुर्मास के मध्य पूज्य माताजी ने ब्र. मोतीचंद एवं युवक यशवंत कुमार को घर से निकाला, उन्हें खूब विद्याध्ययन कराया तथा यशवंत कुमार को मुनिदीक्षा दिलवायी, जो वर्तमान में आचार्यश्री वर्धमानसागर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। ब्र. मोतीचंद जी भी क्षुल्लक मोतीसागर बनकर जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के प्रथम पीठाधीश के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

वर्तमान पट्टाचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज ने भी पूज्य माताजी से राजवार्तिक, गोम्मटसार

आदि ग्रंथों का अध्ययन किया था। मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज, मुनि श्री संभवसागर जी महाराज इत्यादि ने भी पूज्य माताजी से विद्याध्ययन किया तथा उनकी प्रेरणा से ही मुनि दीक्षा प्राप्त की। वर्तमान में पूज्य माताजी के अनन्य शिष्य स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी अत्यंत कर्मठ व्यक्तित्व के रूप में समस्त समाज में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं।

आर्यिका माताओं की शृँखला में आर्यिका श्री पद्मावती माताजी, आर्यिका श्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी, आर्यिका श्री श्रेष्ठमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी, आर्यिका श्री श्रुतमती माताजी, मैं स्वयं (आर्यिका चन्दनामती) तथा आर्यिका श्री सम्मेदशिखरमती माताजी, आर्यिका श्री कैलाशमती माताजी आदि अन्य कई माताजी पूज्य माताजी से प्राप्त वैराग्यमयी संस्कारों एवं अध्यापन का ही प्रतिफल हैं। पूज्य माताजी से सर्वांगीण ग्रंथों का अध्ययन करके पूज्य जिनमती माताजी ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, पूज्य आदिमती माताजी ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड का हिन्दी अनुवाद किया है। मुझे भी षट्खण्डागम एवं अन्य महान ग्रंथों की हिन्दी टीका, महावीर स्तोत्र की संस्कृत टीका एवं कतिपय संस्कृत रचनाएँ लिखने का सुअवसर पूज्य माताजी की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है।

62 वर्षों की सुदीर्घ अवधि में कितने ही भव्य जीवों ने पूज्य माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत, पंच अणुव्रत, शक्ति अनुसार प्रतिमाएँ इत्यादि ग्रहण करके संयम के मार्ग को आत्मसात किया है। वर्तमान में पूज्य माताजी के साक्षात् सानिध्य में रहकर अनेक ब्रह्मचारिणी बहनें त्यागमार्ग में संलग्न हैं।

9. तीर्थ विकास की भावना-तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी संस्कृति की महान धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम **भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर'** में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् 1993 से 1995 तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के प्रतिफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी जैसे-**खेरवाड़ा में** कैलाशपर्वत निर्माण की प्रेरणा, **पिड़ावा में** समवसरण रचना की प्रेरणा, **सोलापुर (महा.) में** भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा की स्थापना, **श्री महावीर जी के शांतिवीर नगर में** मंदारवृक्ष की स्थापना, **अतिशयक्षेत्र श्री त्रिलोकपुर में** पारिजातवृक्ष की स्थापना, **केकड़ी (राज.) में** सम्मेदशिखर की रचना आदि अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की **जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)** के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र

पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि **'राजगृही' में** 'मुनिसुव्रतनाथ जिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली **पावापुरी में** जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली **गुणावां जी में** गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, **श्री सम्मेदशिखर जी में** भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की श्रृँखला में **भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में** 'श्री पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' का निर्माणकार्य होकर उसमें भगवान पुष्पदंतनाथ की विशाल सवा 9 फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान हो चुकी हैं।

तीर्थंकरों की शाश्वत **जन्मभूमि अयोध्या में** वर्तमानकालीन वहाँ जन्में पाँच तीर्थंकरों की जन्मभूमि की टोकों पर जिनमंदिर निर्माण की प्रेरणा प्रदान कर आपने संस्कृति को जीवन्त करने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। उस श्रृँखला में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की टोंक पर सन् 2011 में सुन्दर कलात्मक मंदिर बनकर उसमें सवा चार फुट पद्मासन श्वेत प्रतिमा विराजमान हुई हैं तथा सरयू नदी के तट पर जून 2013 में भगवान अनन्तनाथ के मंदिर का निर्माण होकर वेदी में भगवान की 10 फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा विराजमान की गई है। इसी प्रकार जून 2014 में भगवान अजितनाथ की टोंक पर विशाल जिनमंदिर का निर्माण तथा दिसम्बर 2014 में भगवान अभिनंदननाथ की टोंक पर विशाल जिनमंदिर का निर्माण करके वेदी में 5-5 फुट की सुन्दर पद्मासन प्रतिमाएं विराजमान की गई है और भव्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं सम्पन्न हुई हैं।

अब सुमतिनाथ भगवान की टोंक पर मंदिर निर्माण किया जा रहा है।

उल्लेखनीय है कि पूज्य माताजी के आर्यिका दीक्षास्थल-**माधोराजपुरा (राज.) में** भी 'गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती दीक्षा तीर्थ' के विकास का कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। यहाँ सुन्दर कृत्रिम सम्मेदशिखर पर्वत का निर्माण करके 15 फुट उत्तुंग काले पाषाण वाली भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा एवं चौबीसी विराजमान की गई हैं। इस तीर्थ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा 21 नवम्बर से 26 नवम्बर 2010 तक पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के सान्निध्य में एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन (वर्तमान पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी) के निर्देशन में विशेष महोत्सवपूर्वक सम्पन हुई है।

इसी श्रृँखला में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक 29 जनवरी से 2 फरवरी 2012 तक सानंद सम्पन्न किया गया।

विशेष : तेरहद्वीप रचना, तीर्थंकरत्रय प्रतिमा एवं तीनलोक रचना-

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर तीर्थ के विकास की अद्वितीयता को अमरता प्रदान करने वाली इन रचनाओं का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से इतिहास में प्रथम बार हुआ। अप्रैल सन् 2007 में स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। विश्व में प्रथम बार निर्मित इस रचना में विराजमान 2127 जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके लोग इच्छित फल की प्राप्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर में जन्मे भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमाओं एवं 56 फुट उत्तुंग निर्मित तीनलोक रचना की जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी सन् 2010 में हुई जो हस्तिनापुर के अतिशय में चार चाँद

लगा रही हैं।

10. विश्व में अनोखी 108 फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा-विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से द्रुतगति से चल रहा है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

11. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ-शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' का निर्माण हुआ है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके पंचकल्याणक महोत्सव (मई 2013 में) सम्पन्न हो चुका है और अब वहाँ सुन्दर कमल मंदिर का निर्माण किया जा रहा है।

12. जृम्भिका तीर्थ विकास की प्रेरणा-भगवान महावीर स्वामी की कैवल्य भूमि जृंभिका जो आज बिहार प्रान्त में जमुई के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ एक नूतन भूमि पर कमलासन युक्त भगवान की सवा 11 फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा मई 2014 में की गई है और आगे इस जृम्भिका तीर्थ का विकास हो रहा है।

13. धर्मप्रभावना के विविध आयाम-जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का संचालन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली से उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्डरूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् 1998 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् भगवान ऋषभदेव की दीक्षास्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'समवसरण मंदिर' में स्थापित होकर युगों-युगों तक के लिए भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिला रहा है। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् 2003 में 'भगवान महावीर ज्योति रथ' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी शृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने सन् 1997 में राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, जिसका झण्डारोहण पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने किया एवं दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह तथा श्रीमती सुषमा स्वराज आदि अनेक कैबिनेट मंत्रियों ने उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया। साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' (सन् 1997-1998 में) तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (सन् 2000 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित) भी पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। विभिन्न टी.वी. चैनलों द्वारा पूज्य माताजी के 'तीर्थंकर जीवन दर्शन (सचित्र)'

एवं अन्य विषयों पर प्रभावक प्रवचन लम्बे समय तक प्रसारित हुए एवं हो रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों ईकाइयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित कर रहे है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

14. संघर्ष विजेत्री-पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है।

15. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन-23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। वर्ष 2006 को ''सम्मेदशिखर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। पुनः दिसम्बर 2007 में अहिच्छत्र में आयोजित 'सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक' के साथ इस त्रिवर्षीय महोत्सव का समापन किया गया।

16. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती -वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. 2532 अर्थात् 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण करने वाली प्रथम साध्वी पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गईं। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 14 से 16 अप्रैल 2006 तक **'गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'** का भव्य आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

17. विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया राष्ट्रपति जी ने-21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ। पुनः सन् 2009 ''शांति वर्ष'' में पूरे देश में विश्व की शांति के लिए धार्मिक अनुष्ठान एवं संगोष्ठियों के कार्यक्रम आयोजित किए गए।

18. 'प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष' मनाने की प्रेरणा-बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के महान उपकारों से जन-जन को परिचित कराने के उद्देश्य से पूज्य माताजी ने वर्ष 2010 को ''प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा समस्त समाज को प्रदान की। इस वर्ष का उद्घाटन ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 11 जून 2010 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ जन्म-दीक्षा एवं निर्वाणकल्याणक के शुभ दिवस किया गया तथा ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 31 मई 2011 तक यह वर्ष पूरे देश के विभिन्न अंचलों में अनेक धर्मप्रभावनात्मक कार्यक्रमों के साथ विभिन्न आयोजनोंपूर्वक मनाया गया।

19. प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष मनाने की प्रेरणा-शरदपूर्णिमा-2011 के शुभ अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, जो पूज्य माताजी के दीक्षा गुरु भी हैं, का वर्ष मनाने की घोषणा की अतः यह वर्ष समाज द्वारा विभिन्न आयोजन पूर्वक सानंद मनाया गया।

20. चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष-जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा की आयु है, अर्थात् 18 वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर उस त्यागमयी जीवन के 60 वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये। इसीलिए इनके 79वें जन्मदिवस एवं 61वें त्यागदिवस पर हमने अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन के आह्वान पर चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 मनाने की घोषणा की। इस वर्ष में सभी को शक्ति अनुसार चारित्र ग्रहण करने का संदेश दिया गया।

21. मंगलमय अमृत महोत्सव-पूज्य माताजी के 81वें जन्मदिवस को सन् 2013–14 में ''गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव'' के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया। इस अवसर पर ''सम्मेदशिखर विधान'' के 80 मांडले बनाकर 80 परिवारों के द्वारा उनकी पूजन करने का विहंगम दृश्य उपस्थित हुआ। ज्ञातव्य है कि पूज्य माताजी की प्रेरणानुसार **शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर में ''आचार्य शांतिसागर धाम''** नामक स्मारक का निर्माण किया जा रहा है, जो आचार्य श्री की सम्मेदशिखर यात्रा (सन् 1927-28 में की गई) की ऐतिहासिकता का दिग्दर्शन कराएगा।

वर्तमान में पूज्य माताजी की प्रेरणा से देशभर में ''गौतमगणधर वर्ष'' (2014–15) मनाया जा रहा है। इस वर्ष के अन्तर्गत सैकड़ों–हजारों की संख्या में श्रद्धालु नर–नारी गणधरवलय विधान सम्पन्न कर रहे हैं।

इसी के साथ पूज्य माताजी की जन्मदात्री माँ आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का जन्मशताब्दी वर्ष (11 नवम्बर 2014 से) प्रारंभ हुआ है। इस वर्ष के अन्तर्गत सन् 1914 में जन्मीं मोहिनी को सन् 1932 में विवाह के समय माता–पिता से दहेज में प्राप्त पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रंथ की ऐतिहासिकता से जन–जन को परिचित कराने हेतु उस ग्रंथ के स्वाध्याय की प्रतियोगिता आयोजित की गई है। 30 नवम्बर 2015 मगशिर कृ. पंचमी को वर्ष का समापन होगा और इस मध्य सभी स्वाध्यायियों को सम्मानित किया जाएगा।

इन चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन है तथा भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें शताब्दी महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो एवं आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

हस्तिनापुर तीर्थ परिचय

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

हस्तिनापुर तीर्थ तीर्थों का राजा है। यह धर्म प्रचार का अति प्राचीन केन्द्र रहा है। यहाँ से धर्म की परम्परा का शुभारम्भ हुआ, अर्थात् यह वह महातीर्थ है जहाँ से दान की प्रेरणा संसार ने प्राप्त की।

1. भगवान ऋषभदेव का प्रथम आहार—आज से कोड़ाकोड़ी वर्ष पूर्व भगवान ऋषभदेव का प्रथम आहार इसी हस्तिनापुर की भूमि पर राजा श्रेयांस के महल में हुआ। पूर्वभव के जातिस्मरण से राजा श्रेयांस ने भगवान का विधिवत् पड़गाहन करके नवधाभक्तिपूर्वक इक्षुरस का आहार दिया। उस समय आहारदान के प्रभाव से देवों ने पंचाश्चर्य की वृष्टि की। चार प्रकार के दानों में से केवल आहारदान के अवसर पर ही पंचाश्चर्यवृष्टि होती है। उस दिन राजा श्रेयांस की भोजनशाला में भोजन अक्षय हो गया, अतः वह आहारदान की तिथि वैशाख सुदी तीज **'अक्षय तृतीया'** के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हो गई। आज भी प्रतिवर्ष हस्तिनापुर में अक्षय तृतीया पर्व विशेषरूप से बनाया जाता है।

इस शुभ अवसर पर अयोध्या से भरत चक्रवर्ती ने हस्तिनापुर आकर राजा श्रेयांस को **'दान तीर्थ प्रवर्तक'** की उपाधि से अलंकृत किया। अक्षय तृतीया पर्व के उपलक्ष्य में यह तिथि इतनी शुभ हो गई कि आज कोई भी मांगलिक कार्य इस तिथि में ज्योतिषी से बिना पूछे कर लिए जाते हैं। एक विशेष बात यह भी है कि जब से भगवान ऋषभदेव का हस्तिनापुर में इक्षुरस का आहार हुआ तब से इस क्षेत्र में गन्ना भी अक्षय हो गया।

2. भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ के चार-चार कल्याणक से पवित्र भूमि—भगवान ऋषभदेव के पश्चात् अनेक महापुरुषों का इस पुण्य धरा पर आगमन होता रहा है। भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ के चार-चार कल्याणक यहाँ हुए हैं। तीनों तीर्थंकर, चक्रवर्ती एवं कामदेव पद के धारी थे। तीनों तीर्थंकरों ने यहाँ से समस्त छह खण्ड पृथ्वी पर राज्य किया पुनः उन्होंने सम्पूर्ण आरम्भ, परिग्रह का त्याग कर नग्न दिगम्बर अवस्था धारण की, मुनि बन गयें। महान तपस्या करके केवलज्ञान की प्राप्ति की। अंत में उन्होंने सम्मेदशिखर से निर्वाण को प्राप्त किया। आज प्रतिमाह हजारों लोग उन तीर्थंकरों की चरणरज से पवित्र हस्तिनापुर की पुण्यधरा की वन्दना करने आते हैं। उन तीनों तीर्थंकर भगवन्तों की 31-31 फुट विशाल खड्गासन प्रतिमाएँ जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में विराजमान हो जाने से तीर्थ का प्राचीन इतिहास जीवन्त हो गया है।

3. कौरव-पाण्डव की राजधानी—महाभारत की विश्व विख्यात घटना भगवान नेमिनाथ के समय में यहाँ घटित हुई। यह वही हस्तिनापुर है, जहाँ कौरव पांडव ने राज्य किया। सौ कौरव भी पाँच पांडवों को हरा नहीं सके, क्योंकि कौरव अनीतिवान, अन्यायी, अत्याचारी, ईर्ष्यालु, द्वेषी थे। पांडव धीर, वीर, गंभीर और सत्य का आचरण करने वाले एवं न्याय नीति से चलने वाले सहिष्णु थे, इसीलिए पाण्डवों ने विजय प्राप्त की। आज भी उनकी यशगाथा सर्वत्र गाई जाती है।

4. रक्षाबन्धन पर्व—रक्षाबन्धन पर्व का इतिहास इसी हस्तिनापुर नगरी से जुड़ा हुआ है। एक

समय हस्तिनापुर में अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों पर बलि मंत्री ने चारों ओर से यज्ञ के बहाने अग्नि प्रज्वलित कर दी। उस घोर उपसर्ग को मुनि विष्णुकुमार ने विक्रिया ऋद्धि के बल से दूर कर धर्म वात्सल्य का परिचय दिया था। उस समय श्रावकों ने अगले दिन भक्ति से मुनियों को सिवई की खीर का आहार दिया और आपस में एक-दूसरे को रक्षासूत्र बांधें और यह निश्चय किया कि विष्णुकुमार मुनिराज की तरह वात्सल्य भावना रखकर धर्म एवं धर्मायतनों की रक्षा करेंगे। उसी के प्रतीक में **'श्रावण शुक्ला पूर्णिमा'** को प्रतिवर्ष रक्षाबन्धन पर्व सारे भारत वर्ष में मनाया जाता है।

5. दर्शन प्रतिज्ञा में प्रसिद्ध मनोवती—गजमोती चढ़ाकर भगवान के दर्शन कर भोजन करने का अटल नियम निभाने वाली इतिहास प्रसिद्ध नारी मनोवती भी इसी हस्तिनापुर की थी। यह नियम उसने विवाह के पूर्व लिया था। विवाह के पश्चात् जब ससुराल गई, तो वहाँ संकोचवश कह नहीं पाई। तीन दिन तक उपवास हो गया। जब उसके पीहर में सूचना पहुँची, तो भाई आया, उसे एकांत में मनोवती ने सब बात बता दी। भाई ने श्वसुर से कहा। श्वसुर ने कहा—हमारे यहाँ गजमोती का कोठार भरा है। तब मनोवती ने गजमोती चढ़ाकर भगवान के दर्शन करके भोजन किया। इसकी रोमांचक कथा है। आगे कथा में जब मनोवती को घर से निकाल दिया गया तब भी मनोवती ने गजमोती चढ़ाए बिना भोजन नहीं किया, तब उसे रात्रि में स्वप्न हुआ कि तुम्हारे निकट मन्दिर है शिला हटाकर दर्शन करो और वहीं पर गजमोती भी रखे हैं, तब प्रातः मनोवती ने भगवान को गजमोती चढ़ाकर दर्शन की प्रतिज्ञा को पूर्ण कर ही भोजन किया। वह स्थान आज अयोध्या के निकट ''रत्नपुरी'' के नाम से प्रसिद्ध है।

6. सुलोचना जयकुमार—हस्तिनापुर के महाराज सोम के पुत्र जयकुमार भरत चक्रवर्ती के प्रधान सेनापति हुए। इनकी धर्मपरायण शीलशिरोमणि धर्मपत्नी सुलोचना की भक्ति के कारण गंगा नदी के मध्य आया हुआ उपसर्ग दूर हुआ।

7. रोहिणी व्रत की कथा—भगवान वासुपूज्य के समय इसी हस्तिनापुर में राजा अशोक की रानी रोहिणी ने पूर्वभव में रोहिणी व्रत किया था, जिसके महात्म्य से उसे शोक और दुख क्या होता है ? नहीं पता था। इसकी बड़ी रोमांचक कथा है। राजा अशोक ने एक दिन श्वेत केश देख विरक्त हो भगवान वासुपूज्य के समवसरण में दीक्षा लेकर गणधर पद प्राप्त करके मोक्ष पद को प्राप्त किया। रानी रोहिणी ने आर्यिका दीक्षा लेकर स्त्री पर्याय का छेदकर सोलहवें स्वर्ग को प्राप्त किया।

8. जम्बूद्वीप से पहचान बन गई इस तीर्थ की—जब से इस तीर्थ पर परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरण पड़े तब से यह तीर्थ विकास को प्राप्त होता चला गया। अनेक घटनाओं की शृंखला में जम्बूद्वीप की रचना एक मजबूत कड़ी के रूप में जुड़ गई है। आज न केवल भारत के कोने-कोने में अपितु विश्वभर में जम्बूद्वीप रचना के दर्शन की चर्चा रहती है। जम्बूद्वीप के साथ तेरहद्वीप, तीनलोक की रचना भी प्रथम बार शास्त्रीय प्रमाणों से निर्मित की गई अद्वितीय रचनाएं हैं। यह सब पूज्य माताजी के ज्ञान व प्रेरणा का प्रतिफल है।

इस प्रकार अनेक इतिहास को लिए हुए यह हस्तिनापुर तीर्थ युगों-युगों तक इस पृथ्वी तल पर धर्म की वर्षा करता रहे, यही मंगल भावना है।

एक अद्वितीय जैन केन्द्र

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी (अध्यक्ष)

राजधानी दिल्ली से 110 किमी. दूर उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ **हस्तिनापुर** में सन् 1974 से 'जम्बूद्वीप' नाम से एक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र अवस्थित है। 200 फुट के व्यास में निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना **'जम्बूद्वीप'** के अन्दर हल्के गुलाबी संगमरमर से निर्मित 101 फुट ऊँचे **सुमेरु पर्वत** की शोभा आज प्रत्येक व्यक्ति के मन को आकर्षित करती है।

प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिकों के लिए शोध केन्द्र, आध्यात्मिक उन्नयन के लिए पवित्र स्थान, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन-भक्ति के सम्पूर्ण साधनों तथा समस्त आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सहित इस अनुपम तीर्थ की जनक संस्था का नाम है-**दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (रजि.)।** जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से 1972 में इस संस्थान की स्थापना हुई। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्मोग्राफिक रिसर्च **(Digambar Jain Institute of Cosmographic Research)** के नाम से प्रसिद्ध इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य था-जम्बूद्वीप का निर्माण और यह जम्बूद्वीप ही अंततः संस्थान का मुख्य कार्यालय बन गया।

जंबूद्वीप की 35 एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं/रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

1. जंबूद्वीप रचना-जिनेन्द्र भगवान की 207 प्रतिमाओं से पावन भारतीय शिल्प और जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण, आधुनिक आकर्षणों-बिजली के फौव्वारे, नौका-विहार इत्यादि सहित।

2. कमल मंदिर-भगवान महावीर की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान हैं।

3. ध्यान मंदिर-24 तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं सहित **'हीं'** रचना इस मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' (Meditation) करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।

4. त्रिमूर्ति मंदिर-भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली की खड्गासन प्रतिमाओं से इस मंदिर का नाम सार्थक है। कमल पर विराजमान भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ से इस मंदिर की शोभा द्विगुणित हो गयी है।

5. वासुपूज्य मंदिर-इस मंदिर में 12वें तीर्थंकर-वासुपूज्य स्वामी की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं।

6. शांतिनाथ मंदिर-जिन भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकों से हस्तिनापुर की भूमि परम-पावन हुई है, उन शांति-कुंथु और अरहनाथ भगवंतों की खड्गासन प्रतिमाएँ इस मंदिर में विराजमान हैं।

7. ॐ मंदिर-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित **ॐ** (ओम) रचना इस मंदिर में विराजित है।

8. विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर-इस मंदिर में विदेह क्षेत्र के विद्यमान 20 तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।

9. सहस्रकूट मंदिर-जिनेन्द्र भगवान की 1008 प्रतिमाओं सहित।

10. भगवान ऋषभदेव मंदिर-धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य जिन प्रतिमाओं सहित।

11. भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ-'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' में निर्मित, भगवान के जीवन चरित्र को प्रदर्शित करने वाला, 8 प्रतिमाओं से समन्वित 31 फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ।

12. तेरहद्वीप जिनालय-इस मंदिर के अंदर मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरु पर्वतों के साथ-साथ कुल 2127 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

13. अष्टापद दिगम्बर जैन मंदिर-इस मंदिर के अंदर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद-कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है। कैलाशपर्वत का ही दूसरा नाम अष्टापद है। 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा इस प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर इसका उद्घाटन किया गया।

14. नवग्रह शान्ति जिनमंदिर—पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से उत्तर भारत में प्रथम बार निर्मित इस नवग्रहशांति जिनमंदिर में नवग्रह अरिष्ट निवारक नव तीर्थंकरों की धातु निर्मित सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनके दर्शन-पूजन करके भक्तगण अपने ग्रहों की शांति करते हुए देखे जाते हैं।

15. तीर्थंकरत्रय की विशाल प्रतिमाएँ—हस्तिनापुर में जन्मे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ भगवान की 31-31 फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान हुई हैं, जिनका विशाल मंदिर भी प्रस्तावित है।

16. तीनलोक की भव्य रचना—त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि करणानुयोग ग्रंथों के अनुसार तीन लोक की सुन्दर रचना का निर्माण भी पूज्य माताजी की प्रेरणा का ही सुफल है। इसमें अत्याधुनिक सुविधा के लिए लिफ्ट लगाई गई है, जिससे सभी भक्तगण सिद्धशिला तक के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

17. जम्बूद्वीप पुस्तकालय—प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग 15000 ग्रंथों एवं पुस्तकों के संग्रह सहित।

18. जम्बूद्वीप औषधालय

19. ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस—विशेष कृत्रिम रेल, जिसमें चौबीसों तीर्थंकरों की 16 जन्मभूमियों का विविध झाँकियों एवं चित्रावली के माध्यम से मनमोहक प्रस्तुतीकरण किया गया है।

20. वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला—1972 में संस्थापित इस ग्रंथमाला द्वारा अब तक लाखों की संख्या में 300 से अधिक ग्रंथों एवं पुस्तकों के संस्करणों का प्रकाशन हो चुका है।

21. सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका—यह पत्रिका सन् 1974 से लगातार प्रकाशित हो रही है, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन एक स्थान पर प्राप्त होता है।

22. राजा श्रेयांस भोजनशाला—आने वाले दर्शनार्थियों को प्रतिदिन शुद्ध (जैनचर्या के अनुरूप) भोजन उपलब्ध कराने वाला यह दिगम्बर जैन समाज का प्रथम भोजनालय है, जहाँ एक साथ 500 लोग बैठकर भोजन कर सकते हैं।

23. धर्मशालाएँ—200 से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि, जिनमें ठहरने संबंधी सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

24. मनोरंजन के साधन–तरह-तरह के झूले, बच्चों की रेल, हँसी के गोलगप्पे, नौका विहार, फौव्वारे, हरे-भरे लॉन, पूरे कैम्पस में घूमने के लिए ऐरावत हाथी (मोटर से संचालित), बिजली की आकर्षक व्यवस्था, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य इत्यादि बरबस ही दर्शनार्थियों को इस भव्य रचना की तुलना 'स्वर्ग' से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

अक्टूबर 1981-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार'**।

31 अक्टूबर 1982-फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में **'जम्बूद्वीप सेमिनार'** जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

अप्रैल 1985-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान'** विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, जिसका उद्घाटन उ.प्र. के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जून 1982 से अप्रैल 1985-लालकिला मैदान, दिल्ली से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा 4 जून, 1982 को पूरे देश में भ्रमण करने हेतु **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति'** रथ का उद्घाटन किया गया। जनसाधारण में अहिंसा, चारित्र-निर्माण तथा विश्व बन्धुत्व के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए 1045 दिन तक देश भर में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति तत्कालीन रक्षामंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव (भूतपूर्व प्रधानमंत्री) द्वारा जम्बूद्वीप के मुख्य द्वार के समक्ष सदैव के लिए स्थापित कर दी गई।

1992-'अंतर्राज्यीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी' का जंबूद्वीप स्थल पर श्री नेमीचंद जैन, विधायक (मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया।

'जैन गणित' एवं **'चारित्र निर्माण'** आदि विषयों पर हुई संगोष्ठियाँ **मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में** आयोजित की गईं।

1993-अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में **'भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव'** विषय पर संगोष्ठी।

अक्टूबर 1995-मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में पंचदिवसीय **'गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी-95'**।

मार्च-अप्रैल 1998-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 9 अप्रैल 1998 को तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से देश भर में भ्रमण करने हेतु **'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ'** का उद्घाटन। 3 वर्ष तक देशभर में तीर्थंकर भगवन्तों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् यह समवसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद) में स्थापित कर दिया गया।

अक्टूबर 1998-जम्बूद्वीप स्थल पर **'राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन'**, जिसका उद्घाटन किया गया-स्वर्गीय श्री राजेश पायलट (तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा)।

फरवरी 2000-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले **'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष'** का

उद्घाटन किया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर 1008 संगोष्ठियों की शृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि विदेश की भूमियों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम से 4 फरवरी 2000 को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

जून 2000-जम्बूद्वीप स्थल पर 11 जून 2000 को **'जैनधर्म की प्राचीनता'** विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया।

फरवरी 2001-भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में **'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ'** का नवनिर्माण। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी-कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप 51 फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की भव्य रचना पर भगवान ऋषभदेव की 14 फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप 72 जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित है। 4 से 8 फरवरी 2001 तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं 1008 महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम।

सन् 2003-2004-भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में **'नंद्यावर्त महल तीर्थ'** का निर्माण। भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंद्यावर्त महल (भगवान महावीर का जन्म महल) एवं उसमें स्थापित भगवान शांतिनाथ जिनालय इस तीर्थ के मुख्य आकर्षण हैं। महावीर की जन्मभूमि के प्रचार-प्रसार हेतु **भगवान महावीर ज्योति रथ** सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तन कर चुका है।

सन् 2005-2007-भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव-6 जनवरी 2005 को जन्मभूमि वाराणसी से इसका भव्य उद्घाटन होकर पूरे एक वर्ष तक (27 दिसम्बर 2005 तक) इसे विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

पुनः सन् 2006 में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि ''सम्मेदशिखर वर्ष'' घोषित किया तथा दिसम्बर 2007 में केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित करके 4 जनवरी 2008 को भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का समापन किया।

विशेषरूप से इस संस्थान द्वारा 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ के सानिध्य में भारत गणतंत्र की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राष्ट्रपति जी अपने पति डॉ. देवीसिंह शेखावत के साथ सम्मेलन में पधारीं। कार्यक्रम में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री टी.वी. राजेश्वर तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री अनंत कुमार मिश्रा भी पधारे। इसी अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा वर्ष 2009 को ''शांति वर्ष'' के रूप में मनाने की घोषणा की

गई। यह 'शांति वर्ष-2009' वर्तमान में समस्त जैन समाज द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से मनाया गया।

सन् 2010 में पूज्य माताजी की प्रेरणा से गठित ''अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी'' द्वारा भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकासकार्य सम्पन्न किया गया है। तीर्थ पर भगवान पुष्पदंतनाथ की सवा 9 फुट पद्मासन प्रतिमा सुन्दर जिनमंदिर में विराजमान होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित हो चुकी हैं तथा भगवान पुष्पदंतनाथ कीर्तिस्तंभ तीर्थ की कीर्ति को दिग् दिगन्तव्यापी ख्याति प्राप्त कराने में निमित्तभूत है।

सन् 2012 में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक 29 जनवरी से 2 फरवरी 2012 तक सानंद सम्पन्न किया गया है तथा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत इस जैन मंदिर का संचालन सुचारू रूप से किया जा रहा है।

इस संस्थान के द्वारा समय-समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के अद्भुत कार्यकलाप की श्रेणी में है-**णमोकार महामंत्र बैंक,** जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालु भक्तों द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं। ये करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार-सन् 1995 से प्रत्येक पाँच वर्ष में यह पुरस्कार जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग हेतु किसी भी जैन विद्वान या समर्पित कार्यकर्ता को 1,00,000/-(एक लाख) रुपये की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता था। अप्रैल 2006 में ''गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'' के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया अतः अब यह पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी वरिष्ठ विद्वान अथवा विशिष्ट समाजसेवी को प्रदान किया जाता है।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार-सन् 1999 में स्थापित 25,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप पुरस्कार-सन् 2000 में स्थापित 25,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

नंद्यावर्त महल पुरस्कार-सन् 2004 से प्रारंभ 25000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार-सन् 2003 में स्थापित 25,000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

प्रकाशचंद जैन स्मृति पुरस्कार-सन् 2012 से प्रारंभ 25000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष

प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप बाल प्रतिभा पुरस्कार-सन् 2010 से प्रारंभ 11000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष' के अवसर पर घोषित **'भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड', 'ब्राह्मी पुरस्कार', 'भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर पुरस्कार', 'गणिनी ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयंती पुरस्कार', 'हीरक जयंती पुरस्कार'** तथा **रूपाबाई पुरस्कार** आदि भी संस्थान द्वारा प्रदान किये जा चुके हैं।

पुनः ''गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव''-18 अक्टूबर 2013 के अवसर पर 80000/-रुपये की राशि वाला **'अमृत महोत्सव पुरस्कार'** भी प्रदान किया गया।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी विभिन्न समर्पित कार्य योजनाओं द्वारा समाज की सेवा में प्रतिक्षण संलग्न है। मानसिक शांति, आध्यात्मिक विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अन्य अनेक लाभ एक साथ प्राप्त करने हेतु यह संस्थान जंबूद्वीप दर्शन के लिए आपको सादर आमंत्रित करता है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् 1972 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)।
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.।
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली।
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई।
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.।
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।

11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली।
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमर चंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।

संरक्षक

1. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
8. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।

25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका, देहरादून (उ.प्र.)।
28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना, रांची (बिहार)।
47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन,सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।

62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।

98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
107. डॉ. विमला जैन ''विमल'' ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)
108. सौ. पुष्पा पवन कुमार कासलीवाल, खामगांव (बुलठाणा) महा.।

स्वाध्याय प्रारंभ सवं समापन की विधि

अथ पौर्वाण्हिक[1] स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।

चत्तारिमंगलं–अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(9 बार णमोकार मंत्र जपना–सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवलिअणंतजिणे।
णरपवर-लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।1।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।2।।

–लघु श्रुतभक्ति –

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अंगांग - बाह्यभावित - मनन्तविषयं नमस्यामि।।1।।

इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्म-सुत्त-पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

अथ पौर्वाण्हिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरहंताणं से लेकर पूरा पाठ पढ़कर 9 बार णमोकार मंत्र जपकर 'थोस्सामि' स्तव पढ़कर भक्ति पढ़ें।)

–आचार्यभक्ति –

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटि-मुनीश्वरान्।।1।।

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

पुनः स्वाध्याय समापन करते समय–

नमोऽस्तु पौर्वाण्हिकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् णमो अरहंताणं आदि पढ़कर 9 बार महामंत्र जपकर 'थोस्सामिस्तव' पढ़कर श्रुतभक्ति पढ़ें)

---

१. मध्यान्ह में स्वाध्याय करते समय 'अपराण्हिक' बोलें। रात्रि में स्वाध्याय के प्रारम्भ के समय 'पूर्वरात्रिक' बोलें।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था-सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।2।।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।3।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, पापप्रणाशकं, पुण्यप्रकाशकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं इदं शास्त्रं श्री गौतमगणधरवाणी–नामधेयं, अस्य मूलग्रंथकर्तारः श्री सर्वज्ञ देवाः, तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसारमासाद्य श्रीगौतम–गणधरस्वामीप्रणीत–गणिनीप्रमुख–आर्यिकाश्रीज्ञानमतीकृत अमृतवर्षिणी–टीका समन्वितं। श्रोतारः सावधानतया (पठन्तु) शृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।4।।

सर्वमंगलमांगल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।5।।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्री गौतम गणधर वाणी

भगवान महावीरस्वामी के प्रथम गणधर

श्रीगौतमस्वामी विरचित

(संकलन एवं अमृतवर्षिणी टीका–गणिनी ज्ञानमती माताजी)

(अध्याय १)

श्रीगौतमस्वामी उवाच—

मंगलाचरण

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

–पद्यानुवाद–चौबोल छंद–

श्रीमन् वर्धमान को प्रणमूँ, जिनने अरि को नमित किया।
जिनके पूर्णज्ञान में त्रिभुवन, गौखुर सम दिखलाई दिया।।
ऐसे अंतिम तीर्थंकर श्री–महावीर को नित्य नमूं।
वीर महति महावीर सन्मती–प्रभु को कोटि कोटि प्रणमूं।।१।।

अर्थ–श्री वर्धमान स्वामी को नमस्कार होवे, जिन्होंने उपसर्ग करने वाले संगमदेव आदि विद्विष—शत्रुओं को भी नमित किया है एवं जिनके केवलज्ञान में ये तीनों लोक गोष्पद—गाय के पैर के गड्ढे के समान लघु प्रतीत होते हैं। ऐसे अंतिम तीर्थंकर महावीरस्वामी को नमस्कार होवे।।१।।

अमृतवर्षिणी टीका—

दिगम्बर जैन ग्रंथों के अनुसार आज कोई भी द्वादशांग या अंगबाह्य के ग्रंथ नहीं हैं, क्योंकि इनको लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता था। परम्परागत आचार्यों ने जो कुछ मौखिक श्रुतज्ञान गुरुओं से प्राप्त किया, कालांतर में श्रीधरसेनाचार्य के शिष्य पुष्पदंत–भूतबलि नाम के दो आचार्यों ने षट्खंडागम ग्रंथ को लिपिबद्ध करके रचना की है। ऐसा इन्द्रनंदि आचार्य आदि ने श्रुतावतार आदि ग्रंथों में लिखा है।

इसी प्रकार श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत चार महान रचनायें आज वर्तमान में भी उपलब्ध हैं। १. चैत्यभक्ति, २. दैवसिक प्रतिक्रमणदण्डकसूत्र, ३. पाक्षिक प्रतिक्रमणदण्डकसूत्र, ४. श्रावक प्रतिक्रमण। ये चारों ग्रंथ मौखिकरूप से आचार्यों को प्राप्त होते रहे हैं, पुनः किन्हीं महान आचार्यों ने इन्हें लिपिबद्ध करके हमें और आप सभी भव्यात्माओं के लिये सुरक्षित रखा है।

टीकाकारों के वचनों से ही हम इन रचनाओं को 'श्रीगौतमस्वामी प्रणीत' मानते हैं यथा–

"श्री गौतमस्वामीमुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्करोति–

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

टीका–नमो नमस्कारोऽस्तु। कस्मै ? वर्धमानाय अन्तिमतीर्थंकरदेवाय।

कथम्भूताय ? श्रीमते। श्रीरन्तरङ्गबहिरङ्गलक्षणाऽनन्तज्ञानदर्शनसमवसरणादिस्वरूपा विभूतिर्विद्यते यस्याऽसौ श्रीमान्। तस्मै श्रीमते। पुनरपि किं विशिष्टाय ? नमितविद्विषे नमिताः नामिताः प्रणामं कारिताः विद्विषः उपसर्गकारिणः सङ्गमदेवादयः शत्रवः येन तस्मै (नमः) यस्य भगवतो ज्ञाने त्रिभुवनमीदृशं भवतीत्याह–'**यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते।**' यस्य ज्ञाने सकलविमलस्वरूपेन्तर्गतं भूत्वा ग्राह्ययाऽन्तः प्रविष्य त्रैलोक्यं गोष्पदायते गोष्पदमिवात्मानमाचरति[१]।।"

अर्थ–नमस्कार होवे। किनको ? अन्तिम तीर्थंकर भगवान श्री वर्धमान स्वामी को। वे कैसे हैं ? श्रीमान् हैं–अन्तरंग अनंतज्ञान, दर्शन व बहिरंग समवसरण आदि स्वरूप लक्ष्मी है जिनके पास, ऐसे वे वर्धमान स्वामी श्रीमान् हैं। पुनः वे कैसे हैं ? नमस्कार करा लिया है—प्रणाम करा लिया है उपसर्गकारी संगमदेव आदि शत्रुओं को जिन्होंने ऐसे वे नमित विद्विष हैं, उनको यहाँ नमस्कार किया है।

उन भगवान के ज्ञान में यह त्रैलोक्य गोष्पद—गौखुर के समान दिखता है–जिनके सकल, विमल, केवलज्ञान में यह सारा तीनलोक ग्राह्यरूप होने से—ज्ञान के अंतर्गत झलकने से गाय के पैर के नीचे बने हुये छोटे से गड्ढे के समान झलकता है। ऐसे श्रीमान् वर्धमान स्वामी को नमस्कार होवे।

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पु. पृ. १–२।

यहाँ ऐसे महावीरस्वामी को नमस्कार करके श्रीगौतमस्वामी ने प्रतिक्रमणदण्डक सूत्रों को कहा है। जिनका हम सभी दिगम्बर जैन मुनि, आचार्य, गणिनी आर्यिकायें आदि प्रतिदिन पाठ करते हैं। अर्थात् दैवसिक–रात्रिक प्रतिक्रमण पढ़ते हैं।

ऐसे ही पाक्षिक प्रतिक्रमण में एक स्थल पर स्वयं श्री गौतमस्वामी ने अपने नाम को संबोधित किया है। यथा—

''जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोदम।
सारं झाणं त्ति णामेण, सव्वबुद्धेहिं देसिदं।।

हे गौतम ! सर्वसारों में भी जो सार है वह सार 'ध्यान' इस नाम से कहा गया है ऐसा सभी सर्वज्ञ भगवंतों ने कहा है।

इस उद्धरण भी ये रचनायें श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

श्री वीरसेनाचार्य ने 'कसाय पाहुड' ग्रंथ की 'जयधवला टीका' के मंगलाचरण में छठी गाथा में कहा है, कि–

जेणिह कसायपाहुड–मणेयणयमुज्जलं अणंतत्थं।
गाहाहि विवरियं तं गुणहरभडारयं वंदे[१]।।६।।

अर्थ–जिन्होंने इस आर्यावर्त में अनेक नयों से युक्त, उज्ज्वल और अनन्त पदार्थों से व्याप्त कषायप्राभृत का गाथाओं द्वारा व्याख्यान किया, उन गुणधर भट्टारक को मैं वीरसेन आचार्य नमस्कार करता हूँ।।६।।

इस कथन से स्पष्ट है कि श्री वीरसेनाचार्य श्री गुणधर आचार्य की गाथाओं को अनन्त अर्थ—अनन्त पदार्थों के अर्थ से व्याप्त—गर्भित माना है। पुनः श्री गौतमस्वामी जो कि साक्षात् भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में ही रहे हैं और जिन्होंने अन्तर्मुहूर्त में द्वादशांग की रचना की है तथा जिस दिन कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान को मोक्ष प्राप्त हुआ, उसी दिन सायंकाल में श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हो गया अतः श्री गौतमस्वामी भगवान महावीर प्रभु को छोड़कर एक दिन क्या एक क्षण भी अलग नहीं रहे हैं, उनकी वाणी—उनके द्वारा कहे गये श्लोक व मंत्र व प्रतिक्रमण दण्डकसूत्रादि के एक–एक पद अनन्त अर्थ—अनंत पदार्थों के अर्थ को लिये हुये हों, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

वर्तमान में दिगम्बर जैन परम्परा में द्वादशांग शास्त्र नहीं हैं क्योंकि वे लिपिबद्ध नहीं हो सकते हैं, अतः वर्तमान में जितने भी जैन वाङ्मय—शास्त्र उपलब्ध हैं, वे सभी चार अनुयोगों में विभक्त हैं—

१. प्रथमानुयोग, २. करणानुयोग, ३. चरणानुयोग और ४. द्रव्यानुयोग।

१. प्रथमानुयोग में तीर्थंकर आदि महापुरुषों के जीवनचरित्र का वर्णन किया गया है।

---

१. कसायपाहुड़ पु. १ पृ. ४।

२. करणानुयोग में तीनलोक, चतुर्गति, युगपरिवर्तन आदि का कथन है।

३. चरणानुयोग में मुनि एवं श्रावक धर्म का वर्णन है।

४. द्रव्यानुयोग में जीव, अजीव आदि तत्त्व बंध, मोक्ष आदि का कथन है।

श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत इस मंगलाचरण में भी चारों अनुयोग समाविष्ट हैं। यथा—

'**श्रीमते वर्धमानाय नमः**', इस चरण में प्रथमानुयोग समाविष्ट है। भगवान महावीर अंतिम तीर्थंकर हैं। उनका नाम लेने से—इस पद से चौबीसों तीर्थंकरों को भी लिया जाता है तथा चौबीसों तीर्थंकरों के अंतराल में होने वाले १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण इन त्रेसठ शलाका पुरुषों के जीवनवृत्त भी इसी से जाने जायेंगे।

एवं इनके अंतराल में होने वाले सभी कामदेव आदि पदधारी तथा सामान्य केवली आदि महापुरुष भी लिये जायेंगे। इस प्रकार इस एक पद में संपूर्ण प्रथमानुयोग आ जायेगा।

इन सभी का जीवन परिचय महापुराण व उसके अन्तर्गत उत्तरपुराण तथा अन्य–अन्य कथा ग्रंथों से पढ़ना चाहिये—जानना चाहिये।

चौबीस तीर्थंकरों के नाम—

१. श्री वृषभदेव, २. श्री अजितनाथ, ३. श्री संभवनाथ, ४. श्री अभिनन्दननाथ, ५. श्री सुमतिनाथ, ६. श्री पद्मप्रभ, ७. श्री सुपार्श्वनाथ, ८. श्री चन्द्रप्रभ, ९. श्री पुष्पदंतनाथ, १०. श्री शीतलनाथ, ११. श्री श्रेयांसनाथ, १२. श्री वासुपूज्यनाथ, १३. श्री विमलनाथ, १४. श्री अनंतनाथ, १५. श्री धर्मनाथ, १६. श्री शांतिनाथ, १७. श्री कुंथुनाथ, १८. श्री अरनाथ, १९. श्री मल्लिनाथ, २०. श्री मुनिसुव्रतनाथ, २१. श्री नमिनाथ, २२. श्री नेमिनाथ, २३. श्री पार्श्वनाथ, २४. श्री महावीरस्वामी।

बारह चक्रवर्ती के नाम—

१. भरत, २. सगर, ३. मघवा, ४. सनत्कुमार, ५. शान्ति, ६. कुंथु, ७. अर, ८. सुभौम, ९. पद्म, १०. हरिषेण, ११. जयसेन, १२. ब्रह्मदत्त।

नव बलभद्र के नाम—

१. विजय, २. अचल, ३. धर्म, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. नन्दी, ७. नन्दिमित्र, ८. श्रीराम, ९. पद्म—बलदेव।

नव नारायण के नाम—

१. त्रिपृष्ठ, २. द्विपृष्ठ, ३. स्वयंभु, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुष पुण्डरीक, ७. दत्त, ८. लक्ष्मण, ९. श्रीकृष्ण।

नव प्रतिनारायण के नाम—

१. अश्वग्रीव, २. तारक, ३. मेरक, ४. मधुकैटभ, ५. निशुम्भ, ६. बलि, ७. प्रहरण, ८. रावण, ९. जरासंध।

'**नमो नमित विद्विषे**' इस चरण में चरणानुयोग समाविष्ट है। बहिरंग शत्रुओं को एवं अंतरंग शत्रुओं को—राग, द्वेष, मोह आदि को आचरण—अणुव्रत, महाव्रत, ध्यान आदि के द्वारा ही झुकाया जाता है—जीता जाता है।

''**यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा**'' इस चरण में द्रव्यानुयोग गर्भित है। ज्ञान के पाँच भेदों में–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय एवं केवलज्ञान में से अंतिम पांचवें केवलज्ञान में ही तीनों लोक गाय के पैर के गड्ढे के समान लघु दिखता है अर्थात् तीनों लोकों के समान अनंत–अनंत तीनलोक भी यदि हो जायें तो भी यह ज्ञान—केवलज्ञान विशाल–महान–बड़ा ही रहेगा, वह ज्ञान असीमित—अनंतानंत प्रमाण है। पुनश्च—

''**त्रैलोक्यं गोष्पदायते**'' इस अंतिम चरण में संपूर्ण करणानुयोग गर्भित है क्योंकि तीनों लोकों का कथन करने से चारों गतियों के समस्त जीव तथा तीनलोक के अग्रभाग पर विराजमान सिद्ध भगवान भी आ जाते हैं।

इस प्रकार से इस मंगलाचरण में प्रथमानुयोग के महापुराण—आदिपुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, जंबूस्वामी चरित ग्रंथ समाविष्ट हैं।

करणानुयोग में तिलोयपण्णत्ति, जंबूद्वीपपण्णत्ति, त्रिलोकसार, त्रिलोकभास्कर, जैन ज्योतिर्लोक आदि ग्रंथ समाविष्ट हैं।

चरणानुयोग में मूलाचार, आचारसार, अनगारधर्मामृत, उमास्वामीश्रावकाचार, वसुनंदिश्रावकाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि ग्रंथ आते हैं।

द्रव्यानुयोग में षट्खण्डागम, गोम्मटसार जीवकांड, गोम्मटसार कर्मकांड, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथ गर्भित हैं।

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यक्त्व रत्नान्न परं हि रत्नं, सम्यक्त्व मित्रान्न परं हि मित्रम्।
सम्यक्त्व मित्रान्न परं हि बंधुः। सम्यक्त्व लाभान्न परोहि लाभः।।

–सम्यक्त्व कौमुदी

श्री गौतमस्वामी का जीवन परिचय

आर्यखंड में एक ब्राह्मण नाम का नगर था। वहाँ एक शांडिल्य नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी भार्या का नाम स्थंडिला था, वह ब्राह्मणी बहुत ही सुन्दर और सर्व गुणों की खान थी। इस दम्पत्ति के बड़े पुत्र के जन्म के समय ही ज्योतिषी ने कहा था कि यह गौतम समस्त विद्याओं का स्वामी होगा। उसी स्थंडिला ब्राह्मणी ने द्वितीय गार्ग्य पुत्र को जन्म दिया था, वह भी सर्वकला में पारंगत था, इन्हीं ब्राह्मण की दूसरी पत्नी केशरी के पुत्र का नाम भार्गव था। इस प्रकार ये तीनों भाई सर्व वेद वेदांग के ज्ञात था। इन तीनों भाइयों के इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति नाम भी प्रसिद्ध हैं। वह गौतम ब्राह्मण किसी ब्रह्मशाला में पाँच सौ शिष्यों का उपाध्याय था। "मैं चौदह महाविद्याओं का पारगामी हूँ, मेरे सिवाय कोई और विद्वान नहीं है।" ऐसा अभिमानी था।

भगवान् महावीर को केवलज्ञान प्रगट होकर समवसरण की रचना हो चुकी थी, किन्तु दिव्यध्वनि नहीं खिर रही थी। ६६ दिन व्यतीत हो गये। तभी सौधर्म इन्द्र ने समवसरण में गणधर का अभाव समझकर अपने अवधिज्ञान से "गौतम" को इस योग्य जानकर वृद्ध का रूप बनाया और वहाँ गौतमशाला में पहुँचकर कहते हैं–

"मेरे गुरु इस समय ध्यान में होने से मौन हैं अतः मैं आपके पास इस श्लोक का अर्थ समझने आया हूँ।" गौतम ने विद्या के गर्व से गर्विष्ठ हो पूछा–"यदि मैं इसका अर्थ बता दूंगा तो तुम क्या दोगे?" तब वृद्ध ने कहा–यदि आप इसका अर्थ कर देंगे, तो मैं सब लोगों के सामने आपका शिष्य हो जाऊंगा और यदि आप अर्थ न बता सके तो इन सब विद्यार्थियों और अपने दोनों भाइयों के साथ आप मेरे गुरु के शिष्य बन जाना।" महा अभिमानी गौतम ने यह शर्त मंजूर कर ली क्योंकि वह समझता था कि मेरे से अधिक विद्वान इस भूतल पर कोई है ही नहीं। तब वृद्ध ने यह काव्य पढ़ा–

"धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थै–रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायं।।"

तब गौतम ने कुछ देर सोचकर कहा–"अरे ब्राह्मण! तू अपने गुरु के पास ही चल। वहीं मैं इसका अर्थ बताकर तेरे गुरु के साथ वाद–विवाद करूँगा।" इन्द्र तो चाहता ही यह था, वह वृद्ध वेधषारी इन्द्र गौतम को समवसरण में ले आया।

वहाँ मानस्तंभ को देखते ही गौतम का मान गलित हो गया और उसे सम्यक्त्व प्रगट हो गया। गौतम ने अनेक स्तुति करते हुए भगवान् के चरणों को नमस्कार किया तथा अपने पाँच सौ शिष्यों और दोनों भाइयों के साथ भगवान् के पादमूल में जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। अन्तर्मुहूर्त में ही सम्पूर्ण ऋद्धियों से विभूषित और मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय इन चारों ज्ञानों से समन्वित प्रथम गणधर हो गये। पुनः श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को भगवान की दिव्यध्वनि खिरी है उसी दिन उन्होंने द्वादशांग की रचना की है।

गणधरदेव ही द्वादशांगश्रुत के कर्त्ता होते हैं–

अर्थकर्ता भगवान महावीर

भावतोऽर्थकर्ता निरूप्यते—ज्ञानावरणादि-निश्चय-व्यवहारापाया-तिशयजातानन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-क्षायिक-सम्यक्त्व-दान-लाभ-भोगोपभोग-निश्चय-व्यवहार-प्राप्त्यतिशयभूत-नव-केवल-लब्धि-परिणतः।

एवंविधो महावीरोऽर्थकर्ता।[१]

अब भाव की अपेक्षा अर्थकर्ता का निरूपण करते हैं—

ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों के निश्चय-व्यवहाररूप विनाश कारणों की विशेषता से उत्पन्न हुए अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य तथा क्षायिक-सम्यक्त्व, दान, लाभ, भोग और उपभोग की निश्चय-व्यवहाररूप प्राप्ति के अतिशय से प्राप्त हुई नौ केवललब्धियों से परिणत भगवान् महावीर ने भावश्रुत का उपदेश दिया। अर्थात् निश्चय और व्यवहार से अभेद-भेदरूप नौ लब्धियों से युक्त होकर भगवान् महावीर ने भावश्रुत का उपदेश दिया।

इस प्रकार भगवान् महावीर अर्थकर्ता हैं।

ग्रंथकर्ता श्रीगौतमस्वामी

तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुहि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह-विणासणट्ठमुव-गयवड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो।[२]

इस प्रकार केवलज्ञान से विभूषित उन भगवान् महावीर के द्वारा कहे गये अर्थ को, उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न हुए चार प्रकार के निर्मल ज्ञान से युक्त, वर्ण से ब्राह्मण, गोतमगोत्री, संपूर्ण दुःश्रुति में पारंगत और जीव-अजीवविषयक संदेह को दूर करने के लिए श्री वर्द्धमान के पादमूल में उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूति ने अवधारण किया।

पुणो तेणिंदभूदिणा भाव-सुद-पज्जय-परिणदेण बारहंगाणं चोद्दस-पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भाव-सुदस्स अत्थ-पदाणं च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्व-सुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गंथ-रयणा जादेत्ति।[३]

अनन्तर भावश्रुतरूप पर्याय से परिणत उन इन्द्रभूति ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त में क्रम से रचना की है। अतः भावश्रुत और अर्थ-पदों के कर्ता तीर्थंकर हैं तथा तीर्थंकर

---

१. धवला पुस्तक–१ पृ. ६४। २. धवला पुस्तक–१ पृ.–६५। ३. धवला पुस्तक–१ पृ. ६६।

के निमित्त से गौतम गणधर श्रुतपर्याय से परिणत हुए, इसलिए द्रव्यश्रुत के कर्ता गौतम गणधर हैं। इस तरह गौतम गणधर से ग्रंथ रचना हुई।

अर्थकर्ता भगवान महावीर हैं

कत्तारा दुविहा—अत्थकत्तारो गंथकत्तारो चेदि। तत्थ अत्थकत्तारो भयवं महावीरो।[१]

कर्ता दो प्रकार हैं—अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ता। उनमें अर्थकर्ता भगवान् महावीर हैं।

(धवला पुस्तक-९, पृ. १०७)

ग्रंथकर्ता श्री गौतम स्वामी हैं, ऐसे श्री गौतम स्वामी की महिमा देखिए धवला ग्रंथ में-

संखित्तसद्दरयणमणंतत्थावगमहेदुभूदाणेगलिंगसंगयं बीजपदं णाम। तेसिमणेयाणं बीजपदाणं दुवालसंगप्पयाणमट्ठारस-सत्त-सयभास-कुभाससरूवाणं परूवओ अत्थकत्तारो णाम, बीजपदणिलीणत्थ-परूवयाणं दुवालसंगाणं कारओ गणहरभडारओ गंथकत्तारओ त्ति अब्भुवगमादो। बीजपदाणं वक्खाणओ त्ति वुत्तं होदि। किमट्ठं तस्स परूवणा कीरदे? गंथस्स पमाणत्तपदुप्पायणट्ठं। ण च राग-दोस-मोहोवहओ जहुत्तत्थपरूवओ, तत्थ सच्चवय-णणियमाभावादो। तम्हा तप्परूवणा कीरदे। तं जहा—पंचमहव्वयधारओ तिगुत्तिगुत्तो पंचसमिदो णट्ठट्ठमदो मुक्कसत्तभओ बीज-कोट्ठपदाणुसारि-संभिण्णसोदारत्तु-वलक्खिओ उक्कट्ठोहिणाणेण असंखेज्जलोगमेत्तकालम्मि तीदाणागद-वट्टमाणासेसपरमाणुपेरंतमुत्ति-दव्वपज्जायाणं च पच्चक्खेण जाणंतओ तत्ततवलद्धीदो णीहारविवज्जिओ दित्ततवलद्धिगुणेण सव्वकालोववासो वि संतो सरीरजुज्जोइयदसदिसो सव्वोसहिलद्धिगुणेण सव्वोसहसरूवो अणंतबलादो करंगुलियाए तिहुवणचालणक्खमो अमियासवीलद्धिबलेण अंजलिपुडणि-वदिदसयलाहारे अमियत्तणेण परिणमणक्खमो महातवगुणेण कप्परूक्खोवमो महाणसक्खीण-लद्धिबलेण सगहत्थणिवदिदाहाराण-मक्खयभावुप्पायओ अघोरतवमाहप्पेण जीवाणं मण-वयण-कायगया-सेसदुत्थियत्तणिवारओ सयलविज्जाहि सेवियपादमूलो आयासचारण-गुणेण रक्खियासेसजीवणिवहो वायाए मणेण य सयलत्थसंपादणक्खमो अणिमादिअट्ठगुणेहि जियासेसदेवणिवहो तिहुवणजणजेट्ठओ परोवदेसेण विणा अक्खराणक्खरसरूवासेस-भासंतरकुसलो समवसरणजणमेत्तरू-वधारित्तणेण अम्हम्हाणं भासाहि अम्हम्हाणं चेव कहदि त्ति सव्वेसिं पच्चउप्पायओ समवसरणजणसोदिंदिएसु सगमुहविणिग्गयाणेयभासाणं संकरेण पवेसस्स विणिवारओ गणहरदेवो गंथकत्तारो, अण्णहा गंथस्स पमाणत्तविरोहादो धम्मरसायणेण समोसरणजणपोसणाणुववत्तीदो। एत्थुववज्जंती गाहा—

---

१. धवला पुस्तक-९ पृ. १०७।

बुद्धि-तव-विउवणोसह-रस-बल-अक्खीण-सुस्सरत्तादी।
ओहि-मणपज्जवेहि य हवंति गणवालया सहिया।।३८।।

संपहि वड्ढमाणतित्थगंथकत्तारो वुच्चदे-

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य।।३९।।

को होदि त्ति सोहम्मिंदचालणादो जादसंदेहेण पंच-पंचसयंतेवासि-सहियभादुत्तिदय-परिवुदेण माणत्थंभदंसणेणेव पणट्ठमाणेण वड्ढमाणवि-सोहिणा वड्ढमाणजिणिंददंसणे वणट्ठासंखेज्जभवज्जियगरुवकम्मेण जिणिंदस्स तिपदाहिणं करिय पंचमुट्ठीए वंदिय हियएण जिणं झाइय पडिवण्णसंजमेण विसोहिबलेण अंतोमुहुत्तस्स उप्पण्णासेसगणिं-दलक्खणेण उवलद्धजिणवयणविणिग्गयबीजपदेण गोदमगोत्तेण बम्हणेण इंदभूदिणा आयार-सूदयद-ट्ठाण-समवाय-वियाहपण्णत्ति-णाहधम्मकहोवासयज्झयणंतयडदस-अणुत्तरोववादियदस-पण्णवायरण-विवायसुत्त-दिट्ठिवादाणं सामाइय-चउवीसत्थय-वंदणा-पडिक्कमण-वइणइय-किदियम्म-दसवेयालि-उत्तरज्झयण-कप्पववहार-कप्पाकप्प-महाकप्प-पुंडरीय-महापुंडरीय-णिसिहियाणं चोद्दसपइण्णयाण-मंगबज्झाणं च सावणमासबहुलपक्खजुगादिपडि-वयपुव्वदिवसे जेण रयणा कदा तेणिंदभूदि भडारओ वड्ढमाणजिणतित्थगंथकत्तारो। उत्तं च-

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि[१]।।४०।।

संक्षिप्त शब्द रचना से सहित व अनन्त अर्थों के ज्ञान के हेतुभूत अनेक चिन्हों से संयुक्त बीजपद कहलाता है। अठारह भाषा व सात सौ लघु भाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीजपदों के प्ररूपक अर्थकर्ता हैं तथा बीजपदों में लीन अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्ता गणधर भट्टारक ग्रंथकर्ता हैं, ऐसा स्वीकार किया गया है। अभिप्राय यह है कि बीजपदों के जो व्याख्याता हैं वे ग्रंथकर्ता कहलाते हैं।

शंका—उक्त कर्ता की प्ररूपणा किसलिए की जाती है ?

समाधान—ग्रंथ की प्रमाणता को बतलाने के लिए कर्ता की प्ररूपणा की जाती है। राग, द्वेष व मोह से युक्त जीव यथोक्त अर्थों का प्ररूपक नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें सत्य वचन के नियम का अभाव है। इसी कारण उसकी प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—

पाँच महाव्रतों के धारक, तीन गुप्तियों से रक्षित, पाँच समितियों से युक्त, आठ मदों से रहित, सात भयों से मुक्त, बीज, कोष्ठ, पदानुसारी व सम्भिन्नश्रोतृत्व बुद्धियों से उपलक्षित, प्रत्यक्षभूत उत्कृष्ट

---

१. धवला पुस्तक–९, पृ. १२७ से १३० तक।

अवधिज्ञान से असंख्यात लोक मात्र काल में अतीत, अनागत एवं वर्तमान परमाणु पर्यन्त समस्त मूर्त द्रव्य व उनकी पर्यायों को जानने वाले, तप्ततप लब्धि के प्रभाव से मल-मूत्र रहित, दीप्ततप लब्धि के बल से सर्वकाल उपवास युक्त होकर भी शरीर के तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, सर्वौषधि लब्धि के निमित्त से समस्त औषधियों स्वरूप, अनन्त बल युक्त होने से हाथ की कनिष्ठ अंगुलि द्वारा तीनों लोकों को चलायमान करने में समर्थ, अमृतास्रव आदि ऋद्धियों के बल से हस्तपुट में गिरे हुए सब आहारों को अमृत स्वरूप से परिणमाने में समर्थ, महातप गुण से कल्पवृक्ष के समान, अक्षीणमहानस लब्धि के बल से अपने हाथों में गिरे हुए आहारों की अक्षयता के उत्पादक, अघोरतप ऋद्धि के माहात्म्य से जीवों के मन, वचन एवं कायगत समस्त कष्टों को दूर करने वाले, सम्पूर्ण विद्याओं के द्वारा सेवित चरणमूल से संयुक्त, आकाशचारण गुण से सब जीवसमूहों की रक्षा करने वाले, वचन एवं मन से समस्त पदार्थों के सम्पादन करने में समर्थ, अणिमादिक आठ गुणों के द्वारा सब देवसमूहों को जीतने वाले, तीनों लोकों के जनों में श्रेष्ठ, परोपदेश के बिना अक्षर व अनक्षररूप सब भाषाओं में कुशल, समवसरण में स्थित जन मात्र के रूप के धारी होने से 'हमारी-हमारी भाषाओं से हम-हमको ही कहते हैं' इस प्रकार सबको विश्वास कराने वाले तथा समवसरणस्थ जनों के कर्ण इन्द्रियों में अपने मुंह से निकली हुई अनेक भाषाओं के सम्मिश्रित प्रवेश के निवारक ऐसे गणधरदेव ग्रंथकर्ता हैं, क्योंकि ऐसे स्वरूप के बिना ग्रंथ की प्रमाणता का विरोध होने से धर्म-रसायन द्वारा समवसरण के जनों का पोषण बन नहीं सकता। यहाँ उपयुक्त गाथा—

गणधरदेव बुद्धि, तप, विक्रिया, औषध, रस, बल, अक्षीण, सुस्वरत्वादि ऋद्धियों तथा अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञान से सहित होते हैं।।३८।।

अब वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता को कहते हैं-

पाँच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पाँच महाव्रत, आठ प्रवचनमाता अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्ति तथा सहेतुक बंध और मोक्ष।।३९।।

'उक्त पाँच अस्तिकायादिक क्या हैं ?' ऐसे सौधर्मेन्द्र के प्रश्न से संदेह को प्राप्त हुए पाँच सौ-पाँच सौ शिष्यों से सहित तीन भ्राताओं से वेष्टित, मानस्तंभ के देखने से ही मान से रहित हुए, वृद्धि को प्राप्त होने वाली विशुद्धि से संयुक्त, वर्धमान भगवान् के दर्शन करने पर असंख्यात भवों में अर्जित महान् कर्मों को नष्ट करने वाले, जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा करके पाँच अंगों द्वारा भूमिस्पर्शपूर्वक वंदना करके एवं हृदय से जिन भगवान् का ध्यान कर संयम को प्राप्त हुए, विशुद्धि के बल से मुहूर्त के भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधर के लक्षणों से संयुक्त तथा जिनेन्द्रमुख से निकले हुए बीजपदों के ज्ञान से सहित ऐसे गौतम गोत्र वाले इन्द्रभूति ब्राह्मण द्वारा चूँकि आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृतदशांग,

अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग व दृष्टिवादांग, इन बारह अंगों की तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका, इन अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकों की श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में युग के आदिम प्रतिपदा के पूर्व दिन में रचना की थी, अतएव इन्द्रभूति गणधरदेव भट्टारक वर्धमान तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव के तीर्थ में ग्रंथकर्ता हुए।

कहा भी है—

वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई।।४०।।

इस ग्रंथ में णमोकारमंत्र व चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन हैं और सभी पाठ श्री गौतमस्वामी प्रणीत हैं। श्री गौतमस्वामी ३० वर्ष तक भगवान के समवसरण में रहे हैं। उन्होंने ही इन चैत्यभक्ति व प्रतिक्रमण पाठ को रचा है। ये ही पाठ यहाँ दिये गए हैं चैत्यभक्ति पूर्ण है व शेष पाठ प्रतिक्रमण पाठ से उद्धृत हैं।

-जाप्य मंत्र-

1. ॐ ह्रीं अर्हं दिव्यध्वनिस्वामिने श्रीमहावीरतीर्थंकराय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने नमः।
3. ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूत–स्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानेभ्यो नमः।

श्री गौतम स्वामी स्तुति

नौमि गौतमस्वामिन् ! त्वां, वीरप्रभोर्गणीश्वरम्।
सर्वर्द्धिधारिणं देवं, चतुर्ज्ञानसमन्वितम्।।1।।
वीर दिव्यध्वनेर्हेतुं, गणाधीशं गणेशिनम्।
द्वादशांगस्य कर्तारं, सज्ज्ञानर्द्ध्यै नमाम्यहम्।।2।।

द्वादशांग जिनवाणी को ग्रंथरूप में नहीं लिखा जा सकता

(दिगम्बर जैन परम्परा में भगवान महावीर के बाद 683 वर्ष तक ही द्वादशांग श्रुत एवं उसके ज्ञाता आचार्य रहे हैं)

जैन वाङ्मय द्वादशांगरूप है और दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार आज द्वादशांग उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि द्वादशांग लिखे ही नहीं जा सकते, लिपिबद्ध नहीं हो सकते। आज उपलब्ध जैन वाङ्मय उस द्वादशांग का अंशमात्र ही है, जैसे नदी का जल कटोरी अथवा शीशी में भर लिया जाये। जैन श्रुत अर्थात् द्वादशांग अनादि-अनंत है और चौबीसों तीर्थंकर भगवान अपने-अपने काल में दिव्यध्वनि के द्वारा उसे प्रगट करते हैं। भगवान की दिव्यध्वनि को गणधर देव द्वादशांगरूप में निबद्ध करके भव्यजीवों को उसका पान कराते हैं।

भगवान महावीर आज से २६१२ वर्ष पूर्व जन्में और २५७० वर्ष पूर्व भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया, ६६ दिन तक भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरी, तब सौधर्म इन्द्र ने वेद-वेदांगों के पारंगत श्रेष्ठ ब्राह्मण इन्द्रभूति गौतम को उनके पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान के समवसरण में उपस्थित किया। मानस्तंभ को देखते ही गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण का मान गलित हो गया, 'जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचार.....' इत्यादि रूप से उन्होंने भगवान की स्तुति की। केशलोंच करके जैनेश्वरी दीक्षा को धारण करते ही उन्हें सभी ऋद्धियाँ एवं मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो गया तथा भगवान के प्रथम गणधर का पद उन्हें प्राप्त हो गया। वीरशासन जयंती, श्रावण कृ. एकम् के इस पावन दिवस भगवान की प्रथम दिव्यध्वनि खिरी एवं अन्तर्मुहूर्त में ही गौतम गणधर स्वामी ने इस दिव्यध्वनि को द्वादशांगरूप में निबद्ध कर दिया।

धवला पुस्तक १, पृ. ६५ पर उल्लिखित है-

तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह-विणासणट्ठमुवगय-वड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो।

इस प्रकार केवलज्ञान से विभूषित उन भगवान् महावीर के द्वारा कहे गये अर्थ को, उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशम विशेष से उत्पन्न हुए चार प्रकार के निर्मल ज्ञान से युक्त, वर्ण से ब्राह्मण, गोतमगोत्री, संपूर्ण दुःश्रुति में पारंगत और जीव-अजीवविषयक संदेह को दूर करने के लिए श्री वर्द्धमान के पादमूल में उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूति ने अवधारण किया।

अर्थात् अर्थकर्ता भगवान महावीर हैं और ग्रंथकर्ता इन्द्रभूति गौतम गणधर स्वामी हैं। धवला पुस्तक ९ में भी पृ. १०७ पर विस्तार से इस विषय का एवं गौतमस्वामी की ऋद्धियों का वर्णन है।

भगवान महावीर के पश्चात् द्वादशांग श्रुत की परम्परा—

भगवान महावीर के मोक्ष जाने के बाद ६२ वर्ष तक अनुबद्ध केवली हुए हैं और १०० वर्ष तक श्रुतकेवली हुए हैं अर्थात् १६२ वर्ष तक ही द्वादशांग श्रुतज्ञान रहा है, इसके बाद द्वादशांग श्रुतज्ञान नहीं रहा।

धवला पुस्तक ९, पृ. १३० एवं जयधवला (कषायपाहुड़) पुस्तक-१, पृ. ६८७ के आधार पर यह स्पष्ट है कि-

जिस दिन भगवान महावीर मोक्ष गये, उसी दिन सायंकाल गौतमस्वामी को केवलज्ञान हो गया। केवली भगवान गौतमस्वामी १२ वर्ष तक रहे, जिस दिन उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई, उसी दिन भगवान महावीर के द्वितीय गणधर श्री सुधर्माचार्य को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी, वह भी १२ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे, पुनः उनके मोक्षगमन के दिन ही जम्बूस्वामी ने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। ये जम्बूस्वामी ३८ वर्ष तक केवली रहे हैं, इस प्रकार भगवान महावीर के पश्चात् १२+१२+३८=६२ वर्ष तक अनुबद्ध केवली रहे हैं।

पुनः नंदी आचार्य, नंदिमित्र आचार्य, अपराजित आचार्य, गोवर्धन आचार्य और भद्रबाहु आचार्य, ये पाँच श्रुतकेवली १०० वर्ष की अवधि में क्रम से हुए हैं।

इसके पश्चात् ११ अंग और १४ पूर्वरूप द्वादशांग श्रुत नहीं रहा। जो रहा, वो इस प्रकार है-

ग्यारह आचार्य ११ अंग और १० पूर्व के ज्ञाता हुए, जिनका काल रहा १८३ वर्ष। ये ग्यारह आचार्य थे—विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव एवं सुधर्माचार्य। अनंतर ५ आचार्य ११ अंग के धारी हुए, पूर्व का ज्ञान इनको नहीं रहा, इनका काल २२० वर्ष था। ये पाँच आचार्य थे-नक्षत्राचार्य, जयपाल आचार्य, पांडु आचार्य, ध्रुवसेन आचार्य और कंस आचार्य। पुनः सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, लोहाचार्य ये चार आचार्य मात्र एक अंग—आचारांग के ज्ञाता हुए अर्थात् शेष १० अंग एवं १४ पूर्वों का ज्ञान लुप्त हो गया। इनका काल रहा ११८ वर्ष।

इस प्रकार गौतमस्वामी से लेकर आचारांगधारी आचार्यों तक का काल ६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ वर्ष प्रमाण हैं।

इसके पश्चात् श्री धरसेनाचार्य को अग्रायणीय पूर्व अर्थात् द्वितीय पूर्व के कुछ अंश का ज्ञान था, जिसे उन्होंने श्री पुष्पदंत-भूतबलि आचार्य को दिया, जिन्होंने श्री धरसेनाचार्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना की अर्थात् अंशज्ञान से षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना हुई, जिसकी धवला टीका १६ पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुई है।

कषायप्राभृत ग्रंथ के कर्ता श्री गुणधर आचार्य को पाँचवें पूर्व के कुछ अंश का ज्ञान था, जिससे उन्होंने कषायप्राभृत ग्रंथ रचा, जिसकी टीका जयधवला की १६ पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुकी है।

द्वादशांग श्रुत अर्थात् ११ अंग एवं १४ पूर्वों का ज्ञान दिगम्बर मुनिराज को ही हो सकता है। आर्यिकाएँ ११ अंग तक का ही ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, जबकि ऐलक, क्षुल्लक एवं श्रावक वर्ग को द्वादशांग (एवं प्रायश्चित्त ग्रंथों) की ज्ञान-प्राप्ति का अधिकार नहीं है। देखें आचार्य वसुनन्दि कृत वसुनन्दि श्रावकाचार में पृष्ठ ११२ पर-

दिणपडिम-वीरचरिया-तियालजोगेसु णत्थि अहियारो।
सिद्धंत-रहस्साण वि अज्झयणं देसविरदाणं।।३१२।।

दिन में प्रतिमायोग धारण करना अर्थात् नग्न होकर दिनभर कायोत्सर्ग करना, वीरचर्या अर्थात् मुनि के समान गोचरी करना, त्रिकाल योग अर्थात् गर्मी में पर्वत के शिखर पर, बरसात में वृक्ष के नीचे और सर्दी में नदी के किनारे ध्यान करना, सिद्धान्त-ग्रंथों का अर्थात् केवली, श्रुतकेवली-कथित गणधर, प्रत्येकबुद्ध और अभिन्नदशपूर्वी साधुओं से निर्मित ग्रंथों का अध्ययन और रहस्य अर्थात् प्रायश्चित्त शास्त्र का अध्ययन, इतने कार्यों में देशविरती श्रावकों का अधिकार नहीं है।।३१२।।

[१]यद्यपि आर्यिकाएँ पंचमगुणस्थान वाली हैं, फिर भी ये ग्यारहवीं प्रतिमाधारी क्षुल्लक, ऐलक की अपेक्षा उत्कृष्ट हैं, क्योंकि ये उपचार से महाव्रती संयतिका कहलाती हैं। मुनि के समान सर्व मूलगुणों को और समाचार क्रियाओं को पालन करती हैं। ग्यारह अंग तक श्रुत का अध्ययन करने का भी इनको अधिकार है।

पुराण ग्रंथ में भी सुना जाता है। उसे ही कहते हैं-

''एकादशांगभृज्जाता सार्यिकापि सुलोचना[२]।।''

''वह सुलोचना आर्यिका भी ग्यारह अंग के ज्ञान को धारण करने वाली हो गई।''

द्वादशांग रचना गणधर ही करते हैं—

अब एक विशेष बात यह है कि कभी कोई विद्वान् अथवा साधुजन वर्तमान में यह प्रयास करें कि आचारांग आदि द्वादशांगों को ग्रंथरूप में लिख लिया जाये, तो यह प्रयास कदापि भी नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि-

(१) दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार द्वादशांग श्रुत को निबद्ध करने का अधिकार मात्र गणधर देव को ही है, अन्य किन्हीं को नहीं है, श्रुतकेवली यद्यपि इस सम्पूर्ण द्वादशांग के ज्ञाता होते हैं तथापि वो भी इसे रचते नहीं है, गुरुमुख से पढ़कर ही इसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। महान क्षयोपशम के धारी सभी श्रुतकेवली एकपाठी थे, मात्र सुनकर ही उन्होंने इस महान श्रुत को धारण कर लिया था।

श्रुतभक्ति में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है—

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्वयनेकभेदस्थम्।
अंगांगबाह्यभावितमनंतविषयं नमस्यामि।।

---

१. नियमसार प्राभृत पृ. ४३०-४३१। २. हरिवंशपुराण सर्ग-१२, श्लोक-५२।

–पद्यानुवाद–

जिनवर कथित रचित गणधर से, युत अंगांग बाह्य संयुत।
द्वादश भेद अनेक अनंत, विषययुत वंदूँ मैं जिनश्रुत।।

स्पष्ट है कि जिनवर द्वारा कथित बारह अंग एवं अंगबाह्य से संयुक्त जिनश्रुत गणधरस्वामी द्वारा रचित होता है।

लघु श्रुतभक्ति की निम्न पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं–

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं, गणधररचितं द्वादशांगं विशालं।
चित्रं बह्वर्थयुक्तं, मुनिगण वृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः।।
मोक्षाग्रद्वारभूतं, व्रतचरणफलं श्रेयभावप्रदीपं।
भक्त्या नित्यं प्रवन्दे, श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ।।१।।

जिनेन्द्रवक्त्रप्रतिनिर्गतं वचो, यतीन्द्रभूतिप्रमुखैर्गणाधिपैः।
श्रुतं धृतं तैश्च पुनः प्रकाशितं, द्विषट्प्रकारं प्रणमाम्यहं श्रुतं।।२।।

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।३।।

अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा।।४।।

–पद्यानुवाद–शंभु छंद–

अर्हन् मुख से निकली गणधर, रचित सुबारह अंग महान्।
बुद्धिमंत मुनिपुंगव से, धारित बहुअर्थ सहित अमलान।।
मोक्ष अग्र का द्वार चरित, व्रत फलयुत ज्ञेयजगत् दीपक।
सर्वजगत् में सार सर्वश्रुत, को नित वंदूँ भक्तीयुत।।१।।

श्री जिनेंद्र के मुख पंकज से, प्रगट दिव्यध्वनि वचनस्वरूप।
इन्द्रभूति यतिपति गणधर ने,श्रुत को धारण किया अनूप।।
उन गणधर देवों ने द्वादश, अंग सहित द्रव्यश्रुत को।
किया प्रकाशित इस पृथ्वी पर, नमूँ नमूँ मैं सब श्रुत को।।२।।

इक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूँ नमाकर माथ।।३।।

अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक्, गूँथा है गणधर गुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से, प्रणमूँ भक्ति समन्वित मैं।।४।।

इसी प्रकार प्रचलित जिनवाणी-पूजा में भी निम्न पंक्तियाँ देखें-

तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी शिवसुख दानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई।।

(२) इस संदर्भ में एक मुख्य तथ्य यह है कि **द्वादशांग का एक मध्यम पद १६३४ करोड़, ८३ लाख ७८८८ अक्षर का होता है तथा द्वादशांग में कुल ११२ करोड़ ८३ लाख ५८ हजार ५ पद होते हैं,** अतः द्वादशांग तो दूर, एक पद की रचना करना ही कठिन है, तब द्वादशांग की रचना करने का विचार करना ही जिनवाणी के अवर्णवाद के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

(३) एक विचारणीय बिन्दु यह भी है कि यदि द्वादशांग श्रुत को लिखना संभव था तो श्रुतकेवली भद्रबाहु आचार्य ने द्वादशांग को क्यों नहीं रचा ? इसी प्रकार श्री धरसेनाचार्य जी के शिष्य श्री पुष्पदंत-भूतबलि आचार्यों ने द्वितीय पूर्व के किंचित् अंशमात्र से षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना तो की, पुनः द्वादशांग को क्यों नहीं लिखा ?

कषायप्राभृत ग्रंथ के कर्ता श्री गुणधर आचार्य ने द्वादशांग की रचना क्यों नहीं की ?

कुंदकुंद स्वामी जो साक्षात् विदेह क्षेत्र में विराजमान सीमंधर भगवान के समवसरण में जाकर आये, उन्होंने द्वादशांग की रचना का साहस नहीं किया, श्री उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र की रचना की परन्तु द्वादशांग की रचना नहीं की, इसका कारण यही है कि द्वादशांग को निबद्ध करना शक्य ही नहीं है, इसलिए वर्तमान में ऐसा प्रयास दिगम्बर परम्परा का श्वेताम्बरीकरण करने जैसा ही है क्योंकि श्वेताम्बर परम्परा में ही आचारांग इत्यादि अंग लिखे गये हैं।

अतः वास्तविकता को समझकर किन्हीं को भी द्वादशांग की रचना करने का विचार कभी भी नहीं करना चाहिए। द्वादशांग के अंश के रूप में जो भी साहित्य—कषायपाहुड़, षट्खण्डागम, महाबंध एवं उन पर आधारित गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि ग्रंथों का स्वाध्याय-मनन-चिंतन करके अपने जीवन को सफल करना चाहिए तथा आगम-विरुद्ध किसी भी प्रक्रिया से स्वयं को सर्वथा अलग रखना चाहिए।

सर्वसिद्धि मंत्र

ॐ ह्रीं सर्वसिद्धिकराय श्रीशांतिनाथाय नमः।

सरस्वती मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः।

भगवान महावीर स्वामी के बाद

683 वर्ष तक ही द्वादशांग रहे हैं

कसायपाहुड़ (जयधवला टीका) पुस्तक-1 का प्रमाण

जिणउवदिट्ठत्तादो होदु दव्वागमो पमाणं, किन्तु अप्पमाणीभूदपुरिसपव्वोलीकमेण आगयत्तादो अप्पमाणं वट्टमाणकालदव्वागमो त्ति ण पच्चवट्ठादुं जुत्तं, राग-दोष-भयादीदआइरियपव्वोलीकमेण आगयस्स अप्पमाणत्तविरोहादो। तं जहां, तेण महावीर-भडारएण इंदभूदिस्स अज्जस्स अज्जखेत्तुप्पण्णस्स चउरमल-बुद्धिसंपण्णस्स दित्तुग्गतत्ततवस्स अणिमादिअट्ठविह-विउव्वणलद्धिसंपण्णस्स सव्वट्ठसिद्धिणि-वासिदेवेहिंतो अणंतगुणबलस्स मुहुत्तेणेक्केण दुवालसंगत्थगंथाणं सुमरण-परिवादिकरणक्खमस्स सयपाणिपत्तणिवदिदरव्वं पि अमियसरूवेण पल्लट्टावणसमत्थस्स पत्ताहारवसहि-अवग्घीणारिद्धिस्स सव्वोहिणाणेण दिट्ठासेसपोग्गलदव्वस्स तपोबलेण उप्पायिदुक्कस्सविउलमदि-मणपज्जवणाणस्स सत्तभयादीदस्स खविदचदुकसायस्स जियपंचिंदियस्स भग्गतिदंडस्स छज्जीवदयावरस्स णिट्ठवियअट्ठमयस्स दसधम्मुज्जयस्स अट्ठमाउगणपरिवालियस्स भग्गबाबीसपरीसहपसरस्स सच्चालंकारस्स अत्थो कहिओ। तदो तेण गोअमगोत्तेण इंदभूदिणा अंतोमुहुत्तेणावहारिय-दुवालसंगत्थेण तेणेव कालेण कयदुवालसंगगंथरयणेण गुणेहि सगसमाणस्स सुहमा (म्मा) इरियस्स गंथो वक्खाणिदो। तदो केत्तिएण वि कालेण केवलणाणमुप्पाइय वारसवासाणि केवलविहारेण विहरिय इंदभूदिभडारओ णिव्वुइं संपत्तो १२। तद्दिवसे चेव सुहम्माइरियो जंबूसामियादीणमणेयाणमा-इरियाणं वक्खाणिददुवालसंगो घाइचउक्कक्खएण केवली जादो। तदो सुहम्मभडारयो वि बारहवस्साणि १२ केवलविहारेण विहरिय णिव्वुइं पत्तो। तद्दिवसे चेव जंबूसामिभडारओ बिट्ठू (विष्णु) आइरियादीणमणेयाणं वक्खाणिददुवालसंगो केवली जादो। सो वि अट्ठत्तीसवासाणि ३८ केवलविहारेण विहरिदूण णिव्वुइं गदो। एसो एत्थोसप्पिणीए अंतिमकेवली।

यदि कोई ऐसा माने कि जिनेन्द्रदेव के द्वारा उपदिष्ट होने से द्रव्यागम प्रमाण होओ किन्तु वह अप्रमाणीभूत पुरुष- परम्परा से आया हुआ है अर्थात् भगवान के द्वारा उपदिष्ट आगम जिन आचार्यों के द्वारा हम तक लाया गया है, वे प्रमाण नहीं थे। अतएव वर्तमानकालीन द्रव्यागम अप्रमाण है, सो उसका ऐसा मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्यागम राग, द्वेष और भय से रहित आचार्यपरम्परा से

आया हुआ है इसलिए उसे अप्रमाण मानने में विरोध आता है। आगे इसी विषय का स्पष्टीकरण करते हैं—

जो आर्य क्षेत्र में उत्पन्न हुए हैं, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार निर्मल ज्ञानों से सम्पन्न हैं, जिन्होंने दीप्त, उग्र और तप्त तप को तपा है, जो अणिमा आदि आठ प्रकार की वैक्रियिक लब्धियों से सम्पन्न हैं, जिनका सर्वार्थसिद्धि में निवास करने वाले देवों से अनन्तगुणा बल है, जो एक मुहूर्त में बारह अंगों के अर्थ और द्वादशांगरूप ग्रंथों के स्मरण और पाठ करने में समर्थ हैं, जो अपने पाणिपात्र में दी गई खीर को अमृतरूप से परिवर्तित करने में या उसे अक्षय बनाने में समर्थ हैं, जिन्हें आहार और स्थान के विषय में अक्षीण ऋद्धि प्राप्त है, जिन्होंने सर्वावधिज्ञान से अशेष पुद्गलद्रव्य का साक्षात्कार कर लिया है, तप के बल से जिन्होंने उत्कृष्ट विपुलमति मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न कर लिया है, जो सात प्रकार के भय से रहित हैं, जिन्होंने चार कषायों का क्षय कर दिया है, जिन्होंने पाँच इन्द्रियों को जीत लिया हैं, जिन्होंने मन, वचन और कायरूप तीन दंडों को भग्न कर दिया है, जो छह कायिक जीवों की दया पालने में तत्पर हैं, जिन्होंने कुलमद आदि आठ मदों को नष्ट कर दिया है, जो क्षमादि दस धर्मों में निरन्तर उद्यत हैं, जो आठ प्रवचन मातृकगणों का अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्तियों का परिपालन करते हैं, जिन्होंने क्षुधा आदि बाईस परीषहों के प्रसार को जीत लिया है और जिनका सत्य ही अलंकार है, ऐसे आर्य इन्द्रभूति के लिए उन महावीर भट्टारक ने अर्थ का उपदेश दिया। उसके अनन्तर उन गौतम गोत्र में उत्पन्न हुए इन्द्रभूति ने एक अन्तर्मुहूर्त में द्वादशाङ्ग के अर्थ का अवधारण करके उसी समय बारह अंगरूप ग्रंथों की रचना की और गुणों से अपने समान श्री सुधर्माचार्य को उसका व्याख्यान किया। तदनन्तर कुछ काल के पश्चात् इन्द्रभूति भट्टारक केवलज्ञान को उत्पन्न करके और बारह वर्ष तक केवलिविहाररूप से विहार करके मोक्ष को प्राप्त हुए। उसी दिन सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी आदि अनेक आचार्यों को द्वादशांग का व्याख्यान करके चार घातिया कर्मों का क्षय करके केवली हुए। तदनन्तर सुधर्म भट्टारक भी बारह वर्ष तक केवलिविहाररूप से विहार करके मोक्ष को प्राप्त हुए। उसी दिन जम्बूस्वामी भट्टारक विष्णु आचार्य आदि अनेक ऋषियों को द्वादशांग का व्याख्यान करके केवली हुए। वे जम्बूस्वामी भी अड़तीस वर्ष तक केवलि-विहाररूप से विहार करके मोक्ष को प्राप्त हुए। ये जम्बूस्वामी इस भरतक्षेत्र संबंधी अवसर्पिणी काल में पुरुषपरम्परा की अपेक्षा अंतिम केवली हुए हैं।

एदम्हि णिव्वुइं गदे विष्णुआइरियो सयलसिद्धंतिओ उवसमियचउकसायो णंदिमित्ताइरियस्स समप्पियदुवालसंगो देवलोअं गदो। पुणो एदेण कमेण अवराइयो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे पंच पुरिसोलीए सयलसिद्धंतिया जादा। एदेसिं पंचण्हं पि सुदकेवलीणं कालो वस्ससदं १००। तदो भद्दबाहुभयवंते सग्गं गदे सयलसुदणाणस्स वोच्छेदो जादो।

इन जम्बूस्वामी के मोक्ष चले जाने पर सकल सिद्धान्त के ज्ञाता और जिन्होंने चारों कषायों को उपशमित कर दिया था ऐसे विष्णु आचार्य, नन्दिमित्र आचार्य को द्वादशांग समर्पित करके अर्थात् उनके लिए द्वादशाङ्ग का व्याख्यान करके देवलोक को प्राप्त हुए। पुनः इसी क्रम से पूर्वोक्त दो और अपराजित, गोवर्द्धन तथा भद्रबाहु इस प्रकार ये पाँच आचार्य पुरुष परम्पराक्रम से सकल सिद्धान्त के ज्ञाता हुए। इन पाँचों ही श्रुतकेवलियों का काल सौ वर्ष होता है। तदनन्तर भद्रबाहु भगवान् के स्वर्ग चले जाने पर सकल श्रुतज्ञान का विच्छेद हो गया।

णवरि, विसाहाइरियो तक्काले आयारादीणमेक्कारसण्ह-मंगाणमुप्पायपुव्वाईणं दसण्हं पुव्वाणं च पच्चक्खाण-पाणावाय-किरियाविसाल-लोगबिंदुसारपुव्वाणमेगदेसाणं च धारओ जादो। पुणो अतुट्टसंताणेण पोट्ठिल्लो खत्तिओ जयसेणो णागसेणो सिद्धत्थो धिदिसेणो विजयो बुद्धिल्लो गंगदेवो धम्मसेणो त्ति एदे एक्कारस जणा दसपुव्वहरा जादा। तेसिं कालो तेसिदिसदवस्साणि १८३। धम्मसेणे भयवंते सग्गं गदे भारहवस्से दसण्हं पुव्वाणं वोच्छेदो जादो। णवरि, णक्खत्ताइरियो जसपालो पांडू धुवसेणो कंसाइरियो चेदि एदे पंच जणा जहाकमेण एक्कारसंगधारिणो चोद्दसण्हं पुव्वाणमेगदेसधारिणो च जादा। एदेसिं कालो बीसुत्तरविसदवास-मेत्तो २२०। पुणो एक्कारसंगधारए कंसाइरिए सग्गं गदे एत्थ भरहखेत्ते णत्थि कोइ वि एक्कारसंगधारओ।

किन्तु इतना विशेष है कि उसी समय विशाखाचार्य आचार आदि ग्यारह अंगों के और उत्पादपूर्व आदि दशपूर्वों के तथा प्रत्याख्यान, प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार इन चार पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। पुनः अविच्छिन्न संतानरूप से प्रोष्ठिल्ल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिसेन, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह मुनिजन दस पूर्वों के धारी हुए। उनका काल एक सौ तिरासी वर्ष होता है। धर्मसेन भगवान् के स्वर्ग चले जाने पर भारत वर्ष में दस पूर्वों का विच्छेद हो गया। इतनी विशेषता है कि नक्षत्राचार्य, जसपाल, पांडु, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पाँच मुनिजन ग्यारह अंगों के धारी और चौदह पूर्वों के एकदेश के धारी हुए। इनका काल दो सौ बीस वर्ष होता है। पुनः ग्यारह अंगों के धारी कंसाचार्य के स्वर्ग चले जाने पर यहाँ भरतक्षेत्र में कोई भी आचार्य ग्यारह अंगों का धारी नहीं रहा।

णवरि, तक्काले पुरिसोलीकमेण सुहदो जसभद्दो जहबाहू लोहज्जो चेदि एदे चत्तारि वि आयारंगधरा सेसंगपुव्वाणमेगदेसधरा य जादा। एदेसिमायारंगधारीणं कालो अट्ठारसुत्तरं वाससदं ११८। पुणो लोहाइरिए सग्गं गदे आयारंगस्स वोच्छेदो जादो। एदेसिं सव्वेसिं कालाणं समासो छसदवासाणि तेसीदिवासेहि समहियाणि ६८३। वड्ढमाणजिणिंदे णिव्वाणं गदे पुणो एत्तिएसु वासेसु अइक्कंतेसु एदम्हि भरहखेत्ते सव्वे आइरिया सव्वेसिमंगपुव्वाणमेग-देसधारया जादा।

इतनी विशेषता है कि उसी काल में पुरुषपरम्पराक्रम से सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चार आचार्य आचारांग के धारी और शेष अंग और पूर्वों के एकदेश के धारी हुए। आचारांग के धारण करने वाले इन आचार्यों का काल एक सौ अठारह वर्ष होता है। पुनः लोहाचार्य के स्वर्ग चले जाने पर आचारांग का विच्छेद हो गया। इन समस्त कालों का जोड़ ६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ अर्थात् तेरासी अधिक छह सौ वर्ष होता है।

विशेषार्थ—तीन केवलियों के नामों में से धवला में सुधर्माचार्य के स्थान में लोहार्य नाम आया है। लोहार्य सुधर्माचार्य का ही दूसरा नाम है। जैसा कि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की 'तेण वि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण' इस गाथांश से प्रकट होता है तथा दस पूर्वधारियों के नामों में जयसेन के स्थान में जयाचार्य, नागसेन के स्थान में नागाचार्य और सिद्धार्थ के स्थान में सिद्धार्थदेव नाम धवला में आया है। इन नामों में विशेष अन्तर नहीं है। मालूम होता है कि प्रारंभ के दो नाम जयधवला में पूरे लिखे गये हैं और अंतिम नाम धवला में पूरा लिखा गया है तथा ग्यारह अंग के नामधारियों में जसपाल के स्थान में धवला में जयपाल नाम आया है। बहुत संभव है कि लिपिदोष से ऐसा हो गया हो या ये दोनों ही नाम एक आचार्य के रहे हों। इसी प्रकार आचारांगधारी आचार्यों के नामों में जहबाहू के स्थान में धवला में जसबाहू नाम पाया जाता है। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में इसी स्थान में जयबाहू यह नाम पाया जाता है इसलिए यह कहना बहुत कठिन है कि ठीक नाम कौन सा है। लिपिदोष से भी इस प्रकार की गड़बड़ी हो जाना बहुत कुछ संभव है। जो भी हो। यहाँ एक ही आचार्य की दोनों कृति होने से पाठ भेद का दिखाना मुख्य प्रयोजन है।

वर्द्धमान जिनेन्द्र के निर्वाण चले जाने के पश्चात् इतने अर्थात् ६८३ वर्षों के व्यतीत हो जाने पर इस भरतक्षेत्र में सब आचार्य सभी अंगों और पूर्वों के एकदेश के धारी हुए।

तदो अंगपुव्वाणमेगदेसो चेव आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं संपत्तो। पुणो तेण गुणहरभडारएण णाणपवादपंचम-पुव्व-दसमवत्थु-तदियकसायपाहुडमहण्णवपारएण गंथवोच्छेदभएण पवयणवच्छलपरवसीक-यहियएण एदं पेज्जदोसपाहुडं सोलसपद-सहस्सपमाणं होंतं असीदि-सदमेत्तगाहाहि उवसंघारिदं। पुणो ताओ चेव सुत्त गाहाओ आइरियपरंपराए आगच्छमाणीओ अज्जमंखु-णागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाणं गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं।

उसके पश्चात् अंग और पूर्वों का एकदेश ही आचार्यपरम्परा से आकर गुणधर आचार्य को प्राप्त हुआ। पुनः ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व की दसवीं वस्तुसंबंधी तीसरे कषायप्राभृतरूपी महासमुद्र के पार को प्राप्त श्री गुणधर भट्टारक ने, जिनका हृदय प्रवचन के वात्सल्य से भरा हुआ था सोलह हजार पदप्रमाण इस पेज्जदोसपाहुड़ का ग्रंथ विच्छेद के भय से, केवल एक सौ अस्सी गाथाओं के द्वारा

उपसंहार किया।

विशेषार्थ-ऊपर जो पेज्जपाहुड सोलह हजार पदप्रमाण बतलाया है वह ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व की दसवीं वस्तु के मूल पेज्जपाहुड का प्रमाण समझना चाहिए। यहाँ पद से मध्यमपद लेना चाहिए, क्योंकि द्वादशांग की गणना मध्यमपदों के द्वारा ही की गई है।

पुनः वे ही सूत्र गाथाएँ आचार्य परम्परा से आती हुईं आर्यमंक्षु और नागहस्ती आचार्य को प्राप्त हुईं। पुनः उन दोनों ही आचार्यों के पादमूल में गुणधर आचार्य के मुखकमल से निकली हुईं उन एक सौ अस्सी गाथाओं के अर्थ को भली प्रकार श्रवण करके प्रवचनवत्सल यतिवृषभ भट्टारक ने उन पर चूर्णिसूत्रों की रचना की।

जेणेदे सव्वे वि आइरिया जियचउकसाया भग्गपंचिंदियपसरा वू (चू) रियचउसण्णसेण्णा इड्ढि-रस-सादगारवुम्मुक्का सरीरवदिरित्तासेसपरिग्गहकलंकुत्तिण्णा एक्कसंथाए चेव सयलगंथत्थावहारया अलीयकारणा-भावेण अमोहवयणा तेण कारणेणेदे पमाणं। ''वक्तृप्रामाण्याद् वचनस्य प्रामाण्यम्।।३२।। इति न्यायात् एदेसिमाइरियाणं वक्खाणमुवसंहारो च पमाणमिदि घेत्तव्वं, प्रमाणीभूतपुरुषपंक्तिक्रमायातवचनकलापस्य नाप्रामाण्यम् अतिप्रसंगात्।

इस प्रकार जिसलिए ये सर्व ही आचार्य चारों कषायों को जीत चुके हैं, पाँचों इन्द्रियों के प्रसार को नष्ट कर चुके हैं, चारों संज्ञारूपी सेना को चूरित कर चुके हैं, ऋद्धिगारव, रसगारव और सादगारव से रहित हैं, शरीर से अतिरिक्त बाकी के समस्त परिग्रहरूपी कलंक से मुक्त हैं, एक आसन से ही सकल ग्रंथों के अर्थ को अवधारण करने में समर्थ हैं और असत्य के कारणों के नहीं रहने से मोहरहित वचन बोलते हैं इस कारण ये सब आचार्य प्रमाण हैं। ''वक्ता की प्रमाणता से वचन की प्रमाणता होती है।।३२।।'' ऐसा न्याय होने से इन आचार्यों का व्याख्यान और उनके द्वारा उपसंहार किया गया ग्रंथ प्रमाण है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रामाणिक पुरुषपरम्पराक्रम से आया हुआ वचनसमुदाय अप्रमाण नहीं हो सकता है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष आ जायेगा।

षट्खण्डागम—धवला पुस्तक-9 से प्रमाण

संपहि वड्ढमाणतित्थगंथकत्तारो वुच्चदे-

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य।।३९।।

को होदि त्ति सोहम्मिंदचालणादो जादसंदेहेण पंच-पंचसयंतेवासिसहियभादुत्तिदयपरिवुदेण माणत्थंभदंसणेणेव पणट्ठमाणेण वड्ढमाणविसोहिणा वड्ढमाणजिणिंददंसण- वणट्ठासंखेज्ज-

भवज्जियगरुवकम्मेण जिणिंदस्स तिपदाहिणं करिय पंचमुट्ठीए वंदिए हियएण जिणं झाइय पाडिवण्णसंजमेण विसोहिबलेण अंतोमुहुत्तस्स उप्पण्णासेसगणिंदलक्खणेण उवलद्धजिणवयणविणिविणिग्गयबीजपदेण गोदमगोत्तेण बम्हणेण इंदभूदिणा आयार-सूदयद-ट्ठाण-समवायवियाहपण्णत्ति-णाहधम्मकहोवासयज्झयणंतयडदस-अणुत्तरोववादियदस-पण्णवायरण-विवाय-सुत्त-दिट्ठिवादाणं सामाइय-चउवीसत्थय-वंदणा-पडिक्कमण-वइणइय-किदियम्म दसवेयालि-उत्तरज्झयण-कप्पववहार-कप्पाकप्प-महाकप्प-पुंडरीय-महापुंडरीय-णिसिहियाणं चोद्दसपइण्णयाणमंगबज्झाणं च सावणमासबहुलपक्खजुगादि-पडिवयपुव्वदिवसे जेण रयणा कदा तेणिंदभूदि भडारओ वड्ढमाणजिणतित्थगंथकत्तारो। उत्तं च-

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि।।४०।।

एवं उत्तरतंतकत्तारपरूवणा कदा।

अब वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता को कहते हैं—

पाँच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पाँच महाव्रत, आठ प्रवचनमाता अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्ति तथा सहेतुक बंध और मोक्ष।।३९।।

'उक्त पाँच अस्तिकायादिक क्या है ? ऐसे सौधर्मेन्द्र के प्रश्न से संदेह को प्राप्त हुए, पाँच सौ-पाँच सौ शिष्यों से सहित तीन भ्राताओं से वेष्टित, मानस्तंभ के देखने से ही मान से रहित हुए, वृद्धि को प्राप्त होने वाली विशुद्धि से संयुक्त, वर्धमान भगवान के दर्शन करने पर असंख्यात भवों में अर्जित महान् कर्मों को नष्ट करने वाले, जिनेन्द्र देव की तीन प्रदक्षिणा करके पंच मुष्टियों से अर्थात् पाँच अंगों द्वारा भूमिस्पर्शपूर्वक वंदना करके एवं हृदय से जिन भगवान का ध्यान कर संयम को प्राप्त हुए, विशुद्धि के बल से मुहूर्त के भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधर के लक्षणों से संयुक्त तथा जिनमुख से निकले हुए बीजपदों के ज्ञान से सहित ऐसे गौतम गोत्र वाले इन्द्रभूति ब्राह्मण द्वारा चूँकि आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृतदशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग व दृष्टिवादांग, इन बारह अंगों तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका, इन अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकों की श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में युग के आदि में प्रतिपदा के पूर्व दिन में रचना की थी, अतएव इन्द्रभूति भट्टारक वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता हुए। कहा भी है-

वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई।।४०।।

इस प्रकार उत्तरतंत्रकर्ता की प्ररूपणा की।

संपहि उत्तरोत्तरतंतकत्तारपरूवणं कस्सामो। तं जहा-कत्तियमासकिण्णपक्खचोद्दसरत्तीए पच्छिमभाए महदिमहावीरे णिव्वुदे संते केवलणाणसंताणहरो गोदमसामी जादो। बारहवरसाणि केवलविहारेण विहरिय गोदमसामिम्हि णिव्वुदे संते लोहज्जाइरिओ केवलणाणसंताणहरो जादो। बारहवासाणि केवलविहारेण विहरिय लोहज्जभडारए णिव्वुदे संते जंबूभडारओ केवलणाणसंताणहरो जादो। अट्ठत्तीसवस्साणि केवलविहारेण विहरिय जंबूभडारए परिणिव्वुदे संते केवलणाण-संताणस्स वोच्छेदो जादो भरहक्खेत्तम्मिं। एवं महावीरे णिव्वाणं गदे बासट्ठिवरसेहि केवलणाणदिवायरो भरहम्मि अत्थमिदि। ६२। ३। णवरि तक्काले सयलसुदणाणसंताणहरो विण्णुआइरियो जादो। तदो अत्तुट्टसंताणरूवेण णंदिआइरिओ अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे सकलसुदधारया जादा। एदेसिं पंचण्हं पि सुदकेवलीणं कालसमासो वस्ससदं ।१००।५। तदो भद्दबाहुभडारए सग्गं गदे संते भरहक्खेत्तम्मि अत्थमिओ सुदणाण-संपुण्णमियंको, भरहखेत्तमावूरियमण्णाणंधयारेण। णवरि एक्कारसण्णमंगाणं विज्जाणुपवादपेरंतदिट्ठिवादस्स य धारओ विसाहाइरिओ जादो। णवरि उवरिमचत्तारि वि पुव्वाणि वोच्छिण्णाणि तदेगदेसधारणादो। पुणो तं विगलसुदणाणं पोट्ठिल्ल-खत्तिय-जय-णाग-सिद्धत्थ-धिदिसेण-विजय-बुद्धिल्ल-गंगदेव-धम्मसेणाइरियपरंपराए तेयासीदिवरिससयाइमागंतूण वोच्छिण्णं। १८३।११। तदो धम्मसेणभडारए सग्गं गदे णट्ठे दिट्ठिवादुज्जोए एक्कारसण्ण मंगाणं दिट्ठिवादेगदेसस्स य धारयो णक्खत्ताइरियो जादो। तदो तमेक्कारसंगं सुदणाणं जयपाल-पांडु-धुवसेण-कंसो त्ति आइरियपरंपराए वीसुत्तरबेसदवासाइमागंतूण वोच्छिण्णं।२२०। ५। तदो कंसाइरिए सग्गं गदे वोच्छिण्णे एक्कारसंगुज्जोवे सुभद्दाइरियो आयारंगस्स सेसंग-पुव्वाणमेगदेसस्स य धारओ जादो। तदो तमायारंगं पि जसभद्द-जसबाहु-लोहाइरियपरंपराए अट्ठारहोत्तर-वरिससयमागंतूण वोच्छिण्णं।११८।४। सव्वकाल-समासो तेयासीदीए अहियछस्सदमेत्तो।६८३। पुणो एत्थ सत्तमासाहियसत्त-हत्तरिवासेसु।७७/७। वारिसेसु पंचमासाहिएसु वड्ढमाणजिणणिव्वुददिणादो अइक्कंतेसु सगणरिंदरज्जुप्पत्ती जादो त्ति। एत्थ गाहा-

सत्तसहस्सा णवसद पंचाणउदी सपंचमासा य।
अइकंता वासाणं जइया तइया सगुप्पत्ती।।४३।। (७९९५/५)

अब उत्तरोत्तर तंत्रतकर्ताओं की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है-कार्तिक मास में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि के पिछले भाग में अतिशय महान महावीर भगवान के मुक्त होने पर केवलज्ञान की सन्तान को धारण करने वाले गौतम स्वामी हुए। बारह वर्ष तक केवलविहार से विहार करके गौतम स्वामी के मुक्त हो जाने पर लोहार्य आचार्य केवलज्ञान-परम्परा के धारक हुए। बारह वर्ष

केवलविहार से विहार करके लोहार्य भट्टारक के मुक्त हो जाने पर जम्बू भट्टारक केवलज्ञान की परम्परा के धारक हुए। अड़तीस वर्ष केवलविहार से विहार करके जम्बू भट्टारक के मुक्त हो जाने पर भरत क्षेत्र में केवलज्ञान परम्परा का व्युच्छेद हो गया। इस प्रकार भगवान् महावीर के निर्वाण को प्राप्त हो जाने पर बासठ वर्षों से केवलज्ञानरूपी सूर्य भरत क्षेत्र में अस्त हुआ (६२ वर्ष में ३ के.)। विशेष यह है कि उस काल में सकल श्रुतज्ञान की परम्परा को धारण करने वाले विष्णु आचार्य हुए। पश्चात् अविच्छिन्न सन्तान स्वरूप से नन्दि आचार्य, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, ये सकल श्रुत के धारक हुए। इन पाँच श्रुतकेवलियों के काल का योग सौ वर्ष है (१०० वर्ष में ५ श्रुत के.)। पश्चात् भद्रबाहु भट्टारक के स्वर्ग को प्राप्त होने पर भरतक्षेत्र में श्रुतज्ञानरूपी पूर्ण चन्द्र अस्तमित हो गया। अब भरतक्षेत्र अज्ञान अंधकार से परिपूर्ण हुआ। विशेष इतना है कि उस समय ग्यारह अंगों और विद्यानुवाद पर्यन्त दृष्टिवाद अंग के भी धारक विशाखाचार्य हुए। विशेषता यह है कि इसके आगे के चार पूर्व उनका एक देश धारण करने से व्युच्छिन्न हो गये। पुनः वह विकल श्रुतज्ञान प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन, इन आचार्यों की परम्परा से एक सौ तेरासी वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया (१८३ वर्ष में ११ एकादशांग-दशपूर्वधर)। पश्चात् धर्मसेन भट्टारक के स्वर्ग को प्राप्त होने पर दृष्टिवाद-प्रकाश के नष्ट हो जाने से ग्यारह अंगों और दृष्टिवाद के एकदेश के धारक नक्षत्राचार्य हुए। तदनन्तर वह एकादशांग श्रुतज्ञान जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस, इन आचार्यों की परम्परा से दो सौ बीस वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया (२२० वर्ष में ५ एकादशांगधर)। तत्पश्चात् कंसाचार्य के स्वर्ग को प्राप्त होने पर ग्यारह अंगरूप प्रकाश के व्युच्छिन्न हो जाने पर सुभद्राचार्य आचारांग के और शेष अंगों एवं पूर्वों के एक देश के धारक हुए। तत्पश्चात् वह आचारांग भी यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य की परम्परा से एक सौ अठारह वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया (११८ वर्ष में ४ आचारांगधर)। इन सब काल का योग छह सौ तेरासी वर्ष होता है (६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३)। पुनः इसमें से सात मास अधिक सतत्तर वर्षों को होने के दिन से पाँच मास अधिक सात हजार नौ सौ पंचानवे वर्षों के बीतने पर शक नरेन्द्र के राज्य की उत्पत्ति हुई। यहाँ गाथा-

जब सात हजार नौ सौ पंचानवे वर्ष और पाँच मास बीत गये तब शक नरेन्द्र की उत्पत्ति हुई।।४३।। (७९९५ व. ५ मा.)

एदेसु तिसु एक्केण होदव्वं। ण तिण्णमुवदेसाण सच्चत्तं, अण्णोण्णविरोहादो। तदो जाणिय वत्तव्वं।

एत्तो उवरि पयदं परूवेमो-लोहाइरिये सग्गलोगं गदे आयार-दिवायरो अत्थमिओ। एवं वारससु दिणयरेसु भरहखेत्तम्मि अत्थमिएसु सेसाइरिया सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेगदेसभूद-

पेज्जदोस-महाकम्मपयडिपाहुडादीणं धारया जादा। एवं पमाणीभूदमहरिसि-पणालेण आगंतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपवाहो धरसेणभडारयं संपत्तो। तेण वि गिरिणयरचंदगुहाए भूदबलि-पुप्फदंताणं महाकम्मपयडिपाहुडं सयलं समप्पिदं। तदो भूदबलिभडारएण सुदणईपवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठं महाकम्मपयडिपाहुडमुवसंहरिऊण छखंडाणि कयाणि। तदो तिकालगोयरासेसपयत्थ-विसयपच्चक्खाणंतकेवलणाणप्पभावादो पमाणीभूदआइरियपणालेणागदत्तादो दिट्ठिट्ठविरोहाभावादो पमाणमेसो गंथो। तम्हा मोक्खकंखिणा भवियलोएण अब्भसेयव्वो। ण एसो गंथो थोवो ति मोक्खकज्जजणणं पडि असमत्थो, अमियघडसयवाणफलस्स चुलुवामियवाणे वि उवलंभादो।

इन तीन उपदेशों में एक होना चाहिए। तीनों उपदेशों की सत्यता संभव नहीं है, क्योंकि इनमें परस्पर विरोध है। इसका कारण जानकर कहना चाहिए।

यहाँ से आगे प्रकृत की प्ररूपणा करते हैं-लोहाचार्य के स्वर्गलोक के प्राप्त होने पर आचारांगरूपी सूर्य अस्त हो गया। इस प्रकार भरतक्षेत्र में बारह सूर्यों के अस्तमित हो जाने पर शेष आचार्य सब अंग पूर्वों के एकदेशभूत 'पेज्जदोस' और 'महाकम्मपयडिपाहुड' आदिकों के धारक हुए। इस प्रकार प्रमाणीभूत महर्षिरूप प्रणाली से आकर महाकम्मपयडिपाहुड-रूप अमृत-जल-प्रवाह धरसेन भट्टारक को प्राप्त हुआ। उन्होंने भी गिरिनगर की चन्द्रगुफा में सम्पूर्ण महाकम्म्पयडिपाहुड भूतबलि और पुष्पदन्त को अर्पित किया। पश्चात् श्रुतरूपी नदीप्रवाह के व्युच्छेद से भयभीत हुए भूतबलि भट्टारक ने भव्य जनों के अनुग्रहार्थ महाकम्मपयडिपाहुड का उपसंहार कर छह खण्ड (षट्खण्डागम) किये। अतएव त्रिकालविषयक समस्त पदार्थों को विषय करने वाले प्रत्यक्ष अनन्त केवलज्ञान के प्रभाव से प्रमाणीभूत आचार्यरूप प्रणाली से आने के कारण प्रत्यक्ष व अनुमान से चूँकि विरोध से रहित है अतः यह ग्रंथ प्रमाण है। इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को इसका अभ्यास करना चाहिए। चूँकि यह ग्रंथ स्तोक है अतः वह मोक्षरूप कार्य को उत्पन्न करने के लिए असमर्थ है, ऐसा विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि अमृत के सौ घड़ों के पीने का फल चुल्लू प्रमाण अमृत के पीने में भी पाया जाता है।

सार में सार

जिस दिन भगवान महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधर केवलज्ञान को प्राप्त हुए। ये बारह वर्षों तक केवलीपद में रहकर सिद्धपद को प्राप्त हुए। उसी दिन सुधर्मस्वामी केवली हुए, ये भी बारह वर्षों तक केवली रहकर मुक्त हुए, तब जम्बूस्वामी केवली हुए, ये अड़तीस वर्षों तक केवली रहे अनंतर मुक्त हो गये। पुनः कोई अनुबद्ध केवली नहीं हुए। यह १२+१२+३८=६२ वर्ष का काल अनुबद्ध केवलियों के धर्म प्रवर्तन का माना गया है।

केवलियों में अंतिम केवली 'श्रीधर' कुंडलगिरी से सिद्ध हुए हैं और चारण ऋषियों में अंतिम ऋषि सुपार्श्व नामक हुए हैं। प्रज्ञाश्रमणों में अंतिम वज्रयश नामक प्रज्ञाश्रमण मुनि और अवधिज्ञानियों में अंतिम श्री नामक ऋषि हुए हैं। मुकुटधरों में अंतिम चन्द्रगुप्त ने जिन दीक्षा धारण की। इससे पश्चात् मुकुटधारी राजाओं ने जैनेश्वरी दीक्षा नहीं ली है।

अनुबद्ध केवली के अनंतर नंदी, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली हुए है। इनका काल 'सौ वर्ष' प्रमाण है। पुनः विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और सुधर्म ये ग्यारह आचार्य दशपूर्व के धारी हुए हैं। इन सबका काल 'एक सौ तिरासी' वर्ष है। अनंतर नक्षत्र, जयपाल, पांडु, ध्रुवसेन और कंस ये पाँच आचार्य ग्यारह अंग के धारी हुए हैं। इनका काल 'दो सौ बीस' वर्ष है। पुनः सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चार आचार्य आचारांग के धारक हुए हैं। ये चारों आचार्य ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों के एकदेश के भी ज्ञाता थे। इनका काल 'एक सौ अठारह' वर्ष है। इस प्रकार गौतम स्वामी से लेकर आचारांग धारी आचार्यों तक का काल ६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ छह सौ तिरासी वर्ष प्रमाण है। इसके अनंतर २०३१७ वर्षों तक धर्म प्रवर्तन के लिए कारणभूत ऐसा श्रुततीर्थ चलता रहेगा, पुनः काल दोष से व्युच्छेद को प्राप्त हो जायेगा। इतने मात्र समय में अर्थात् ६८३+२०३१७=२१००० इक्कीस हजार वर्षों के समय में चातुर्वर्ण्य संघ जन्म लेता रहेगा।

सप्तर्षि वंदना

सुरमन्यु, श्रीमन्यु ऋषिवर, श्रीनिचय, सर्वसुंदर स्वामी।
जयवान, विनयलालस गुरुवर जयमित्र सप्तऋषि जगनामी।।
ये मथुरानगरी में आये, महामारी व्याधी हुई शांत।
मैं नमूँ सहस्रों बार इन्हें, ये रोग शोक का करें अन्त।।1।।

-गणिनी ज्ञानमती

श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय एवं प्रतिक्रमण पाठ के प्रमाण

ये रचनाएँ श्री गौतमस्वामी प्रणीत हैं, इनके प्रमाण देखिए—

चैत्यभक्ति के प्रारंभ में टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य कहते हैं—

''श्री वर्धमानस्वामिनं'' प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी स्तुतिमाह—

श्रीवर्धमान को प्रत्यक्ष देखकर-उनका प्रथम दर्शन प्राप्तकर श्री गौतम स्वामी स्तुति करते हुए कहते हैं—

हरिणी छंद—''**जयति भगवान्**''.....इत्यादि।

'श्रीगौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषानां निराकरणार्थं वृहत्प्रतिक्रमण-लक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलाद्यर्थमिष्ट-देवता-विशेषं नमस्कुर्वन्नाह णमो जिणाणमित्यादि''।

ये ''**णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं**'' आदि ४८ मंत्र गणधरवलय मन्त्र कहे जाते हैं।। बृहत्प्रतिक्रमणपाठ में प्रतिक्रमणभक्ति में इनका प्रयोग है।

इन मंत्रों का मंगलाचरण धवला की नवमीं पुस्तक में है–

एवं दव्वट्ठिय जणाणुग्गहट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्म-पयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठियाणुग्गहट्ठमुत्तर सुत्ताणि भणदि।[१]

दूसरे सूत्र की उत्थानिका में विशेष स्पष्टीकरण हो रहा है–

इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय आश्रित जनों के अनुग्रहार्थ गौतम भट्टारक महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के आदि में नमस्कार करके पर्यायार्थिकनय युक्त शिष्यों के अनुग्रहार्थ उत्तरसूत्रों को कहते हैं–

णमो ओहिजिणाणं।।२।।

ऐसे ही पाक्षिक प्रतिक्रमण में एक स्थल पर स्वयं श्रीगौतमस्वामी ने अपने नाम को संबोधित किया है। यथा–

''जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोदम।
सारं झाणं त्ति णामेण, सव्वबुद्धेहिं देसिदं।।

हे गौतम ! सर्वसारों में भी जो सार है वह सार 'ध्यान' इस नाम से कहा गया है ऐसा सभी सर्वज्ञ भगवंतों ने कहा है।

श्रीगौतमस्वामी विरचित प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी ग्रंथ में श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने संस्कृत टीका में अनेक स्थानों पर श्री गौतमस्वामी का नाम लिया है उनके प्रमाण इस ग्रंथ में देखिए। यह ग्रंथ वीर

---

१. धवला पुस्तक-९, पृ. १२।

संवत् २४७३ (सन् १९४७) में श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती–आचार्य–शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था से प्रकाशित है।

(१)

श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचितटीकयाऽलङ्कृता

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषा यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।।
तस्मात्तदर्थममलं मुनिबोधनार्थं वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम्।।१।।

श्रीगौतमस्वामीमुनीनां दुष्षमकाले दुषपरिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्धध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षण–मुपायं विदधानस्तदादौ मङ्गलार्थमिष्टदेवता–विशेषं नमस्करोति–

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

टीका–नमो नमस्कारोऽस्तु। कस्मै ? वर्धमानाय अन्तिमतीर्थंकरदेवाय (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १)

(२)

ये रात्रौ दिवसे पथि प्रयततां दोषा यतीनां कृतोऽ–
प्यायाताः प्रलये तु हेतुरमलस्तेषामयं दर्शितः।।
श्रीमद्गौतमनामभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्योतकैः।
सुव्यक्तः सकलोऽप्यसौ यतिपतेर्ज्ञातः प्रभाचन्द्रतः।।
।।इति–श्रीगौतमस्वामी–विरचित–दैवसिकादि–प्रतिक्रमणायष्टीका श्रीमत्प्रभाचन्द्र–पण्डितेन कृतेति मंगलमहा।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्य–शान्तिसागर–दिगंबर जैन–जिनवाणीं–जीर्णोद्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीतायाः प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः प्रथमो ग्रंथः समाप्तः।।

(प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ८७–८८)

(३)

बृहत्प्रतिक्रमणम्

दोषा दैवसिकप्रतिक्रमणतो नश्यन्ति ये नो नृणां
तन्नाशार्थमिमां ब्रवीति गणभृच्छ्रीगौतमो निर्मलाम्।
सूक्ष्मस्थूलसमस्तदोषहननीं सर्वात्मशुद्धिप्रदां
यस्मान्नास्ति बृहत्प्रतिक्रमणतस्तन्नाशहेतुः परः।।१।।

श्री गौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषाणां निराकरणार्थं बृहत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलाद्यर्थमिष्टदेवता–विशेषं नमस्कुर्वन्नाह **णमो जिणाणमित्यादि।** (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ८९)

(४)

सुधम्मे इत्यादि। **श्रीगौतमस्वामी**–इष्टोपयोगसंबोधनेन भव्यान्संबोधयन् **सुधम्मे** इत्याद्याह। **आउस्संतो।।** आयुष्मन्तो भव्या मे मया सुदं श्रुतम्। इह भरतक्षेत्र खलु स्फुटं **भयवदा** भगवताऽहिंसादीनि व्रतानि **सम्मं धम्मोति** सम्यग्धर्म इति–**उवदेसिदाणि** उपदिष्टानि। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ९७)

(५)

कायं व्युत्सृजामि त्यजामि तत्रोदासीनो भवामि। कथं भूतं कायं ? **पावकम्मं।** पापकर्म यस्मात् पापाय वा कर्म व्यापारो यस्य।। **दुच्चरियं।।** दुष्ट दुर्गतिप्रापकं चरितं यस्य।

यत्पातं प्रचुरं प्रदुष्टमनसा जीवैः पुरोपार्जितं।
तत्सद्यः प्रलयं प्रयाति निखिलं तेषां प्रतिक्रामतां।।
मत्वेदं गणभृत्प्रतिक्रमणया तन्नाशमासूक्तवान्।
व्याख्याता तदियं प्रभेंदुमुनिना सद्धीधनैर्भाव्यतां।।

।।इति–श्रीगौतमस्वामि–विरचित–बृहत्प्रतिक्रमणायाष्टीका श्रीमत्प्रभाचंद्र–पंडितेन कृतेति।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्य–शान्तिसागर–दिगंबरजैनजिनवाणी–जीर्णोद्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीतायाः प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः द्वितीयो ग्रंथः समाप्तः।।

(प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १५२)

(६)

आलोचना

पंचाचारविशोधनार्थममलामालोचनामुक्त्वा–
नष्टम्यादिदिनावधिर्गणनया श्रीगौतमो मादृशं।
स्पष्टार्थैः प्रवरैः प्रसन्नवचनैः सर्वप्रबोधप्रदै–
स्तां व्याख्यातुमशेष–तोऽमलवपुः प्रारभ्यते प्रक्रमः।।१।।

श्रीगौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य पंचाचारगोचरस्यातीचारस्य दिनगणनया विशुद्ध्यर्थमालोचनालक्षणमुपायमुपदर्शयन्नाह**इच्छामी**त्यादि।। **भंते।।** भगवन् इच्छामि।। किं कर्तुं ? **आलोचेतुं।।** आलोचयितुं आलोचनां विशुद्धिं कर्तुं। क्व ? **अट्ठमियम्हि।।** आष्टमिके। अष्टम्यामष्टसंख्यावच्छिन्नदिनणनायां भवो ज्ञानाचाराद्यतीचार आष्टमिकः। तस्मिन्।। **अट्ठमियम्हि।।** आष्टमिके। अष्टम्यामष्टसंख्यावच्छिन्नदिनगणनायां भवो ज्ञानाचाराद्यतीचार आष्टमिकः।। तस्मिन्।। **अट्ठमियमालोचेदु**मिति।। पाठे त्वष्टसंख्यावच्छिन्नदिनगणनाप्रभवं तदतीचारमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १५३)

(७)

सम्मत्तमरणं।। सम्यक्त्वयुक्तस्यापरित्यक्तसम्यक्त्वस्य मरणं। **होउ मज्झं।** भवतु मम।। **पंडितमरणं।** भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीपादोपयानमरण–भेदात् त्रिविधं पंडितमरणं मम भवतु।। **वीरियमरणं।।** वीर्ययुक्तस्याक्लीबस्य मरणं मम भवतु। **दुक्खक्खओ।।** दुःखाना चातुर्गतिकानां क्षयो विनाशः। **कम्मक्खओ।।** कर्मणां ज्ञानावरणादीनां क्षयः प्रलयो भवतु।। **बोहिलाहो।।** बोधेः रत्नत्रयस्य लाभो मम भवतु।। **सुगइगमणं।।** शोभनायां गतौ मोक्षगतौ गमनं मम भवतु।। **जिणगुणसंपत्ति।।** जिनस्य प्रक्षीणाशेषकर्मणो भगवतो गुणा अनंतज्ञानादयः।। तेषां संप्राप्तिर्मम भवतु।।

यन्नो कैश्चिदपि प्रसन्नवचनैर्निःशेषशुद्धिप्रदं।
व्याख्यातं प्रवरं प्रतिक्रमणसद्ग्रंथत्रयं धीमतां।।
तद्योन प्रकटीकृतं भवहरं शब्दार्थतो निर्मलं।
स श्रीमान्निखिलोपकारनिरतो जीयात्प्रभेंदुर्जिनः।।

पेटलापट्के श्रीचंद्रप्रभदेवपादानमग्रे **श्रीगौतमस्वामीकृत**–प्रतिक्रमणात्रयस्य टीकात्रयं–श्री प्रभाचंद्रपंडितेन कृतमिति।।१।।

।।श्री।।श्री।।श्री।। ।।श्रीपार्श्वनाथाय नमः।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्यशान्तिसागरदिंगबरजैनजिनवाणीजीर्णो–द्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीतायाः प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः तृतीयो ग्रंथः समाप्त।।

(प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १९४, १९५)

इन उद्धरणों से भी ये रचनायें श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

श्री गौतम स्वामी की मूल रचनाएँ चार हैं-

१. श्री चैत्यभक्ति **२. दैवसिक प्रतिक्रमण**
३. पाक्षिक प्रतिक्रमण **४.श्रावक प्रतिक्रमण**

इसमें चैत्यभक्ति स्वतंत्र है।

पुनः तीन रचनाओं से ९ रचनाएँ उद्धृत की गई हैं।

१. कृतिकर्म विधि (सिद्धभक्ति) **२. निषीधिका दण्डक**
३. पडिक्कमामि भंते! **४. वीरभक्ति**

ये चार रचनाएँ दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत हैं।

५. गणधरवलय मंत्र **६. सुदं मे आउस्संतो! (श्रावकधर्म)**
७. सुदं मे आउस्संतो! (मुनिधर्म) **८. इच्छामि भंते!**

ये चार रचनाएँ पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत हैं।

९. एकादश प्रतिमा

यह रचना श्रावक प्रतिक्रमण से उद्धृत है।

''श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।''

अमृतवर्षिणी टीका–

भगवान महावीर स्वामी का जीवन परिचय

मंगलाचरण

सिद्धार्थ–राजकुल–मंडन–वीरनाथः,
जातः सुकुण्डलपुरे त्रिशलाजनन्यां।
सिद्धिप्रियः सकल–भव्यहितंकरो यः,
श्री सन्मतिर्वितनुतात् किल सन्मतिं मे।।१।।

पुरुरवा भील

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर 'पुष्कलावती' नाम का देश है उसकी 'पुण्डरीकिणी' नगरी में एक 'मधु' नाम का वन है। उसमें 'पुरुरवा' नाम का एक भीलों का राजा अपनी 'कालिका' नाम की स्त्री के साथ रहता था[१]।किसी दिन दिग्भ्रम के कारण 'श्री सागरसेन' नाम मुनिराज को इघर उधर भ्रमण करते हुए देखकर यह भील उन्हें मारने को उद्यत हुआ उसकी स्त्री ने यह कहकर मनाकर दिया कि 'ये वन के देवता घूम रहे हैं इन्हें मत मारो।' वह पुरुरवा उसी समय मुनि को नमस्कार कर तथा उनके वचन सुनकर शांत हो गया। मुनिराज ने उससे मद्य, मांस और मधु इन तीन मकारों का त्याग करा दिया। मांसाहारी भील भी इन तीनों के त्यागरूप व्रत को जीवनपर्यन्त पालन कर आयु के अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु को धारण करने वाला देव हो गया। कहाँ तो वह हिंसक क्रूर भील पाप करके नरक चला जाता और कहाँ उसे गुरु का समागम मिला कि जिनसे हिंसा का त्याग करके स्वर्ग चला गया।

मरीचि कुमार

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्ड के मध्य भाग में कौशल नाम का देश है। इस देश के मध्य भाग में अयोध्या नगरी हैं। वहाँ आदिनाथ भगवान् के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती की अंनतमती रानी से 'यह पुरुरवा भील का जीव देव' मरीचि कुमार नाम का पुत्र हुआ। अपने बाबा भगवान् वृषभदेव की दीक्षा के समय स्वयं ही गुरु भक्ति से प्रेरित होकर मरीचि ने कच्छ आदि चार हजार राजाओं के साथ दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। भगवान् तो छह महिने का उपवास लेकर ध्यान में लीन हो गये। मरीचि आदि चार हजार राजाओं ने क्षुधा,तृषा आदि वेदनाओं से घबड़ाकर वन के फल आदि को स्वयं ही भक्षण करना शुरू कर दिया। उस समय उस दिगम्बर वेष में वैसा स्वच्छंद

---

१. भगवान ऋषभदेव के जन्म के पूर्व इसी आर्यखंड में भोगभूमि की व्यवस्था थी। उस समय विदेह क्षेत्र की यह घटना है।

आचरण करते देख वनदेवता ने उन्हें भ्रष्ट आचरण करने से रोका। तब उन साधुओं ने अनेक वेष बना लिये। मरीचि ने सबसे प्रथम पारिव्राजक दीक्षा धारण कर ली। किसी ने वल्कल पहने, किसी ने जटायें बढ़ाई, किसी ने लंगोटी लगाई, इत्यादि अनेक वेषधारी बन गये। लगभग एक वर्ष के उपवास के बाद भगवान् ऋषभदेव को आहार मिला पुनः एक हजार वर्ष तपश्चरण के बाद केवलज्ञान हो गया। उस समय समवसरण में सभी भ्रष्ट राजाओं ने पुनः जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और स्वर्ग, मोक्ष प्राप्त किया, किन्तु मारीचि कुमार ने मान कषाय के आवेश में आकर पुनः दिगम्बर दीक्षा नहीं ली, उसी मिथ्यामत का प्रचार करता रहा। उसी समय से 'तीन सौ त्रेसठ' पाखण्ड मत चले हैं।

मरीचि का भवभ्रमण

मरीचिकुमार आयु के अन्त में मरकर ब्रह्मस्वर्ग में दस सागर आयु वाला देव हो गया। वहाँ से आकर जटिल ब्राह्मण हुआ, पुनः पारिव्राजक बना। पुनः मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ, पुनः वहां से पुष्यमित्र ब्राह्मण होकर पारिव्राजक बना। पुनः सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। पुनः वहां से आकर अग्निसह ब्राह्मण होकर पारिव्राजक दीक्षा ले ली। पुनः मरकर देव हुआ, वहां से च्युत होकर अग्निमित्र ब्राह्मण होकर पारिव्राजक तापसी हुआ। पुनरपि माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर भारद्वाज ब्राह्मण होकर त्रिदण्डी साधु बन गया और पुनरपि स्वर्ग में गया। वहां से च्युत होकर मिथ्यात्व के निमित्त से यह मरीचि कुमार त्रस–स्थावर योनियों में असंख्यात वर्ष तक परिभ्रमण करता रहा।

कुछ पुण्य से राजगृह नगर के शांडिल्य ब्राह्मण की पारशरी पत्नी से 'स्थावर' नाम का पुत्र हुआ। वहाँ भी सम्यग्दर्शन से शून्य पारिव्राजक की दीक्षा लेकर अन्त में मरकर माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हो गया।

विश्वनंदी

इसी मगधदेश के राजगृह नगर में '**विश्वभूति**' राजा की '**जैनी**' नामकी रानी से यह मरीचि कुमार का जीव स्वर्ग से आकर '**विश्वनंदी**' नाम का राजपुत्र हो गया। विश्वभूति राजा का एक विशाखभूति नाम का छोटा भाई था, उसकी लक्ष्मणा पत्नी से 'विशाखनन्दि' नाम का मूर्ख पुत्र हो गया। किसी दिन विश्वभूति राजा ने विरक्त होकर छोटे भाई विशाखभूति को राज्य देकर अपने पुत्र '**विश्वनन्दि**' को युवराज बना दिया और स्वयं तीन सौ राजाओं के साथ श्रीधर मुनि के पास दीक्षित हो गये।

किसी दिन विश्वनन्दी युवराज अपने 'मनोहर' नामक उद्यान में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उसे देख, चाचा के पुत्र विशाखनंद ने अपने पिता के पास जाकर उस उद्यान की याचना की। विशाखभूति ने भी युवराज विश्वनन्दी को 'विरुद्ध राजाओं को जीतने के बहाने' बाहर भेजकर पुत्र को बगीचा दे दिया। विश्वनन्दी को इस घटना का तत्काल पता लग जाने से वह क्रुद्ध होकर

वापस विशाखनंद को मारने को उद्यत हुआ। तब विशाखनंदी कैथे के वृक्ष पर चढ़ गया, इसने कैथे के वृक्ष को उखाड़ दिया। तब वह भागा और पत्थर के खम्भे के पीछे हो गया, यह विश्वनंदी पत्थर के खम्भे को उखाड़कर उससे उसे मारने को दौड़ा। विशाखनंदी वहां से डर कर भागा तब युवराज के हृदय में सौहार्द और करुणा जाग्रत हो गई। उसने उसी समय उसे अभयदान देकर बगीचा भी दे दिया और स्वयं 'संभूत' नामक मुनि के पास दीक्षा धारण कर ली, तब विशाखभूति ने भी पापों का पश्चात्ताप कर दीक्षा ले ली।

किसी दिन मुनि विश्वनंदी कृश अत्यन्त शरीरी मथुरा में आहार के लिये आये, उस समय यह विशाखनंदि वेश्या के महल की छत से मुनि को देख रहा था। मुनि को गाय ने धक्के से गिरा दिया यह देख विशाखनन्दि बोला 'तुम्हारा पत्थर का खम्भा तोड़ने वाला पराक्रम कहाँ गया ? मुनि ने यह दुर्वचन सुने उन्हें क्रोध आ गया, अन्त में निदान सहित संन्यास से मरकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये, वहीं पर चाचा विशाखभूति भी देव हो गये, दोनों की आयु सोलह सागर प्रमाण थी।

अर्धचक्री त्रिपृष्ठकुमार

सुरम्य देश के पोदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से 'विशाखभूति का जीव' विजय नाम का पुत्र हुआ और महाराज की दूसरी रानी मृगावती से 'विश्वनंदी का जीव' त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ।

विजय बलभद्रपद के धारक हुए और ये त्रिपृष्ठ अर्धचक्री पद के धारक हुए। उधर विशाखनंदि का जीव चिरकाल तक संसार में भ्रमण करता हुआ कुछ पुण्य से विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलांजना रानी से 'अश्वग्रीव' पुत्र हुआ। यह प्रतिनारायण हुआ था। कालांतर में युद्ध में अश्वग्रीव के चक्ररत्न से ही अश्वग्रीव को मारकर त्रिखण्डाधिपति राजा त्रिपृष्ठ ने अपने भाई विजय के साथ बहुत काल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया, अन्त में भोगलिप्सा में मरकर सप्तम नरक में चला गया क्योंकि सम्यग्दर्शन और पांच अणुव्रतों से रहित राज्य वैभव नरक का ही कारण है।

नरक में तेंतीस सागरों की आयु भोगकर सिंह हुआ और गर्मी–सर्दी, भूख–प्यास आदि बाधाओं से दुःखी हुआ, वहाँ पर प्राणी हिंसा से मांसाहार करते हुए पुनः मरकर पहले नरक चला गया। वहाँ के दुःखों को भोगकर वहाँ से निकल कर पुनरपि इसी जम्बूद्वीप में सिंधुकूट की पूर्व दिशा में हिमवान् पर्वत के शिखर पर सुन्दर बालों से युक्त सिंह हुआ।

पुण्यशाली मृगेन्द्र

वह सिंह किसी समय एक हिरण को पकड़कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितञ्जय' और 'अमितगुण' नामक दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश मार्ग से उतर कर उस सिंह के

पास पहुँचे और शिलातल पर बैठकर जोर–जोर से उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा कि "हे भव्य मृगराज! तू अर्धचक्री त्रिपृष्ठ के भव में पांचों इन्द्रियों के विषयों का सेवन कर तृप्त नहीं हुआ तथा सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण तू नरक में चला गया, वहाँ अत्यन्त प्रचंड और लोहे के घनों की चोट से तेरा चूर्ण किया जाता था, इत्यादि दुःखों को भोगकर तू वहाँ से निकलकर सिंह हुआ पुनः हिंसा के पाप से मरकर नरक गया। वहाँ से निकलकर पुनः सिंह होकर हिंसा में रत हैं। तू वृषभदेव के समय मरीचि के भव में तीर्थंकर वृषभदेव के वचनों का अनादर कर त्रस–स्थावर योनियों में असंख्यात वर्ष तक भ्रमण करता रहा। अब इस भव से दशवें भव में तू अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह बस मैंने श्रीधर तीर्थंकर से सुना है। इन सब बातों को सुनते ही सिंह को जातिस्मरण हो गया। संसार के भयंकर दुःखों की स्मृति से उसका शरीर कांपने लगा तथा आंखों से अश्रु गिरने लगे। बहुत देर तक अश्रु गिरते रहने से ऐसा मालूम होता था कि मानों हृदय में सम्यक्त्व को स्थान देने की इच्छा से मिथ्यात्व ही बाहर निकल रहा है।

उसकी शांत भावना को देखकर मुनि ने उसे सम्यक्त्व और अणुव्रत ग्रहण कराये। सिंह ने मुनिराज की भक्ति से बार–बार प्रदक्षिणायें दीं, बार–बार प्रणाम किया और तत्काल ही काललब्धि के आ जाने से तत्त्वश्रद्धानपूर्वक श्रावक के व्रत ग्रहण किये। सिंह का मांसाहार के सिवाय और कोई आहार नहीं, अतः मांस का त्याग करने से उसने "निराहार व्रत" ग्रहण किया था।

सम्यग्दर्शन का लक्षण—सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और तत्त्वों का श्रद्धान करना।

पंचाणुव्रत का लक्षण—

अहिंसाणुव्रत—मन–वचन–काय से किसी भी जीव को नहीं मारना।

सत्याणुव्रत—स्थूल झूठ नहीं बोलना।

अचौर्याणुव्रत—बिना दी हुई पर की वस्तु नहीं लेना।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—अपनी स्त्री के सिवाय सबको माता, बहन समझना।

परिग्रह परिमाणाणुव्रत—धन–धान्य आदि परिग्रह का जीवन भर के लिए प्रमाण कर लेना।

तिर्यंचों के संयमासंयम के आगे व्रत नहीं हो सकते। इसीलिए वह देशव्रती कहलाया। वह सिंह सब कुछ त्याग कर शिलातल पर बैठकर चित्रलिखित (पत्थर की मूर्ति) के समान हो गया था। चारण मुनि उसे शिक्षा देकर बार–बार उसका स्पर्श करते हुए चले गये–

महावीर चरित[१] में लिखा है कि–

'यह मरा हुआ है ऐसा समझ मदोन्मत्त हाथियों ने उसकी जटाओं को नष्ट कर दिया, डांस, मक्खी और मच्छरों ने मर्म स्थानों को काट डाला, लोमड़ी और श्रृगाल मृतक समझकर उस सिंह को तीक्ष्ण नखों के द्वारा नोंच–नोंच कर खाने लगे तो भी उस सिंह ने अपनी परम समाधि नहीं छोड़ी, क्षमा भाव

१. अशगकविकृत

से सब सहन करता रहा। पूर्वोक्त प्रकार से एक महीने तक निश्चल रहकर अनशन धारण कर पाप रहित हुआ प्राणों से शरीर को छोड़ा।' इस प्रकार संन्यास विधि से मरा और शीघ्र ही सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हो गया, वहां दो सागर तक उत्तम सुख भोगे।

पुनः मरीचि कुमार के जीव की जैनेश्वरी दीक्षा

स्वर्ग से आकर, धातकीखंड द्वीप के पूर्व मेरु सम्बन्धी पूर्व विदेह के मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में कनकप्रभ नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के 'कनकोज्ज्वल' नाम का पुत्र हुआ। किसी दिन प्रियमित्र नाम के अवधिज्ञानी मुनि से दयामय जैनधर्म का उपदेश सुनकर दीक्षा ले ली। बहुत काल तक तपश्चरण करते हुए 'कनकोज्ज्वल' मुनिराज संन्यास विधि से मरकर सातवें स्वर्ग में देव हो गये वहां के भोगों को भोगकर समाधिपूर्वक प्राण छोड़े और इसी अयोध्या के राजा वज्रसेन की रानी शीलवती से 'हरिषेण' पुत्र हो गया। राज्य वैभव का अनुभव करके हरिषेण ने श्रुतसागर मुनि से दीक्षा ले ली। तपश्चरण के प्रभाव से महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये। वहां से चयकर धातकीखंड की पुंडरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र की रानी मनोरमा से 'प्रियमित्र' नाम का पुत्र हो गया। यह प्रियमित्र चक्रवर्ती पद को प्राप्त हुआ, चक्ररत्न से छहखंड को जीतकर बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं से सेवित अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, छ्यानवें हजार रानियों के वैभव का अनुभव करते हुए क्षेमंकर जिनेन्द्र धर्मोपदेश सुनकर दीक्षित हो गया। यह प्रियमित्र मुनि आयु के अन्त में समाधिपूर्वक मरण करके सहस्रार स्वर्ग में 'सूर्यप्रभ' नाम के देव हुए। वहां पर अठारह सागर तक दिव्य सुखों का अनुभव कर जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर के राजा नंदिवर्धन की वीरवती रानी से 'नंद' नाम का एक सज्जन पुत्र हुआ। यहां भी अभिलषित राज्य का उपभोग कर 'प्रोष्ठिल' नाम के श्रेष्ठ गुरु के पास दीक्षा ले ली और ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध

दिगम्बर मुनि पंचमहाव्रत, पंचसमिति, पंचेंद्रिय निरोध, षट् आवश्यक क्रिया, केशलोंच, वस्त्रों का पूर्ण त्याग, स्नान का त्याग, पृथ्वी पर शयन, दंतधावन का त्याग, खड़े होकर भोजन और एक बार भोजन इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। सम्पूर्ण आरम्भ और परिग्रह से रहित ज्ञान–ध्यान में रत रहते हैं। परीषह और उपसर्गों को शांति और क्षमाभाव से सहन करते हैं।उत्तम क्षमादि इस धर्मों का पालन करते हैं। नंद मुनिराज ने घोर तपश्चरण से अपनी आत्मा को निर्मल बना लिया एवं दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन करने लगे। सातिशय तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने में समर्थ उन भावनाओं का संक्षिप्त लक्षण इस प्रकार है–

सोलहकारण भावना—

१. **दर्शनविशुद्धि**—पच्चीस मल दोषरहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करना।
२. **विनयसम्पन्नता**—देव, शास्त्र, गुरु तथा रत्नत्रय की विनय करना।
३. **शीलव्रतों में अनतिचार**—व्रतों और शीलों में अतिचार नहीं लगाना।
४. **अभीक्ष्णज्ञानोपयोग**—सदा ज्ञान के अभ्यास में लगे रहना।
५. **संवेग**—धर्म और धर्म के फल में अनुराग होना।
६. **शक्तितस्त्याग**—अपनी शक्ति के अनुसार आहार, औषधि,अभय और शास्त्र दान देना।
७. **शक्तितस्तप**—अपनी शक्ति को न छिपा कर अन्तरंग, बहिरंग तप करना।
८. **साधुसमाधि–** साधुओं का उपसर्ग आदि दूर करना या समाधि सहित वीर मरण करना।
९. **वैयावृत्यकरण**—व्रती, त्यागी साधर्मी की सेवा करना, वैयावृत्ति करना।
१०. **अर्हंतभक्ति**—अरहंत भगवान् की भक्ति करना।
११. **आचार्यभक्ति**—आचार्य की भक्ति करना।
१२. **बहुश्रुतभक्ति**—उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति करना।
१३. **प्रवचनभक्ति**—जिनवाणी की भक्ति करना।
१४. **आवश्यक अपरिहाणि**—छह आवश्यक क्रियाओं का सावधानी से पालन करना।
१५. **मार्गप्रभावना**—जैनधर्म का प्रभाव फैलाना।
१६. **प्रवचनवत्सलत्व**—साधर्मीजनों में अगाध प्रेम करना।

इन सोलहकारण भावनाओं में दर्शनविशुद्धि भावना का होना बहुत जरूरी है फिर उसके साथ दो, तीन आदि कितनी भी भावनायें हों या सभी हों तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। नन्द मुनिराज ने इन भावनाओं से तीनलोक में आश्चर्य को उत्पन्न कराने वाली 'तीर्थंकर' प्रकृति का बंध कर लिया। आयु के अंत में आराधना से मरकर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इंद्र हो गये।

पाठक वृंद! देखिए! पुरुरवा भील मद्य–मांस–मधु के त्याग से सौधर्म स्वर्ग के सुख का अनुभव कर चक्रवर्ती का पुत्र हुआ। पुनः मिथ्यात्व और मानकषाय से सहित था फिर भी अल्प आरम्भ परिग्रह रखने से और मंद कषायों के होने से तथा कुतपश्चरण के प्रभाव से देव हो गया। पांच बार पारिव्राजक बना व छह बार देवपद पाया। किन्तु आगे मिथ्यात्व के निमित्त से त्रस–स्थावर और निगोदरूप घोर कुयोनियों में असंख्यात वर्ष पर्यंत घूमता रहा। कदाचित् विश्वनंदी मुनि भी हुआ तो निदान से दूषित होकर अर्धचक्री पद का अनुभव करके भी नरकों के महान् दुःख भोगे। जब सिंह की पर्याय में सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त कर लिया तब अणुव्रत के प्रभाव से और सल्लेखना के माहात्म्य से उत्तम देव हुआ। अब यह सम्यक्त्व के निमित्त से उत्तम–उत्तम देवसुख और राज्यसुखों का अनुभव करता रहा।

देखिये! सिंह के जीव ने आगे चलकर चार बार सम्यक्त्व सहित मुनिव्रत धारण किया तथा 'संसारी जीवों को दुःख से निकालकर मैं उत्तम सुख में पहुँचा दूँ, इस प्रकार उत्कृष्ट भावनारूप अपायविचय से 'नंदमुनिराज' ने असंख्य प्राणियों पर अनुग्रह करने में समर्थ ऐसी तीर्थंकर प्रकृति बांध ली।

वीरप्रभु का गर्भ महोत्सव

पुष्पोत्तर विमान के इन्द्र की आयु जब छह मास शेष रही तब इसी भरतक्षेत्र के 'विदेह' नामक देश सम्बन्धी कुंडलपुर[१] नगर के राजा सिद्धार्थ के आंगन में प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ रत्नों की धारा बरसने लगी जब पंचमकाल प्रारम्भ होने के पचहत्तर वर्ष साढ़े आठ माह शेष रहे थे तब आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन, उत्तराषाढ़ नक्षत्र में राजा सिद्धार्थ की प्रसन्नवदना रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) सात खंड वाले राजमहल के भीतर रत्नमय दीपकों से प्रकाशित 'नंद्यावर्त' नामक राजभवन में हंस, तूलिका आदि से सुशोभित रत्नों के पलंग पर सो रही थीं, रात्रि के पिछले प्रहर में कुछ खुली सी नींद में उन्होंने उत्तम–उत्तम सोलह स्वप्न देखे। ऐरावत हाथी, सुन्दर बैल, सिंह, हाथियों द्वारा स्वर्णकलश से अभिषिक्त होती हुई लक्ष्मी, दो पुष्प माला, पूर्णचन्द, उदित होता हुआ सूर्य, दो स्वर्ण कलश, क्रीड़ासक्त दो मछलियाँ, सुन्दर सरोवर, समुद्र, सिंहासन, स्वर्ग विमान, नागेन्द्र भवन, रत्नराशि और धूम रहित अग्नि ये सोलह स्वप्न हैं। बाद में मुख में प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। अनन्तर प्रातःमंगलवाद्य महोत्सवों से उठकर आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त हो महाराज सिद्धार्थ के समीप गईं, वहाँ नमस्कार कर अर्धासन पर बैठकर क्रम से स्वप्नों को सुनाया। राजा सिद्धार्थ ने स्वप्नों का फल पृथक्–पृथक् स्पष्ट करते हुए बतलाया कि तीनलोक के नाथ तुम्हारे गर्भ में आ गये हैं। अनन्तर सौधर्म इंद्र सहित सब देवों ने आकर बड़े वैभव के साथ राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला का गर्भकल्याणक सम्बन्धी अभिषेक किया तथा देव और देवियों को यथायोग्य कार्यों में नियुक्त कर दिया और स्वस्थान को चले गये। श्री, ह्री आदि देवियां माता की विशेष भक्ति सेवा करने में तत्पर थीं और अनेकों तत्त्वचर्चाओं से, गूढ़ प्रश्नों से मनोरंजन किया करती थीं।

वीरप्रभु का जन्माभिषेक महोत्सव–

नव माह पूर्ण हो जाने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन, अर्यमा नाम के शुभ योग में माता त्रिशला ने पूर्व दिशा के सदृश अच्युतेन्द्र जीव को बालसूर्यरूप में जन्म दिया। उस समय देवों के यहां बिना बजाये बाजे बजने लगे, आसन कंपित हो गये और कल्पवृक्षों से पुष्प बरसने लगे, सर्वत्र विश्व में आनन्द की एक लहर दौड़ गई। सौधर्म इन्द्र एक लाख योजन विस्तृत ऐरावत हाथी को सजाकर उसके दाँतों के सरोवरों के कमल पत्रों पर अप्सराओं को नृत्य कराते हुए असंख्य देवों के साथ आये और नगरी की तीन प्रदक्षिणायें दीं।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ४, षट्खंडागम पु. ९।

'इन्द्राणी ने तत्काल प्रसूतिगृह में जाकर जिनबालक का दर्शन किया, बार–बार प्रभु को प्रणाम कर तीनलोक के नाथ की जननी (माता) की स्तुति करती हुई, माता को निद्रित कर उसके पास मायामयी बालक को सुलाकर जिनबालक सूर्य को स्वयं गोद में लेकर चल पड़ी और बाहर आकर बड़ी प्रसन्नता से इन्द्र को सौंप दिया[१]।

इन्द्र ने जिनबालक को ऐरावत हाथी पर विराजमान किया और देवों से घिरा हुआ क्षणमात्र में सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर जिनबालक को पांडुक शिला पर स्थित सिंहासन पर विराजमान किया और क्षीरसागर के जल से भरे हुए १००८ कलशों से अभिषेक किया, अनेकों स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति की। अधिक कहने से क्या ? इन्द्र ने उन्हें उत्तमोत्तम आभूषणों से विभूषित कर उनके 'वीर' और 'वर्धमान' ऐसे दो नाम रखे। अनन्तर वापस लाकर माता की गोद में विराजमान किया तथा बड़े उत्सव से आनन्द नामक नाटक करके प्रभु को नमस्कार कर स्वस्थान को चले गये।

श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर वीरप्रभु उत्पन्न हुए थे, उनकी आयु भी इसी में शामिल हैं, कुछ कम बहत्तर वर्ष की प्रभु की आयु थी, वे सात हाथ ऊंचे थे। श्रीवत्स आदि एक हजार आठ उत्तम लक्षणों से विभूषित थे, इनके शरीर में पसीना, मलमूत्र आदि नहीं था। जन्म से ही दश अतिशय भगवान् के प्रकट हुए थे।

बाल्यकाल की विशेषतायें

एक बार 'संजय' और 'विजय' नामक दो चारण मुनियों को किसी पदार्थ में संदेह हुआ, भगवान् के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आये और प्रभु के दर्शन मात्र से ही उनका संदेह दूर हो गया। इसलिए उन्होंने बड़ी भक्ति से बालक का 'सन्मति' यह नाम रखा। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर प्रतिदिन भगवान् के समय, आयु और इच्छा के अनुसार स्वर्ग से भोगोपभोग वस्तुओं को लाया करता था अर्थात् भगवान के भोजन, आभूषण आदि स्वर्ग से ही आते थे।

किसी समय स्वर्ग में वर्धमान के गुणों की चर्चा इन्द्र की सभा में सुनकर एक 'संगम' नाम का देव परीक्षा के लिए आया। भगवान् अनेक राजकुमारों के साथ एक वृक्ष पर चढ़े हुए क्रीड़ा में तत्पर थे। वह देव बड़े विकराल सर्प का रूप लेकर वृक्ष की जड़ से स्कंध तक लिपट गया। सब बालक भय से कंपित हो डालियों से कूदकर भागने लगे। कुमार महावीर ने निर्भय हो उस समय सर्प पर चढ़कर इस प्रकार क्रीड़ा की, जैसे माता के पलंग पर किया करते थे। कुमार की क्रीड़ा से हर्षित हो देव ने भगवान की स्तुति कर 'महावीर' यह सार्थक नाम रक्खा। यौवन अवस्था में प्रवेश करने पर माता–पिता ने भगवान् महावीर के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा किन्तु भगवान् ने उसे अस्वीकार कर दिया और बाल ब्रह्मचारी रहे। इस प्रकार तीन वर्षों का भगवान का कुमारकाल व्यतीत हो गया।

---

१. श्री सकलकीर्तिकृत महावीरचरित।

वीरप्रभु का दीक्षा महोत्सव

किसी दिन भगवान् को स्वयं ही आत्मज्ञान हो गया और पूर्वभव का स्मरण हो गया। उसी समय लौकांतिक देवों ने आकर भगवान् की स्तुति की। समस्त देवों ने आकर दीक्षा कल्याणक महोत्सव मनाया। भगवान् बंधुजनों से विदा लेकर 'चन्द्रप्रभा' नाम की पालकी पर सवार हुए। उस समय पालकी को सर्वप्रथम भूमिगोचरी राजाओं ने, फिर विद्याधर राजाओं ने, फिर इन्द्रों ने उठाया। 'षण्ड' नाम के वन में–ज्ञातृवन[२] में ले गये। वहाँ भगवान् रत्नमयी शिला पर उत्तर की ओर मुँह कर बेला का नियम (दो दिन का उपवास) लेकर विराजमान हो गये। मगसिर वदी दशमी के दिन भगवान् ने वस्त्र, आभरण, माला आदि उतार कर फेंक दिये और शरीर से निर्मम होकर अपने केशों को उखाड़ फेंक दिये। इन्द्र ने सब केश हाथ में लेकर मणिमयी पिटारे में रखकर उनकी पूजा की एवं उन्हें उत्सवपूर्वक क्षीरसागर में विसर्जित किया।

भगवान् निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनि हो गये, तत्काल ही उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया। मति, श्रुत, अवधि ये तीन ज्ञान तो तीर्थंकरों को जन्म से ही रहते हैं और दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो जाता है।

पारणा के दिन भगवान् कूल ग्राम में आये वहाँ के राज 'कूल' ने भक्ति से पड़गाहन कर नवधा भक्ति से भगवान् को खीर का आहार दिया, फलस्वरूप उनके घर पर पंचाश्चर्यों की वर्षा हुई। भगवान् मौन अवस्था में एकांत स्थानों, निर्जन वनों में तपश्चरण करने लगे।

भगवान द्वारा उपसर्गविजय

किसी दिन धीर–वीर भगवान् उज्जयिनी के अतिमुक्तक नामक श्मशान में प्रतिमायोग से विराजमान थे। उन्हें देखकर कापालिक ने अपनी दुष्टता से उनके धैर्य की परीक्षा के लिए रात्रि में बड़े–बड़े बेतालों का रूप बनाकर उपसर्ग किया, अट्टहास करते हुए, विकराल मुँह फाड़े हुए वे वेताल डरा रहे थे। इसके सिवाय सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और वायु के साथ भीलों की सेना बनाकर उपसर्ग किया। पाप का ही अर्जन करने में निपुण वह रुद्र अपनी विद्या के प्रभाव से भयंकर उपसर्गों को करते हुए भी प्रभु को ध्यान से चलायमान नहीं कर सका। अन्त में उसने 'महति' और 'महावीर' नाम रख कर अनेकों प्रकार से स्तुति की, अपनी भार्या के साथ नृत्य किया और सब मत्सर भाव छोड़कर वहाँ से चला गया।

चन्दना के बन्धन टूट गये

राजा चेटक की चन्दना पुत्री (भगवान की छोटी मौसी) को वन क्रीड़ा में आसक्त देख, किसी विद्याधर ने उसे हरण कर लिया और पत्नी के डर से महाटवी में छोड़ दिया। वहाँ के भील ने उसे ले

---

२. हरिवंशपुराण, पृ. ७२२।

जाकर वृषभदत्त सेठ को दे दी, सेठ की पत्नी–सुभद्रा, सेठ के प्रति संदिग्ध दृष्टि होने से चन्दना को खाने के लिए मिट्टी के सकोरे में कांजी से मिश्रित कोदों का भात दिया करती थी और क्रोधवश उसे सांकल से बांधे रखती थी। किसी दिन उस कौशाम्बी नगरी में आहार के लिए भगवान् महावीर स्वामी आ गये। उन्हें देखकर चन्दना उनके सामने जाने लगी। उसी समय उसके सांकल के सब बन्धन टूट गयें, उसके शिर पर केश आ गये, वस्त्र आभूषण सुन्दर हो गये। शील के माहात्म्य से मिट्टी का सकोरा स्वर्ण पात्र और कोदों का भात चावल बन गया। उस चन्दना ने भगवान् को पड़गाह कर नवधाभक्ति से आहारदान दिया। उसके यहाँ पंचाश्चर्यों की वर्षा हुई और बंधुओं के साथ उसका समागम हो गया।

भगवान का केवलज्ञान महोत्सव

जगद्बंधु भगवान् के छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष व्यतीत हो गये। किसी दिन भगवान जृंभिक ग्राम के समीप ऋजुकूला नदी के किनारे 'मनोहर' नाम के वन में रत्नमयी एक बड़ी शिला पर शाल वृक्ष के नीचे बेला का नियम लेकर प्रतिमायोग से विराजमान हुए। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन अपराह्नकाल में परिणामों की विशुद्धि से वे क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। उसी समय घातिया कर्मों का नाश कर अनंत चतुष्टय से सहित, चौंतीस अतिशयों से सुशोभित केवली 'परमात्मा' हो गये। पृथ्वी से पाँच हजार धनुष (बीस हजार हाथ) ऊपर आकाश में सुशोभित होने लगे। सौधर्म इन्द्र ने आकर देवों के साथ समवसरण की रचना की और केवलज्ञान महोत्सव मनाया। समवसरण में बारह सभा में बैठे हुए असंख्य भव्यजीव भगवान् की दिव्यध्वनिरूपी धर्मामृत का पान करने के लिए उत्सुक थे। फिर भी भगवान् की दिव्यध्वनि नहीं खिरी। इसका कारण 'गणधर का न होना' समझकर इन्द्र ने अवधिज्ञान से विचार किया एवं वेदवेदांग पारंगत पाँच सौ शिष्यों के गुरु गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नाम के ब्राह्मण के पास इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण का रूप लेकर लाठी टेकते हुए पहुँचा, अनेकों वार्तालाप के बाद इन्द्र ने एक श्लोक का अर्थ पूछा तब ब्राह्मण ने सोचा इसके गुरु के पास ही चलकर वाद–विवाद करना चाहिये। वहां समवसरण में पहुँचकर मानस्तंभ देखते ही गौतम का मान गलित हो गया। श्री गौतम चरित में कहा है कि 'वह मन में विचारने लगा कि जिस गुरु की पृथ्वीभर में आश्चर्य उत्पन्न करने वाली इतनी विभूति है वह क्या किसी से जीता जा सकता ? कभी नहीं, तदनन्तर भगवान् वीरनाथ के दर्शन कर वह गौतम अनेकों स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति करने लगा।

इसके बाद ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए ये इन्द्रभूति गौतम अपने पाँच सौ शिष्यों और भाईयों के साथ श्री वर्धमान स्वामी को नमस्कार कर मुनि बन गये[१]। परिणामों की विशेष विशुद्धि से तत्काल ही इन्द्रभूति को मनःपर्ययज्ञान और सात ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं। श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन पूर्वान्ह में भगवान् की दिव्यध्वनि खिरी, उसी दिन अपराण्ह काल में ग्यारह अंगों और चौदह पूर्वों का स्पष्ट

१. गौतमस्वामी चरित्र पृ. ११८।

बोध प्राप्त करके इन्द्रभूति गौतम ने अन्तर्मुहूर्त में द्वादशांग की रचना की। उसी समय गौतम ग्रन्थकर्ता कहलाये तथा ये महावीर स्वामी के प्रथम गणधर हुए हैं। इनके बाद वायुभूति, अग्निभूति, आदि दश गणधर और हुए।

भगवान के समवसरण में ग्यारह गणधर, चौदह हजार मुनि, चंदना को प्रमुख कर छत्तीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें, असंख्यात देव, देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। इन बारह गणों से वेष्टित भगवान् ने सिंहासन के मध्यभाग में स्थित हो अर्धमागधी भाषा के द्वारा छह द्रव्य, सात तत्त्व, संसार और मोक्ष के कारण आदि का दिव्य उपदेश दिया। भगवान का उपेदश सात सौ अठारह भाषाओं में परिणत हो जाता था। इनके अतिरिक्त भी सभी भव्य अपनी–अपनी भाषा में समझ लेते थे। इसलिए संख्यात भाषारूप भी था। भगवान् की प्रथम धर्मदेशना राजगृह नगर के विपुलाचल पर्वत पर हुई है। महाराज श्रेणिक भगवान् के समवसरण के मुख्य श्रोता थे।

भगवान महावीर ने भी वृषभदेव के समान वैभव के साथ विहार कर मध्य के काशी, कौशल, त्रिगर्त, पांचाल, समुद्र तट के कलिंग, कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कम्बोज, बाल्हीक, यवन, सिंध, गांधार तथा उत्तर दिशा के तार्ण, कार्ण आदि देशों को धर्म से युक्त किया था अर्थात् भगवान का समवसरण आर्य खंड में बहुत जगह घूमा था[१]।

भगवान का मोक्ष गमन

अन्त में भगवान् पावापुर नगर में पहुँचे। वहाँ के 'मनोहर' नाम के वन के भीतर अनेक सरोवरों के बीच में मणिमयी शिला पर विराजमान हो गये। वे दो दिन तक वहां विराजमान रहे और कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन रात्रि के अन्तिम समय स्वाति नक्षत्र में तीनों योगों का निरोध कर अघातिया कर्मों का नाश करके शरीर रहित केवलगुणरूप होकर मोक्ष पद प्राप्त कर लिया, उसी समय भगवान् लोक के अग्रभाग पर जाकर विराजमान कृतकृत्य, सिद्ध, नित्य, निरंजन, भगवान् बन गये। अब वे वापस कभी भी अनन्त काल तक संसार में नहीं आयेंगे। उनके पुरुषार्थ की अन्तिम (चरम) सीमा हो चुकी है। अनंतर इंद्रादि सब देव आये और अग्निकुमार के मुकुट से प्रज्ज्वलित होने वाली अग्नि की शिखा पर भगवान् का शरीर रखकर संस्कार किया। स्वर्ग से लाये गए गंध, माला आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से विधिवत् भगवान की पूजा की, अनेक स्तुतियां कीं और मोक्षकल्याणक उत्सव मनाया। जिस दिन भगवान् मोक्ष गये उसी दिन गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्रकट हो गया।[२]

उस समय सुर–असुरों द्वारा जलाई हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा। उस समय से लेकर भगवान् के निर्वाण कल्याणक को भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरत क्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध 'दीपमालिका' के द्वारा भगवान्

१. हरिवंश पु. पृ. २४ २. हरिवंशपुराण, पृ. ८०६।

महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् दीपावली का उत्सव मनाने लगे।।

पुरुरवा से लेकर भगवान महावीर के ३४ भव

१. पुरुरवा भील
२. प्रथम स्वर्ग में देव
३. भरत पुत्र–मरीचि
४. ब्रह्म स्वर्ग में देव
५. जटिल ब्राह्मण
६ .सौधर्म स्वर्ग में देव
७. पुष्यमित्र–ब्राह्मण
८. सौधर्म स्वर्ग में देव
९. अग्निसह–ब्राह्मण
१०. सनत्कुमार स्वर्ग में देव
११. अग्निमित्र ब्राह्मण
१२. माहेन्द्र स्वर्ग में देव
१३. भारद्वाज ब्राह्मण
१४. माहेन्द्र स्वर्ग में देव
१५. मनुष्य
(इसके बाद एकेंद्रिय आदि असंख्यात भव)
१६. स्थावर–ब्राह्मण
१७. चतुर्थ स्वर्ग में देव
१८. विश्वनंदि
१९. महाशुक्र नामक दशवें स्वर्ग में देव
२०. त्रिपृष्ठ अर्धचक्री
२१. सप्तम नरक में
२२. सिंह
२३. प्रथम नरक में
२४. सिंह (यहाँ से उत्थान प्रारम्भ)
२५. सौधर्मस्वर्ग में सिहकेतु नामक देव
२६. कनकोज्ज्वल विद्याधर
२७. सातवें स्वर्ग में देव
२८. हरिषेण राजा
२९. महाशुक्र स्वर्ग में देव
३०. प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती
३१. सहास्रार स्वर्ग में सूर्यप्रभदेव
३२. नंदन नामक राजा
३३. अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र
३४. तीर्थंकर–वर्धमान–महावीर

संयम के दो भेद

दुविहं संजमचरणं, सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं सग्गंथे, परिग्गहारहिय खलु णिरायारं।।19।।

(श्री कुंदकुंददेवकृत–चारित्रपाहुड़ गाथा-21)

अर्थ–सागार और अनगार के भेद से संयमचरण चारित्र दो प्रकार का है। उनमें से सागारचारित्र परिग्रह सहित श्रावक के होता है और निरागार चारित्र परिग्रह रहित मुनियों के होता है।

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का जीवन परिचय

प्रथम कर्मभूमि—जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में मध्य में पूर्व-पश्चिम तथा विजयार्ध पर्वत एवं हिमवन पर्वत से निकली हुई गंगा-सिंधु नदियों के निमित्त से छहखंड हो जाते हैं इनमें मध्य के आर्यखण्ड में षट्काल परिवर्तन होता रहता है। अवसर्पिणी में सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमा दुःषमा, दुःषमा सुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा ये छह काल होते हैं और उत्सर्पिणी में अतिदुःषमा से लेकर सुषमासुषमा पर्यन्त छह काल होते हैं इनमें से सुषमासुषमा आदि तीन कालों में भोगभूमि एवं दुःषमासुषमा आदि तीन में कर्मभूमि की व्यवस्था होती है।

इस व्यवस्था के अनुसार प्रथम जंबूद्वीप के प्रथम भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में जो कर्मभूमि आती है वह प्रथम कहलाती है।

भोगभूमि—भोगभूमि में मद्यांग, वादित्रांग, भूषणांग, मालांग, दीपांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भोजनांग, भाजनांग और वस्त्रांग ये दशप्रकार के कल्पवृक्ष मनवांछित फल देते रहते हैं।

कुलकरों की उत्पत्ति—इस वर्तमान अवसर्पिणी में यहां भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में तृतीय काल में जब पल्य का आठवां भाग शेष रह गया तब कुलकरों की उत्पत्ति प्रारंभ हो गई, इनके नाम—प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचंद्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराज।

हरिवंशपुराण में लिखा है कि बारहवें मरुदेव कुलकर ने अकेले पुत्र "प्रसेनजित्" को जन्म दिया अतः यहाँ से युगलिया परंपरा समाप्त हो गई। इनका विवाह किसी प्रधान कुल की कन्या के साथ सम्पन्न हुआ है।

कहा भी है—

प्रसेनजितमायोज्य प्रस्वेदलवभूषितम्।
विवाहविधिना वीरः प्रधानकुलकन्यया।।[१]

इन प्रसेनजित् से नाभिराज भी अकेले ही जन्मे। इन्द्र ने इनका विवाह कु. मरुदेवी के साथ सम्पन्न किया।

कहा भी है—

तस्यासीन्मरुदेवीति, देवी देवीव सा शची।।
तस्याःकिल समुद्वाहे, सुरराजेन चोदिता।
सुरोत्तमाः महाभूत्या, चक्रुः कल्याणकौतुकम्[२]**।।५६।।**

---

१. हरिवंशपुराण सर्ग-७। २. महापुराण पर्व १२।

हरिवंशपुराण में भी कहा है—

अथ नाभेरभूद्देवी मरुदेवीति वल्लभा।
देवी शचीव शक्रस्य शुद्धसंतानसंभवा[1]।।६।।

शुद्ध कुल में उत्पन्न हुई मरुदेवी राजा नाभिराज की वल्लभा हुई।

अयोध्या नगरी की रचना—मरुदेवी और नाभिराज से अलंकृत पवित्र स्थान में जब कल्पवृक्षों का अभाव हो गया तब उनके पुण्य विशेष से इन्द्र ने एक नगरी की रचना करके उसका नाम 'अयोध्या' रखा।

"छठे काल के अंत में जब प्रलयकाल आता है तब उस प्रलय में यहाँ आर्यखंड में एक हजार योजन नीचे तक की भूमि नष्ट हो जाती है। उस काल में अयोध्यानगर स्थान के सूचक नीचे चौबीस कमल देवों द्वारा किये जाते हैं[2]।"

इन्हीं चिन्हों के आधार से देवगण पुनः उसी स्थान पर अयोध्या की रचना कर देते हैं।

इसीलिए "अयोध्यानगरी" शाश्वत मानी गई है।

हरिवंशपुराण में राजा नाभिराज के महल को ८१ खन ऊँचा, रत्ननिर्मित "सर्वतोभद्र" नाम से कहा है।

श्री ऋषभदेव का स्वर्गावतरण—छह माह बाद भगवान ऋषभदेव "सर्वार्थसिद्धि" विमान से च्युत होकर यहाँ माता मरुदेवी के गर्भ में आने वाले हैं ऐसा जानकर सौधर्मइन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी—हे धनपते! तुम अयोध्या में माता मरुदेवी के आंगन में रत्नों की वर्षा प्रारंभ कर दो। उसी दिन से कुबेर ने प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ प्रमाण उत्तम-उत्तम पंचवर्णी रत्न बरसाना शुरू कर दिया।

एक दिन मरुदेवी महारानी ने पिछली रात्रि में ऐरावत हाथी आदि उत्तम-उत्तम सोलह स्वप्न देखे। प्रातः पतिदेव के मुख से "तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर पुत्र अवतरित होंगे" ऐसा सुनकर महान हर्ष को प्राप्त हुईं।

जब इस अवसर्पिणी के तृतीय काल में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रह गये थे तब आषाढ़ कृ. द्वितीया के दिन भगवान का गर्भागम हुआ। उसी दिन अपने दिव्यज्ञान से जानकर इन्द्र ने असंख्य देवों के साथ आकर महाराजा नाभिराज और महारानी मरुदेवी का अभिषेक करके वस्त्राभरण आदि से उनका सम्मान कर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाया। इन्द्र की आज्ञा से श्री, ह्री आदि देवियां माता की सेवा करने लगीं।

क्या भगवान पुनः अवतार लेते हैं ? जैनधर्म के अनुसार कोई भी भगवान पुनः-पुनः अवतार नहीं लेते हैं। प्रत्युत हम और आप जैसे कोई भी संसारी प्राणी क्रम-क्रम से उत्थान करते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर पांच कल्याणकों को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं वे पुनः इस

---

१. हरिवंशपुराण सर्ग-१। २. भक्त्यादिक्रियासंग्रह (टिप्पण) पृ. १६२।

संसार में कभी भी अवतार नहीं लेते हैं जैसा कि भगवान ऋषभदेव के 'दशावतार' अर्थात् दशभवों का वर्णन पढ़ने से यह भगवान का गर्भावतार प्रकरण स्पष्ट हो जाता है।

इसी जंबूद्वीप के विदेह क्षेत्र में गंधिला देश के विजयार्ध की श्रेणी में एक 'महाबल' नाम के विद्याधर राजा थे एक बार इन्होंने अपने स्वयंबुद्ध मंत्री के द्वारा जैनधर्म को स्वीकार कर सल्लेखना से मरणकर स्वर्ग में 'ललितांग' नाम के देवपद को प्राप्त किया। वहाँ से च्युत हो विदेह क्षेत्र में राजा 'वज्रजंघ' हो गये। इन्होंने अपनी रानी श्रीमती के साथ एक बार वन में युगल मुनियों को आहारदान दिया। इसके फलस्वरूप उत्तम भोगभूमि में 'आर्य' हो गये। वहाँ चारणऋद्धिधारी मुनियों के संबोधन से सम्यग्दर्शन ग्रहण कर आयु के अंत में मरकर दूसरे स्वर्ग में 'श्रीधर' देव हो गये। वहां से च्युत हो विदेहक्षेत्र में सुसीमा नगरी के राजा 'सुविधि' हो गये। यहां भी श्रावकधर्म व क्षुल्लकदीक्षा के अनंतर मुनि बनकर समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर पुनः सोलहवें स्वर्ग में 'इन्द्र' हो गये, वहाँ से च्युत होकर जंबूद्वीप के विदेह में पुण्डरीकिणी नगरी में 'वज्रनाभि' चक्रवर्ती हो गये। इस भव में भी महामुनि बनकर पिता तीर्थंकर भगवान वज्रसेन के पादमूल में सोलहकारण भावनाओं को भाते हुए तीर्थंकरप्रकृति का बंध कर लिया। फलस्वरूप अंत में समाधिध्यान से मरण कर 'सर्वार्थसिद्धि' में 'अहमिंद्र' हो गये।

इस प्रकार-१. महाबल २. ललितांगदेव ३. राजा वज्रजंघ ४. भोगभूमिज- आर्य ५. श्रीधरदेव ६. राजा सुविधि, ७. अच्युतेन्द्र ८. वज्रनाभि चक्रवर्ती ९. अहमिन्द्र इन नवभवों में क्रम-क्रम से उत्थान करते हुए जिनधर्म के प्रसाद से सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर यही अहमिन्द्र का जीव माता मरुदेवी के गर्भ में आ गया। जब ये भगवान ऋषभदेव निर्वाण को प्राप्त कर लेंगे तो पुनः कभी भी इस संसार में अवतार नहीं लेंगे।

जन्मकल्याणक महोत्सव—पंद्रह माह तक कुबेर द्वारा रत्नवृष्टि के अनंतर चैत्र कृष्णा नवमी को सूर्योदय के समय माता मरुदेवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसी क्षण स्वर्ग में इन्द्रों के आसन हिलने लगे, मुकुट झुक गये, कल्पवृक्षों से पुष्प बरसने लगे और चारों प्रकार के देवों के यहां बिना बजाये अपने आप बाजे बजने लगे। यथा—

कल्पेषु घण्टा भवनेषु शंखो, ज्योतिर्विमानेषु च सिंहनादः।
दध्वान भेरी वनजालयेषु, यज्जन्मनि ख्यात जिनः स एषः[१]।।

कल्पवासी देवों के यहाँ घंटे बजने लगे, भवनवासी देवों के यहाँ शंखध्वनि होने लगी, ज्योतिष्क देवों के यहां सिंहनाद होने लगा और व्यंतर देवों के यहां भेरी बजने लगी। जिनके जन्म के समय ऐसा हुआ ये जिन भगवान वे ही हैं।

जैसे कि आज टेलीविजन या रेडियों का बटन दबाते ही हजारों किलोमीटर दूर के भी दृश्य और संगीत सामने आ जाते हैं किन्तु वहां तो बटन दबाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। प्रत्युत तीर्थंकर

१. प्रतिष्ठातिलक अध्याय-९।

प्रकृति का पुण्यरूपी बटन अपने आप ही दब गया और ४० करोड़ मील से अधिक ऊँचाई पर स्थित स्वर्गलोक में अतिशय फैल गया। तत्क्षण ही सौधर्मइन्द्र असंख्य देव परिवारों के साथ मध्यलोक में आये और जन्मजात शिशु को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर १००८ कलशों से उनका जन्माभिषेक संपन्न किया।

कुछ विद्वान सहज ही कह देते हैं कि वे तीर्थंकर हम आप जैसे साधारण मानव थे लेकिन ऐसा नहीं है वे तीर्थंकरप्रकृति नामकर्म के बंध करने तक तो साधारण कहे जा सकते हैं किन्तु तीर्थंकर प्रकृति को बांध लेने के बाद उनमें कुछ विशेष ही अतिशय प्रगट हो जाते हैं इसीलिए तो श्रीसमन्तभद्रस्वामी ने कहा है—

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ! परमाऽसि देवता, श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः[१]।।

हे नाथ! आपने मनुष्य योनि में जन्म तो लिया है किन्तु आप मानुषी प्रकृति का उल्लंघन कर चुके हैं इसीलिए आप देवताओं के भी देवता हैं, यही कारण है कि आप परमदेवता हैं। हे जिनधर्म तीर्थंकर! आप हमारे कल्याण के लिए हम पर प्रसन्न होइये।

श्री ऋषभदेव के द्वारा कर्मभूमि व्यवस्था—श्री नाभिराजा ने भगवान का यशस्वती और सुनन्दा कुमारिकाओं के साथ इन्द्र की अनुमति से विवाह कर दिया। यशस्वती ने भरत आदि १०० पुत्र एवं ब्राह्मी पुत्री को तथा सुनन्दा ने बाहुबली एवं सुंदरी कन्या को जन्म दिया।

भगवान ने पुत्रियों को एवं पुत्रों को सर्वविद्याओं में तथा कलाओं में निष्णात कर दिया।

प्रजा की प्रार्थना से असि, मषि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य इन षट्क्रियाओं का उपदेश देकर उन्हें जीने की कला सिखायी। वर्णव्यवस्था और विवाहव्यवस्था आदि प्रगट की, वह भी अवधिज्ञान से विदेहक्षेत्र की शाश्वत व्यवस्था को जानकर ही की थी, अतएव वे प्रभु स्रष्टा, विधाता, ब्रह्मा आदि भी कहलाये थे।

श्री नेमिचन्द्राचार्य ने कहा है—

पुरगामपट्टणादी, लोहियसत्थो य लोयववहारो।
धम्मो वि दयामूलो, विणिम्मियो आदिबह्मेण[२]।।

भगवान की आज्ञा से चूँकि इन्द्र ने देश, नगर, ग्राम आदि की व्यवस्था बनाई थी। अतः पुर, ग्राम, नगर आदि, लौकिकशास्त्र-व्याकरण आदि, लोकव्यवहार एवं दयामूल धर्म को आदिब्रह्मा ने—भगवान ऋषभदेव ने निर्माण किया है।

एक समय इन्द्रों ने आकर महाराजा नाभिराजा से आज्ञा लेकर प्रभु का राज्याभिषेक कर दिया। अनंतर भगवान ने अनेक राजा, महाराजा आदि बनाकर उन्हें सुंदर राजनीति का उपदेश दिया।

---

१. स्वयंभूस्तोत्र। २. त्रिलोकसार गाथा ८०२।

दीक्षाकल्याणक-पुनः एक दिन भगवान नीलांजना के नृत्य के समय उसकी आयु समाप्त हुई देखकर विरक्त हो गये। इन्द्रों द्वारा लाई गई पालकी में बैठकर सिद्धार्थ वन में पहुँचे और जहाँ वटवृक्ष के नीचे केशलोंच करके दैगम्बरी दीक्षा ली उस स्थल का नाम "प्रयाग" यह प्रसिद्ध हो गया। एक वर्ष ३९ दिन बाद हस्तिनापुर में राजकुमार श्रेयांस ने प्रभु को वैशाख शु. ३ के दिन इक्षुरस का आहार देकर दानतीर्थ-प्रवर्तक पद को प्राप्त किया।

केवलज्ञान कल्याणक-एक हजार वर्ष तपश्चरण के बाद प्रभु को प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्रगट हो गया। उसी क्षण भगवान पृथ्वी से ५००० धनुष-२०००० हाथ ऊपर आकाश में अधर पहुँच गये और अर्धनिमिष मात्र में ही कुबेर ने आकाश में भगवान का समवसरण बना दिया। यह १२ योजन-९६ मील का गोल था। इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

समवसरण में आठ भूमियां और तीन कटनी होती हैं तथा चारों ओर चार वीथी-सड़कें होती हैं। इन सड़कों के मध्य प्रारंभ में ही चारों दिशाओं में एक-एक ऐसे चार मानस्तंभ होते हैं। ये भगवान के शरीर की ऊँचाई से बारह गुने ऊँचे होते हैं। यथा-भगवान ऋषभदेव के शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष अर्थात् २००० हाथ थी, अतः २०००×१२=२४००० हाथ ऊँचे मानस्तंभ थे। इनके दर्शन से मानी का मान गलित हो जाता था, वह भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि बनकर अनंतसंसार को सीमित कर लेता था।

इस समवसरण में पृथिवी से एक हाथ ऊपर से १-१ हाथ ऊँची ऐसी २० हजार सीढ़ियाँ रहती थीं। इनसे चढ़कर मनुष्य, तिर्यंच आदि सभी भव्य जीव-बाल, वृद्ध, रोगी, अंधे, लंगड़े, लूले आदि ४८ मिनट मात्र में ऊपर पहुँच जाते थे। यह अतिशय भगवान का ही था।

इसमें चार परकोटे और पांच वेदियों के अंतराल में आठ भूमियां हैं। जिनमें क्रम से धूलिसाल परकोटा, चैत्यप्रासादभूमि, वेदी, खातिकाभूमि, वेदी, लताभूमि, परकोटा, उपवनभूमि, वेदी, ध्वजाभूमि, परकोटा, कल्पवृक्षभूमि, वेदी, भवनभूमि, परकोटा, श्रीमण्डपभूमि और वेदी ऐसी व्यवस्था रहती है। आगे १६ सीढ़ी चढ़कर प्रथम कटनी, ८ सीढ़ी के बाद दूसरी कटनी, पुनः ८ सीढ़ी चढ़कर तीसरी कटनी पर गंधकुटी में भगवान विराजमान रहते हैं।

प्रत्येक परकोटे एवं वेदियों में चारों दिशाओं में १-१ गोपुरद्वार बने थे, उनमें दोनों तरफ नाट्यशालाएं, मंगलघट, धूपघट और नवनिधि भंडार रखे हुए थे, इन द्वारों के रक्षक देवगण थे।

प्रथम भूमि में-१-१ जिनमंदिर के अंतर से ५-५ प्रासाद थे।

द्वितीय भूमि में-निर्मल जल में हंस, बतख आदि एवं कमल आदि थे।

तृतीय भूमि में-छहों ऋतुओं के पुष्प खिले थे।

चतुर्थ भूमि में-चार दिशा में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के वन थे, इनमें एक-एक चैत्यवृक्षों में चारों दिशाओं में जिनप्रतिमाएं विराजमान रहती हैं।

पांचवी भूमि में—दशविध चिन्हों से सहित ध्वजाएं थीं।

छठी भूमि में—दशविध कल्पवृक्ष थे तथा चार दिशा में क्रम से नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात सिद्धार्थ वृक्षों में सिद्धों की प्रतिमाएं विराजमान थीं।

सातवीं भूमि में—भवन बने थे इसमें उभय तरफ अर्हंत, सिद्ध प्रतिमाओं से सहित ९-९ स्तूप थे और आठवीं भूमि में—बारह सभा बनी हुई थीं।

क्रम से इन बारह सभाओं में १. मुनिगण २. कल्पवासिनी देवियां ३. आर्यिका और श्राविका ४. ज्योतिषीदेवी ५. व्यंतर देवी ६. भवनवासिनी देवी ७. भवनवासी देव ८. व्यंतर देव ९. ज्योतिषी देव १०. कल्पवासीदेव ११. मनुष्य और १२. तिर्यंचगण बैठते थे।

समवसरण का ऐसा प्रभाव रहता है कि जातविरोधी सिंह, हरिण, गाय, व्याघ्र, सर्प, नेवला, मोर आदि सभी पशु-पक्षी परस्पर के वैर को छोड़कर मैत्रीभाव धारण कर भगवान का उपदेश सुनते हैं।

संसार में एक तीर्थंकर भगवान का समवसरण ही ऐसा है कि जहाँ देवों और मनुष्यों के समान तिर्यंचों के लिए भी एक कोठा निश्चित है उस कोठे में बैठकर संख्यातों पशु-पक्षी भगवान का उपदेश सुनकर अपना कल्याण कर लेते हैं। इनमें लाखों पशु तो अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रत धारण करके स्वर्ग को प्राप्त कर लेते हैं तथा दिक्कुमारियां हाथ में मंगलद्रव्य धारण करती हैं।

भगवान के विहार से सर्वत्र ८००-८०० मीलों तक मंगल क्षेम और सुभिक्ष हो जाता है। सभी आपस में मैत्रीभाव धारण कर लेते हैं। रोग, शोक, आधि, व्याधि आदि उपद्रव नहीं होते हैं। भूकंप, नदी–बाढ़, अग्निप्रकोप, अकालमृत्यु आदि दुर्घटनाएं भी टल जाती हैं।

वास्तव में जो महापुरुष स्वयं प्राणीमात्र पर दया करते हुए पूर्ण अहिंसा धर्म का पालन करते हैं उन्हीं में ऐसी विशेषता आ जाती है कि क्रूर प्राणी भी उनके सानिध्य को प्राप्त कर क्रूरता छोड़ देते हैं, वैर-विरोध छोड़ देते हैं।

पुनरपि भगवान ने समवसरण में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाण का उपदेश देकर असंख्य प्राणियों को धर्मामृत का पान कराया। जब भगवान केवलज्ञानी हो जाते हैं तब मोह, राग, द्वेष, इच्छा आदि का अभाव हो जाने से उनका उपदेश भी बिना इच्छा के–मात्र भव्यों के पुण्योदय से ही होता है, जैसे कि मेघ बिना इच्छा के ही बरसते हैं।

मोक्षकल्याणक—लाखों वर्षों तक भगवान ऋषभदेव ने श्रीविहार करके भव्यों को संतर्पित किया। अनंतर कैलाशपर्वत पर योगनिरोध करके आयुकर्म के अंत में निर्वाण धाम प्राप्त कर लिया। जब तृतीयकाल में तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष थे तब भगवान मोक्ष गये हैं। हुंडावसर्पिणी काल के दोष से प्रथम तीर्थंकर तृतीयकाल के अंत में ही जन्म लेकर तृतीयकाल में ही मोक्ष चले गये हैं। वहाँ वे भगवान अनन्तानन्त काल तक अतीन्द्रिय सुख में निमग्न रहेंगे पुनः कभी भी इस पृथिवी पर अवतार नहीं लेंगे।

चौबीस तीर्थंकरों का अन्तराल

भगवान ऋषभदेव के अनन्तर अजितनाथ आदि महावीरपर्यंत चौबीस तीर्थंकर हुए हैं।

भगवान ऋषभदेव के मुक्त हो जाने के पश्चात् पचास लाख करोड़ सागरों के व्यतीत हो जाने पर अजितनाथ तीर्थंकर ने मोक्षपद प्राप्त किया।

अजितनाथ के मुक्त होने के बाद तीस लाख करोड़ सागरों के व्यतीत हो जाने पर संभवनाथ तीर्थंकर सिद्ध हुए।

इसके बाद दस लाख करोड़ सागर व्यतीत हो जाने पर अभिनंदननाथ तीर्थंकर सिद्ध हुए।

इसके बाद नौ लाख करोड़ सागरों के चले जाने पर सुमतिनाथ भगवान सिद्धि को प्राप्त हुए।

इसके पश्चात् नब्बे हजार करोड़ सागरों के बीत जाने पर पद्मप्रभ जिन सिद्धि को प्राप्त हुए।

इसके अनन्तर नौ हजार करोड़ सागरों के चले जाने पर सुपार्श्वनाथ भगवान मोक्ष को प्राप्त हुए।

इसके बाद नौ सौ करोड़ सागरों के चले जाने पर चन्द्रप्रभ देव मोक्ष को प्राप्त हुए।

इसके बाद नब्बे करोड़ सागरों के बीत जाने पर पुष्पदन्तनाथ जिन सिद्धि को प्राप्त हुए।

इसके अनन्तर नौ करोड़ सागरों के चले जाने पर शीतलनाथ भगवान सिद्ध हुए।

इसके बाद छ्यासठ लाख, छब्बीस हजार, सौ सागर कम एक करोड़ सागर अर्थात् तैंतीस लाख, तेहत्तर हजार, नौ सौ सागर के व्यतीत हो जाने पर श्रेयांसनाथ भगवान मोक्ष को प्राप्त हुए।

इसके अनन्तर चौवन सागर के बीत जाने पर वासुपूज्य भगवान मोक्ष को प्राप्त हुए।

इसके बाद तीस सागर व्यतीत हो जाने पर विमलनाथ भगवान सिद्ध हुए।

इसके बाद नौ सागर व्यतीत हो जाने पर अनंतनाथ मुक्त हुए।

इसके बाद चार सागर चले जाने पर धर्मनाथ तीर्थंकर सिद्ध हुए।

इसके बाद पौन पल्य कम तीन सागर के बीत जाने पर शांतिनाथ भगवान सिद्ध हुए।

इसके अनन्तर अर्द्धपल्य काल के बीत जाने पर कुंथुनाथ तीर्थंकर सिद्ध हुए।

इसके बाद एक करोड़ वर्ष कम पाव पल्य के बीत जाने पर अरनाथ भगवान सिद्ध हुए।

इसके बाद एक हजार करोड़ वर्षों के बाद मल्लिनाथ जिन सिद्ध हुए।

इसके पश्चात् चौवन लाख वर्षों के बीत जाने पर मुनिसुव्रतनाथ सिद्ध हुए।

इसके पश्चात् छः लाख वर्ष बीत जाने पर नमिनाथ तीर्थंकर सिद्ध हुए।

इसके बाद पाँच लाख वर्षों के बीत जाने पर नेमिनाथ भगवान सिद्ध हुए।

इसके पश्चात् तेरासी हजार सात सौ पचास वर्षों के बीत जाने पर पार्श्वनाथ तीर्थंकर सिद्ध हुए।

इसके पश्चात् दो सौ पचास वर्षों के बीत जाने पर महावीर भगवान सिद्ध हुए। उस समय पंचम काल के प्रवेश होने में तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष थे।

धर्मतीर्थ व्युच्छित्ति का काल—पुष्पदंत को आदि लेकर धर्मनाथपर्यंत सात तीर्थंकरों के तीर्थों में धर्म की व्युच्छित्ति (अभाव) हुई थी और शेष सत्रह तीर्थंकरों के तीर्थों में धर्म की परम्परा निरन्तर अक्षुण्णरूप से चलती रही है।

पुष्पदंत के तीर्थ में पाव पल्य तक धर्म का अभाव रहा है अर्थात् उस समय दीक्षा के अभिमुख होने वालों का अभाव होने पर धर्मरूपी सूर्यदेव अस्तमित हो गया था। इसी प्रकार शीतलनाथ के तीर्थ में अर्द्ध पल्य तक, श्रेयांसनाथ के तीर्थ में पौन पल्य तक, वासुपूज्यदेव के तीर्थ में एक पल्य तक, विमलनाथ के तीर्थ में पौन पल्य तक, अनन्तनाथ के तीर्थ में अर्द्ध पल्य तक और धर्मनाथ के तीर्थ में पाव पल्य तक धर्मतीर्थ का उच्छेद रहा था।

हुंडावसर्पिणी के दोष से यहाँ सात बार धर्म के विच्छेद हुए हैं।

पंचम काल—वीर भगवान के मोक्ष जाने के बाद तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष काल व्यतीत हो जाने के बाद 'दुःषमा' नामक पंचम काल प्रवेश करता है।

मेरु वन्दना

मेरु सुदर्शन महातीर्थ को, नित प्रति शीश झुकाता हूँ।
तीर्थंकर के जन्म न्हवन की, सबको याद दिलाता हूँ।।

भद्रशाल वन सुन्दर है, नन्दन वन अति मनहर है।
सौमनस्य वन शोभ रहा, पांडुक वन मन मोह रहा।।

इनमें चैत्यालय भासे, जिनमें जिन प्रतिमा राजे।
चार दिशा में चार कहे, सब मिल सोलह भास रहे।।

प्रति निजगृह में जिनप्रतिमा, इक सौ आठ अतुल महिमा।
सबको नित्य नमन मेरा, कोटि-कोटि वन्दन मेरा।।

पांडुक वन की विदिशा में, पांडुक आदि शिला तामें।
तीर्थंकर शिशु को लाके, इन्द्र न्हवन करते आके।।

ऐसे पावन महामेरु को, भक्ति प्रसून चढ़ाता हूँ।
'सम्यग्ज्ञानमती' विकसित हो, यही भावना भाता हूँ।।

''यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा''

अमृतवर्षिणी टीका–

ज्ञान के भेद

ज्ञान के पांच भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

(१) मतिज्ञान—

मतिज्ञान के चार भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

अवग्रह—इन्द्रिय और पदार्थ का संबंध होते ही जो सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं। दर्शन के अनन्तर जो पदार्थ का प्रथम ग्रहण होता है वह अवग्रह है। जैसे चक्षु इन्द्रिय के द्वारा 'यह शुक्लरूप है' ऐसा जानना।

ईहा—अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थ में उसके विशेष जानने की इच्छा ईहा है। जैसे जो शुक्लरूप देखा था 'वह बगुला' है या ध्वजा'।

अवाय—विशेष के निर्णय द्वारा जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे अवाय कहते हैं। जैसे पंख आदि फड़फड़ाने से जान लेना 'यह बगुला ही है।'

धारणा—जानी हुई वस्तु को कालान्तर में न भूलना धारणा है। इस धारणा से ही कालान्तर में स्मृति आदि होती है।

इन अवग्रह आदि ज्ञानों के विषय बारह प्रकार के हैं। बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव, अल्प, अल्पविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव।

बहुत वस्तुओं के ग्रहण को बहुज्ञान कहते हैं। जैसे सेना या वन को एक समूहरूप में ग्रहण करना 'बहु' ज्ञान है।

हाथी, घोड़े या आम आदि अनेक भेदों को जानना बहुविध ज्ञान है।

वस्तु के एकदेश को देखकर सम्पूर्ण को जानना अनिःसृत है। जैसे तालाब में डूबे हाथी की सूंड को देखकर हाथी को जान लेना।

शीघ्रता से जाती हुई वस्तु को जान लेना क्षिप्र ज्ञान है। जैसे तेजी से चलती हुई रेलगाड़ी को जानना।

बिना कहे भी अभिप्राय को जान लेना अनुक्त है।

बहुत काल तक जैसे का तैसा ज्ञान रहना ध्रुव है। ऐसे ही अल्प-अल्पविध आदि को समझ लेना।

इस प्रकार से अवग्रह के बारह भेद होते हैं। ऐसे ही ईहा, अवाय, धारणा के बारह-बारह भेद होने

से सब अड़तालीस भेद हो जाते हैं तथा इनमें से प्रत्येक ज्ञान पांच इन्द्रिय और मन से होता है अतः ४८ को ६ से गुणा करने पर मतिज्ञान के २८८ भेद हो जाते हैं।

ये २८८ भेद अर्थावग्रह की अपेक्षा से हैं।

अर्थात् अवग्रह के दो भेद हैं-अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह।

पदार्थ को ऐसा स्पष्ट जानना जिसके बाद ईहा, अवाय और धारणा हो सकें वह अर्थावग्रह है।

जो अवग्रह अस्पष्ट हो, जिसके बाद ईहा, अवाय, धारणा न हो सकें वह व्यञ्जनावग्रह है।

व्यञ्जनावग्रह, चक्षुइन्द्रिय और मन के द्वारा नहीं होता है, शेष चार इन्द्रियों से बारह प्रकार के पदार्थों का होता है अतः व्यञ्जनावग्रह के १२×४=४८ भेद होते हैं।

इस तरह अर्थावग्रह की अपेक्षा २८८ और व्यञ्जनावग्रह की अपेक्षा ४८ ऐसे मिलकर २८८+४८=३३६ भेद मतिज्ञान के होते हैं।

व्यञ्जनावग्रह यदि बार-बार होता है तो वह अर्थावग्रह हो जाता है फिर उसके ऊपर ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान हो जाते हैं। जैसे मिट्टी के कोरे सकोरे पर १-२ बूंद जल तत्काल सूख जाता है। यदि लगातार जल की बूंदे गिरती रहें तो वह सकोरा गीला हो जाता है। यह अर्थावग्रह का दृष्टान्त है।

(२) श्रुतज्ञान—जो ज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है वह श्रुतज्ञान है। इसके ग्यारह अंग, चौदह पूर्व रूप से भेद माने गये हैं अथवा प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के भेद से चार भेद माने हैं। इन चारों अनुयोगों में सम्पूर्ण द्वादशांग का सार आ जाता है।

प्रथमानुयोग—किसी एक महापुरुष के चरित का प्रतिपादन करने वाला, त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित का वर्णन करने वाला पुण्य के कारणभूत, बोधि-समाधि के स्थानभूत प्रथमानुयोग है।

करणानुयोग—लोक-अलोक के विभाग को, दोनों कालों के परिवर्तन को और चारों गतियों को दर्पण के समान बतलाने वाला करणानुयोग है।

चरणानुयोग—गृहस्थों और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणों के प्रतिपादक शास्त्र चरणानुयोग कहलाते हैं।

द्रव्यानुयोग—जीव और अजीव तत्त्वों के, पुण्य और पाप को तथा बंध-मोक्ष के प्रतिपादक शास्त्र द्रव्यानुयोग कहलाते हैं।

(३) अवधिज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानना अवधिज्ञान है। इसके तीन भेद हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि।

देशावधिज्ञान देवों के और नारकियों के होता है वह भवप्रत्यय है तथा क्षयोपशम के निमित्त से होने वाला अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्यञ्चों में पाया जाता है वह गुणप्रत्यय कहलाता है। यह ज्ञान असंयत सम्यग्दृष्टि और देशविरत मनुष्यों में भी हो सकता है।

परमावधि और सर्वावधिज्ञान तद्भव मोक्षगामी चरम शरीरी मुनियों को ही होते हैं।

(४) मनःपर्ययज्ञान—मनःपर्यय ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला ज्ञान मनःपर्यय ज्ञान है। यह ज्ञान मानुषोत्तर पर्वत के अन्तर्गत पर के मन में स्थित पदार्थों को स्पष्ट जान लेता है। इसके दो भेद हैं—ऋजुमति और विपुलमति।

ऋजु अर्थात् सरल मन, वचन, काय के अर्थ को जानने वाला ऋजुमति है और कुटिल मन, वचन, कायगत अर्थ को जानने वाला विपुलमति है।

ऋजुमति ज्ञान होकर छूट भी सकता है किन्तु विपुलमति ज्ञान छूटता नहीं है। यह चरमशरीरी को ही होता है।

वैसे तो मनःपर्ययज्ञान वृद्धिंगत चारित्रधारी, किसी एक ऋद्धि वाले संयमी मुनि को ही होता है, सभी को नहीं हो सकता है।

(५) केवलज्ञान—जगत्त्रय, कालत्रयवर्ती, समस्त पदार्थों को युगपत् जानने वाला केवलज्ञान है। इस केवलज्ञान रूपी दर्पण में सम्पूर्ण लोकाकाश और अलोकाकाश एक साथ झलकता है।

धर्म, अधर्म आदि सर्वद्रव्य और उन द्रव्यों की त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायों को केवलज्ञान जानता है। जीव अनन्तानन्त हैं, जीव से अनन्तगुणे अणु–स्कन्ध भेद से युक्त पुद्गल द्रव्य हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये असंख्येय हैं। इन चारों की तीन काल सम्बन्धी पृथक्–पृथक् अनन्तानन्त पर्यायें हैं। उन सब द्रव्यों और उनकी सर्व त्रिकालवर्ती अनन्त पर्यायों को अनन्त महिमा वाला केवलज्ञान एक साथ जानता है।

जो केवल—एक, अतीन्द्रिय और पर सहाय की अपेक्षा से रहित है वह केवलज्ञान स्वभावज्ञान है।

इसी का विस्तार–अर्थीजन[१] जिस लिये बाह्य–अभ्यंतर चारित्र का सेवन करते हैं–आचरण करते हैं वह केवलज्ञान है।

श्री भट्टाकलंक देव ने भी कहा है–

जिसकी इच्छा रखने वाले—जिसके लिए वचन, मन और काय के आश्रित, बाह्य–आभ्यन्तर ऐसी उभयरूप जिन तपश्चरण की क्रियाओं का सेवन करते हैं, उसी का नाम केवलज्ञान है।

यह स्वभावज्ञान इन्द्रियों से रहित अतीन्द्रिय है, क्योंकि यह इन्द्रिय और मन के व्यापार से रहित है। यह इंद्रियज्ञान आकाश आदि अमूर्त पदार्थों में, देश से जिसमें व्यवधान है ऐसे अर्थात् अतिदूरवर्ती मेरुपर्वत आदि में, काल से जिसमें अन्तराल पड़ चुका है ऐसे अतीत और अनागत

---

१. मोक्ष के इच्छुक जन।

कालवर्ती राम–रावण, महापद्म तीर्थंकर आदि में, स्वभाव से अन्तरित—नहीं दिखने वाले ऐसे भूत, पिशाच आदि में और उसी प्रकार अतिसूक्ष्म पर के मन की प्रवृत्ति, पुद्गल–परमाणु आदि विषयों में प्रवृत्ति नहीं कर सकता है। दूसरी बात यह है कि ये इन्द्रियाँ स्थूल, मूर्तिक, मर्यादित और वर्तमानकाल के अपने–अपने विषयों को ही ग्रहण करती हैं, किन्तु अतींद्रिय ज्ञान तीन लोक के अन्तर्गत स्थूल, सूक्ष्म, मूर्तिक, अमूर्तिक, अनन्त पदार्थों को तथा भूत, वर्तमान और भविष्यत्कालीन सभी पदार्थों को भी एक साथ ही जान लेता है, क्योंकि उसमें क्रम का व्यवधान और इन्द्रियों का व्यवधान नहीं हैं।

इसी बात को प्रवचनसार में कहा है—

"जो ज्ञान अप्रदेशी, सप्रदेशी, मूर्त, अमूर्त ऐसे सभी पदार्थ को तथा जो पर्यायें अभी नहीं हुई हैं ऐसी अनागत एवं जो पर्यायें नष्ट हो चुकी हैं ऐसी अतीत सभी पर्यायों को जानता है वह ज्ञान अनिन्द्रिय कहा गया है।"

इसी का विस्तार यह है कि जो ज्ञान कालाणु, परमाणु आदि अप्रदेशी द्रव्यों को, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश आदि सप्रदेशी द्रव्यों को, मूर्तिक–पुद्गल द्रव्य को और कर्मबन्धन से बद्ध हुए की अपेक्षा संसारी जीव–समूह को, अमूर्तिक–शुद्धजीव द्रव्य को और पुद्गल से अतिरिक्त शेष अचेतन द्रव्यों को भी जानता है, उसी प्रकार जो पर्यायें अभी नहीं हुई हैं ऐसी भविष्यत्कालीन और जो नष्ट हो चुकी हैं ऐसी अतीतकालीन पर्यायों को अर्थात् त्रिकालगत सभी पर्यायों सहित संपूर्ण ज्ञेयपदार्थों को जानता है, वह ज्ञान जैनशासन में अतीन्द्रिय कहा गया है, ऐसे केवलज्ञान में तीनों लोक गोष्पद के समान लघु प्रतीत होते हैं।

भावार्थ–यहाँ तक ज्ञान के पाँचों भेदों का संक्षिप्त वर्णन किया है। यहाँ पर वर्णित श्रुतज्ञान द्वादशांगरूप से कहा गया है। इसके पहले इसमें पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास आदि बीस भेद बताये हैं। उनमें से मात्र अक्षरज्ञान ही कुछ रूप में हमें और आपको प्राप्त है। द्वादशांग श्रुतज्ञान श्रुतकेवली महामुनियों को ही होता है। आर्यिकाओं को ग्यारह अंग तक ज्ञान प्राप्त होने की व्यवस्था आगम में वर्णित है। यथा–

"एकादशांगभृज्जाता सार्यिकापि सुलोचना।।"

आर्यिका सुलोचना ने भगवान ऋषभदेव के समवसरण में ग्यारह अंगों तक का ज्ञान प्राप्त किया है।

श्रावक–श्राविकाओं को एवं क्षुल्लक, ऐलक व क्षुल्लिकाओं को अंग–पूर्व पढ़ने का निषेध आया है।

आगे देशावधि और इससे विपरीत मिथ्यादृष्टी के विभंगावधि या कुअवधिज्ञान नारकी और

देवों में वहाँ की पर्यायजन्य–भवप्रत्यय नाम से होता है। श्रावकों के भी देशावधि ज्ञान हो सकता है जैसे कि भरत चक्रवर्ती को अवधिज्ञान हो गया था। तीर्थंकर भगवान के जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि तीनों ज्ञानों में देशावधि ही होता है। आगे के परमावधि व सर्वावधिज्ञान मुनियों के ही होते हैं। मनःपर्ययज्ञान भी महामुनियों के ही हो सकता है।

केवलज्ञान–एक केवलज्ञान ही ऐसा ज्ञान है कि जिसमें पूरा तीनों लोक 'गौखुर' के समान झलकता है।

अतः भगवान महावीर के केवलज्ञान में संपूर्ण तीनों लोक एक छोटे से गड्ढे के समान प्रतीत होते थे। ऐसा यहाँ समझना है।

भजन

नाम तिहारा तारनहारा कब तेरा दर्शन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।। टेक.।।

जाने कितनी माताओं ने, कितने सुत जन्में हैं।
पर इस वसुधा पर तेरे सम, कोई नहीं बने हैं।।
पूर्व दिशा में सूर्य देव सम, सदा तेरा सुमिरन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।1।।

पृथ्वी के सुन्दर परमाणू, सब तुझमें ही समा गए।
केवल उतने ही अणु मिलकर, तेरी रचना बना गए।।
इसीलिए तुझ सम सुन्दर नहिं, कोई नर सुन्दर होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।2।।

मन में तव सुमिरन करने से, पाप सभी नश जाते हैं।
यदि प्रत्यक्ष करें तव दर्शन, मनवांछित फल पाते हैं।।
आज "चंदनामती" प्रभू का, अनुपम गुण कीर्तन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।3।।

''त्रैलोक्यं गोष्पदायते।''

अमृतवर्षिणी टीका–

लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुडो, सव्वागासवयवो णिच्चो[१]।।४।।

''लोक्यन्ते'' अवलोक्यन्ते जीवादिषड्द्रव्याणि अस्मिन्निति लोकः'

जहाँ पर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य देखे जाते हैं वह लोक हैं। वह लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन है एवं स्वभाव से बना हुआ है अर्थात् इसे किसी ने बनाया नहीं है।

तीनलोक का वर्णन

सर्वज्ञ भगवान से अवलोकित अनंतानंत अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में ३४३ घन राजू प्रमाण पुरुषाकार लोकाकाश है। यह लोकाकाश जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पाँचों द्रव्यों से व्याप्त है। आदि और अंत से रहित—अनादि अनंत है, स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है। छह द्रव्यों से सहित यह लोकाकाश स्थान निश्चय ही स्वयं प्रधान है। इसकी सब दिशाओं में नियम से अलोकाकाश स्थित है।

इस लोक के ३ भेद हैं–अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक।

अधोलोक का आधार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश, मध्यलोक का आकार खड़े किये हुए मृदंग के ऊपरी भाग के समान एवं ऊर्ध्वलोक का आकार खड़े किये हुए मृदंग के सदृश है।

सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई १४ राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र ७ राजू है।

तीन लोक के जड़ भाग से लोक की ऊँचाई का प्रमाण

अधोलोक की ऊँचाई ७ राजू, मध्यलोक की ऊँचाई १ लाख ४० योजन एवं ऊर्ध्व लोक की ऊँचाई ७ राजू प्रमाण है। असंख्यातों योजनों का १ राजू होता है। १४ राजू ऊँचे लोक में ७ राजू में नरक एवं ७ राजू में स्वर्ग है, इन दोनों के मध्य में १ लाख ४० योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है, बस इसी सुमेरु प्रमाण ऊँचाई वाला मध्य लोक है जो कि ऊर्ध्वलोक का कुछ भाग है और वह राजू में ना कुछ के समान है। अतएव ऊँचाई के वर्णन में ७ राजू में अधोलोक एवं सात राजू में ऊर्ध्वलोक कहा गया है।

लोक की चौड़ाई का प्रमाण

नरक के तलभाग में चौड़ाई ७ राजू है। घटते-घटते यह चौड़ाई मध्यलोक में १ राजू रह गई है। पुनः मध्यलोक के ऊपर बढ़ते-बढ़ते ब्रह्म लोक-पाँचवें स्वर्ग तक चौड़ाई ५ राजू हो गई है। पाँचवें

१. त्रिलोकसार गाथा–४।

ब्रह्म स्वर्ग से आगे घटते-घटते सिद्ध शिला तक चौड़ाई पुनः १ राजू रह गई है।

त्रस नाली का प्रमाण

तीनों लोकों के बीचों-बीच में १ राजू चौड़ी एवं १ राजू मोटी तथा कुछ कम १३ राजू ऊँची त्रसनाली है। इस त्रसनाली में ही त्रस जीव पाये जाते हैं।

अधोलोक के राजू का वर्णन

मृदंगाकार अधोलोक में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात पृथ्वियाँ हैं, जोकि कुछ कम एक-एक राजू के अंतराल से हैं अर्थात् इन पृथ्वियों की मोटाई क्रम से १ लाख ८० हजार योजन, बत्तीस हजार योजन, अट्ठाईस हजार योजन आदि है। मध्य लोक के अधोभाग से लेकर पहला राजू शर्करा पृथ्वी के अधोभाग में पूर्ण होता है। अर्थात् १ राजू में रत्नप्रभा और शर्करा प्रभा ये दोनों ही पृथ्वी हैं। इसके आगे दूसरा राजू प्रारंभ होकर बालुकाप्रभा के अधोभाग में पूर्ण होता है। तीसरा राजू पंकप्रभा पृथ्वी के अधोभाग में समाप्त होता है। इसके अनंतर चौथा राजू धूमप्रभा के अधोभाग में, पाँचवां राजू तमःप्रभा के अधोभाग में, छठा राजू महातमःप्रभा के अंत में एवं सातवाँ राजू अधोलोक के तल भाग में समाप्त होता है। मतलब यह है कि १ राजू में २ नरक, ५ राजू में पाँच नरक, ऐसे ६ राजू में ७ नरक एवं १ राजू में निगोद भाग स्थित है-ऐसा समझना चाहिये।

१ राजू में-रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा
१ राजू में-बालुकाप्रभा
१ राजू में-पंकप्रभा
१ राजू में-धूमप्रभा
१ राजू में-तमःप्रभा
१ राजू में-महातमःप्रभा
१ राजू में-नित्य निगोद, ऐसे सात राजू हुए।

अधोलोक से मध्यलोक तक की चौड़ाई घटने का क्रम

अधोलोक के तल भाग में-७ राजू
सातवीं पृथ्वी के निकट-६-१/७ राजू
छठी पृथ्वी के निकट-५-२/७ राजू
पाँचवी पृथ्वी के निकट-४-३/७ राजू
चौथी पृथ्वी के निकट-३-४/७ राजू

तीसरी पृथ्वी के निकट–२-५/७ राजू
दूसरी पृथ्वी के निकट–१-६/७ राजू
प्रथम पृथ्वी के निकट–१राजू मात्र
सम्पूर्ण मध्य लोक की चौड़ाई १ राजू मात्र ही है।

ऊर्ध्व लोक में राजू के प्रमाण का वर्णन

मध्यलोक के ऊपरी भाग में सौधर्म विमान के ध्वजदण्ड तक १ लाख ४० योजन कम १-१/२ राजू प्रमाण ऊँचाई है। इसके आगे माहेन्द्र और सानत्कुमार के ऊपरी भाग तक १-१/२ राजू पूर्ण होता है। अनंतर ब्रह्मोत्तर के ऊपरी भाग में १/२ राजू, कापिष्ठ के ऊपरी भाग में १/२ राजू, महाशुक्र के ऊपरी भाग में १/२ राजू एवं सहस्रार के ऊपरी भाग में १/२ राजू, आनत के ऊपरी भाग में १/२ राजू, आरण के ऊपरी भाग में १/२ राजू समाप्त होता है। पुनः १ राजू की ऊँचाई में ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर एवं सिद्धशिला है। अर्थात्–

कुछ कम १-१/२ राजू में–सौधर्म, ईशान स्वर्ग
१-१/२ राजू में–सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग
१/२ राजू में–ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर स्वर्ग
१/२ राजू में–लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग
१/२ राजू में–शुक्र, महाशुक्र स्वर्ग
१/२ राजू में–सतार, सहस्रार स्वर्ग
१/२ राजू में–आनत, प्राणत स्वर्ग
१/२ राजू में–आरण, अच्युत स्वर्ग
१ राजू में-९ ग्रैवेयक ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर और सिद्ध शिला पृथ्वी है।
१-१/२+१-१/२+१/२+१/२+१/२+१/२+१/२+१/२+१=७ राजू

प्रथम स्वर्ग से सिद्धशिला तक लोक की चौड़ाई बढ़ने-घटने का क्रम

मध्यलोक में	–१ राजू
सौधर्म, ईशान स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–२-५/७ राजू
सानत्कुमार, माहेन्द्र के अंत में चौड़ाई	–४-३/७ राजू
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर के अंत में चौड़ाई	–५ राजू
लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–४-३/७ राजू
शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–३-६/७ राजू
सतार-सहस्रार स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–३-२/७ राजू

आनत-प्राणत स्वर्ग के अंत में चौड़ाई –२-५/७ राजू
आरण-अच्युत स्वर्ग के अंत में चौड़ाई –२-१/७ राजू
९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर एवं सिद्धशिला तक चौड़ाई –१ राजू

अपने-अपने अंतिम इन्द्रक विमान संबंधी ध्वजदण्ड के अग्रभाग तक उन-उन स्वर्गों का अंत समझना चाहिए और लोक का जो अंत है, वही कल्पातीत भूमि का भी अंत है।

जैन सिद्धांत में ८ पृथ्वी मानी गई हैं। ७ नरक की ७ पृथ्वी एवं १ मोक्ष-पृथ्वी, ऐसे पृथ्वी के ८ भेद हैं।

वातवलयों का वर्णन

इस लोकाकाश को चारों तरफ से वेष्टित करके तीन वातवलय हैं। ये वायुकायिक जीवों के शरीर स्वरूप हैं। यद्यपि वायु अस्थिर स्वभाव वाली है फिर भी ये तीनों वातवलय स्थिर स्वभाव वाले वायुमण्डल हैं। इनके (१) घनोदधिवातवलय (२) घनवातवलय एवं (३) तनुवातवलय ये तीन भेद हैं।

घनोदधिवात गोमूत्र वर्ण वाला है, घनवात मूंग के समान वर्ण वाला एवं तनुवात अनेक वर्ण वाला है। चारों तरफ से लोक को वेष्टित करके सर्व प्रथम घनोदधिवातवलय स्थित है, इस घनोदधि को वेष्टित करके घनवात एवं घनवात को वेष्टित करके तनुवातवलय स्थित हैं। तनुवातवलय के चारों तरफ अनंत अलोकाकाश है।

आठ पृथ्वियों के नीचे तलभाग में १ राजू की ऊँचाई तक इन तीनों वायुमण्डलों में से प्रत्येक की मोटाई बीस हजार योजन प्रमाण है। सातवें नरक में पृथ्वी के पार्श्व भाग में क्रम से इन तीनों वातवलयों की मोटाई सात, पाँच और चार योजन है। इसके ऊपर मध्यलोक के पार्श्व भाग में पाँच, चार और तीन योजन प्रमाण है।

इसके आगे तीनों वायु की मोटाई ब्रह्मस्वर्ग के पार्श्व भाग में क्रम से ७, ५ और ४ योजन है तथा ऊर्ध्व लोक के अंत में—पार्श्व भाग में ५, ४ व ३ योजन प्रमाण है। लोक शिखर के ऊपर तीनों वातवलयों की मोटाई क्रमशः २ कोस, १ कोस और कुछ कम १ कोस प्रमाण है अर्थात्—लोक के तल भाग से १ राजू तक तीनों वातवलय बीस-बीस हजार योजन २००००+ २००००+२००००=६०००० योजन हैं।

सातवें नरक के पास—७+५+४=१६ योजन
मध्यलोक के पार्श्व भाग में—५+४+३=१२ योजन
ब्रह्म स्वर्ग के पार्श्व भाग में—७+५+४=१६ योजन
लोक के पार्श्व भाग में—५+४+३=१२ योजन
लोक के शिखर पर—२ कोस, १ कोस, ४२५ धनुष कम १ कोस (१५७५ धनुष)

लोक का घनफल

यह लोक तल में ७ राजू, मध्य में १, पाँचवें स्वर्ग में ५, और अंत में १ राजू है। इन चारों स्थानों की चौड़ाई को जोड़ देने से ७+१+५+१=१४ राजू हुए। इस १४ में ४ का भाग देने से १४÷४=३-१/२ राजू हुए। इसमें लोक के दक्षिण-उत्तर की मोटाई का गुणा कर देने से ३-१/२×७=२४-१/२ हुए। फिर इस चौड़ाई और मोटाई के गुणनफल में १४ राजू का गुणा कर देने से २४-१/२×१४=३४३ राजू हुये। इस लोकाकाश का घनफल ३४३ राजू प्रमाण है।

अधोलोक का घनफल

लोक के नीचे पूर्व-पश्चिम चौड़ाई ७ राजू और मध्यलोक में १ राजू इन दोनों को मिलाने से ७+१=८ राजू हुए। पुनः इसे आधा करने से ८÷२=४, इसमें दक्षिण-उत्तर की मोटाई ७ राजू का गुणा करने से ४×७=२८ राजू हुये। इसमें अधोलोक की ऊँचाई ७ राजू से गुणा करने से २८×७=१९६ राजू हुए। यह अधोलोक का घनफल है।

ऊर्ध्वलोक का घनफल

मध्यलोक में पूर्व-पश्चिम दिशा की चौड़ाई १ राजू, आगे ब्रह्म स्वर्ग के पास ५ राजू, दोनों को मिलाने से १+५=६ राजू हुए। इसे आधा करके ६÷२=३, दक्षिण-उत्तर की मोटाई ७ राजू से गुणा करके ३×७=२१ हुए, इसमें ब्रह्मस्वर्ग तक की ऊँचाई ३-१/२ राजू का गुणा करके २१×३-१/२=७३-१/२ राजू हुए। यह मध्यलोक से ब्रह्म स्वर्ग तक का घनफल है और इतना ही ब्रह्मस्वर्ग से आगे लोक के अन्त का घनफल है, अतः ७३-१/२ + ७३-१/२=१४७ राजू प्रमाण संपूर्ण ऊर्ध्व लोक का घनफल हुआ है।

अधोलोक का घनफल १९६ और ऊर्ध्वलोक का १४७ राजू है। दोनों को मिला देने से १९६+१४७=३४३ राजू प्रमाण सारे लोक का घनफल होता है।

इस प्रकार लोकाकाश का घनफल ३४३ राजू प्रमाण है।

त्रस नाली का वर्णन

लोक के बहुमध्य भाग में एक राजू चौड़ी, एक राजू मोटी और कुछ कम १३ राजू ऊँची त्रसनाली है, जो कि त्रस जीवों का निवास क्षेत्र है, अर्थात् इस त्रसनाली के भीतर ही त्रस जीव पाये जाते हैं बाहर नहीं। तेरह राजू में कुछ कम जो कहा है उस कमी का प्रमाण—

३२१६२२४१-२/३ धनुष कम १३ राजू।

इस त्रसनाली के बाहर भी उपपाद, मारणांतिकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात इन तीन अपेक्षाओं से त्रस जीवों का अस्तित्व पाया जाता है।

उपपाद—किसी भी विवक्षित भव के प्रथम समय की पर्याय को उपपाद कहते हैं। लोक के अंतिम वातवलय में स्थित कोई जीव मरण करके विग्रहगति द्वारा त्रसनाली में त्रस पर्याय से उत्पन्न होने वाला है, वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोड़ा लेता है, उस समय त्रस नाम कर्म का उदय आ जाने से त्रस पर्याय को धारण करने पर भी त्रसनाली के बाहर है। इसलिये उपपाद की अपेक्षा त्रस जीव त्रसनाली के बाहर रहता है।

मारणांतिक समुद्घात—त्रसनाली में स्थित किसी जीव ने अंतर्मुहूर्त पहले मारणांतिक समुद्घात के द्वारा त्रसनाली के बाहर के प्रदेशों का स्पर्श किया क्योंकि उसको मरण करके वहीं स्थावर में उत्पन्न होना है तो उस समय में भी त्रस जीव का अस्तित्व त्रस नाली के बाहर पाया जाता है।

केवली समुद्घात—जब आयु कर्म की स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र ही बाकी हो परन्तु नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की स्थिति अधिक हो तब सयोगकेवली भगवान् के दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात होता है और ऐसा होने से तीनों कर्मों की स्थिति भी आयु कर्म के बराबर हो जाती है। इन तीनों अवस्थाओं में त्रस जीव त्रसनाली के बाहर भी पाये जाते हैं।

अधोलोक

अधोलोक में सबसे पहली मध्यलोक से लगी हुई 'रत्नप्रभा' पृथ्वी है। इसके कुछ कम एक राजु नीचे 'शर्कराप्रभा' है। इसी प्रकार से एक-एक के नीचे बालुका प्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा भूमियाँ हैं। ये सात पृथ्वियाँ छह राजु में हैं और अंतिम सातवें राजु में निगोद स्थान हैं।

नरकों के दूसरे नाम—घम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी ये इन पृथ्वियों के अनादिनिधन नाम हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के ३ भाग हैं—खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग। खरभाग और पंकभाग में भवनवासी तथा व्यंतरवासी देवों के निवास हैं और अब्बहुलभाग में प्रथम नरक के बिल हैं, जिनमें नारकियों के आवास हैं।

नरकों के बिलों की संख्या—सातों नरकों के बिलों की संख्या चौरासी लाख प्रमाण है। प्रथम पृथ्वी के ३० लाख, द्वितीय के २५ लाख, तृतीय के १५ लाख, चतुर्थ के १० लाख, पाँचवीं के ३ लाख, छठी के ५ कम १ लाख एवं सातवीं पृथ्वी के ५ बिल हैं।

उष्ण और शीतबिल—पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी पृथ्वी के सभी बिल एवं पाँचवीं पृथ्वी के एक चौथाई भाग प्रमाण बिल अत्यन्त उष्ण होने से नारकियों को तीव्र गर्मी की बाधा पहुँचाने वाले हैं। पाँचवीं पृथ्वी के अवशिष्ट एक चौथाई भाग प्रमाण बिल और छठी, सातवीं

पृथ्वी के सभी बिल अत्यन्त शीत होने से नारकी जीवों को भयंकर शीत की वेदना देने वाले हैं। यदि उष्ण बिल में मेरु के समान लोहे का गोला डाल देवें तो वह गलकर पानी हो जावे, ऐसे ही शीत बिलों में मेरु पर्वतवत् लोह पिंड विलीन हो जावे।

नरक में उत्पत्ति के दुःख—नारकी जीव महापाप से नरक बिल में उत्पन्न होकर एक मुहूर्त काल में छहों पर्याप्तियों को पूर्ण कर छत्तीस आयुधों के मध्य में औंधे मुँह गिरकर वहाँ से गेंद के समान उछलता है। प्रथम पृथ्वी में नारकी सात योजन, छह हजार, पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊपर को उछलता है। इसके आगे शेष नरकों में उछलने का प्रमाण दूना-दूना है।

नरक की मिट्टी—कुत्ते, गधे आदि जानवरों के अत्यन्त सड़े हुए मांस और विष्ठा आदि की अपेक्षा भी अनन्तगुणी दुर्गन्धि से युक्त वहाँ की मिट्टी है, जिसे वे नारकी भक्षण करते हैं। यदि सातवें नरक की मिट्टी का एक कण भी यहाँ आ जावे, तो यहाँ के पच्चीस कोस तक के जीव मर जावें।

नरक के दुःख—वे नारकी परस्पर में चक्र, बाण, शूली, करोंत आदि से एक दूसरे को भयंकर दुःख दिया करते हैं। एक मिनट भी आपस में शांति को प्राप्त नहीं करते हैं। करोंत से चीरना, कुम्भीपाक में पकाना आदि महान दुःखों का सामना करते हुए उन जीवों की मृत्यु भी नहीं हो सकती। जब आयु पूर्ण होती है, तभी वे मरते हैं।

नारकियों की आयु—

नरक	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
१	१० हजार वर्ष	१ सागर
२	१ सागर	३ सागर
३	३ सागर	७ सागर
४	७ सागर	१० सागर
५	१० सागर	१७ सागर
६	१७ सागर	२२ सागर
७	२२ सागर	३३ सागर

नरक में जाने वाले जीव—कर्मभूमि के पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य ही इन नरकों में जाते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पहले नरक तक, सरीसृप दूसरे नरक तक, पक्षी तृतीय नरक तक, भुजंग चतुर्थ नरक तक, सिंह पाँचवें तक, स्त्रियाँ छठे तक, मत्स्य और मनुष्य सातवें तक जाते हैं।

नरक में सम्यक्त्व के कारण—तीसरे नरक तक के नारकी कोई जाति-स्मरण से, कोई दुर्वार वेदना से, कोई देवों के सम्बोधन को प्राप्त कर अनन्त भवों को चूर्ण करने में समर्थ सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर लेते हैं। शेष चार नरकों के नारकी जातिस्मरण और वेदना अनुभव से सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।

नरक में नारकी के मस्तक आदि सभी अवयव करोड़ों रोगों से जर्जरित रहते हैं। नरक में नारकियों के एक साथ ही ५ करोड़ ६८ लाख ९९ हजार ५ सौ ८४ रोग उदय में बने रहते हैं।

नारकियों का आहार और मिट्टी के दोष

कुत्ते, गधे आदि जानवरों के अत्यन्त सड़े हुए माँस और विष्टा आदि की अपेक्षा भी अनंतगुणी दुर्गंधि से युक्त ऐसी उस नरक की मिट्टी को घम्मा नरक के नारकी अत्यन्त भूख की वेदना से व्याकुल होकर भक्षण करते हैं और दूसरे आदि नरकों में उससे भी अधिक गुणी अशुभ दुर्गंधित मिट्टी को खाते हैं। घम्मा पृथ्वी के प्रथम पटल के आहार की मिट्टी को यदि इस मध्य लोक में डाल दिया जाए तो उसकी दुर्गंधि से १ कोस पर्यंत के जीव मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं। इससे आगे दूसरे, तीसरे आदि पटलों में आधे-आधे कोस प्रमाण अधिक होते हुए मारण शक्ति बढ़ती गई है और सातवें नरक के अन्तिम उन्चासवें पटल में मिट्टी की मारण शक्ति २५ कोस प्रमाण हो जाती है।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके नरक जाने वालों का वर्णन

कोई-कोई जीव इस मध्यलोक में तीर्थंकर प्रकृति के बंध के पहले यदि नरकायु का बंध कर लेते हैं तो पहले, दूसरे या तीसरे नरक तक जा सकते हैं वें तीर्थकर प्रकृति के सत्त्व वाले जीव भी वहाँ पर असाधारण दुःखों का अनुभव करते रहते हैं और सम्यक्त्व के माहात्म्य से पूर्वकृत कर्म के विपाक का चिंतवन करते रहते हैं। जब इनकी आयु ६ महीने अवशेष रह जाती है तब स्वर्ग के देव नरक में जाकर चारों तरफ के परकोटा बनाकर उस नारकी के उपसर्ग का निवारण कर देते हैं और मध्यलोक में रत्नों की वर्षा, माता की सेवा आदि उत्सव होने लगते हैं।

नारकी के दुःखों के भेद

नरकों में नारकियों को चार प्रकार के दुःख होते हैं। क्षेत्र जनित, शारीरिक, मानसिक और असुरकृत्।

नरक में उत्पन्न हुए शीत, उष्ण, वैतरणी नदी, शाल्मलिवृक्ष आदि के निमित्त से होने वाले दुःख क्षेत्रज दुःख कहलाते हैं।

शरीर में उत्पन्न हुए रोगों के दुःख और मार-काट, कुंभीपाक आदि के दुःख शारीरिक दुःख है।

संक्लेश, शोक, आकुलता, पश्चात्ताप आदि के निमित्त से उत्पन्न दुःख मानसिक दुःख कहलाते हैं।

एवं तीसरी पृथ्वी पर्यंत संक्लेश परिणाम वाले असुरकुमार जाति के भवनवासी देवों के द्वारा उत्पन्न कराये गये दुःख असुरकृत् दुःख कहलाते हैं।

असुरकुमारकृत दुःखों का वर्णन

पूर्व में देवायु का बंध करने वाले मनुष्य या तिर्यंच अनंतानुबंधी में से किसी एक का उदय आ जाने से रत्नत्रय को नष्ट करके असुरकुमार जाति के देव होते हैं। सिकनानन, असिपत्र, महाबल, रुद्र, अंबरीष आदिक असुरकुमार जाति के देव तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी तक जाकर नारकियों को क्रोध उत्पन्न करा-करा कर परस्पर में युद्ध कराते हैं और प्रसन्न होते हैं।

नरक में अवधिज्ञान का वर्णन

नरक में उत्पन्न होते ही अंतर्मुहूर्त के बाद छहों पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं और भवप्रत्यय अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है। जो मिथ्यादृष्टी नारकी हैं उनका अवधिज्ञान विभंगावधि—कुअवधि कहलाता है एवं सम्यक्दृष्टि नारकियों का ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

मध्यलोक

(अन्तर्गत ढाईद्वीप का वर्णन)

मध्यलोक १ राजु चौड़ा १ लाख ४० योजन ऊँचा है। यह चूड़ी के आकार का है। इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। इस मध्यलोक के बीचों-बीच में एक लाख योजन व्यास वाला अर्थात् ४० करोड़ मील विस्तार वाला जम्बूद्वीप स्थित है। जम्बूद्वीप को घेरे हुए २ लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है। लवण समुद्र को घेरे हुए ४ लाख योजन व्यास वाला धातकी खण्ड है, इसको घेरे हुए ८ लाख योजन व्यास वाला कालोदधि समुद्र है। उसके बाद १६ लाख योजन व्यास वाला पुष्कर द्वीप है। इसी तरह आगे-आगे क्रम से द्वीप तथा समुद्र दूने-दूने प्रमाण वाले होते गये हैं। अन्त के द्वीप और समुद्र का नाम स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र है।

जम्बूद्वीप

जम्बूद्वीप के मध्य में एक लाख योजन ऊँचा तथा दस हजार योजन विस्तार वाला सुमेरु पर्वत है। इस जम्बूद्वीप में छह कुलाचल एवं सात क्षेत्र हैं।

६ कुलाचलों के नाम—हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी।

७ क्षेत्रों के नाम—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत और ऐरावत।

क्षेत्र एवं पर्वतों का प्रमाण—भरतक्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के विस्तार का १९०वाँ भाग है अर्थात् १००००० ÷ १९० = ५२६ ६/१९ योजन, (२१०५२६३ ३/१९ मील) है। भरत क्षेत्र से आगे

हिमवान् पर्वत का विस्तार भरत क्षेत्र से दूना है। ऐसे ही विदेह क्षेत्र तक दूना-दूना और आगे आधा-आधा होता गया है।

विजयार्ध पर्वत—भरतक्षेत्र के मध्य में विजयार्ध पर्वत है। यह ५० योजन (२००००० मील) चौड़ा और २५ योजन विस्तृत (१००००० मी.) ऊँचा है एवं लम्बाई दोनों तरफ से लवण समुद्र को स्पर्श कर रही है। पर्वत के ऊपर दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ इस धरातल से १० योजन ऊपर तथा १० योजन ही भीतर समतल में विद्याधरों की नगरियाँ हैं जो कि दक्षिण में ५० एवं उत्तर में ६० हैं। उसमें १० योजन ऊपर एवं अन्दर जाकर आभियोग्य जाति के देवों के भवन हैं। उससे ऊपर (अवशिष्ट) ५ योजन जाकर समतल पर ९ कूट हैं। इनमें १ कूट सिद्धायतन नाम का है, जिसमें जिनमंदिर है, बाकी में देवों के आवास हैं।

यह विजयार्ध पर्वत रजतमयी है। इसी प्रकार का विजयार्ध पर्वत ऐरावत क्षेत्र में भी इसी प्रमाण वाला है।

हिमवान् पर्वत—यह पर्वत १०५२ १२/१९ योजन (४२१०५२६ ६/१९ मी.) विस्तार वाला एवं १०० योजन ऊँचा है। इस पर्वत पर 'पद्म' नामक सरोवर है, यह सरोवर १००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौड़ा एवं १० योजन गहरा है। इससे आगे के पर्वतों पर क्रम से महापद्म, तिगिंच्छ, केशरी, पुण्डरीक, महापुण्डरीक नाम के सरोवर हैं।

कमल—पद्म सरोवर के मध्य में एक योजन वाला एक कमल है जो कि पृथ्वीकायिक रत्नमयी है। इस कमल की कर्णिका पर बने हुए भवन में 'श्री देवी' निवास करती हैं। इसी सरोवर में श्रीदेवी के परिवार स्वरूप १,४०,११५ कमल और हैं, जिन पर श्री देवी के परिवार देव रहते हैं, ऐसे ही आगे-आगे के सरोवरों में भी कमल हैं और उनमें क्रम से 'ह्री' 'धृति' 'कीर्ति' 'बुद्धि' और 'लक्ष्मी' देवियाँ रहती हैं।

गंगादि नदियाँ—इन छह सरोवरों से १४ नदियाँ निकलती हैं जो कि एक-एक क्षेत्र में दो-दो बहती हैं। भरत क्षेत्र में गंगा-सिंधु, हैमवत क्षेत्र में रोहित-रोहितास्या आदि। पद्म और महापुण्डरीक इन दो सरोवरों से तीन-तीन नदियाँ निकलती हैं एवं बीच के चार सरोवरों से दो-दो नदियाँ निकलती हैं।

गंगा नदी—पद्म सरोवर के पूर्व दिशा के तोरण द्वार से गंगा नदी निकल कर पाँच सौ योजन तक पूर्व की ओर जाती हुई गंगाकूट के दो कोस इधर से दक्षिण की ओर मुड़कर भरत क्षेत्र में २५ योजन पर्वत से उसे छोड़कर जिह्विका नाली में प्रवेध करके पर्वत से नीचे गिरती है।

गंगाकुण्ड—जहाँ गंगा नदी गिरती है, वहाँ पर ६० योजन विस्तृत एवं १० योजन गहरा एक कुण्ड है। उसमें १० योजन ऊँचा वज्रमय एक पर्वत है। उस पर्वत के कूट पर गंगा देवी का प्रासाद

बना हुआ है। प्रासाद की छत पर कमलासन पर अकृत्रिम जिनप्रतिमा केशों के जटाजूट युक्त शोभायमान है। गंगा नदी अपनी चंचल तरंगों से युक्त होती हुई जलधारा से जिनेन्द्रदेव का अभिषेक करते हुए के समान ही उस जिनप्रतिमा पर पड़ती है।

पुनः इस कुण्ड के दक्षिण तोरणद्वार से निकलकर आगे भूमि पर कुटिलता को प्राप्त होती हुई विजयार्ध की गुफा में आठ योजन विस्तृत होती हुई प्रवेश करती है। अन्त में चौदह हजार परिवार नदियों से युक्त होकर पूर्व की ओर जाती हुई लवण समुद्र में प्रविष्ट हुई है, ये १४ हजार परिवार नदियाँ आर्यखण्ड में न बहकर म्लेच्छ खण्डों में ही बहती हैं। इसी गंगा नदी के समान ही सिंधु नदी का वर्णन है जो कि पद्म सरोवर के पश्चिम तोरणद्वार से निकलकर भरत क्षेत्र में आती है। आगे की युगल-युगल नदियों का विस्तार आदि सीता नदी तक दूना-दूना और आगे आधा-आधा होता गया है।

छह खण्ड—भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत और युगल नदियों के निमित्त से छह-छह खण्ड हो जाते हैं। इनमें से समुद्र की तरफ के मध्य का आर्य खण्ड और शेष म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं।

सुमेरु पर्वत

विदेह क्षेत्र के बीचों बीच में सुमेरु पर्वत स्थित है। यह एक लाख ४० योजन ऊँचा है। इसकी नींव एक हजार योजन की है। पृथ्वी तल पर इस पर्वत का विस्तार दस हजार योजन है। सुमेरु पर्वत की नींव के बाद पृथ्वी तल पर भद्रसाल वन स्थित है, जिसकी पूर्व, दक्षिण आदि चारों दिशाओं में चार चैत्यालय स्थित हैं। मेरु पर्वत के ऊपर पाँच सौ योजन जाकर नन्दन वन है, यह पाँच सौ योजन प्रमाण कटनीरूप है। इसकी भी चारों दिशाओं में चार चैत्यालय हैं। इससे ऊपर साढ़े बासठ हजार योजन जाकर सौमनस वन है। यह भी पाँच सौ योजन प्रमाण चौड़ा कटनीरूप है। इसके भी चारों दिशाओं में चार जिनालय हैं। सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन ऊपर जाकर पाण्डुक वन है, यह भी चार सौ चौरानवे योजन प्रमाण कटनीरूप है, इसमें भी चारों दिशाओं में चार चैत्यालय हैं।

पाण्डुक वन के ऊपर मध्य में बारह योजन चौड़ी, चालीस योजन ऊँची चूलिका है।

मेरु पर्वत नीचे से घटते-घटते चूलिका के अग्रभाग पर चार योजनमात्र का रह जाता है।

सुमेरु का वर्ण—यह पर्वत नीचे जड़ में एक हजार योजन तक वज्रमय है। पृथ्वी तल से इकसठ हजार योजन तक उत्तम चित्र-विचित्र रत्नमय, आगे अड़तीस हजार योजन तक सुवर्णमय है एवं ऊपर की चूलिका नीलमणि से बनी हुई है।

पाण्डुक शिला आदि—पाण्डुक वन की चारों दिशाओं में चार शिला हैं। ये शिलाएँ ईशान दिशा से लेकर क्रम से पाण्डुक शिला, पाण्डुकंबला, रक्ताशिला और रक्तकंबला नाम वाली हैं। ये

अर्ध चन्द्राकार हैं, सिंहासन, छत्र, मंगल, द्रव्य आदि से सुशोभित हैं। सौधर्म इन्द्र पाण्डुक शिला पर भरतक्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं, ऐसे ही 'पाण्डुकंबला' शिला पर पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों का, 'रक्ता-शिला' पर ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का एवं 'रक्तकंबला' शिला पर पूर्व विदेह के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

जम्बूद्वीप के भरत और ऐरावत में षट्काल परिवर्तन से कर्मभूमि और भोगभूमि, दोनों की व्यवस्था होती रहती है। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि हरि और रम्यक् क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि तथा विदेह क्षेत्र में मेरु के दक्षिण-उत्तर भाग में क्रम से देवकुरु-उत्तरकुरु नाम की उत्तम भोगभूमियाँ हैं। पूर्व और पश्चिम दोनों विदेहों में आठ-आठ वक्षार और ६-६ विभंगा नदियों से विदेह के १६-१६ भेद होने से बत्तीस विदेह क्षेत्र हो जाते हैं। उनमें शाश्वत कर्मभूमि है।

लवण समुद्र

जम्बूद्वीप को घेरे हुए २ लाख योजन व्यासवाला लवणसमुद्र है। उसका पानी अनाज के ढेर के समान शिखाऊ-ऊँचा उठा हुआ है। बीच में गहराई १००० योजन की है। समतल से जल की ऊँचाई अमावस्या के दिन ११००० योजन की रहती है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से बढ़ते-बढ़ते ऊँचाई पूर्णिमा के दिन १६००० योजन की हो जाती है पुनः कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से घटते-घटते ऊँचाई क्रमशः अमावस्या के दिन ११००० योजन की रह जाती है।

धातकीखण्ड—यह द्वीप लवण समुद्र को घेरकर चार लाख योजन व्यास वाला है। इसके अन्दर पूर्व दिशा में बीचों-बीच में विजय मेरु और पश्चिम दिशा में बीच में 'अचल' नाम का मेरु पर्वत स्थित है। दक्षिण और उत्तर में दोनों तरफ समुद्र को स्पर्श करते हुए दो इष्वाकार पर्वत हैं, जिससे इस द्वीप के पूर्व धातकीखण्ड और पश्चिम धातकीखण्ड ऐसे दो भेद हो जाते हैं। वहाँ पर भी पूर्व धातकीखण्ड में हिमवान् आदि छह पर्वत, भरत आदि सात क्षेत्र, गंगादि चौदह प्रमुख नदियाँ बहती हैं तथैव पश्चिम धातकीखण्ड में यही सब व्यवस्था है। धातकीखण्ड को वेष्टित करके कालोदधि समुद्र है।

पुष्करार्ध द्वीप—कालोदधि को वेष्टित करके १६ लाख योजन वाला पुष्कर द्वीप है। इसके बीचों-बीच में चूड़ी के समान आकार वाला मानुषोत्तर पर्वत स्थित है। इस पर्वत के इधर के भाग में कर्मभूमि जैसी व्यवस्था है। इसमें भी दक्षिण-उत्तर में इष्वाकार पर्वत है और पूर्व पुष्करार्ध में 'मन्दर' मेरु तथा पश्चिम पुष्करार्ध में 'विद्युन्माली' मेरु पर्वत स्थित हैं। इसमें भी दोनों तरफ भरत आदि क्षेत्र, हिमवान् आदि पर्वत पूर्ववत् हैं।

१७० कर्मभूमि—जम्बूद्वीप के बीच में सुमेरु पर्वत है। इसके दक्षिण में निषध एवं उत्तर में नील पर्वत है। यह मेरु विदेह के ठीक बीच में है। निषध पर्वत से सीतोदा और नील पर्वत से सीता नदी निकलकर सीता नदी पूर्व समुद्र में, सीतोदा नदी पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती है। इसलिए इनसे विदेह के ४ भाग हो गये। दो भाग मेरु के पूर्व की ओर और दो भाग मेरु के पश्चिम की ओर। एक-एक विदेह में ४-४ वक्षार पर्वत और ३-३ विभंगा नदियाँ होने से १-१ विदेह के ८-८ भाग हो गये हैं। इन चार विदेहों के बत्तीस भाग—विदेह हो गये हैं। ये ३२ विदेह एक मेरु संबंधी हैं। इसी प्रकार ढाई द्वीप के ५ मेरु संबंधी ३२×५=१६० विदेह क्षेत्र हो जाते हैं।

इस प्रकार १६० विदेह क्षेत्रों में १-१ विजयार्ध एवं गंगा-सिंधु तथा रक्ता-रक्तोदा नाम की दो-दो नदियों से ६-६ खण्ड होते हैं। जिसमें मध्य का आर्यखण्ड और शेष पाँचों म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं। ऐसे पाँच मेरु संबंधी ५ भरत, ५ ऐरावत और ५ महाविदेहों के १६० विदेह ५+५+१६०=१७० क्षेत्र हो गये। ये १७० ही कर्मभूमियाँ हैं।

एक राजु विस्तृत इस मध्यलोक में असंख्यातों द्वीप समुद्र हैं। उनके अन्तर्गत ढाई द्वीप की १७० कर्मभूमियों में ही मनुष्य तपश्चरणादि के द्वारा कर्मों का नाश करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, इसलिए ये क्षेत्र कर्मभूमि कहलाते हैं।

३० भोगभूमि—हैमवत, हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य, हरि, रम्यक क्षेत्र में मध्यम और देवकुरु-उत्तरकुरु में उत्तम ऐसी छह भोगभूमि जम्बूद्वीप में हैं। धातकीखण्ड की १२ तथा पुष्करार्ध की १२ ऐसे ६+१२+१२=३० भोगभूमि ढाई द्वीप संबंधी हैं।

९६ कुभोगभूमि—इस लवण समुद्र के दोनों तटों पर २४ अन्तर्द्वीप हैं अर्थात् चार दिशाओं के ४ द्वीप, ४ विदिशाओं के ४ द्वीप, दिशा-विदिशा के आठ अन्तरालों के ८ द्वीप, हिमवान् पर्वत और शिखरी पर्वत के दोनों तटों के ४ और भरत, ऐरावत के दोनों विजयार्धों के दोनों तटों के ४ इस तरह ४+४+८+४+४=२४ हुए।

ये २४ अन्तर्द्वीप लवण समुद्र के इस तटवर्ती हैं। उस तट के भी २४ तथा कालोदधि के उभय तट के ४८, सभी मिलकर ९६ अन्तर्द्वीप कहलाते हैं। इनमें रहने वाले मनुष्यों के सींग, पूँछ आदि होते हैं अतः इन्हें ही कुभोगभूमि कहते हैं। इन द्वीपों के मनुष्य कुभोगभूमियाँ कहलाते हैं। इनकी आयु असंख्यात वर्षों की होती है।

कुमानुष—पूर्व दिशा में रहने वाले मनुष्य एक पैर वाले होते हैं। पश्चिम दिशा के पूँछ वाले, दक्षिण दिशा के सींग वाले एवं उत्तर दिशा के गूँगे होते हैं। विदिशा आदि संबंधी सभी कुभोगभूमियाँ कुत्सित रूप वाले होते हैं। ये मनुष्य युगल ही जन्म लेते हैं और युगल ही मरते हैं। इनको शरीर संबंधी

कोई कष्ट नहीं होता है। कोई-कोई वहाँ की मधुर मिट्टी का भक्षण करते हैं तथा अन्य मनुष्य वहाँ के वृक्षों के फलफूल आदि का भक्षण करते हैं। उनका कुरूप होना कुपात्रदान आदि का फल है।

स्वयंभूरमण पर्वत—अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप के बीचों-बीच वलयाकार स्वयंभूरमण नाम का पर्वत है जो कि मानुषोत्तर के समान द्वीप के दो भाग कर देता है।

मानुषोत्तर पर्वत से आगे असंख्यातों द्वीपों में स्वयंभूरमण पर्वत के इधर-उधर तक जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था है। इन सभी में असंख्यातों तिर्यञ्च युगल रहते हैं।

स्वयंभूरमण पर्वत के उधर आधे द्वीप में और स्वयंभूरमण समुद्र में कर्मभूमि की व्यवस्था है अर्थात् यहाँ के तिर्यंच कर्मभूमि के तिर्यञ्च हैं। वहाँ प्रथम गुणस्थान से पंचम गुणस्थान तक हो सकता है। देवों द्वारा सम्बोधन पाकर या जातिस्मरण आदि से असंख्यातों तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टि देशव्रती बनकर स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं।

जम्बूद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय

सुमेरु के १६, सुमेरु पर्वत की विदिशा में चार गजदन्त के ४, हिमवान् आदि षट् कुलाचलों के ६, विदेह क्षेत्र में सोलह वक्षार पर्वतों के १६, विदेह क्षेत्र के बत्तीस विजयार्ध के ३२, भरत, ऐरावत के विजयार्ध के २, देवकुरु और उत्तरकुरु में स्थित जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्ष की शाखाओं के २, इस प्रकार १६+४+६+१६+३२+२+२=७८ ऐसे जम्बूद्वीप के ७८ जिन चैत्यालय हैं।

मध्यलोक के अकृत्रिम जिनालय

जम्बूद्वीप के समान ही धातकीखण्ड एवं पुष्करार्ध में २-२ मेरु के निमित्त से सारी रचना दूनी-दूनी होने से चैत्यालय भी दूने-दूने हैं तथा धातकीखण्ड एवं पुष्करार्ध में २-२ इष्वाकार पर्वत पर २-२ चैत्यालय हैं। मानुषोत्तर पर्वत पर चारों दिशाओं के ४, नन्दीश्वर द्वीप की चारों दिशाओं में १३-१३ चैत्यालय होने से १३×४=५२, ग्यारहवें कुण्डलवर द्वीप के कुण्डलवर पर्वत पर चारों दिशाओं के ४, तेरहवें रुचकवर द्वीप के रुचकवर पर्वत पर चारों दिशाओं के ४, सब मिलकर ७८+१५६+१५६+४+४+५२+४+४=४५८ चैत्यालय होते हैं। इन मध्यलोक संबंधी ४५८ चैत्यालयों को एवं उनमें स्थित सर्व जिनप्रतिमाओं को मैं मन, वचन, काय से नमस्कार करता हूँ।

षट्काल परिवर्तन

''भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां''[१] इस सूत्र में कहे गये अनुसार भरत और ऐरावत क्षेत्रों में ही उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के षट्कालों से मनुष्यों की आयु, अवगाहना आदि में वृद्धि ह्रास होती रहती है। इन भरत ऐरावत क्षत्रों के पाँच-पाँच म्लेच्छ खण्ड में ये काल परिवर्तन नहीं है केवल चतुर्थकाल के आदि से लेकर अंत तक ही परिवर्तन होता है और अंत से आदि तक चतुर्थ की आदि जैसा हो जाता है।

भरत क्षेत्र के आर्यखंड में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीरूप काल की पर्यायें होती हैं। अवसर्पिणी काल में मनुष्य एवं तिर्यंचों की आयु, शरीर की ऊँचाई और विभूति इत्यादि सभी घटते रहते हैं एवं उत्सर्पिणी में बढ़ते रहते हैं।

दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण अवसर्पिणी और दस कोड़ाकोड़ी प्रमाण उत्सर्पिणी काल है। इन दोनों को मिलाने पर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक कल्पकाल होता है।

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में से प्रत्येक के छह-छह भेद हैं। सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमादुष्षमा, दुष्षमा-सुषमा, दुष्षमा और अतिदुष्षमा। इन छहों में से प्रथम सुषमासुषमा चार कोड़ाकोड़ी सागर, सुषमा तीन कोड़ाकोड़ी सागर, तीसरा काल दो कोड़ाकोड़ी सागर, चौथा ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, पंचम दुष्षमाकाल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण और छठा अतिदुष्षमा काल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है।

इनका परिवर्तन आरे के समान होता है अर्थात् प्रथम काल से छठे काल तक अवसर्पिणी पुनः छठे काल से प्रथम काल तक उत्सर्पिणी चलती है।

प्रथमकाल का वर्णन

सुषमासुषमा नामक प्रथम काल में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है। इस काल में वहाँ की भूमि रज, कण्टक, विकलत्रय से रहित होती है। वहाँ कल्हार, कमल आदि से मनोहर वापियाँ रत्नों की सीढ़ियों से सहित रहती हैं। भोगभूमिजनों के सुंदर भवन शय्या आसनों से रमणीय अनुपम हैं। वहाँ की पृथ्वी चार अंगुल प्रमाण हरित घास से सहित पंचवर्ण वाली मन नयनों को हरण करने वाली होती है वहाँ पर वापिका, कल्पवृक्ष आदि से परिपूर्ण उन्नत पर्वत हैं वहाँ पर असंज्ञी जीव नहीं हैं। परस्पर में कलह, विरोध, स्वामी, भृत्य आदि भेद नहीं रहता है। ये युगलिया चौथे दिन (बेर) के बराबर आहार करते हैं, यहाँ के स्त्री, पुरुषों की ऊँचाई तीन कोस, आयु तीन पल्य प्रमाण होती है। प्रत्येक के पृष्ठ भाग में दो सौ छप्पन हड्डियाँ होती हैं। उत्तम संहनन, संस्थान से सहित मंदकषायी,

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. ३, सूत्र २७।

कवलाहार करते हुए भी मलमूत्र से रहित होते हैं। वहाँ के पानांग आदि दस प्रकार के कल्पवृक्ष उत्तम भोगोपभोग सामग्री को प्रदान करते रहते हैं। पानांग, तूर्यांग, वस्त्रांग, भूषणांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्ष अपने नामों के अनुसार ही फल देने वाले हैं। इन भोगभूमि के मनुष्यों का बल नौ हजार हाथी के प्रमाण होता है।

मिथ्यात्व से युक्त, मंदकषायी, दानादि से तत्पर मनुष्य और तिर्यंच भोगभूमि को प्राप्त करते हैं कदाचित् तिर्यंच आयु का बंध करके पुनः क्षायिक आदि सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला मनुष्य इन भोगभूमियों में जन्म ले लेता है।

भोगभूमि के मनुष्यों और तिर्यंचों में आयु के नव मास शेष रहने पर उनकी माता को गर्भ रहता है और युगल बालक–बालिका के जन्म लेते ही वे माता–पिता जंभाई एवं छींक से मरण को प्राप्त हो जाते हैं। मरकर ये भोगभूमिज युगल भवनत्रिक से सौधर्म युगल तक देवगति में जन्म ले लेते हैं। भोगभूमि के जन्मे बालयुगल अंगूठा चूसने, बैठने, अस्थिर गमन करने, स्थिर गमन करने, कलागुणों की प्राप्ति, तारुण्य और सम्यक्त्व की योग्यता इनमें से प्रत्येक अवस्था में कम से कम तीन दिन व्यतीत करते हैं। अर्थात् २१ दिनों में तरुण हो जाते हैं।

वहाँ के मनुष्य–तिर्यंच में कोई जातिस्मरण से, कोई देवों से प्रतिबोधित होकर, कोई ऋद्धिधारी मुनियों के उपदेश से सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। वे भोगभूमिज, चौंसठ कलाओं से सहित, परस्पर के वैर विरोध से रहित मृदु—मधुर भाषी होते हैं।

वहाँ के व्याघ्र आदि पशुगण मधुर कल्पवृक्षों के ही फलों का, तृण, कंद, अंकुरादि का उपयोग करते हैं। माँसाहारी नहीं हैं। यहाँ के जीव सुवर्ण की कांति सदृश कांति वाले हैं। काल के प्रारंभ से अंत तक यहाँ पर धीरे–धीरे आयु, शरीर की ऊँचाई आदि में ह्रास होने लगता है।

द्वितीय काल का वर्णन

इस द्वितीयकाल में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था होती है यहाँ के मनुष्यों की आयु दो पल्य और शरीर की अवगाहना दो कोस रहती है, शरीर का वर्ण चंद्रमा के सदृश धवल रहता है। इनके पृष्ठ भाग की हड्डियाँ एक सौ अट्ठाईस रहती हैं, उत्तम संस्थान एवं संहनन से युक्त ये जीव तीन दिन में बहेड़ा के समान आहार लेते हैं। इस काल में बाल युगल अंगूठा चूसने में ५–५ दिन व्यतीत करते हैं अर्थात् ३५ दिनों में तरुण होकर सम्यक्त्व ग्रहण के योग्य हो जाते हैं। बाकी वर्णन प्रथम कालवत् है। इसमें भी आयु बल आदि घटते जाते हैं।

तृतीय काल का वर्णन

ऊँचाई आदि घटते–घटते तृतीय काल प्रवेश करता है उस समय यहाँ पर जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था रहती है। मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई एक कोस, आयु एक पल्य है एवं हड्डियाँ चौंसठ होती

हैं। इस काल में उत्तम संहनन आदि से युक्त मनुष्य एक दिन के अंतराल से आंवले के बराबर अमृतमय आहार लेते हैं। इस काल में उत्पन्न हुये बाल युगल अंगूठा चूसने में सात दिन, बैठने में सात दिन आदि से ४९ दिन में सम्यक्त्व ग्रहण की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। इन भोगभूमियों में शत्रु आदि की बाधायें, असि मषि आदि षट्कर्म, प्रचंडशीत, उष्ण आदि बाधायें नहीं होती हैं। वहाँ के जीव संयम, देश संयम को ग्रहण नहीं कर सकते हैं।

कुलकरों की उत्पत्ति

इस तृतीय काल के अंत में कुछ कम एक पल्योपम के आठवाँ भाग मात्र काल शेष रहता है तब 'प्रतिश्रुति' नामक प्रथम कुलकर जन्म लेता है। इसके शरीर का उत्सेध एक हजार आठ सौ धनुष, आयु पल्य के दसवें भाग प्रमाण और देवी स्वयंप्रभा नामक थी। उस समय समस्त भोगभूमिज लोग चंद्र और सूर्य के मण्डलों को देखकर ऐसा समझकर डर गये कि "यह कोई आकस्मिक महाभयंकर उत्पात हुआ है।"

तब प्रतिश्रुति नामक कुलकर ने उनको निर्भय करने के लिए बताया कि कालवश अब तेजांग जाति के कल्पवृक्षों के किरण-समूह मंद पड़ गये हैं इस कारण अब आकाश में सूर्य-चंद्र मण्डल प्रकट हुये हैं। इनकी ओर से तुम लोगों को भय का कोई कारण नहीं है। आकाश में यद्यपि इनका उदय और अस्त नित्य ही होता रहा है, किन्तु ज्योतिरंग कल्पवृक्ष की किरणों से प्रकट नहीं दिखते थे। इस प्रकार के कुलकर के वचनों को सुनकर सभी जन निर्भय होकर उनकी पूजा स्तुति करते हैं।

इन प्रतिश्रुति कुलकर के क्रम से सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचंद्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराज ये १४ कुलकर उत्पन्न हुये हैं जो कि क्रम से काल के वश में होने वाली एक-एक असुविधाओं को दूर करते रहे हैं। अंतिम कुलकर श्री नाभिराय की पत्नी 'मरुदेवी' नाम की थी, इनकी आयु एक कोटि पूर्व प्रमाण, शरीर उत्सेध पाँच सौ धनुष एवं वर्ण स्वर्ण के सदृश था।

उस समय बालकों का नाभिनाल अत्यंत लम्बा होने लगा था इसलिए नाभिराय कुलकर उसके काटने का उपदेश देते हैं। इसके पहले आठवें मनु के समय माता पिता पुत्र युगल को देखने लगते थे आगे संतान जीवित रहने पर उन्हें क्रीड़ा कराना, चुप करना आदि कार्य करने लगते थे। चौदहवें मनु के समय कल्पवृक्ष नष्ट हो गये तब प्रजाजन श्री नाभिराज कुलकर की शरण में आये और करुणापूर्वक नाभिराज ने आजीविका के लिए वनस्पति फल आदि खाने का उपदेश दिया।

प्रतिश्रुति को आदि लेकर नाभिराज पर्यंत ये चौदह मनु पूर्वभव में विदेह क्षेत्र के भीतर महाकुल में राजकुमार थे। वे सब संयम, तप और ज्ञान से युक्त पात्रों के लिए दानादि देने में कुशल अपने योग्य अनुष्ठान से संयुक्त, मार्दव, आर्जव आदि गुणों से सहित होते हुये पूर्व में मिथ्यात्व सहित होने से मनुष्यायु का बंध कर लेते हैं, पश्चात् जिनेन्द्र भगवान के चरणों के समीप क्षायिक सम्यक्त्व को

ग्रहण करते हैं।

अपने योग्य श्रुत को पढ़कर इन राजकुमारों में से कितने ही आयु के क्षीण होने पर अवधिज्ञान के साथ भोगभूमि में मनुष्य होकर अवधिज्ञान से और कितने ही जातिस्मरण से भोगभूमिज मनुष्यों को जीवन के उपाय बतलाते हैं इसलिये मुनीश्वरों के द्वारा ये 'मनु' कहे जाते हैं।

चतुर्थ काल का वर्णन

सुषमादुष्षमा नामक चतुर्थ काल में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष शेष रहने पर भगवान ऋषभदेव का अवतार हुआ है और तृतीय काल में तीन वर्ष, आठ मास, एक पक्ष के अवशिष्ट रहने पर ऋषभदेव सिद्धपद को प्राप्त हुये हैं।

त्रेसठ शलाका पुरुष

अब यहाँ से आगे, पुण्योदय से भरतक्षेत्र में मनुष्यों में श्रेष्ठ और संपूर्ण लोक में प्रसिद्ध त्रेसठ शलाका पुरुष उत्पन्न होने लगते हैं। चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव बलभद्र, नव वासुदेव और नव प्रतिवासुदेव ये त्रेसठ शलाका पुरुष हैं। नाभिराय के पुत्र भी वृषभदेव प्रथम तीर्थंकर हुये हैं ऐसे ही महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थंकर धर्मतीर्थ के प्रवर्तक हैं। भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांति, कुंथु, अर, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती हुये हैं।

विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नंदी, नंदिमित्र, राम और पद्म ये नव बलभद्र हुये हैं। त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोतम, पुरुषसिंह, पुंडरीक, दत्त, लक्ष्मण और कृष्ण ये नव नारायण हैं। अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुंभ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासंध ये नव प्रतिनारायण हैं। ये भरतक्षेत्र के तीर्थंकर पंचमहाकल्याण से पृथ्वी तल पर विख्यात रहते हैं।

इस हुंडावसर्पिणी के निमित्त से नौ रुद्र एवं नव नारद भी उत्पन्न होते हैं। इन सबका विस्तृत वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से देख लेना चाहिए।

चौबीस तीर्थंकरों के समयों में अनुपम आकृति के धारक बाहुबलि को प्रमुख करके चौबीस कामदेव होते हैं।

तीर्थंकर उनके माता-पिता, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण, रुद्र, नारद, कामदेव और कुलकर पुरुष यह सब भव्य होते हैं, नियम से सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर तो उसी भव से मोक्ष प्राप्त करते हैं, अन्यों के लिए उसी भव का नियम नहीं है।

भगवान ऋषभदेव के मुक्त हो जाने के पश्चात् पचास लाख करोड़ सागरों के बीतने पर अजितनाथ तीर्थंकर ने मोक्ष पद प्राप्त किया। भगवान् ऋषभदेव ने तीसरे काल में ही मोक्ष प्राप्त किया है और भगवान् के समय तृतीय काल में ही कर्मभूमि की व्यवस्था हो गयी थी। यह बात केवल इस हुंडावसर्पिणी के निमित्त से ही हुई है।

पंचम काल का वर्णन

चतुर्थ काल में तीन वर्ष, आठ मास, एक पक्ष अवशिष्ट रहने पर श्री वीरप्रभु सिद्धपद को प्राप्त हुये हैं। अर्थात् वीर भगवान के निर्वाण होने के पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष के व्यतीत हो जाने पर दुष्षमाकाल नामक पंचम काल प्रवेश करता है। इस पंचम काल के प्रवेश में मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक सौ बीस वर्ष, ऊँचाई सात हाथ और पृष्ठ भाग में हड्डियाँ चौबीस होती हैं। जिस दिन भगवान महावीर स्वामी मुक्त हुये उसी दिन गौतम गणधर स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। गौतमस्वामी के मुक्त होने के बाद, सुधर्मा स्वामी, उनके बाद जम्बूस्वामी केवली हुये। ये सब चतुर्थ काल के ही जन्म लेने वाले हैं। जम्बूस्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात् अन्य कोई मोक्ष नहीं गये।

अनंतर ग्यारह अंग, चौदह पूर्व के पारंगत श्रुतकेवली, कुछ-कुछ अंगों के धारक, पुनः अंगों के अंश के धारक आचार्य परमेष्ठी होते रहे हैं। आज भी श्रमण परम्परा को अक्षुण्ण रखने वाले दिगम्बर, मुनिराज विहार कर रहे हैं। इस दुष्षम काल में मनुष्यों की आयु, ऊँचाई, धर्म आदि का ह्रास होता रहता है। आगे इस काल के अंत में इक्कीसवां कल्की उत्पन्न होता है उसके समय में 'वीरांगज' नामक एक मुनि, 'सर्वश्री' नामक आर्यिका, अग्निदत्त श्रावक और पंगुश्री श्राविका होगी। एक दिन कल्की अपने मंत्रियों से कहता है कि मंत्रिवर! ऐसा कोई पुरुष तो नहीं है जो मेरे वश में न हो। तब मंत्री कहता है कि हे राजन्! एक मुनि आपके वश में नहीं है। तब कल्की राजा की आज्ञा होती है कि तुम उस मुनि के आहार में प्रथम ग्रास को शुल्क के रूप में ग्रहण करो। तत्पश्चात् कल्की की आज्ञा से प्रथम ग्रास के माँगे जाने पर मुनीन्द्र तुरंत उसे देकर और अंतराय करके वापस चले जाते हैं एवं अवधिज्ञान को भी प्राप्त हो जाते हैं उसी समय मुनिराज आर्यिका और श्रावक, श्राविका को बुलाकर प्रसन्नचित्त से कहते हैं कि अब दुष्षमा काल का अंत आ चुका है, तुम्हारी और हमारी तीन दिन की आयु शेष है और यह अंतिम कल्की है।

तब वे चारों जन चार प्रकार के आहार और परिग्रहादि को जन्मपर्यंत छोड़कर संन्यास को ग्रहण कर लेते हैं। ये सब कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष के अंत में—अमावस्या के दिन स्वाति नक्षत्र में सूर्य के उदित रहने पर संन्यास को धारण करके समाधिमरण को प्राप्त कर लेते हैं और सौधर्म स्वर्ग में देव हो जाते हैं। उसी समय मध्यान्ह काल में क्रोध से सहित कोई असुरकुमार जाति का उत्तम देव कल्की राजा को मार डालता है और सूर्यास्त समय अग्नि नष्ट हो जाती है यह कल्की धर्मद्रोह से मरकर पहली नरक पृथ्वी में चला जाता है।

छठे काल का वर्णन

इसके बाद तीन वर्ष आठ माह और एक पक्ष के बीत जाने पर महाविषम अतिदुष्षमा नामक छठा काल प्रविष्ट होता है। इस काल के प्रवेश में शरीर की ऊँचाई साढ़े तीन हाथ, पृष्ठ भाग की

हड्डियाँ बारह और उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष प्रमाण होती है। उस काल में सब मनुष्यों का आहार मूल, फल और मत्स्य आदि होते हैं। उस समय मनुष्यों को वस्त्र, वृक्ष, मकान आदि दिखाई नहीं देते हैं। अतः सभी मनुष्य नंगे और भवनों से रहित होकर वनों में घूमते हैं। उस समय के लोग सर्वांग धूम्रवर्ण, पशुवत् आचरण करने वाले, क्रूर, बहिरे, अन्धे, गूंगे, दारिद्र्य एवं क्रोध से परिपूर्ण दीन, हुंडक संस्थान युक्त, कुबड़े, बौने, व्याधि वेदना से विकल, लोभ, मोहयुक्त, पापिष्ठ, पुत्र–कलत्र से रहित, दुर्गंध युक्त होते हैं।

इस छठे काल में ये जीव नरक, तिर्यंच गति से आते हैं और नरक, तिर्यंच गति में ही जाते हैं। दिन–प्रतिदिन इन जीवों की आयु, बल, ऊँचाई आदि हीन होते जाते हैं।

उनंचास दिन कम इक्कीस हजार वर्षों के बीतने पर जंतुओं को भयदायक घोर प्रलयकाल प्रस्तुत होता है। उस समय महागंभीर एवं भीषण संवर्तक वायु चलती है जो सात दिन तक वृक्ष, पर्वत और शिला प्रभृति को चूर्ण करती है। इससे वहाँ के मनुष्य, तिर्यंचों को महादुःख प्राप्त होता है तथा वे वस्त्र और स्थान की अभिलाषा करते हुए बहुत प्रकार से विलाप करते हैं इस समय पृथक्–पृथक् संख्यात वह बहत्तर युगल गंगा, सिंधु नदियों की वेदी और विजयार्ध वन के मध्य में प्रवेश करते हैं। इसके अतिरिक्त देव और विद्याधर दयार्द्र होकर मनुष्य और तिर्यंचों में से संख्यात जीवराशि को उन प्रदेशों में ले जाकर रखते हैं।

उस समय गंभीर गर्जना से युक्त मेघ–सात–सात दिन तक हिम आदि की वर्षा करते हैं क्रमशः उनके नाम—बर्फ, क्षारजल, विषजल, धूम्र, धूलि, वज्र और अग्नि है। इन वज्र, अग्नि आदि की वर्षा से भरतक्षेत्र के भीतर आर्यखंड में चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित वृद्धिंगत हुई एक योजन की भूमि जलकर नष्ट हो जाती है अर्थात यहाँ के आर्यखंड की चित्रा पृथ्वी एक योजन तक ऊँची उठ गई है वह जलकर खाक होकर शेष भूमियों के समान हो जाती है। इस छठे काल के अंत के मनुष्यों की ऊँचाई एक हाथ, आयु सोलह वर्ष प्रमाण रहती है। इस प्रकार इक्कीस हजार वर्ष का यह काल समाप्त हो गया है।

उत्सर्पिणी का पहला—छठा काल

इसके पश्चात् उत्सर्पिणी इस नाम से विख्यात काल प्रवेश करता है इसके छह भेदों में से प्रथम अतिदुष्षमा, दुष्षमा, दुष्षमसुषमा, सुषमदुष्षमा, सुषमा और सुषमा–सुषमा काल क्रम से आते हैं। प्रथम अतिदुष्षमा काल छठे काल के सदृश छठा काल ही कहलाता है। उत्सर्पिणी काल के प्रारंभ में पुष्कर मेघ सात दिन तक सुखोत्पादक जल बरसाते हैं। जिससे वज्राग्नि से जली हुई पृथ्वी उत्तम हो जाती है। पुनः क्षीर मेघ क्षीर जल बरसाते हैं, अमृत मेघ अमृत जल बरसाते हैं और रस मेघ दिव्यरस की वर्षा करते हैं विविध रसपूर्ण औषधियों से भरी हुई भूमि सुस्वाद परिणत हो जाती है। पश्चात्

शीतल गंध को ग्रहण कर वे मनुष्य और तिर्यंच गुफाओं के बाहर निकल आते हैं। दिन प्रतिदिन उनकी आयु, अवगाहना, बुद्धि, तेज, बाहुबल, क्षमा, धैर्य इत्यादि बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार इक्कीस हजार वर्षों के बीत जाने पर भरतक्षेत्र में अतिदुष्षमा नामक काल पूर्ण होता है।

पंचम काल

पुनः दुष्षमाकाल प्रवेश करता है। इस काल में मनुष्य, तिर्यंचों का आहार बीस वर्ष तक पहले के समान रहता है। इस काल के प्रथम प्रवेश में उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष और ऊँचाई तीन हाथ प्रमाण होती है इस काल में एक हजार वर्षों के शेष रहने पर भरतक्षेत्र में चौदह कुलकरों की उत्पत्ति होने लगती है उसमें कनक, कनकप्रभ आदि कुलकरों में अंतिम कुलकर पद्मपुंगव नाम के होते हैं इनमें से प्रथम कुलकर की ऊँचाई चार हाथ और अंतिम कुलकर की ऊँचाई सात हाथ होती है उस समय श्रेष्ठ औषधि, वनस्पति आदि के होते हुए भी अग्नि नहीं रहती है अतः मथ करके अग्नि उत्पन्न करो, अन्न पकाओं आदि रूप से शिक्षा देते हैं वे पुरुष अत्यन्त म्लेच्छ होते हैं विशेष यह है कि पद्मपुंगव कुलकर के समय से विवाह विधियाँ प्रचलित हो जाती हैं।

चतुर्थ काल

चतुर्थ काल के प्रवेश में ऊँचाई सात हाथ और आयु एक सौ बीस वर्ष प्रमाण होती है। इस समय मनुष्य के पृष्ठ भाग की हड्डियाँ चौबीस होती हैं तथा मनुष्य पाँच वर्ण वाले शरीर से युक्त, मर्यादा, विनय, लज्जा से सहित संतुष्ट और सम्पन्न होते हैं। इस काल में चौबीस तीर्थंकर होते हैं उनमें से अंतिम कुलकर का पुत्र अन्तिम तीर्थंकर होता है उस समय से यहाँ विदेह क्षेत्र जैसी वृत्ति होने लगती है।

महापद्म सुरदेव से लेकर अनंतवीर्य पर्यंत चौबीस तीर्थंकर होते हैं। इनमें से प्रथम तीर्थंकर की ऊँचाई सात हाथ और आयु एक सौ सोलह वर्ष प्रमाण होती है तथा अंतिम तीर्थंकर की आयु एक पूर्वकोटि और ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है।

इस काल में बारह चक्रवर्ती, नव बलभद्र, नव नारायण, नव प्रतिनारायण उत्पन्न होते हैं। ये त्रेसठ शलाका पुरुष एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम प्रमाण इस तृतीय काल में क्रम से उत्पन्न होते हैं। यह काल ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। इस काल के अंत में मनुष्यों की आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण, ऊँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष और पृष्ठ भाग की हड्डियाँ चौंसठ होती हैं। उस समय नर-नारी देव एवं अप्सराओं के सदृश होते हैं।

तृतीय काल

इसके बाद सुषमा दुष्षमा काल के प्रारंभ में मनुष्यों की आयु एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण होती है। उस समय उन मनुष्यों की ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है, पुनः क्रम से उत्तरोत्तर आयु और

ऊँचाई प्रत्येक काल के बल से बढ़ती ही जाती है। इस समय यह पृथ्वी जघन्य भोगभूमि कही जाती है। इस काल के अंत में मनुष्यों की आयु एक पल्य प्रमाण होती है उस समय मनुष्य एक कोस ऊँचे और प्रियंगु जैसे वर्ण के होते हैं। उस समय से यहाँ पर कल्पवृक्ष उत्पन्न होने लगते हैं।

द्वितीय काल

इसके बाद सुषमा नामक काल प्रवेश करता है। इस काल के प्रथम प्रवेश में मनुष्य, तिर्यंचों की आयु आदि पूर्व के ही समान होती है परन्तु काल स्वभाव से उत्तरोतर बढ़ती जाती है। उस समय के नर-नारी दो कोस ऊँचे, पूर्ण चंद्रमा के सदृश मुख वाले, बहुत विनय एवं शील से सम्पन्न होते हैं एवं मनुष्यों के पृष्ठ भाग की हड्डियाँ एक सौ अट्ठाईस हैं। इस समय यहाँ पर मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है।

प्रथम काल का वर्णन

तदनंतर सुषमासुषमा नामक काल प्रविष्ट होता है काल स्वभाव से मनुष्य, तिर्यंचों की आयु, अवगाहना आदि आगे बढ़ती जाती है। उस समय यह पृथ्वी उत्तम भोगभूमि के नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। उस काल के अंत में मनुष्यों की आयु तीन पल्य प्रमाण और ऊँचाई तीन कोस प्रमाण है। उस समय के मनुष्य सूर्य के समान स्वर्ण वर्ण वाले हैं। उन मनुष्यों की पृष्ठ भाग की हड्डियां दो सौ छप्पन होती हैं तथा वे बहुत प्रकार की विक्रिया करने में समर्थ ऐसी शक्तियों से संयुक्त होते हैं।

इस प्रकार से फिर नियम से वही अवसर्पिणी काल प्रवेश करता है। इस प्रकार आर्यखंड में छह काल प्रवर्तते रहते हैं।

भरत, ऐरावत क्षेत्र के म्लेच्छ खंडों की व्यवस्था

पाँच म्लेच्छ खंड और विद्याधर श्रेणियों में अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी में क्रम से चतुर्थ और तृतीय काल के प्रारंभ से अंत तक हानि व वृद्धि होती रहती है अर्थात् इन स्थानों में अवसर्पिणी में चतुर्थ काल के प्रारंभ से अंत तक हानि और उत्सर्पिणी काल में तृतीय काल के प्रारंभ से अंत तक वृद्धि होती ही रहती है। यहाँ अन्य कालों की प्रवृत्ति नहीं होती है।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में अरहट की घड़ी के समान अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल अनंतानंत होते हैं। असंख्यात अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी की शलाकाओं के बीत जाने पर हुंडावसर्पिणी नाम से प्रसिद्ध एक काल आता है जो कि आजकल चल रहा है। इस हुंडावसर्पिणी काल के भीतर सुषमादुषमा काल की स्थिति में से कुछ काल के अवशिष्ट रहने पर भी वर्षा आदि पड़ने लगती है और विकलत्रय जीवों की उत्पत्ति होने लगती है। इसके अतिरिक्त इसी काल में कल्पवृक्षों का अंत और कर्मभूमि का व्यापार प्रारंभ हो जाता है उस काल में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं। चक्रवर्ती का विजय भंग और थोड़े से ही जीवों का मोक्ष गमन, चक्रवर्ती द्वारा की गयी द्विजों के वंश

की उपत्ति होती है। दुषमासुषमा काल में अट्ठावन ही शलाका पुरुष होते हैं और मध्य में धर्मतीर्थ की व्युच्छित्ति भी होती है।

ग्यारह रुद्र और कलहप्रिय नौ नारद होते हैं तथा इसके अतिरिक्त सातवें, तेइसवें और अंतिम तीर्थंकर के ऊपर उपसर्ग भी होता है। तृतीय-चतुर्थ, पंचम काल में उत्तम धर्म को नष्ट करने वाले दुष्ट, पापिष्ट, कुदेव, कुलिंगी भी दिखने लगते हैं। चाण्डाल, शबर, पुलिंद, किरात इत्यादि जातियाँ उत्पन्न होती हैं तथा दुषमाकाल में ब्यालीस कल्की व उपकल्की होते हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि, भूकम्प, वज्राग्नि आदि विचित्र भेदों को लिये हुये नाना प्रकार के दोष इस हुंडावसर्पिणी काल में हुआ करते हैं।

ऊर्ध्वलोक

मध्यलोक के ऊपर ७ राजु ऊँचा ऊर्ध्वलोक है। वस्तुतः मध्यलोक की नगण्य ऊँचाई (१ लाख ४० योजन) ऊर्ध्वलोक से ही ली गई है। ऊर्ध्वलोक में १६ स्वर्ग (८ जोड़े), ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश और ५ अनुत्तर विमान हैं तथा सबसे ऊपर सिद्धशिला अवस्थित है।

कल्पवासी देव

१६ स्वर्गों के नाम-सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत।

बारह कल्प—सौधर्म-ईशान युगल के २ इन्द्र, सनत्कुमार-माहेन्द्र युगल के २ इन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल का १ इन्द्र, लांतव-कापिष्ठ युगल का १ इन्द्र, शुक्र-महाशुक्र युगल का १ इन्द्र, शतार-सहस्त्रार युगल का १ इन्द्र, आनत-प्राणत युगल के २ इन्द्र और आरण-अच्युत युगल के २ इन्द्र ऐसे १२ इन्द्र होते है। इनके स्थानों की 'कल्प' संज्ञा होने से १२ कल्प कहलाते हैं।

कल्पातीत—बारह कल्प (१६ स्वर्ग) के ऊपर ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश और ५ अनुत्तर विमान हैं, इनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि भेद न होने से ये कल्पातीत कहलाते हैं। यहाँ के सभी देव अहमिंद्र कहलाते हैं।

नौ ग्रैवेयक—अधस्तन ३, मध्यम ३ और उपरिम ३ ऐसे नौ ग्रैवेयक हैं।

नौ अनुदिश—अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन ये चार दिशा में होने से श्रेणीबद्ध एवं सोम, सोमरूप, अंक और स्फटिक ये चार विदिशा में होने से प्रकीर्णक एवं मध्य में आदित्य नाम का विमान हैं, ऐसे ये ९ अनुदिश संज्ञक हैं।

पाँच अनुत्तर—विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित ये चार विमान चार दिशा में एवं 'सर्वार्थसिद्धि' नाम का विमान मध्य में है।

कल्प और कल्पातीतों के स्थान—मेरु तल से लेकर १-१/२ राजु में सौधर्म युगल, उसके ऊपर १-१/२ राजु में सानत्कुमार युगल, आगे आधे-आधे राजु में ६ युगल हैं अतः १-१/२+१-१/२=३, १/२×६=३, ऐसे ६ राजु में ८ युगल हैं। इसके आगे १ राजु में ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर और सिद्धशिला है।

विमानों की संख्या—सौधर्म स्वर्ग में ३२०००००, ईशान में २८०००००, सानत्कुमार में १२०००००, माहेन्द्र में ८०००००, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल में ४०००००, लांतव-कापिष्ठ में ५०००००, शुक्र-महाशुक्र में ४००००, शतार-सहस्रार युगल में ६०००, आनत-प्राणत, आरण और अच्युत ऐसे चार कल्पों में ७००, तीन अधो ग्रैवेयक में १११, तीन मध्य ग्रैवेयक में १०७, तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयक में ९१, अनुदिश में ९ और पाँच अनुत्तर में ५ ऐसे सब मिलाकर ३२०००००+२८०००००+१२०००००+८०००००+४०००००+५००००+४०००+६०००+७००+१०७+९१+९+५=८४९७०२३ विमान हैं और एक-एक विमान में १+१ जिनमंदिर होने से इतने ही मंदिर हो जाते हैं। उनमें स्थित जिन प्रतिमाओं को मेरा मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

विमानों के भेद—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक ऐसे ३ भेद हैं। जो मध्य में है, वह इन्द्रक कहलाता है। दिशाओं के विमान श्रेणीबद्ध और अन्तरालसंबंधी विमान प्रकीर्णक कहलाते हैं।

इन्द्रक की संख्या—इन्द्रक विमान को प्रतर भी कहते हैं। सौधर्म युगल में ३१, सनत्कुमार युगल में ७, ब्रह्मयुगल में ४, लांतव युगल में २, शुक्रयुगल में १, शतारयुगल में १, आनत आदि ४ कल्पों में ६, अधस्तन तीन ग्रैवेयक में ३, मध्यम तीन में ३, उपरिम तीन में ३, नव अनुदिश में १ और पाँच अनुत्तर में १ ऐसे मिलाकर ३१+७+४+२+१+१+६+३+३+३+१+१=६३ इन्द्रक विमान हैं। ऋतु, विमल, चन्द्र आदि इन इन्द्रकों के क्रम से अच्छे-अच्छे नाम हैं।

विमानों का प्रमाण—सभी इन्द्र विमान संख्यात योजन विस्तार वाले हैं। सभी श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं एवं प्रकीर्णक विमानों में कुछ संख्यात योजन वाले और कुछ असंख्यात योजन वाले हैं।

विमानों के वर्ण—सौधर्म युगल के विमान पाँच वर्ण वाले हैं। सानत्कुमार, माहेन्द्र में कृष्ण वर्ण के बिना चार वर्ण हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ में कृष्ण-नील बिना तीन वर्ण हैं। शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार में कृष्ण, नील, लाल के बिना पीत और शुक्ल दो ही वर्ण हैं। आगे आनत से लेकर अनुत्तरपर्यंत एक शुक्ल वर्ण के ही विमान हैं।

विमानों के आधार—सौधर्म युग्म के विमान जल के आधार हैं। सानत्कुमार युग्म के विमान पवन के आधार हैं। ब्रह्म आदि आठ कल्प स्वर्ग के विमान जल और वायु दोनों के आधार हैं। आगे आनत से लेकर अनुत्तर पर्यन्त विमान आकाश के आधार हैं अर्थात् पुद्गल स्कंध जल आदि के आकार परिणत हुए हैं, ऐसा समझना।

पृथ्वी आठ ही मानी गई हैं—सात नरक संबंधी एवं एक 'ईषत्प्राग्भार' नाम की सिद्ध पृथ्वी, अतः ये विमान अधर ही माने गये हैं।

सौधर्म आदि नाम—सौधर्म इन्द्र जहाँ रहते हैं, उसका नाम सौधर्म स्वर्ग है ऐसे ही अन्यत्र जानना।

देवों के प्रासाद—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों के ऊपर समचतुष्कोण व दीर्घ विविध प्रकार के प्रासाद स्थित हैं। ये सब प्रासाद सुवर्णमय, स्फटिकमय आदि रत्नों से निर्मित, उपपादशय्या, आसन शाला आदि से परिपूर्ण अनादि निधन हैं।

परिवारदेव—सभी इन्द्रों के परिवार देव दस प्रकार के होते हैं—प्रतीन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशदेव, लोकपाल, आत्मरक्ष, पारिषद, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग और किल्विषक।

एक-एक इन्द्र के एक-एक प्रतीन्द्र होने से १२ इन्द्रों के १२ प्रतीन्द्र सहित २४ इन्द्र माने गये हैं।

सौधर्म इन्द्र का परिवार—सौधर्म इन्द्र का १ प्रतीन्द्र, ८४००० सामानिक, ३३ त्रायस्त्रिंश, सोम, यम, वरुण तथा धनद ये ४ लोकपाल, ३३६००० आत्मरक्षक, आभ्यन्तर पारिषददेव १२०००, मध्यम पारिषद १४०००, बाह्य पारिषद १६००० हैं। वृषभ, अश्व, रथ, हाथी, पदाति, गन्धर्व और नर्तक इस प्रकार से सौधर्म इन्द्र की सात सेनाएँ होती हैं। इन सात सेनाओं में से प्रत्येक की ७-७ कक्षाएँ होती हैं। उनमें से प्रथम सेना का प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवों के बराबर है। इससे आगे सप्तम सेना पर्यंत उससे दूना-दूना है। सौधर्म इंद्र के बैल की सेना की प्रथम कक्षा में ८४००० बैल हैं इससे आगे सात कक्षाओं तक वृषभ सेना का प्रमाण एक करोड़ छह लाख अड़सठ हजार है १,०६,६८००० है और अश्व, रथ आदि भी प्रत्येक इतने-इतने मात्र हैं। सौधर्म इन्द्र के समस्त अनीकों की संख्या ७,४६,७६००० प्रमाण है।

एक इन्द्र के प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक देव असंख्यात कहे गये हैं।

ऐरावत हाथी—सौधर्म इन्द्र के आभियोग्य देवों का स्वामी और 'बालक' नामक देव होता है। यह देव वाहनजाति का है, अपनी विक्रिया से १ लाख उत्सेध योजन प्रमाण 'ऐरावत' हाथी का शरीर बना लेता है। इसके दिव्य रत्न मालाओं से युक्त ३२ मुख होते हैं। एक-एक मुख में रत्नों से निर्मित ४-४ दाँत होते हैं। एक-एक दाँत पर एक-एक सरोवर एवं एक-एक सरोवर में एक-एक कमलवन होता है। एक-एक कमल खण्ड में विकसित ३२ महापद्म होते हैं और एक-एक महापद्म एक-एक योजन

का होता है। इन एक-एक महाकमलों पर एक-एक नाट्यशाला होती है। एक-एक नाट्यशाला में ३२-३२ अप्सराएँ नृत्य करती हैं, यह ऐरावत हाथी भगवान के जन्मोत्सव में आता है।

सौधर्म इन्द्र की देवियाँ—सौधर्म इन्द्र की 'शची' नाम की ज्येष्ठ देवी होती है, ऐसे आठ अग्र देवी हैं। ये शची आदि अपने रूप को विक्रिया से १६०००-१६००० बना लेती हैं। सौधर्म इन्द्र की अतिशय प्रिय वल्लभिका देवियाँ ३२००० हैं एवं एक-एक अग्रदेवी के १६०००-१६००० परिवार देवियाँ हैं। ये वल्लभिका और परिवार देवियाँ भी १६०००-१६००० प्रमाण विक्रिया कर सकती हैं। अर्थात् सौधर्म इन्द्र के १६००० देवी तथा ८ अग्रदेवी हैं।

सौधर्म इन्द्र का राजांगण—इन्द्र की राजांगण भूमि ८४००० योजन प्रमाण है और सुवर्णमय वेदी से वेष्टित है।

सुधर्मा-सभा—सौधर्म इन्द्र के भवन में ईशान दिशा में ३००० कोस ऊँची, ४०० कोस लम्बी, २०० कोस विस्तृत 'सुधर्मा' नामक सभा है। इस रमणीय सुधर्मा सभा में बहुत प्रकार के परिवार से युक्त सौधर्म इन्द्र विविध सुखों को भोगता है।

जिनभवन—उसी दिशा में अनुपम और रत्नमय जिनभवन हैं।

शरीर की अवगाहना—सौधर्म युगल के देवों के शरीर की अवगाहना ७ हाथ, सानत्कुमार युगल की ६ हाथ, ब्रह्मयुगल और लांतव युगल में ५ हाथ, शुक्र, महाशुक्र में ४ हाथ, शतार-सहस्रार में ३-१/२ हाथ, आनत से अच्युत तक स्वर्गों में ३ हाथ, तीन अधोग्रैवेयक में २-१/२ हाथ, तीन मध्य ग्रैवेयक में २ हाथ, तीन उपरिम ग्रैवेयक में १-१/२ हाथ, नव अनुदिश एवं पाँच अनुत्तरों में १ हाथ प्रमाण होती है।

उत्कृष्ट आयु—सौधर्म युगल में उत्कृष्ट आयु २ सागर, सानत्कुमार युगल में ७ सागर, ब्रह्मयुगल में १० सागर, लांतव युगल में १४, शुक्र युगल में १६, शतार युगल में १८, आनत युगल में २०, आरण युगल में २२ सागर है। आगे नव ग्रैवेयक तक १-१ सागर बढ़ते हुए अंतिम ग्रैवेयक में ३१ सागर, नव अनुदिश में ३२ सागर और पंच अनुत्तर में ३३ सागर प्रमाण है।

विक्रिया और अवधिज्ञान—प्रथम स्वर्ग के देव ऊपर में अपने विमान के ध्वजदंड तक एवं नीचे प्रथम पृथ्वी तक अवधिज्ञान से जान लेते हैं। आगे बढ़ते-बढ़ते सर्वार्थसिद्धि के देव लोकनाड़ी तक जान लेते हैं। इन देवों को जहाँ तक अवधिज्ञान है, वहीं तक विक्रिया करने की शक्ति है। सोलह स्वर्ग तक के देव विक्रिया से यत्र-तत्र आते जाते हैं। आगे के देव जाने की शक्ति रखते हैं किन्तु जाते नहीं हैं।

प्रवीचार सुख—प्रवीचार का नाम कामसेवन है। सौधर्म युगल में काय प्रवीचार, आगे दो स्वर्ग में स्पर्श प्रवीचार, आगे चार स्वर्ग में रूप प्रवीचार, आगे चार स्वर्ग में शब्द प्रवीचार और आगे

आनत आदि चार में मनः प्रवीचार है। इन स्वर्गों के आगे नवग्रैवेयक आदि में देवांगना भी नहीं है और उनके भोगों की इच्छा भी नहीं है।

देवियों के उत्पत्ति स्थान—सौधर्म-ईशान स्वर्ग तक ही देवियों की उत्पत्ति होती है, आगे नहीं। आगे के देव अपनी-अपनी देवियों की उत्पत्ति को अवधिज्ञान से जानकर अपने-अपने स्थान पर ले जाते हैं।

विरहकाल—सब इन्द्र, उनकी महादेवियाँ, लोकपाल और प्रतीन्द्र, इनका उत्कृष्ट विरहकाल छह मास है।

देवों का आहार काल—जो देव जितने सागर तक जीवित रहते हैं, उतने ही हजार वर्षों में मानसिक आहार ग्रहण करते हैं। पल्य प्रमाण आयु वाले पाँच दिन में आहार ग्रहण करते हैं।

श्वासोच्छ्वास ग्रहणकाल—सौधर्म युगल में आयु दो सागर की है अतः वहाँ उच्छ्वास का अन्तराल दो पक्ष का है, ऐसे ही जितने सागर की आयु है, उतने पक्ष बीतने पर श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं।

लौकांतिकदेव—ब्रह्म स्वर्ग के अग्र भाग में इनके निवास होने से ये लौकान्तिक कहलाते हैं अथवा ये लोक—संसार का अन्त करने वाले एक भवावतारी हैं इसलिए लौकान्तिक कहलाते हैं। इनके सारस्वत, आदित्य, वन्हि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट ऐसे मुख्य आठ भेद हैं। इनके शरीर की ऊँचाई पाँच हाथ, आयु आठ सागर की और लेश्या शुक्ल होती है। ये भगवान के तपकल्याणक में वैराग्य की प्रशंसा करने के लिए भक्तिवश आते हैं, अन्य कल्याणकों में नहीं आते हैं, ये बालब्रह्मचारी हैं तथा देवर्षि कहलाते हैं।

एक भवावतारी देव—सौधर्म इन्द्र आदि दक्षिण इन्द्र, शची इन्द्राणी, दक्षिण इन्द्रों के चारों लोकपाल, लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि के देव, ये सब नियम से मनुष्य का एक भव प्राप्त कर तपश्चर्या के बल से कर्मों का नाशकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

देवों का जन्म—पुण्य के उदय से देवगति में उपपाद शय्या से जन्म होता है। जन्म लेते ही आनन्द वादित्र बजने लगते हैं। अन्तर्मुहूर्त में ही देव अपनी छहों पर्याप्तियों को पूर्ण कर नवयौवन सहित हो जाते हैं और अवधिज्ञान से सब जान लेते हैं, अनन्तर सरोवर में स्नान करके वस्त्रालंकार से भूषित होकर जिनमंदिर में जाकर भगवान की पूजा करते हैं। जो देव मिथ्यादृष्टि हैं, वे अन्य देवों की प्रेरणा से जिनदेव को कुल देवता मानकर पूजन करते हैं।

सोलह स्वर्ग तक के देवगण तीर्थंकरों के कल्याणक आदि महोत्सव में आते हैं किन्तु आगे के अहमिन्द्र देव वहीं पर मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं।

सिद्धशिला

लोक के अग्रभाग पर मनुष्यलोक—ढाईद्वीप प्रमाण विस्तृत—४५ लाख योजन प्रमाण सिद्धशिला है। ये मध्य में आठ योजन ऊँची है और क्रम से घटते हुए एक अणु प्रमाण रह गई है। यह "उत्तानचषकमिव[१]"-सीधे रखे हुए कटोरे के समान है—अर्धचंद्र के समान है। ढाईद्वीप से अनादिकाल से लेकर आज तक अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी हुए हैं अतः वहाँ पर एक अणुमात्र भी जगह खाली नहीं है।

ये सिद्ध भगवान सिद्धशिला के ऊपर घनोदधिवातवलय, घनवातवलय से ऊपर तनुवालवलय में विराजमान हैं। सभी सिद्धों के मस्तक तनुवातवलय के अंतिम भाग से स्पर्शित हैं। आगे लोकाकाश के बाहर धर्मास्तिकाय का अभाव होने से एवं अलोकाकाश में जीव द्रव्य के नहीं होने से सिद्ध भगवान वहीं तक लोक के अग्रभाग में विराजमान हैं। उन अनंतानंत सिद्धों को हमारा अनंत-अनंत बार नमस्कार होवे।

इति श्रीगौतमस्वामीप्रणीत-श्रीगौतमगणधरवाण्यां गणिनीज्ञानमती-विरचित-अमृतवर्षिणीटीकायां प्रथमाध्यायान्तर्गत-मंगलाचरण-नामप्रकरणं समाप्तम् ।

१. त्रिलोकसार गाथा ५५६, ५५७, ५५८।

भगवान महावीर स्तोत्र

–गणिनी ज्ञानमती

शंभु छंद

महावीर ! वीर ! सन्मति ! भगवन् ! अतिवीर ! सदा मंगल करिये।
हे वर्धमान ! भववारिधि से, अब मुझको पार त्वरित करिये।।
वह कुंडलपुरि जगपूज्य हुई, सिद्धार्थ दुलारे जन्मे थे।
त्रिशला माता की गोदी में, त्रिभुवन के गुरुवर खेले थे।।१।।

आषाढ़ सुदी छठ पूज्य हुई, जब गर्भ में प्रभु अवतार लिया।
प्रियकारिणि माँ की सेवा का, सुर ललनाओं ने भार लिया।।
शुभ चैत्र सुदी तेरस का दिन, है धन्य धन्य वह सुखद घड़ी।
जब वर्द्धमान ने जन्म लिया, नभ से सुर पंक्ति उमड़ पड़ी।।२।।

प्रभु शैशव में फणपति फण पर, चढ़कर संगम सुर जीता था।
नहिं ब्याह किया, नहिं राज्य किया, जनता का मन भी जीता था।।
मगसिर वदि दशमी धन्य हुई, जब केंशलोच कीना तुमने।
नृप कूल ने प्रथम आहार दिया, पंचाश्चर्य किया देवगण ने।।३।।

कौशाम्बी में चंदनासती, शिर मुंडित जकड़ी बेड़ी में।
प्रभु दर्शन से बेड़ियाँ झड़ी, सुन्दर तन हुआ एक क्षण में।।
कोदों भोजन हो गया खीर, प्रभु को आहार दे धन्य हुई।
यह महिमा तीर्थंकर प्रभु की, पंचाश्चर्यों की वृष्टि हुई।।४।।

अतिमुक्तक वन में ध्यान लीन, थे भव ने आ उपसर्ग किया।
तब अचलित प्रभु को देख स्वयं, भार्या सह पूजा भक्ति किया।।
वैशाख सुदी दशमी तिथि में, केवल रविकिरणें प्रगट हुईं।
शुभ समवसरण था रचा हुआ, दिव्यध्वनि फिर भी खिरी नहीं।।५।।

श्रावण श्यामा एकम उत्तम, जब गौतम गणधर आये हैं।
विपुलाचल पर ध्वनि प्रगट हुई, मुनिगण सुरनर हर्षायें हैं।।

वे वीरप्रभो ! तव शासन में, मुझको रत्नत्रय निधी मिली।
मैं भक्ति सहित प्रणमूं तुमको, मेरी मन कलियाँ आज खिलीं।।६।।

तनु सात हाथ कांचन कांती, आयु बाहत्तर वर्ष कही।
है चिन्ह मृगेन्द्र प्रभो तेरा, जो ध्यावें पावें मोक्ष मही।।
कार्तिक वदि चौदश रात्रि अंत, आमावस का प्रत्यूष कहा।
सब कर्मनाश प्रभु मोक्ष गये, स्वात्मोत्थ सहज आनंद लहा।।७।।

पावापुर के उपवन में जो, सरवर है कमल खिले उसमें।
प्रभु के निर्वाण कल्याणक से, अब तक भी कमल खिले सच में।
देवों ने आकर पूजा की, महावीर प्रभू त्रिभुवनपति की।
अंधियारी में दीपक ज्वालें, तब से ही दीपावली हुई।।८।।

हे वीर प्रभो ! मंगलमय तुम, लोकोत्तम शरणभूत तुम ही।
भव भव के संचित पाप पुंज, इक क्षण में नष्ट करो सब ही।।
मैं बारंबार नमूं तुमको, भगवन्! मेरे भव त्रास हरो।
'सज्ज्ञानमती' सिद्धी देकर, स्वामिन् ! अब मुझे कृतार्थ करो।।९।।

चैत्यभक्ति

लघुचैत्यभक्तिः

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानाम् ।।१।।

अवनि-तल-गतानां कृत्रिमा-कृत्रिमाणां
वन-भवन-गतानां दिव्यवैमानिकानाम् ।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि।।२।।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्रत्रये ये भवाः
चन्द्राम्भोज-शिखंडिकंठ-कनक-प्रावृड्-घनाभा जिनाः।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धना।
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।।३।।

श्रीमन्-मेरौ कुलाद्रौ रजत-गिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे।
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषाङ्के।
ईष्वाकारे-ऽञ्जनाद्रौ दधिमुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोके-ऽभिवन्दे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि।।४।।

द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्र-नीलप्रभौ
द्वौ बन्धूक-समप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गु प्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिताः सन्तप्त-हेमप्रभाः
ते संज्ञान-दिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः।।५।।

卐

चैत्यभक्ति

अपरनाम

जयति भगवान् महास्तोत्र

(अध्याय १)

(पद्यानुवाद एवं अर्थ सहित)

श्रीगौतमस्वामी उवाच—

श्री गौतमस्वामी श्री वर्धमानस्वामी को प्रत्यक्ष करके 'जयति भगवान्' इत्यादि उच्चारण करते हैं–

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताःपरस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

अमृतवर्षिणी टीका–

पद्यानुवाद

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।

अर्थ—जो सुवर्णमय कमलों पर सामान्य मनुष्यों में न पाये जाने वाले और चरण क्रम के संचार से रहित प्रचार—गमन से शोभायमान हैं, देवों के मुकुटों में लगी हुई छाया-मणियों से निकलती हुई प्रभा से आलिंगित—स्पर्शित हैं ऐसे जिनके चरणों में आकर कलुष हृदय वाले, अहंकार से युक्त, परस्पर वैरी ऐसे सर्प, नेवला आदि जीव अपने-अपने स्वाभाविक क्रूर स्वभाव को छोड़कर विश्वास को प्राप्त होते हैं वे भगवान् जिनेन्द्र जयवंत रहें ।।१।।

श्रीगौतमस्वामी जिनेंद्रधर्म को नमस्कार करते हुये कहते हैं–

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।

परिणतनयस्याङ्गीभावाद्विविक्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।

जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।

अर्थ—अनन्तर उत्तमक्षमादिलक्षण श्रेष्ठ धर्म जयवंत हो, जिससे प्राणियों के स्वर्गादि पदों की प्राप्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। जो संसारी जीवों को नरकादि कुगतियों से, मिथ्यादर्शन आदि कुमार्गों से और उनसे जायमान—उत्पन्न क्लेशों से छुड़ाता है तथा द्रव्यार्थिक नय को गौणकर पर्यायार्थिक नय की प्रधानता लेकर अङ्ग, पूर्व आदि रूप से रचा गया अथवा पूर्वापर दोषरहित रचा गया ऐसा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप से अथवा अङ्ग, पूर्व और अंग–बाह्यरूप से तीन प्रकार का जिनेन्द्र का वचनरूप अमृत संसार से रक्षा करे।।२।।

श्री गौतमस्वामी भगवान के ज्ञान की वंदना करते हैं–

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी।
प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्यस्वभावविभाविनी।।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं।
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।

जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।
अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।

अर्थ—अनन्तर जिनेन्द्र का केवलज्ञान जयवंत हो, जिसमें स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सात भंगरूप कल्लोलें हैं जो द्रव्यों के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप स्वभावों को प्रकाशित करता है। ऐसा यह केवलज्ञान अनन्तसुख के मोहनीयरूप द्वार को अंतराय-रूप आगल से रहित उद्घाटन कर ज्ञानदर्शनावरणरूप रज से रहित व्याधि अथवा जरा- मरण से रहित अविनश्वर मोक्ष को देवे।।३।।

श्री गौतमस्वामी नवदेवों की स्तुति कर रहे हैं–

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

अर्हत् सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परमगुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।४।।

अर्थ—सम्पूर्ण जगत् द्वारा वन्दनीय सब अर्हंतों को , सब आचार्यों को, सब उपाध्यायों को और सब साधुओं को नमस्कार हो ।।४।।

मोहादिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदाहतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ।।५।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।५।।

अर्थ—जो मोह, राग, द्वेष आदि सम्पूर्ण दोषरूप शत्रुओं के घातक हैं जिनने हमेशा के लिये ज्ञानावरणरूप रज को नष्ट कर दिया है तथा अन्तराय कर्म का भी जिनने विनाश कर दिया है ऐसे पूजा योग्य अर्हंतों को नमस्कार हो ।।५।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।

अर्थ—क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, आदि गुणों का समुदाय जिसकी उत्पत्ति में साधन है। जो सम्पूर्ण लोक के हित का कारण है और शुभ धाम—जो निर्वाण उसमें स्थापन करने वाला है ऐसे जिनेन्द्रोक्त धर्म की वन्दना करता हूँ ।।६।।

मिथ्याज्ञानतमोवृतलोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।७।।

अर्थ—जो मिथ्याज्ञानरूप अन्धकार से आच्छादित लोक का प्रकाशक होने से अद्वितीय ज्योति है। अपरिमित श्रुतज्ञान का जनक होने से संबंधी है। आचारादि अङ्गों और पूर्व वस्तु आदि उपांगों से युक्त है तथा एकान्तवादियों कर अजेय है ऐसे जैनवचन की सदा वन्दना करता हूँ ।।७।।

भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।८।।

अर्थ— भवनवासी देवों, कल्पवासी देवों,ज्योतिष्क देवों और व्यन्तर देवों के विमानों में तथा मनुष्य लोक में तीन जगत् कर वन्दनीय जिनेन्द्रदेव की जितनी भर प्रतिमा हैं उन सबको मन, वचन और काय से वन्दना करता हूँ ।।८।।

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

भुवनत्रय में जितने जिनगृह, भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

अर्थ—जिनका संसारपरिभ्रमण विनष्ट हो चुका है, तीन भुवन के स्वामी देवेन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकरों के आलय—मन्दिर की पंक्तियों को भी संसाररूप अग्नि की शांति के लिये वन्दना करता हूं ।।९।।

इति पंच महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।

अर्थ—इस तरह वंदना किये गये अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता बुधजन जो गणधर देवादि उनको इष्ट ऐसी मुझे निर्मल बोधि देवें ।।१०।।

श्रीगौतमस्वामी कृत्रिम–अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं–

अकृतानि कृतानि चाप्रमेयद्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।११।।

अर्थ—तीन जगत में विद्यमान प्रचुरप्रभा से समन्वित मन्दिरों में स्थित मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिंबों को प्रणमन करता हूँ ।।११।।

द्युतिमंडलभासुराङ्गयष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभवहेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।

अर्थ—जो तीन भुवन में विद्यमान हैं जिनका शरीर—यष्टि प्रभामंडल से दैदीप्यमान है, ऐसी अर्हंतों की अनुपम प्रतिमाओं को वन्दना करने वाला मैं पुण्य की प्राप्ति के निमित्त शरीर से अंजलि बांधता हूँ अर्थात् ऐसी प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।।१२।।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्याप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।

अर्थ—जो आयुध, विकार, आभूषणों से रहित हैं। अपने ही स्वभाव में स्थित हैं तथा कान्ति कर अतुल्य हैं ऐसी कृती अर्थात् कृतकृत्य जिनेश्वरों की प्रतिमागृहों में विराजमान प्रतिमाओं को पाप की शान्ति के लिये वन्दन करता हूँ।।१३।।

कथयंति कषायमुक्तिलक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमंति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।

अर्थ—उत्कृष्ट शान्तता युक्त होने से कषाय का अभावरूप लक्ष्मी को कहने वाली, जिनेश्वर का जैसा रूप है वैसी मूर्तिमती, ऐसी संसार का नाश कर देने वाले जिनेश्वरों की मूर्तियों को आत्मपरिणामों की निर्मलता होने के लिये नमस्कार करता हूँ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।

अर्थ—तीन जगत में प्रसिद्ध अर्हंतों के प्रतिबिंबों की भक्ति करने से जो यह पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है जो कि पाप के मार्ग को रोकने वाला है उस समर्थ पुण्य से मेरी भक्ति जन्म-जन्म में जिनधर्म में ही स्थिर होवे ।।१५।।

चतुर्णिकाय देवों के गृहों में व मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं–

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ।।१६।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत् की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।

अर्थ—सम्पूर्ण पदार्थ जिनके विषयभूत हैं अथवा परिपूर्ण यथाख्यातचारित्र जिनके विद्यमान है, क्षायिकदर्शन और क्षायिकज्ञानरूप संपदा जिनके मौजूद है ऐसे अर्हंतों के चैत्यों का अपनी बुद्धि के अनुसार परिणामों की निर्मलता के लिए अथवा कर्ममल के प्रक्षालन के लिये कीर्तन करूँगा ।।१६।।

श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयंभासुरमूर्तयः।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिनमूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।

अर्थ—मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के दैदीप्यमान भवनों में स्थित हैं जिनका स्वरूप स्वयं भासुररूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परमगति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें।।१७।।

श्री गौतमस्वामी मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनबिंबों की वन्दना करते हैं–

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभव हेतु, सब जिनचैत्य जिनालय को।।१८।।

अर्थ—इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने प्रचुरतर प्रतिबिंब हैं उन सबको विभूति के लिए वंदन करता हूँ ।।१८।।

ये व्यन्तरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।

अर्थ— व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें ।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान् ।।२०।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।

अर्थ— अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हंतों के जो शाश्वत गृह हैं उनको मैं विभूति के निमित्त नमस्कार करता हूँ ।।२०।।

वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।

सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।

अर्थ— जो देवों के मुकुट के अग्र भाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को चरणों द्वारा सेवन करती हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान संबंधी प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।।२१।।

इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रवनिरोधिनी।।२२।।

इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।२२।।

अर्थ— इस प्रकार स्तुति के मार्ग को अतिक्रमण करने वाली अर्थात् जिसकी स्तुति इन्द्रादिक देव भी नहीं कर सकते ऐसी अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्हंतों के चैत्यों की स्तुति मेरे सम्पूर्ण आस्रवों को रोकने वाली होवे ।।२२।।

श्री गौतमस्वामी अर्हंत भगवान को महानदीरूपी तीर्थ बना रहे हैं–

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारणमतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम्।।२३।।

लोकालोकसुतत्त्वप्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम्।।२४।।

शुक्लध्यानस्तिमितस्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमंद्रघोषं नानागुणसमितिगुप्ति-सिकतासुभगम्।।२५।।

क्षान्त्यावर्तसहस्रं सर्वदया -विकचकुसुमविलसल्लतिकम्
दुःसहषरीषहाख्यद्भुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२६।।

व्यपगतकषायफेनं रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम् ।
अत्यस्तमोह-कर्दममतिदूरनिरस्तमरण-मकरप्रकरम्।।२७।।

ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रोद्रेकितनिर्घोष-विविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधि-पुलिनं सास्त्रवसंवरणनिर्जरानिस्त्रवणम्।।२८।।

गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम्।।२९।।

अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं ।
व्यवहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावभावगभीरम्।।३०।।

अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।२३।।

लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शील रु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।२४।।
शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।२५।।

क्षमादि हैं आवर्त सहस्त्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।२६।।

रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।२७।।

ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं आस्त्रव, रोध निर्जरा जल निःसृत।।२८।।

गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।२९।।

इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।३०।।

अर्थ—जो तीन भुवन में निवास करने वाले भव्यजनरूप तीर्थ यात्रियों के पाप कर्म के प्रक्षालन करने में अद्वितीय कारण है, जिसने लौकिक मिथ्या तीर्थों का अतिक्रमण—उल्लंघन कर दिया है, जिसमें लोक और अलोक का सच्चा स्वरूप समझाने में समर्थ ऐसे दिव्य केवलज्ञान या मतिश्रुतादि ज्ञान ही प्रतिदिन बहते हुये प्रवाह हैं, व्रत और शील ही जिसके स्वच्छ और विशाल दो तट हैं, जो शुक्ल ध्यानरूप स्थित ऐसे दीप्त राजहंसों कर शोभित है, जिसमें निरंतर स्वाध्याय पाठ ही मनोज्ञ नाद (शब्द) हैं, जो चौरासी लाख गुण, पंच समिति और तीन गुप्तिरूप सिकता (बालू) से सुशोभित है, जिसमें क्षमागुण ही हजारों आवर्त—लहरें हैं, सम्पूर्ण प्राणियों पर दयाभाव ही खिले हुए पुष्पों से शोभायमान बेल है, दुःसह क्षुधादि परीषह ही शीघ्र इधर—उधर फैलती हुई चंचल तरंगों का समुदाय है, कषायरूप फेन जिसमें नष्ट हो गया है, जो राग-द्वेषादि दोषरूप शैवाल (कांजी) से रहित है, जिसमें मोहरूप कीचड़ का अभाव है, मरणरूप मकरों का समूह नष्ट हो चुका है, ऋषिश्रेष्ठ गणधरदेवादिकों कर बोली गई स्तुतियों के मनमोहक उत्कट शब्द ही नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव हैं, नाना भांति के तपोनिधि—मुनि ही किनारा है, जो आते हुए कर्मरूप जल के संवरण और आए हुए कर्मरूप जल के निःस्रवण से मुक्त है, जिसमें गणधर , चक्रधर, इन्द्र आदि भव्य-पुंडरीक पुरुषों ने पापरूप कलुष मल को दूर करने के लिये भक्तिपूर्वक स्नान किया है, जो बड़ा भारी है, परम पवित्र है, जिनके स्वरूप प्रतिवादियों करके न जीते जा सकें ऐसे जीवादि पदार्थों से जो अगाध है ऐसा अर्हंतरूप महानद का उत्तम तीर्थ पापमल का प्रक्षालनरूप स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए मेरे भी दुस्तर समस्त पापों का व्यवहरण—नाश करे ।।२३-३०।।

श्री गौतमस्वामी भगवान की वीतरागता का बहुत ही सुंदर वर्णन करते हुये वर्धमान स्वामी की वंदना कर रहे हैं-

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवह्नेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः ।
विषादमदहानितः प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम्।।३१।।

निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।

निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्,
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात्।।३२।।

मितस्थितनखांगजं गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचंदनप्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादिदिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम्।।३३।।

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडलमिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

तदेतदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणि–
स्फुरत्किरणचुंबनीयचरणारविन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र ! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अतः प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अतः, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंतःकरण शुद्धि पूरण।।३१।।

रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।३२।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभो! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।३३।।

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।

अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।३४।।
अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।३५।।

अर्थ—हे भगवन् जिनेन्द्र ! सम्पूर्ण कोपरूप अग्नियों के क्षय हो जाने से जिसमें नयनरूप उत्पलपत्र कुछ-कुछ लाल हैं या लालिमा रहित हैं, वीतरागता की परम प्रकर्षता के होने से जो कटाक्षरूप वाणों के छोड़ने से रहित है, विषाद और मद की हानि होने से सदा प्रफुल्लित है ऐसा आपके यथाजातरूप में आपका मुख आपके हृदय की आत्यंतिक शुद्धि को कह रहा है। हे भगवन्! आपका रूप राग के आवेग के उदय के नष्ट हो जाने से आभरण रहित होने पर भी भासुररूप है, आपका स्वाभाविक रूप निर्दोष है इसलिये वस्त्र रहित नग्न होने पर भी मनोहर है, आपका यह रूप न औरों के द्वारा हिंस्य है और न औरों का हिंसक है इसलिये आयुध रहित होने पर भी अत्यन्त निर्भय स्वरूप है, तथा नाना प्रकार की क्षुत्पिपासादि वेदनाओं के विनाश हो जाने से आहार न करते हुए भी तृप्तिमान् है। आपके नख और केश नहीं बढ़ते हैं वे उतने ही हर समय रहते हैं। जितने केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय होते हैं। रजोमल का स्पर्श भी आपके नहीं हैं, आपके रूप में विकसित कमल और चन्दन के सदृश दिव्यगंध का उदय है। आपका यह रूप सूर्य, चन्द्रमा, वज्र आदि एक सौ आठ प्रशस्त- चिन्हों से अलंकृत है तथा हजारों सूर्यों के समान भासुर होकर भी नेत्रों को अत्यन्त प्रिय है। आपके रूप को देखकर मोक्ष के परिपंथी शत्रु ऐसे प्रबल राग, मोह आदि दोषों से कलंकित मनवाला जन-समुदाय अतिशय शुद्ध हो जाता है, जो जगत् में देखने वालों को चारों दिशाओं में सदा सन्मुख ही शरत्कालीन उदयापन्न निर्मल चन्द्रमा के समान दीखता है, देवेन्द्रों के नमस्कार प्रवण मुकुटों की पंक्तियों में जटित मणियों की स्फुरायमान किरणों से आपके दोनों चरण-कमल आलिंगित हैं ऐसा यह आपका रूप, जैनमत से भिन्न अन्य मिथ्या तीर्थों से भी गुरु—रूप राग-द्वेष, मोहादि दोषों के प्रादुर्भाव से अन्धे हुए सारे जगत को पवित्र करे ।।३१-३५।।

श्री गौतमस्वामी तीनों लोकों के समस्त कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हुये कहते हैं-

आलोचना या अंचलिका

इच्छामि भंते ! चेइयभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि तीसुवि लोएसु

भवणवासिय-वाण-विंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ सतत।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अर्थ—हे भगवन्! चैत्यभक्ति और तत् संबंधी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक में जो कृत्रिम और अकृत्रिम जितनी प्रतिमाएँ हैं उन सबको तीन लोक में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने-अपने परिवार सहित दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से, दिव्य धूप से, दिव्य चूर्ण से, दिव्य सुगंधि से और दिव्य अभिषेक से सदा अर्चते हैं पूजते हैं वन्दते हैं नमस्कार करते हैं, मैं भी यहीं पर बैठा हुआ वहाँ स्थित प्रतिमाओं को सदा अर्चता हूँ पूजता हूँ वन्दता हूँ नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनगुणसंपत्ति प्राप्त हो।

शांतिमंत्र

(1) ॐ ह्रीं अर्हं असि आ उसा नमः सर्वशांतिं कुरु कुरु स्वाहा।

(2) ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय जगत्शान्तिकराय सर्वोपद्रवशान्तिं कुरु कुरु ह्रीं नमः।

''जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभितौ।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—भगवान आप जयशील हों–आप की जय हो। आपके चरण–कमल स्वर्णकमलों पर विहार करते हैं। अर्थात् आपके श्रीविहार के समय देवगण आकाश में स्वर्णकमलों की रचना करते जाते हैं उन्हीं स्वर्णकमलों पर आपके चरणकमल पड़ते जाते हैं।

भगवान के समवसरण का संक्षिप्त वर्णन–

भगवान को केवलज्ञान प्रगट होते ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर अर्धनिमिष में समवसरण की रचना कर देता है। उस समय भगवान तीनों लोकों को और उनकी भूत, भावी, वर्तमान समस्त पर्यायों को युगपत् एक समय में जान लेते हैं।

भगवान महावीर का समवसरण पृथ्वी से ५००० धनुष (२०००० हाथ) ऊपर आकाश में अधर है। पृथ्वी से एक हाथ ऊपर से एक–एक हाथ ऊँची बीस हजार सीढ़ियाँ हैं। इनसे चढ़कर मनुष्य और तिर्यंच आदि सभी भव्य जीव—बाल, वृद्ध, अंधे, लूले, लंगड़े, रोगी आदि अंतर्मुहूर्त (४८ मिनट) में ऊपर पहुँच जाते हैं। भगवान ऋषभदेव का समवसरण १२ योजन (९६ मील) का है। आगे घटते–घटते महावीर स्वामी का समवसरण एक योजन (८ मील) का है।

इसमें चार परकोटे और पाँच वेदियाँ हैं। इनके आठ भूमियाँ हैं। चारों दिशाओं में बहुत ही विस्तृत वीथी बड़ी–बड़ी गलियाँ हैं।

इस समवसरण में क्रम से पहले धूलिसाल परकोटा, चैत्यप्रासाद भूमि, वेदी, खातिकाभूमि, वेदी, लताभूमि, परकोटा, उपवनभूमि, वेदी, ध्वजभूमि, परकोटा, कल्पभूमि, वेदी, भवनभूमि, परकोटा, श्रीमण्डपभूमि और वेदी है। आगे १६ सीढ़ी ऊपर चढ़कर पहली कटनी, ८ सीढ़ी चढ़कर दूसरी कटनी, पुनः ८ सीढ़ी चढ़कर तीसरी कटनी है। इसी पर भगवान विराजमान हैं।

प्रत्येक परकोटे और वेदियों में चारों दिशाओं में एक–एक गोपुरद्वार हैं। जिनमें से पूर्वदिशा में ''विजय'', दक्षिण में ''वैजयंत'', पश्चिम में ''जयंत'' और उत्तर में ''अपराजित'' ऐसे नाम हैं। इन चारों द्वारों के उभय पार्श्व में दो–दो नाट्यशालाएं हैं, जिनमें देवांगनाएं भगवान की भक्ति में विभोर हो नृत्य–गान करती रहती हैं। वहाँ द्वारों के दोनों ओर नवनिधि, मंगलघट और धूपघट आदि स्थित हैं। प्रत्येक परकोटे के द्वारों पर देवगण हाथ में दण्ड, मुद्गर आदि लेकर रक्षक बनकर खड़े हुए हैं।

समवसरण में प्रवेश करते ही चारों गली में दिव्य रत्नमय मानस्तंभ हैं जो कि भगवान से बारहगुने ऊँचे हैं। जैसे कि—भगवान महावीर के शरीर की ऊँचाई ७ हाथ है अतः ये बारहगुणे अर्थात्

७×१२=८४ हाथ ऊँचे हैं। बीस योजन तक प्रकाश फैलाते हैं। इनके दर्शन से मानी का मान गलित हो जाता है और वह भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि बनकर अनंत संसार को सीमित कर लेता है।

केवली भगवान के प्रभाव से चारों तरफ चार सौ कोस तक सुभिक्षता, हिंसा और उपसर्गादि का अभाव, सभी जन्मजात शत्रु-सिंह, हिरण आदि का आपस में मैत्री भाव, छहों ऋतुओं के फल-फूलों का एक साथ आ जाना आदि अतिशय हो जाते हैं।

भगवान के श्रीविहार में आकाश में अधर, उनके चरण के नीचे देवगण स्वर्णमय सुगंधित दिव्य कमलों को रचते जाते हैं और अहिंसा धर्म के दिग्विजय को सूचित करता हुआ 'धर्मचक्र' भगवान के आगे-आगे चलता है एवं सरस्वती-लक्ष्मी देवी आजू-बाजू में चलती हैं। आकाशगामी ऋद्धिधारी साथ में चलते हैं, असंख्य देव-देवियाँ, इन्द्रादिगण पीछे-पीछे चलते हैं एवं साधारण मुनि, आर्यिकाएं, मनुष्य, पशु आदि नीचे-नीचे चलते हैं। जहाँ भगवान रुक जाते हैं वहाँ पुनः कुबेर समवसरण की रचना कर देता है।

प्रत्येक समवसरण में आठ भूमियाँ होती हैं, जो कि समतल में रहती हैं।

समवसरण में आठ भूमि और तीन कटनी

१. पहली "चैत्यप्रासादभूमि" है, इसमें एक-एक जिनमंदिर के अंतराल में पांच-पांच प्रासाद हैं।

२. दूसरी "खातिकाभूमि" है, इसके स्वच्छ जल में हंस आदि कलरव कर रहे हैं और कमल आदि पुष्प खिले हैं।

३. तीसरी "लताभूमि" है, इसमें छहों ऋतुओं के पुष्प खिले हुए हैं।

४. चौथी "उपवनभूमि" है, इसमें पूर्व आदि दिशा में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के वन हैं। प्रत्येक वन में एक-एक चैत्यवृक्ष हैं जिनमें ४-४ जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं। प्रत्येक प्रतिमाओं के सामने एक-एक मानस्तंभ हैं।

५. पांचवी "ध्वजाभूमि" है, इसमें सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र इन दस चिन्हों से सहित महाध्वजाएं और उनके आश्रित लघुध्वजाएं १०८-१०८ हैं। सब मिलाकर ४,७०,८८० हैं।

६. छठी "कल्पभूमि" है, इसमें भूषणांग आदि दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं। चारों दिशा में क्रम से नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात ऐसे एक-एक सिद्धार्थवृक्ष हैं। इनमें चार-चार सिद्धप्रतिमाएं विराजमान हैं ।

७. सातवीं "भवनभूमि" में भवन बने हुए हैं। इस भूमि के पार्श्व भागों में अर्हंत और सिद्धप्रतिमाओं से सहित नौ-नौ स्तूप हैं।

८. आठवीं "श्रीमण्डपभूमि" है, इसमें १६ दीवालों के बीच में १२ कोठे हैं जिनमें १. गणधरादि मुनि, २. कल्पवासिनी देवी, ३. आर्यिका और श्राविका, ४. ज्योतिषी देवी, ५. व्यंतर देवी, ६. भवनवासिनी देवी, ७. भवनवासी देव, ८. व्यंतर देव, ९. ज्योतिष देव, १०. कल्पवासी देव, ११. चक्रवर्ती आदि मनुष्य और १२. सिंहादि तिर्यंच, ऐसे बारहगण के असंख्यातों भव्यजीव बैठकर धर्मोपदेश सुनते हैं। वहां पर रोग, शोक, जन्म, मरण, उपद्रव आदि बाधाएं नहीं हैं।

प्रथम कटनी पर पूजा द्रव्य एवं मंगल द्रव्य रखे हुए हैं। इसी प्रथम कटनी पर चारों दिशाओं में यक्षेन्द्र अपने मस्तक पर धर्मचक्र धारण किये हुए हैं।

द्वितीय कटनी पर सिंह, बैल, कमल, चक्र, माला, गरुड़ और हाथी इन आठ चिन्हों से युक्त महाध्वजाएं हैं तथा धूपघट, नवनिधियाँ, पूजन द्रव्य एवं मंगलद्रव्य स्थित हैं।

तृतीय कटनी पर गंधकुटी में सिंहासन पर लाल कमल की कर्णिका पर भगवान महावीरस्वामी चार अंगुल अधर विराजमान हैं। इनका मुख एक तरफ होते हुए भी चारों तरफ दिखने से ये चतुर्मुखी ब्रह्मा कहलाते हैं। भगवान के पास अशोकवृक्ष, तीन छत्र, सिंहासन, भामंडल, चौंसठ चंवर, सुरपुष्पवृष्टि, दुंदुभि बाजे और हाथ जोड़े सभासद ये आठ महाप्रातिहार्य हैं। सभी समवसरण में उन-उन तीर्थंकर के शासन देव-देवी विद्यमान हैं। जैसे कि भगवान महावीर के समवसरण में मातंग यक्ष और सिद्धायिनी यक्षी विद्यमान हैं।

श्री महावीर भगवान को मेरा अनंतबार नमस्कार हो।

"अमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।।"

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—देवेंद्रगण जब आपको नमस्कार करते हैं तब आपके चरण कमल उनके मुकुटों की मणियों की कांति से स्पर्शित होते हैं।

३२ इंद्र अपने असंख्य देव-देवी परिवार के साथ आपके चरणों में नमस्कार करते हैं–

४ प्रकार के देवों के ३२ इन्द्र–

भवनवासी देवों के १० भेदों के मुख्य १० इंद्र–

(१) असुरकुमार इन्द्र, (२) धरणकुमार इन्द्र, (३) सुपर्णकुमार इन्द्र, (४) द्वीपकुमार इन्द्र, (५) उदधीकुमार इन्द्र, (६) स्तनितकुमार इन्द्र, (७) विद्युत्कुमार इन्द्र, (८) दिक्कुमार इन्द्र, (९) अग्निकुमार इन्द्र, (१०) वायुकुमार इन्द्र।

व्यंतर देवों के आठ भेदों के मुख्य ८ इंद्र–

(१) किन्नर इन्द्र, (२) किंपुरुष इन्द्र, (३) महोरग इन्द्र, (४) गंधर्व इन्द्र, (५) यक्ष इन्द्र, (६) राक्षस इन्द्र, (७) भूत इन्द्र, (८) पिशाच इन्द्र।

ज्योतिषी देवों के मुख्य २ इन्द्र–

(१) चन्द्र इन्द्र, (२) भास्कर इन्द्र।

कल्पवासी देवों के मुख्य १२ इन्द्र–

(१) सौधर्म इन्द्र, (२) ईशान इन्द्र, (३) सनत्कुमार इन्द्र, (४) माहेन्द्र इन्द्र, (५) ब्रह्म इन्द्र, (६) लान्तव इन्द्र, (७) शुक्र इन्द्र, (८) शतार इन्द्र, (९) आनत इन्द्र, (१०) प्राणत इन्द्र, (११) आरण इन्द्र, (१२) अच्युत इन्द्र।

मुख्य रूप से ये ३२ इंद्र माने हैं।

''कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणः।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशष्वसुः।।१।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—कलुष हृदय वाले, मान से ग्रसित ऐसे परस्पर में जन्मजात वैर रखने वाले पशुगण एवं परस्पर में शत्रुता को प्राप्त ऐसे मनुष्य भी आपके चरणों का आश्रय लेकर कलुष—वैरभाव रहित होकर परस्पर में विश्वास को—प्रीति को प्राप्त हो रहे हैं।

इसी बात को श्रीसमन्तभद्रस्वामी ने कहा है–

नयसत्त्वर्तवः सर्वे गव्यन्ये चाप्यसंगता।[१]

नय, सत्व–प्राणी और ऋतुएँ ये तीनों जैन शासन में परस्पर विरोधी होते हुए विरोध को छोड़कर मैत्रीभाव को प्राप्त कर लेते हैं। जैनधर्म के अनुसार द्रव्यार्थिक नय कहता है—आत्मा नित्य है, जन्म–मरण से रहित है, पर्यायार्थिक नय कहता है कि—आत्मा अनित्य है, जन्म–मरण के निमित्त से देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी आदि पर्यायों को धारण करता है। कथंचित्–अपेक्षा से ये दोनों बातें सही हैं आत्मा नित्य भी है क्योंकि अनादिकाल से अनन्त काल तक विद्यमान है। पर्यायों की अपेक्षा अनित्य भी है क्योंकि मनुष्य को छोड़कर देव में जन्म लेता है इत्यादि। ऐसे ही परस्पर विरोधी प्राणी भी महामुनियों का और तीर्थंकर भगवन्तों का आश्रय लेकर परस्पर के वैर को छोड़कर प्रीति को प्राप्त हो जाते हैं।

सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतम्।
मार्जारी हंसवालं प्रणयपरवशा केकिकांता भुजंगीम्।।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति।।
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनां क्षीणमोहम्।।

---

१. स्तुतिविद्या,

हरिणी सिंह के बच्चे को पुत्र की बुद्धि से स्पर्श करती है, गाय व्याघ्र के बालक को, बिल्ली हंस के बच्चे को एवं मयूरनी प्रेम के वश में सर्प के बच्चे को प्यार करने लगती है। जन्म से ही वैर को धारण करने वाले ऐसे क्रूर पशु भी वैर, अभिमान आदि को छोड़ देते हैं। कब ? जबकि ये परमसाम्य को प्राप्त क्रोध, मान, माया, लोभ आदि दोषों से रहित ऐसे महायोगियों का आश्रय ले लेते हैं।

इसी प्रकार इन तीर्थंकर भगवंतों के समवसरण के प्रभाव से कितने ही कोसों तक छहों ऋतुओं के फल–फूल एक साथ आ जाते हैं।

''परिणतनयस्यांगी–भावाद्विविक्त–विकल्पितं।
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्र–वचोऽमृतम्।।२।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय को गौणकर पर्यायार्थिक नय की प्रधानता लेकर अङ्ग, पूर्व आदिरूप से रचा गया अथवा पूर्वापर दोष रहित रचा गया ऐसा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप से अथवा अङ्ग–पूर्व, और अङ्ग–बाह्यरूप से तीन प्रकार का जिनेन्द्र का वचनरूप अमृत संसार से रक्षा करे।।२।।

नयों का विवेचन

प्रत्येक वस्तु अनंतधर्मात्मक है। उनमें से एक-एक धर्म को कहने वाले नय होते हैं। ये नय वस्तु के स्वरूप का ज्ञान कराने में साधन होते हैं। इनका निर्दोष लक्षण क्या है ? इन दोनों में कौन सा नय सत्य है और कौन सा असत्य ? अथवा दोनों ही सत्य हैं क्या ? इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

पहले तो 'व्यवहार' शब्द के अनेक अर्थ हैं उन्हें समझ लेना आवश्यक है—

भेद, पर्याय, औपाधिक, उपचार आदि अर्थों में व्यवहार शब्द का प्रयोग देखा जाता है।

भेद—जैसे जीव के दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार से हैं। यहाँ भेद से हैं ऐसा अभिप्राय है।

पर्याय—जीव अनित्य है। यह पर्याय की अपेक्षा से प्रवृत्त हुआ व्यवहार है।

औपाधिक—जीव अशुद्ध है, संसारी है। यह कर्मोपाधि को ग्रहण करने वाला व्यवहार है।

उपचार—देवदत्त का घर, घी का घड़ा इत्यादि, इन कथनों में प्रयुक्त हुये व्यवहार के अनेक भेद हैं।

ऐसे ही और बहुत से अर्थों में व्यवहार शब्द का प्रयोग देखा जाता है सो आगम के आधार से यथास्थान दिखलाया जायेगा।

अभेद, निरुपाधि, द्रव्य, शक्ति और शुद्ध भाव इत्यादि में निश्चय शब्द का प्रयोग देखा जाता है।

अभेद—जीव के न दर्शन है, न ज्ञान है, न चारित्र है किन्तु जीव ज्ञायक भाव मात्र है। इसमें अभेद का प्रतिपादक निश्चयनय है।

निरुपाधि—जीव सिद्ध सदृश शुद्ध है। यह कर्मोपाधिरहित निश्चय है।

द्रव्य—जीव नित्य है। यह द्रव्यमात्र की विवक्षा से प्रवृत्त हुआ है।

शक्ति—संसारी जीव को भगवान आत्मा या परमात्मा कहना यह शक्ति की अपेक्षा से है जैसे कि दूध को घी व स्वर्णपाषाण को सुवर्ण कहना।

शुद्धभाव—जीव टंकोत्कीर्ण ज्ञान मात्र है। दर्शन-ज्ञान स्वरूप है इत्यादि।

तत्त्व विचार के समय तथा ध्यान में निश्चयनय का विषय आश्रयणीय है अर्थात् चौथे, पाँचवें और छठे गुणस्थान तक निश्चयनय से तत्त्व का विचार किया जाता है। आगे ध्यान से उसका विषय अवलंबनीय हो जाता है।

व्यवहारनय भी तीर्थ प्रवृत्ति निमित्त प्रवृत्त होता है। इसके द्वारा भी वस्तु के औपाधिक भाव आदि का निर्णय करनेरूप छठे तक चलता है तथा इसके द्वारा कथित विषय का आश्रय भी छठे तक व कथंचित् सातवें तक भी रहता है। आगे ये नय स्वयं छूट जाते हैं और नयातीत परिणति होकर निर्विकल्प ध्यान होता है।

आगम की भाषा में इन नयों का वर्णन देखिये—

नय का लक्षण

प्रमाण के द्वारा सम्यक् प्रकार से ग्रहण की गई वस्तु के एक अंश अर्थात् धर्म को ग्रहण करने वाला ज्ञान नय कहलाता है अथवा श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं। ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं अथवा जो नाना स्वभावों से हटाकर किसी एक स्वभाव में वस्तु को ले जाता है वह नय है।[१]

नय के मूल भेद

णिच्छयववहारणया मूलमभेया णयाण सव्वाणं।
णिच्छयसाहणहेऊ दव्वयपज्जत्थिया मुणह[२]।।४।।

सम्पूर्ण नयों के निश्चयनय और व्यवहारनय ये दो मूल भेद हैं। निश्चय का हेतु द्रव्यार्थिक नय है और साधन अर्थात् व्यवहार का हेतु पर्यायार्थिकनय है।

इसी की टिप्पणी में निश्चयनयाः = द्रव्यस्थिताः। व्यवहारनयाः = पर्यायस्थिताः ऐसा कहा है अर्थात् निश्चयनय द्रव्य में स्थित है और व्यवहारनय पर्याय में स्थित है। इसी बात को श्री अमृतचंद्रसूरि भी कहते हैं—

---

१. आलाप पद्धति सूत्र १८१ पृ. २८। २. अलाप पद्धति पृ. १०।

व्यवहारनयः किल पर्यायाश्रितत्वात्...। निश्चयनयस्तु द्रव्याश्रितत्वात्...।

यहाँ पर व्यवहारनय पर्याय के आश्रित होने से पुद्गल के संयोगवश अनादिकाल से जिसकी बंधपर्याय प्रसिद्ध है ऐसे जीव के औपाधिक भाव का अवलंबन लेकर प्रवृत्त होता है। इसलिये वह दूसरे के भावों को दूसरे का कहता है किन्तु निश्चयनय द्रव्य के आश्रित होने से केवल एक जीव के स्वाभाविक भाव का अवलम्बन लेकर प्रवृत्त होता है अतः वह परभावों को पर के कहता है और उन सबका निषेध करता है।"[१]

अन्यत्र भी यही सूचना है—यथा—

द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। तत्र न खल्वेकनयायत्ता देशना किन्तु तदुभयायत्ता[२]।

भगवान ने दो नय कहे हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। इनमें से भगवान का उपदेश एक नय के आश्रित नहीं है किन्तु उभयनय के ही आश्रित है।

धवला में भी कहते हैं—

'तीर्थंकरों के वचनों के सामान्य प्रस्तार का मूल व्याख्यान करने वाला द्रव्यार्थिकनय है और उन्हीं के वचनों के विशेष प्रस्तार का मूल व्याख्याता पर्यायार्थिकनय है। शेष सभी नय इन दोनों नयों के विकल्प अर्थात् भेद हैं।[३]"

इसलिए निश्चय-व्यवहार नयों को अच्छी तरह समझने के लिये सर्वप्रथम द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय को समझ लेना भी आवश्यक हो जाता है। आलाप पद्धति में श्री देवसेन आचार्य ने नयों और उपनयों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। न अति संक्षेप और न अति विस्तार से, वह विवेचन अवश्य ही हृदयंगम करने योग्य है। उसमें द्रव्यार्थिकनय के १०, पर्यायार्थिकनय के ६, नैगमनय के ३, संग्रहनय के २, व्यवहारनय के २, ऋजुसूत्रनय के २, शब्दनय का १, समभिरूढ़नय का १ और एवंभूतनय का १, ऐसे सब २८ भेद हो जाते हैं[४]। यहाँ पर द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों का लक्षण व उनके भेदों को देखिये—

द्रव्यार्थिकनय

द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः।

द्रव्य ही है अर्थ—प्रयोजन—विषय जिसका वह द्रव्यार्थिकनय है। इसके १० भेद हैं—

१. कर्मोपाधि से निरपेक्ष शुद्ध द्रव्य को विषय करने वाला 'शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' है जैसे—संसारी जीव सिद्ध सदृश शुद्धात्मा है।

---

१. समयसार गाथा-५६, अमृतचंद्रसूरिकृत टीका। २. पंचास्तिकाय गाथा ४, अमृतचन्द्रसूरिकृत टीका पृ. २३।
३. धवला पु. १, पृ. १२। ४. शेष नयों को नयचक्र या आलाप पद्धति से देखना चाहिए।

२. उत्पाद-व्यय को गौण करके सत्तामात्र को ग्रहण करने वाला 'शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' है जैसे—द्रव्य नित्य है।

३. भेदकल्पना से निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनय है जैसे—निजगुण, निजपर्याय और निजस्वभाव से द्रव्य अभिन्न है।

४. कर्मोपाधि की अपेक्षा से वस्तु को ग्रहण करने वाला अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है जैसे—कर्मजनित क्रोधादिभावरूप आत्मा है।

५. उत्पाद-व्यय से सापेक्ष को ग्रहण करने वाला अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय होता है। जैसे—एक ही समय में द्रव्य उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूप है।

६. भेद कल्पना से सापेक्ष द्रव्य को विषय करने वाला अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है। जैसे—आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि गुण हैं।

७. अन्वय सापेक्ष द्रव्य को ग्रहण करने वाला द्रव्यार्थिकनय है। जैसे—गुणपर्याय स्वभाव द्रव्य है।

८. स्वद्रव्य आदि के ग्रहण करने वाला द्रव्यार्थिकनय है जैसे—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव, इन स्वचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य अस्तिरूप है।

९. परद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिकनय है जैसे—परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा से द्रव्य नास्तिरूप है।

१०. परमभाव को ग्रहण करने वाला द्रव्यार्थिकनय है, जैसे—ज्ञानस्वरूप आत्मा है।

पर्यायार्थिक नय

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः।

पर्याय ही है अर्थ—प्रयोजन—विषय जिसका, वह पर्यायार्थिकनय है। इसके ६ भेद हैं—

१. अनादि-नित्य पर्याय को ग्रहण करने वाला पर्यायार्थिकनय है, जैसे—मेरु आदि रूप पुद्गल की पर्यायें नित्य हैं।

२. सादि-नित्य पर्याय को विषय करने वाला पर्यायार्थिकनय है, जैसे—सिद्ध पर्याय नित्य है।

३. ध्रौव्य को गौण करके उत्पाद-द्रव्य को ग्रहण करने के स्वभाव वाला अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय है, जैसे—समय-समय में पर्यायें विनाशशील हैं।

४. सत्ता को सापेक्ष करने रूप स्वभाव वाला नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय है, जैसे—एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप पर्यायें होती हैं।

५. कर्मोपाधि निरपेक्ष स्वभाव वाला नित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय है, जैसे—संसारी जीवों की पर्यायें सिद्ध पर्याय सदृश शुद्ध हैं।

६. कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभाव वाला अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय है, जैसे—संसारी जीवों के जन्म और मरण होता है।

आगे चलकर द्रव्यार्थिकनय के भेदों का व्युत्पत्ति अर्थ कहकर उसके मूल दो भेद किये हैं।

शुद्ध-अशुद्ध निश्चयनय

शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।।२०३।।

शुद्ध निश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनय ये दोनों द्रव्यार्थिकनय के भेद हैं।

निश्चयनय का लक्षण—जिसके द्वारा अभेद और अनुपचरितरूप से वस्तु का निश्चय किया जाता है वह निश्चयनय है। इस निश्चयनय का हेतु[१] द्रव्यार्थिकनय है।

व्यवहारनय का लक्षण—जिसके द्वारा भेद और उपचार से वस्तु का व्यवहार किया जाता है वह व्यवहारनय है। वह व्यवहारनय का हेतु[२] पर्यायार्थिकनय है।

इन नयों का प्रयोग श्री कुंदकुंददेव की गाथाओं में तथा सर्वत्र ग्रंथों में यथासंभव घटित करना चाहिए।

नियमसार में श्री कुंदकुंददेव ने जीव के ज्ञान-दर्शन गुणों का वर्णन करते हुए उन्हें स्वभाव और विभाव ऐसे दो रूप से कहा है। उसी प्रकार से जीव की पर्यायों के भी स्वभाव-विभाव ऐसे दो भेद किये हैं। अंत में जीवद्रव्य के उपसंहार की गाथा ऐसी है—

दव्वत्थिएण जीवा वदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया।
पज्जयणयेण जीवा संजुत्ता होंति दुविहे हिं।।१८।।

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से सभी जीव पूर्वकथित पर्यायों से (स्वभाव-विभाव गुण पर्यायों से) रहित हैं एवं पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा सभी जीव स्वभाव-विभाव इन दोनों प्रकार की पर्यायों से सहित हैं।

यहाँ पर द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयों का सामान्य कथन है, अतः शुद्ध द्रव्यार्थिक और अशुद्ध द्रव्यार्थिक दोनों आ जाते हैं। संसारी जीव अशुद्ध पर्यायों से एवं मुक्त जीव शुद्ध पर्यायों से रहित हैं ऐसा अर्थ स्पष्ट हो जाता है। चूँकि यह द्रव्यार्थिकनय मात्र द्रव्य को ही ग्रहण करता है पर्यायों को नहीं तथा पर्यायार्थिक नय से भी शुद्ध-अशुद्ध दोनों प्रकार की पर्यायों को समझना चाहिए।

ये दोनों नय अपने-अपने विषय को स्वतंत्ररूप से ग्रहण करते हुए भी परस्पर सापेक्ष रहते हैं तभी सम्यक् हैं अन्यथा निरपेक्ष होते ही मिथ्या हो जाते हैं।

उसी प्रकार से जहाँ कहीं भी गाथाओं में 'निश्चयनय' कहा गया है वहाँ पर यथायोग्य शुद्ध या अशुद्ध को घटित करना चाहिए। जैसे—

---

१. 'णिच्छयववहारणया' इत्यादि गाथा में सूचित किया गया है। २. उसी गाथा में सूचित किया गया है।

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो[१]।।१८।।

यह आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है यह व्यवहारनय का कथन है तथा कर्मजनित भावों का कर्त्ता और भोक्ता है यह निश्चयनय का कथन है। अब यहाँ कर्मजनित औपाधिक भावों का कर्त्ता-भोक्ता मानने में अशुद्ध निश्चयनय को ग्रहण करना चाहिए।

उसी प्रकार से—

ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो[२]।।७।।

ज्ञानी के चारित्र, दर्शन और ज्ञान ये व्यवहार से कहे जाते हैं किन्तु (निश्चय से) उस ज्ञानी के न ज्ञान है, न चारित्र है और न दर्शन है वह तो मात्र ज्ञायक शुद्ध है।

यहाँ पर जो व्यवहारनय है वह मात्र भेद के द्वारा वस्तु का निश्चय कराता है न कि उपचार के द्वारा क्योंकि ज्ञानी आत्मा के ये ज्ञान, दर्शन और चारित्र व्यवहार से कहे गये हैं, इसका अर्थ—भेद से कहे गये हैं न कि उपचार अथवा कर्मोपाधि से। उसी प्रकार से आत्मा के न ज्ञान है, न चारित्र है और न दर्शन है वह तो मात्र ज्ञायक शुद्ध है। यह कथन 'भेदकल्पनानिरपेक्ष' द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से है।

उसी प्रकार से—

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव[३]।।६।।

जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त भी नहीं है और न प्रमत्त ही है इस तरह उसे शुद्ध कहते हैं और जिसे ज्ञायक भाव के द्वारा लिया गया है वह वही है, अन्य कोई नहीं है। यहाँ पर 'परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक' नय के द्वारा आत्मा को कहा गया है।

इसी तरह सभी के उदाहरण समझ लेना।

द्रव्यार्थिक नय के दश भेदों में 'कर्मोपाधिनिरपेक्ष', 'सत्तामात्रग्राहक' और 'भेदकल्पनानिरपेक्ष' ये तीन नय शुद्ध द्रव्यार्थिक हैं। 'कर्मोपाधिसापेक्ष', 'उत्पादव्ययसापेक्ष' और 'भेदकल्पनासापेक्ष' ये तीन अशुद्ध द्रव्यार्थिक हैं। 'अन्वयसापेक्ष' 'स्वद्रव्यादिग्राहक' और 'परद्रव्यादिग्राहक' ये तीन सामान्य हैं एवं 'परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक' यह मात्र वस्तु के शुद्ध स्वभाव को ही कहता है।

इसी प्रकार पर्यायार्थिक के ६ भेदों में भी शुद्ध-अशुद्ध व्यवस्था समझ लेना चाहिए।

(१) नैगमनय—

नैगमनय के भूत, भावी और वर्तमान काल की अपेक्षा तीन भेद हैं।

---

१. नियमसार, २. समयसार, ३. समयसार।

१. जहाँ पर अतीतकाल में वर्तमान का आरोपण किया जाता है वह भूत नैगमनय है। जैसे—आज दीपावली के दिन वर्धमान स्वामी मोक्ष गये हैं।

२. भविष्यत् पर्याय में भूतकाल के समान कथन करना भावी नैगमनय है। जैसे—अर्हंत सिद्ध ही हैं।

३. करने के लिए प्रारंभ की गई ऐसी ईषत् निष्पन्न—थोड़ी बनी हुई अथवा अनिष्पन्न—बिल्कुल नहीं बनी हुई वस्तु को निष्पन्नवत् कहना वर्तमान नैगमनय है। जैसे—भात पकाया जाता है।

(२) संग्रहनय—

संग्रहनय के दो भेद हैं—सामान्य संग्रह और विशेष संग्रह।

१. सभी को सामान्यरूप से ग्रहण कर लेना सामान्य संग्रह है। जैसे—सर्व द्रव्य परस्पर अविरोधी हैं—अर्थात् एक हैं। इसी नय के एकांत से ब्रह्माद्वैत आदि अद्वैतवाद हो गये हैं।

२. एक जातिविशेष से सबको ग्रहण करना विशेष संग्रह है। जैसे—सभी जीव परस्पर अविरोधी हैं—अर्थात् एक हैं।

(३) व्यवहारनय—

व्यवहारनय के भी दो भेद हैं—सामान्य और विशेष।

१. सामान्यसंग्रहनय के विषयभूत पदार्थ में भेद करने वाला सामान्यसंग्रह भेदक व्यवहारनय है। जैसे—द्रव्य के दो भेद हैं—जीव और अजीव।

२. विशेषसंग्रहनय के द्वारा ग्रहण किये गये विषय में भेद करने वाला विशेषसंग्रह भेदक व्यवहारनय है। जैसे—जीव के संसारी और मुक्त दो भेद हैं।

(४) ऋजुसूत्रनय—

ऋजुसूत्रनय के भी दो भेद हैं—सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूलऋजुसूत्र।

१. एक समयवर्ती पर्याय को ग्रहण करने वाला सूक्ष्मऋजुसूत्रनय है। जैसे—शब्द क्षणिक हैं।

२. अनेक समयवर्ती पर्यायों को ग्रहण करने वाला स्थूलऋजुसूत्रनय है। जैसे—मनुष्यादि पर्यायें अपनी-अपनी आयु प्रमाण काल तक रहती हैं।

(५) शब्दनय—

लिंग, संख्या आदि के व्यभिचार को छोड़कर शब्द के अनुसार अर्थ को ग्रहण करना शब्दनय है। जैसे—दारा, भार्या, कलत्र अथवा जल व अप एकार्थवाची हैं। यह नय एक ही है।

(६) समभिरूढ़नय—

नाना अर्थों को छोड़कर जो प्रधानता से एक अर्थ में रूढ़ होता है वह समभिरूढ़नय है। जैसे—'गो' शब्द के वाणी, शब्द आदि अनेक अर्थ होते हुए भी वह 'पशु' अर्थ में रूढ़—प्रसिद्ध है।

(७) एवंभूतनय—

जिस नय में वर्तमान क्रिया ही प्रधान होती है वह एवंभूतनय है जैसे—इंदन क्रिया में तत्पर देवराज को 'इंद्र' कहना।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक से लेकर एवंभूत तक नयों के २८ भेद होते हैं। अब उपनयों को देखिये।

उपनय

जो नयों से समीप रहें वे उपनय हैं। इसके तीन भेद हैं—सद्भूतव्यवहार, असद्भूतव्यवहार और उपचरित असद्भूतव्यवहार।

(१) सद्भूतव्यवहार उपनय—

जो नय संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन आदि के भेद से गुण और गुणी के भेद करता है वह सद्भूत व्यवहार उपनय है। इसके दो भेद हैं—शुद्ध सद्भूतव्यवहार और अशुद्ध सद्भूत व्यवहार।

१. जो नय शुद्धगुण और शुद्धगुणी में तथा शुद्धपर्याय और शुद्ध पर्यायी में भेद करता है वह शुद्धसद्भूत व्यवहार उपनय है। जैसे—जीव का केवलज्ञान गुण है, जीव गुणी है तथा जीव की सिद्ध पर्याय है।

२. जो नय अशुद्धगुण–अशुद्धगुणी में और अशुद्धपर्याय-अशुद्धपर्यायी में भेद करता है वह अशुद्ध सद्भूतव्यवहार उपनय है।

(२) असद्भूतव्यवहार उपनय—

अन्य में प्रसिद्ध धर्म (स्वभाव) का अन्य में समारोपण करना असद्भूत-व्यवहारोपनय है। इनके तीन भेद हैं—स्वजात्यसद्भूतव्यवहार, विजात्यसद्भूत-व्यवहार और स्वजातिविजात्य–सद्भूतव्यवहार।

१. जो नय स्वजातीय द्रव्यादिक में स्वजातीय द्रव्यादि के संबंध से होने वाले धर्म का आरोपण करता है वह स्वजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय है। जैसे—'परमाणु बहुप्रदेशी है' ऐसा कहना।

२. जो नय विजातीय द्रव्यादि में विजातीय द्रव्यादि का आरोपण करता है वह विजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय है। जैसे—मतिज्ञान मूर्त है, क्योंकि वह मूर्तद्रव्य से उत्पन्न हुआ है।

३. जो नय स्वजातीय द्रव्यादि में विजातीय द्रव्यादि के संबंध का आरोपण करता है वह स्वजाति विजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय है। जैसे—ज्ञेयभूत जीव और अजीव में ज्ञान है, क्योंकि वे ज्ञान के विषय हैं।

(३) उपचरितअसद्भूतव्यवहार उपनय—

असद्भूतव्यवहार ही उपचार है, जो नय उपचार से भी उपचार करता है वह उपचरितासद्भूतव्यवहार उपनय है। इसके भी तीन भेद हैं—स्वजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार, विजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार

और स्वजातिविजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार।

१. जो उपचार से स्वजातीय द्रव्य का स्वजातीय द्रव्य को स्वामी बतलाता है वह स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार उपनय है। जैसे—पुत्र, स्त्री आदि मेरे हैं।

२. जो विजातीय द्रव्य का विजातीय द्रव्य को स्वामी कह देता है वह विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहार उपनय है। जैसे—वस्त्र, आभूषण, स्वर्ण, रत्न आदि मेरे हैं।

३. जिसमें मिश्रद्रव्य का स्वामी कह दिया जाता है वह स्वजाति-विजात्युपचरित-असद्भूतव्यवहार उपनय है। जैसे—देश, राज्य, दुर्ग आदि मेरे हैं।

ये सभी नय और उपनय सैद्धांतिक भाषा में कहे गये हैं। आगे इसी आलाप पद्धति में अध्यात्म भाषा से नयों का कथन किया गया है।

तावन्मूलौ द्वौ नयौ निश्चयो व्यवहारश्च।।२१५।।

अध्यात्म भाषा में भी नयों के मूल में दो भेद हैं—निश्चयनय और व्यवहारनय।

निश्चयनय

तत्र निश्चयनयोऽभेदविषयो, व्यवहारो भेदविषयः।।२१६।।

उसमें निश्चयनय अभेद को विषय करता है और व्यवहारनय भेद को विषय करता है।

तत्र निश्चयो द्विविधाः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च।।२१७।।

उनमें से निश्चयनय दो प्रकार का है—शुद्ध निश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनय। तात्पर्य यही है कि शुद्ध निश्चयनय का विषय शुद्ध द्रव्य है और अशुद्ध निश्चयनय का विषय अशुद्ध द्रव्य है। उसी को देवसेनाचार्य स्वयं कहते हैं-

'जो नय कर्मोपाधि से रहित गुण (ज्ञान) और गुणी (जीव) को अभेदरूप से ग्रहण करता है वह शुद्ध निश्चयनय है। जैसे—केवलज्ञान आदि स्वरूप जीव है।'

इस शुद्ध नय से जीव के बंध-मोक्ष आदि की व्यवस्था नहीं है।

'कर्मोपाधि सहित द्रव्य को विषय करने वाला अशुद्ध निश्चयनय है। जैसे—मतिज्ञान आदि स्वरूप जीव है।

इसी नय से जीव को रागादि भाव कर्मों का कर्त्ता-भोक्ता भी कहा जाता है।

व्यवहारनय

व्यवहारो द्विविधः सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूतव्यवहारश्च।।२२०।।

व्यवहारनय के भी दो भेद हैं—सद्भूतव्यवहारनय और असद्भूतव्यवहारनय।

'एक वस्तु को विषय करने वाला सद्भूतव्यवहारनय है।'

'भिन्न वस्तु को विषय करने वाला असद्भूतव्यवहारनय है।'

'उपचरित और अनुपचरित के भेद से सद्भूत व्यवहार दो प्रकार का है।'

'उनमें से कर्मोपाधि से सहित गुण और गुणी के भेद को विषय करने वाला उपचरित सद्भूतव्यवहार नय है। जैसे—जीव के मतिज्ञान आदि गुण।'

'कर्मोपाधि रहित गुण और गुणी के भेद को विषय करने वाला अनुपचरित-असद्भूत व्यवहारनय है। जैसे—जीव के केवलज्ञान आदि गुण।'

'असद्भूत व्यवहारनय के भी दो भेद हैं—उपचरित और अनुपचरित।'

'उनमें से संश्लेष संबंध रहित, ऐसी भिन्न वस्तुओं का परस्पर में संबंध ग्रहण करना उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। जैसे—देवदत्त का धन।'

'संश्लेष सहित वस्तु के सम्बन्ध को विषय करने वाला अनुपचरित-असद्भूतव्यवहारनय है। जैसे—जीव का शरीर।'

इस प्रकार से अति संक्षेप में यहाँ पर्यायार्थिक, द्रव्यार्थिक, नैगम आदि नय, उपनय तथा निश्चयनय और व्यवहारनय का स्वरूप कहा है। विशेष जिज्ञासुओं को तथा वक्ताओं को नयचक्र, आलाप पद्धति आदि ग्रंथों का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

ये सभी नय परस्पर सापेक्ष होने से सुनय कहलाते हैं अन्यथा दुर्नय हो जाते हैं। सो ही देखिये—

सुनय और दुर्नय

अष्टसहस्री नामक दर्शनशास्त्र में भी श्री विद्यानंदि महोदय ने 'तथा चोक्तं' कहकर सुनय और दुर्नय का लक्षण बताया है—

तथा चोक्तं—

अर्थस्यानेकरूपस्य धीः प्रमाणं तदंशधीः।
नयो धर्मान्तरापेक्षी, दुर्णयस्तन्निराकृतिः[१]।।

अनेकरूप पदार्थ का ज्ञान प्रमाण है, उस पदार्थ के एक अंश का ज्ञान नय है। वह नय अपने से विरोधी अन्य धर्म की अपेक्षा रखता है तथा दुर्नय अन्य धर्म का निराकरण करने वाला है।

वहीं पर श्री अकलंकदेव 'अष्टशती भाष्य' में कहते हैं—

''तदनेकांतप्रतिपत्तिः प्रमाणमेकधर्मप्रतिपत्तिर्नयस्तत्प्रत्यनीकप्रतिक्षेपो दुर्णयः[२]।''

अनेकांत का ज्ञान प्रमाण है, उसके एक धर्म को जानना नय है और उस नय के विरोधी धर्म का निराकरण करना दुर्नय है।

---

१. अष्टसहस्री मूल पृ. २९०। २. अष्टसहस्री मूल पृ. २९०।

श्री समंतभद्रस्वामी की कारिका में देखिये—

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न न मिथ्यैकांततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत[१]।।१०८।।

मिथ्यानयों का समूह मिथ्या ही है, चूँकि हम स्याद्वादियों के यहाँ मिथ्याएकांत नहीं है। निरपेक्षनय मिथ्या हैं और सापेक्षनय वास्तविक हैं, अर्थक्रियाकारी हैं।

''निरपेक्षाणामेव नयानां मिथ्यात्वात् तद्विषयसमूहमिथ्यात्वोपगमात्, सापेक्षाणां तु सुनयत्वात्तद्विषयाणामर्थक्रियाकारित्वात् तत्समूहस्य वस्तुत्वोपपत्तेः[२]।''

परस्पर में निरपेक्ष ही नय मिथ्यारूप हैं, चूँकि उनका विषयसमूह मिथ्यात्वरूप से स्वीकार किया गया है किन्तु सापेक्षनय सुनय है चूँकि उनका विषय अर्थ क्रियाकारी है, उन विषयों का समूह वास्तविक है।

सुनय को सम्यक् एकांत और दुर्नय को मिथ्या एकांत कहते हैं। यथा—

''एकांतो द्विविधः—सम्यगेकांतो मिथ्यैकांतः इति।
तत्र सम्यगेकांतो हेतुविशेषसामार्थ्यापेक्षः प्रमाणप्ररूपितार्थैकदेशादेशः।
एकात्मावधारणेन अन्याशेषनिराकरणप्रवणप्रणिधिर्मिथ्यैकांतः[३]।।

एकांत के दो भेद हैं—सम्यक् एकांत और मिथ्या एकांत। प्रमाण के द्वारा प्ररूपित वस्तु के एक देश को सयुक्तिक ग्रहण करने वाला सम्यक् एकांत है। एक धर्म (वस्तु के एक अंश) का सर्वथा अवधारण करके अन्य धर्मों का निराकरण करने वाला मिथ्या एकांत है।

इसी बात को श्री समंतभद्र स्वामी भी कहते हैं—

अनेकांतोऽप्यनेकांतः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकांतः प्रमाणात्ते तदेकांतोऽर्पितान्नयात्।।[४]

अनेकांत भी अनेकांतरूप है, वह प्रमाण और नय से सिद्ध होता है। अनेकांत की सिद्धि प्रमाण से होती है और विवक्षित नय की अपेक्षा से एकांत की सिद्धि होती है। यही सम्यक् एकांत है।

श्री जिनेन्द्रदेव के मत में परस्पर विरोधी विषय को लिये हुए भी सभी नय परस्पर में अविरोधी हैं। यथा—

''नयसत्त्वर्तवः सर्वे गव्यन्ये चाप्यसंगताः।
श्रियस्ते त्वयु वन् सर्वे दिव्यर्ध्या चावसंभृता।।७३।।[५]

हे प्रभो! द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक अथवा नैगम आदि नय, नेवला, सर्प आदि प्राणी और बसंत, ग्रीष्म

---

१. देवागमस्तोत्र। २. अष्टसहस्री मूल पृ. २९०। ३. तत्त्वार्थवार्तिक अ. १, सूत्र ६, पृ. ३५।
४. स्वयंभू स्तोत्र, अरजिन स्तुति। ५. स्तुति विद्या, श्री शांतिनाथ स्तुति।

आदि ऋतुयें ये सब तथा इनके सिवाय और भी जो पृथ्वी पर परस्पर विरोधी पदार्थ हैं जो कि परस्पर में कभी नहीं मिलते हैं, वे सब आपके प्रभाव से एक साथ संगत हो गये हैं—आपस के विरोध को भूलकर मिल गये हैं तथा कितने ही अन्य कार्य देवों की ऋद्धि से निष्पन्न किये गये हैं।

क्या कोई नय असत्य है ?

जो किसी नय को सत्य एवं किसी नय को असत्य कहते हैं सो यह कथन गलत है। देखिये जयधवला नामक सिद्धांत ग्रंथ में—

''णिययवयणिज्जसच्चा सव्वणया परवियालणे मोहा।
ते उण ण दिट्ठसमओ विभयइ सच्चे व अलिए वा[१]।।११७।।''

ये सभी नय अपने-अपने विषय के कथन करने में समीचीन हैं और दूसरे नयों के निराकरण करने में मूढ़ हैं। अनेकांतरूप समय के ज्ञाता पुरुष 'यह नय सच्चा है और यह नय झूठा है' इस प्रकार का विभाग नहीं करते हैं।

क्या व्यवहारनय असत्य कहा जा सकता है ?

जयधवला, धवला आदि महाग्रंथों के प्रमाण देखिये।

जयधवला में कहा है—

''ववहारणयं पडुच्च पुण गोदमसामिणा चउवीसण्हमणियोगद्दाराणमादीए मंगलं कदं। ण च ववहारणओ चप्पलओ; तत्तो (ववहाराणुसारि) सिस्साण पउत्तिदंसणादो। जो बहुजीवाणुग्गहकारी ववहारणओ सो चेव समस्सिदव्वो त्ति मणेणावहारिय गोदमथेरेण मंगलं तत्थकयं।''[२]

श्री गौतमस्वामी ने व्यवहारनय का आश्रय लेकर कृति आदि चौबीस अनुयोगद्वारों के आदि में **'णमो जिणाणं'** इत्यादिरूप से मंगल किया है।

व्यवहारनय असत्य भी नहीं है, क्योंकि उससे व्यवहार का अनुसरण करने वाले शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है अतः जो व्यवहारनय बहुत जीवों का अनुग्रह करने वाला है उसी का आश्रय करना चाहिये ऐसा मन में निश्चय करके गौतमस्थविर ने चौबीस अनुयोगद्वारों की आदि में मंगल किया है।

धवलाकार का अभिमत देखिये—

एवं दव्वट्ठियजणाणुग्गहट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्मपयडि-पाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्ताणि भणदि 'णमो ओहिजिणाणं'।।२।।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक जनों के अनुग्रहार्थ गौतम भट्टारक महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के आदि में नमस्कार करके पर्यायार्थिकनय शिष्यों के अनुग्रहार्थ उत्तर सूत्रों को कहते हैं—

---

१. जयधवला पु. १ पृ. २५७। २. जयधवला पु. १, पृ. ८।

अवधि जिनों को नमस्कार हो[१]।।२।।

भावार्थ—श्री गौतम स्वामी ने महाकर्मप्रकृति प्राभृत की आदि में ''**णमो जिणाणं**''।।१।। जिनों को नमस्कार हो। यह पहला मंगलसूत्र द्रव्यार्थिकनय वाले शिष्यों के अनुग्रहार्थ रचा है आगे पुनः '**णमो ओहिजिणाणं**' से लेकर '**णमो वड्ढमाणरिसिस्स**'।।४४।। यहाँ तक जो नमस्कार सूत्र बनाये हैं वे पर्यायार्थिकनय वाले शिष्यों के अनुग्रहार्थ बनाये हैं, ऐसा अभिप्राय है।

नय मोक्ष का कारण है

कषायपाहुड़ में प्रश्न किया है कि—

''नय का कथन किसलिये किया जाता है ?

''**स एष याथात्म्योपलब्धिनिमित्तत्वाद्भावानां श्रेयोऽपदेशः।।८५।। अस्यार्थः—श्रेयसो मोक्षस्य अपदेशः कारणं, भावानां याथात्म्योपलब्धिनिमित्त-भावात्।**''

स एष नयो द्विविधः—'द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति।'[२]

''यह नय पदार्थों का जैसा स्वरूप है उस रूप से उनके ग्रहण करने में निमित्त होने से मोक्ष का कारण है।।८५।। इसलिये नय का कथन किया जाता है। इस मूलवाक्य का शब्दार्थ यह है कि यह नय श्रेयस् अर्थात् मोक्ष का अपदेश अर्थात् कारण है क्योंकि वह पदार्थों के यथार्थरूप से ग्रहण करने में निमित्त है।''

इस नय के दो भेद हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक।

जब नय को मोक्ष का निमित्त माना है और उसी के द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक दो भेद किये हैं तब पर्यायार्थिक या व्यवहारनय असत्य अथवा संसार का निमित्त कैसे हो सकता है ? अर्थात् कथमपि नहीं हो सकता है।

अध्यात्म भाषा में जो निश्चय और व्यवहारनय हैं आज ये ही विवाद के विषय बने हुये हैं। व्यवहारनय झूठा नहीं है सच्चा है यह तो आपने समझ लिया है। अब इसका आशय कहाँ तक है ? तथा निश्चयनय का आश्रय लेने वाले कौन महापुरुष हैं ? इस पर विचार किया जाता है।

वास्तव में आगम के आधार से व्यवहारनय का अवलंबन छठे और कथंचित् सातवें गुणस्थान तक होता है उसके ऊपर निश्चयनय का अवलंबन महामुनियों को ध्यानावस्था में होता है। श्रावक जो कि पंचम गुणस्थानवर्ती हैं अथवा जो असंयत सम्यग्दृष्टि हैं उनके लिए तो निश्चयनय का विषय ध्येय है, श्रद्धान करने योग्य है किन्तु व्यवहारनय के आश्रित एकदेश चारित्र ही अवलंबन करने योग्य है।

श्री कुंदकुंददेव आदि महर्षिगणों के शब्दों में ही इस विषय में स्पष्टीकरण पाया जाता है। सो ही देखिये।

---

३. धवला पु. ९ पृ. १२। १. जयधवला पु. १, पृ. २२१।

कौन सा नय कब और किसके द्वारा आश्रयणीय है ?

समयसार की व्याख्या में श्री अमृतचंद्र सूरि कहते हैं—

''प्रत्यगात्मदर्शिभिर्व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः। अथ च केषांचित्कदाचित्सोऽपि प्रयोजनवान्। यतः—

सुद्धो सुद्धादेसौ णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।१२।।[१]

परमभावदर्शियों को शुद्ध नय का कथन करने वाला शुद्धनय जानने योग्य है किन्तु जो अपरमभाव में स्थित हैं उनको व्यवहारनय के द्वारा उपदेश करना योग्य है।

इसी की टीका में श्री अमृतचंद्र सूरि कहते हैं—

ये खलु पर्यंतपाकोत्तीर्णजात्यकार्तस्वरस्थानीयं परमं भावमनुभवंति, तेषां प्रथमद्वितीयाद्यनेकपरंपरापच्यमान.....शुद्धनय.....प्रयोजनवान्। ये तु प्रथम.....अपरमं भावमनुभवन्ति तेषां.....व्यवहारनयो विचित्रमालिका-स्थानीयत्वात्परिज्ञानमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्, तीर्थतीर्थफलयोरित्थमेव व्यवस्थितत्वात्।।

उक्तं च—

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं।।

जो पुरुष अंतिम पाक से उतरे हुए शुद्ध सुवर्ण के समान शुद्ध परमभाव का अनुभव करते हैं, वे प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों की परम्परा से पच्यमान अशुद्ध सुवर्ण के समान अपरमभाव के अनुभव से शून्य हैं। अतः उनके लिए शुद्ध द्रव्य को ही कहने वाला होने से जिसने अस्खलित एक स्वभावरूप एक भाव प्रकट किया है ऐसा शुद्धनय ही उपरितन एक शुद्ध सुवर्ण के समान जाना हुआ प्रयोजनवान् है और जो पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों की परम्परा से पकते हुये उस अशुद्ध सुवर्ण के समान 'अपरमभाव' का अनुभव करते हैं वे अंतिम पाक से उत्तीर्ण शुद्ध सुवर्ण के सदृश 'परमभाव' के अनुभवन से शून्य हैं। अतः उनके लिए अशुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला होने से भिन्न-भिन्न एक भाव स्वरूप अनेक भाव दिखलाता हुआ यह व्यवहारनय विचित्र-अनेक वर्णमाला के समान जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है, क्योंकि तीर्थ और तीर्थफल इस प्रकार से ही व्यवस्थित है।

कहा भी है—"यदि तुम जिनमत में प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों को मत छोड़ो, क्योंकि व्यवहार के बिना तो तीर्थ का (मोक्षमार्ग का) नाश हो जायेगा और दूसरे निश्चय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा[२]।"

---

१. समयसार । २. समयसार गाथा १२ की टीका अमृतचंद्रसूरि कृत।

अब यहाँ समझना यह है कि 'परमभाव' तथा 'अपरमभाव' क्या है ? अंतिम पाक को प्राप्त कर चुके शुद्ध सुवर्ण के सदृश 'परमभाव' को लिया है और एक पाक, दो पाक आदि से शुद्ध होते हुए पंद्रह पाक तक उतरे हुए सुवर्ण के सदृश 'अपरमभाव' को कहा है। यह श्री अमृतचंद्रसूरि का मत है। इस दृष्टि से तो शुद्ध 'परमभाव' बारहवें गुणस्थान में ही घटित होगा उसके नीचे अशुद्ध सुवर्ण के समान आत्मा 'अपरमभाव' में ही स्थित है अथवा निर्विकल्पध्यान में आठवें, नवमें, दशवें गुणस्थानों में बुद्धिपूर्वक राग का अभाव होने से वीतरागता मानी गई है, उस दृष्टि से वहाँ पर भी 'परमभाव' कहा जा सकता है उसके पहले सविकल्प अवस्था वाले छठे गुणस्थानवर्ती मुनि तो 'अपरमभाव' में ही हैं। चूँकि—

'व्यवहारनयो.....तदात्वे प्रयोजनवान, तीर्थतीर्थफलयोरित्थमेव व्यवस्थितत्वात्।' यह वाक्य ध्यान देने योग्य है।

व्यवहार नय.....उस काल में प्रयोजनवान है, क्योंकि तीर्थ और तीर्थफल इसी प्रकार से व्यवस्थित हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवहारनय से ही तीर्थ और तीर्थ का फल होता है। तब यह भी स्पष्ट हो जाता है कि व्यवहारनय का अवलंबन बुद्धिपूर्वक क्रिया होने तक चलता ही है। "निर्ग्रंथ प्रवचन को अथवा निर्ग्रंथचर्या को निर्वाणमार्ग श्री गौतमस्वामी ने भी कहा है[१]।" छठे गुणस्थान की सरागचर्या भी निर्ग्रंथचर्या है चूँकि उसके बिना भी आगे के गुणस्थान नहीं होते हैं अतः चतुर्थ गुणस्थान से लेकर छठे, सातवें तक व्यवहारनय प्रयोजनवान है वहाँ तक 'अपरमभाव' है ही है।

व्यवहार अथवा निश्चय इन दोनों में किसी एक नय का एकांत तो मिथ्यात्व ही है अतः मिथ्यात्व में व्यवहारनय का अवलंबन नहीं है प्रत्युत व्यवहाराभास का अवलंबन है।

इस 'परमभाव' और 'अपरमभाव' को श्री जयसेनस्वामी ने भी इसी तरह से कहा है। यथा—

"यहाँ पर केवल भूतार्थ—निश्चयनय निर्विकल्पसमाधि में रत हुये मुनियों को प्रयोजनवान हो, मात्र इतनी ही बात नहीं है किन्तु सोलह ताव के शुद्ध सुवर्ण लाभ के अभाव में नीचे के ताव सहित सुवर्ण लाभ के समान निर्विकल्प समाधि से रहित किन्हीं प्राथमिक शिष्यों को कदाचित् सविकल्प अवस्था में मिथ्यात्व, विषय, कषाय को दूर करने के लिए व्यवहारनय भी प्रयोजनवान् है, ऐसा कहते हैं—

"शुद्धात्मभावदर्शियों को शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला शुद्धनय भावित करना चाहिए। क्यों ? क्योंकि यह सोलह ताव के सुवर्णलाभ के समान अभेद रत्नत्रय स्वरूप समाधि के काल में प्रयोजन

---

१. "इमं णिग्गंथं पवयणं णिव्वाणमग्गं .....।" मुनिप्रतिक्रमण।

सहित है, निःप्रयोजन नहीं है। व्यवहार से, विकल्प से, भेद से अथवा पर्याय से कहने वाला नय व्यवहारनय है। वह पुनः नीचे के ताव वाले सुवर्णलाभ के समान प्रयोजनवान् होता है। किनके लिये? जो पुनः 'अपरम' अर्थात् अशुद्ध में अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से अथवा श्रावक की अपेक्षा से सराग सम्यग्दृष्टि लक्षण वाले शुभोपयोग में अथवा प्रमत्त और अप्रमत्त मुनि की अपेक्षा से भेदरत्नत्रय लक्षण जीव पदार्थ में स्थित हैं। उनके लिए यह व्यवहारनय प्रयोजनवान है[1]।"

इससे यह समझना कि गाथा ११ में जो '**भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो**[2]।' कहा है सो वीतराग सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से ही कहा है।

इस व्यवहारनय की सार्थकता कहाँ तक है सो और देखिये—

''ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा''।।४६।।

"जो राग-द्वेष आदिरूप अध्यवसान आदि भाव हैं वह जीव है" ऐसा जिनेन्द्रदेव ने जो कहा है वह व्यवहारनय का कथन है[3]।"

इसी की टीका में श्री अमृतचंद्रसूरि कहते हैं—

''व्यवहारो हि व्यवहारिणां म्लेच्छभाषेव म्लेच्छानां परमार्थप्रतिपादकत्वाद्-परमार्थोऽपि तीर्थ प्रवृत्तिनिमित्तं दर्शयितुं न्याय्य एव। तमंतरेण तु शरीराज्जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनात् त्रसस्थावराणां भस्मन इव निःशंकमुपमर्दनेन हिंसाऽभावाद्भवत्येव बंधस्याभावः। तथा रक्तो द्विष्टो विमूढो जीवो बध्यमानो मोचनीय इति रागद्वेषमोहेभ्यो जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनेन मोक्षोपायपरिग्रहणाभावात् भवत्येव मोक्षस्याभावः।''

ये सब अध्यवसानादि भाव 'जीव' हैं ऐसा जो भगवान् सर्वज्ञ देव ने कहा है, वह अभूतार्थरूप जो व्यवहारनय है उसका मत है क्योंकि व्यवहारनय व्यवहारी जीवों को परमार्थ का कहने वाला है। जैसे कि म्लेच्छभाषा म्लेच्छों को वस्तु का स्वरूप बतलाने वाली है। उसी तरह यह व्यवहारनय **परमार्थ का प्रतिपादक** होने से अपरमार्थभूत होने पर भी तीर्थ प्रवृत्ति का निमित्त है अतः इसका दिखलाना न्याय संगत ही है। चूँकि उस व्यवहार के बिना परमार्थ से तो जीव शरीर से भिन्न है पुनः जैसे भस्म को निःशंक होकर उपमर्दित कर देते हैं वैसे ही त्रस-स्थावर जीवों का भी निःशंक होकर घात कर देने से हिंसा नहीं होगी तो फिर बंध का भी अभाव हो जायेगा। ऐसी स्थिति में 'रागी, द्वेषी, मोही जीव कर्म से बंधता है वही छुड़ाने योग्य है' इस प्रकार राग-द्वेष-मोह से जीव परमार्थ से भिन्न ही रहेगा, तब मोक्ष के उपाय को ग्रहण करने का भी अभाव हो जाने से मोक्ष का ही अभाव हो जायेगा।

---

१. समयसार पृ. २७। २. समयसार गाथा ४६। ३. समयसार गाथा ४६।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष का उपाय भी व्यवहारनय से ही ग्रहण किया जाता है। व्यवहारनय के बिना बंध व मोक्ष की व्यवस्था ही नहीं बा सकती है।

शंका—इस विषय में हमें कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु निश्चयनय के अवलंबन से होने वाला रत्नत्रय चौथे से ही शुरू हो जाता है इस मान्यता में ही विवाद है, अतः उसी का समाधान चाहिए ?

समाधान—इसका समाधान तो गाथा १२वीं में किया जा चुका है कि जो 'अपरमभाव' में स्थित हैं उनके लिये व्यवहारनय प्रयोजनीभूत है और आज सातवें गुणस्थान से ऊपर जा नहीं सकते अतः आज निश्चयनय का विषय श्रद्धान के लिये ही योग्य है अवलंबन के लिये नहीं। हाँ, सप्तमगुणस्थान में भी शुद्धोपयोग माना गया है अतः उसकी दृष्टि से कथंचित् मुनि ही उस निश्चयनय के अवलंबनस्वरूप निश्चयरत्नत्रय को प्राप्त कर सकते हैं, साधारण जन नहीं प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा समझना। क्योंकि व्यवहार या भेद रत्नत्रय साधन हैं और निश्चय या अभेद रत्नत्रय साध्य है। इस बात को आचार्यों ने स्वयं कहा है।

''अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांच परमेष्ठी सर्वजगत् में वंद्य हैं। सर्वत्र–सर्वकालिक—त्रैकालिक इन सभी अनंतानंत पांचों परमेष्ठी को मेरा 'नमोऽस्तु' नमस्कार होवे।

पंचपरमेष्ठी का स्वरूप

अरिहंत परमेष्ठी

घणघाइकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया।
चोत्तिसअदिसअजुत्ता अरिहंता एरिसा होंति[१]।।७१।।

अन्वयार्थ—(घणघाइकम्मरहिया) जो घनघाति कर्मों से रहित (केवलणाणाइ–परमगुणसहिया) केवलज्ञानादि परमगुणों से सहित (चोत्तिसअदिसअजुत्ता) और चौंतीस अतिशयों से युक्त हैं, (एरिसा अरिहंता होंति) ऐसे अर्हंतदेव होते हैं।।७१।।

टीका–जो निबिड आत्मगुणों के घातक ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मों से रहित हैं, केवल–असहाय अथवा अनंत ज्ञान आदि सर्वोत्कृष्ट गुणों से सहित हैं और तीर्थंकर प्रकृति नामकर्म के निमित्त से जन्म से दस अतिशय, घातिकर्म के क्षय से प्रगट हुए दस अतिशय और उसी समय देवों द्वारा कृत चौदह अतिशय, इन चौंतीस अतिशयों से युक्त हैं। अर्हंत जिनेश्वर ऐसे होते हैं।

१. नियमसार प्राभृत पृ. १६६।

जो कोई महायोगी, भेद–अभेद इन दोनों रत्नत्रय के बल से वीतराग निर्विकल्प समाधि का पुनः–पुनः अभ्यास करते हैं, वे क्षपक श्रेणी में आरोहण करने में समर्थ हुए त्रेसठ प्रकृतियों का निर्मूल नाश कर केवली हो जाते हैं। इन प्रकृतियों के नाश करने का क्रम दिखलाते हैं–

असंयतसम्यग्दृष्टि, देशसंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत इन चार गुणस्थानों में से किसी एक में अनंतानुबंधी की चार और दर्शनमोह की तीन ऐसी सात प्रकृतियों का नाश कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं। यदि ये चरम शरीरी हैं, तो इनके नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु का अभाव बिना प्रयत्न के ही हो जाता है। वे ही परमानंद अमृतपान के इच्छुक महामुनि क्षपक श्रेणी में चढ़कर अपूर्वकरण गुणस्थान में अपूर्व परिणाम के बल से अपूर्व शक्ति का संचय करते हुए अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में स्थिर होकर छत्तीस प्रकृतियों का नाश कर देते हैं। उनके नाम बताते हैं–नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, स्त्यानगृद्धि, प्रचलाप्रचला, निद्रानिदा, उद्योत, आतप, एकेंद्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया ये छत्तीस प्रकृतियाँ हैं।

पुनः वे ही महामुनि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में पहुँचकर बचे हुए एक संज्वलन लोभ को नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार वे मोहनीय कर्म का सर्वथा निर्मूलन करके आगे क्षीणकषाय नाम के बारहवें गुणस्थान में पहुँचकर वहाँ पर निद्रा, प्रचला, ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार और अंतराय की पाँच, ऐसी सोलह प्रकृतियों को समाप्त कर संपूर्ण पदार्थों के समूह को साक्षात् करने में समर्थ मेघ पटल के हटने पर प्रकट हुए सूर्य के समान, जाज्ज्वल्यमान ज्ञान की मूर्तिस्वरूप केवली हो जाते हैं।

इस प्रकार 7 + 3 + 36 + 1 + 16 = 63 प्रकृतियाँ नष्ट हो जाती हैं।

तीर्थंकर महाप्रभु केवली भगवान् के चौंतीस अतिशय और आठ महाप्रातिहार्य होते हैं। उनके जन्मकाल से ही नित्य उनके शरीर में १. पसीना नहीं आता, २. मल–मूत्र नहीं रहता , ३. दूध के समान रक्त रहता है ४. वज्रवृषभ–नाराचसंहनन ५. समचतुरस्रसंस्थान ६. अतिशय सुन्दर रूप ७. नवचंपक के समान सुगंधि ८. शरीर में १००८ लक्षण ९. अनंतबलवीर्य और १०. हितमितमधुर वचनालाप, ये दश अतिशय होते हैं।

पुनः घातिकर्म के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न हो जाने पर १. चारों दिशाओं में सौ–सौ योजन तक सुभिक्षता २. आकाश में गमन ३. जीवघात का अभाव ४. भोजन का अभाव ५. उपसर्ग का अभाव ६. चारों तरफ मुख का दिखना ७.छायारहितता ८. निमेषरहित दृष्टि ९. सर्वविद्या की ईश्वरता १०. नख–केशों का न बढ़ना और ११. अठारह महाभाषा, सात सौ लघुभाषा तथा अन्य संज्ञी जीवों का समस्त अक्षर और अनक्षर भाषारूप दिव्यध्वनि का खिरना, ये ग्यारह अतिशय होते हैं।

पुनः तीर्थंकर प्रभु के माहात्म्य से १. संख्यात योजन पर्यंत बिना समय के भी सर्व ऋतु के फल-फूलों का फलना २. कांटे, धूलि आदि को दूर करते हुए सुखदायी पवन का चलना ३. जन्मजातविरोधी जीवों में भी परस्पर में मैत्री भाव का होना ४. दर्पण तल के समान भूमि का स्वच्छ एवं रत्नमयी होना ५. इन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार द्वारा गंधोदक की वर्षा का होना ६. फल के भार से झुके हुए शालिधान आदि के खेतों का हो जाना ७. सर्वजनों को आनंद का होना ८. शीतल मंद सुगंध हवा ९. कुएँ, तालाब आदि का स्वच्छ जल से भर जाना १०. धुआँ, उल्कापात आदि से रहित आकाश का निर्मल होना ११. सर्व प्राणियों में रोग, बाधा आदि का नहीं होना १२. यक्षेंद्रों के मस्तक पर चार दिव्य धर्मचक्रों का होना १३. भगवान् के चरण रखने के स्थान आदि में दिव्य सुगंधित सुवर्ण कमलों का होना, ये तेरह अतिशय देवकृत होते हैं।[१]

पुनः १. अशोक वृक्ष २. देवों द्वारा पुष्पवृष्टि ३. दिव्यध्वनि ४. चामर ५. सिंहासन ६. भामंडल ७. दुन्दुभि बाजे और ८. छत्रत्रय, ये आठ महाप्रातिहार्य जिनेंद्रदेव के होते हैं।

पुनश्च अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्य इन चार अनंत चतुष्टयों से सहित अरहंत भगवान के छ्यालीस गुण माने हैं।

सिद्ध परमेष्ठी

णट्ठट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति।।७२।।

अन्वयार्थ — (णट्ठट्ठकम्मबंधा) जिन्होंने आठ कर्मों के बंध का नाश कर दिया है, (अट्ठमहागुणसमण्णिया) जो आठ महागुणों से समन्वित हैं। (परमालोयग्गठिदा णिच्चा) परम हैं, लोकाग्र पर स्थित हैं और नित्य हैं, (एरिसा ते सिद्धा होंति) ऐसे वे सिद्ध भगवान् होते हैं।।७२।।

टीका — जिन्होंने व्युपरतक्रियानिवृत्ति नाम के परमशुक्ल ध्यान के बल से आठों कर्मों के संश्लेष संबंध को भस्मसात् कर दिया है, ऐसे वे कर्ममल कलंक से रहित सिद्ध भगवान् आठ कर्मों के क्षय से प्रकट हुए सम्यक्त्व आदि आठ महागुणों से सहित हैं। उन गुणों के नाम कहते हैं —

सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध ये आठ गुण सिद्धों के होते हैं। उसी को स्पष्ट करते हैं —

मोहनीय कर्म के सर्वथा प्रलय हो जाने से सम्यक्त्व गुण प्रकट हो जाता है। ज्ञानावरण के सर्वथा क्षय हो जाने से ज्ञान, दर्शनावरण के संपूर्ण नाश से दर्शन, अन्तराय के पूर्णतया विनाश से वीर्य, नाम कर्म के संपूर्ण विलय से सूक्ष्मत्व, आयुकर्म के विनाश से अवगाहनत्व, गोत्र कर्म के

---

१. **धादिक्खएण जादा एक्कारस अदिसया महच्छरिया।**
एदे तित्थयराणं केवलणाणम्मि उप्पण्णे।।९०६।। तिलोयपण्णत्ति, अ. ४।
तिलोयपण्णत्ति, अ. ४ पृ. २६४ में केवलज्ञान के ग्यारह और देवोपनीत तेरह अतिशय माने हैं।

विघात से अगुरुलघुत्व और वेदनीय के अभाव से अव्याबाध—सिद्धों में ये आठ गुण प्रधानरूप से माने गये हैं क्योंकि आर्ष ग्रंथों में तो इनके अनंतानंत गुण कहे गये हैं।

पुनः वे सिद्ध कैसे हैं ?

परम—तीनों भुवन में जो सर्वोत्कृष्ट हैं अथवा जिनके परा—उत्कृष्ट, मा—लक्ष्मी—अनंतज्ञान, दर्शन आदि अनंतगुण स्वरूप विद्यमान हैं, वे परम हैं।

यदि ऐसे सिद्ध भगवान् हैं तो वे कहाँ विराजमान हैं? लोकाकाश के अग्रभाग—शिखर पर अर्थात् तनुवातवलय में विराजमान हैं।

पुनः क्या वे कभी इस संसार में कदाचित् अवतार लेंगे?

नहीं,

क्यों ?

क्योंकि वे नित्य हैं, शाश्वत हैं, वहाँ से कभी च्युत नहीं होंगे अथवा अगुरुलघु गुण के निमित्त से षड्गुण हानि वृद्धि के वश से, उत्पाद-व्ययरूप से परिणमन करते हुए भी ध्रुव होने से अविनश्वर हैं। शाश्वत काल तक वहीं पर विराजमान हैं और रहेंगे। इन लक्षणों से सहित सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।

इनके जानने से क्या प्रयोजन है ?

इनको जानकर उनके परम गुणों में अनुराग करते हुए उनकी आराधना करनी चाहिए क्योंकि उनकी आराधना से कर्ममल से कलंकित अपनी आत्मा की सिद्धि होगी।

आचार्य परमेष्ठी

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा।
धीरा गुणगंभीरा आइरिया एरिसा होंति।।७३।।

अन्वयार्थ—(पंचाचारसमग्गा) जो पाँच आचार से परिपूर्ण हैं, (पंचिंदियदंति-दप्पणिद्दलणा) पाँच इन्द्रियरूपी हाथी के दर्प का दलन करने वाले हैं, (धीरागुणगंभीरा) धीर हैं, गुणों से गंभीर हैं, (एरिसा आइरिया होंति) ऐसे आचार्य होते हैं।

टीका—जो पाँच आचार से परिपूर्ण हैं, पाँचों इन्द्रियरूपी हाथी का गर्वदलन करने वाले—चूर्ण करने वाले होने से जितेन्द्रिय हैं, उपसर्ग-परीषह के आ जाने पर धैर्य गुणों से सहित होने से धीर हैं और अमित गुणों से सहित हैं।

उसी को कहते हैं—दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तप आचार और वीर्याचार इन पाँच आचारों का जो स्वयं आचरण करते हैं और अन्य शिष्यों को आचरण कराते हैं, वे आचार्य हैं।

मूलाचार में कहा भी है—

जो सदा आचारवित् हैं, सदा आचारों का आचरण करते हैं और आचरण करवाते हैं, इसीलिए वे आचार्य कहलाते हैं।

जो सदा आचार के ज्ञाता हैं, सदा गणधरदेवादि द्वारा आचरित आचार का पालन करते हैं और उन्हीं पाँच आचारों का अन्य शिष्यों से आचरण कराते हैं, इसी कारण वे आचार्य कहलाते हैं।

जो पंचेन्द्रिय संबंधी विषयों को छोड़कर पूर्ण वैराग्यशाली हैं, इष्ट या अनिष्ट विषयों में समभावी हैं, धैर्य, उत्साह आदि गुणों से सहित हैं, शिष्यों का संग्रह करने में, उनके ऊपर अनुग्रह करने में और उनका निग्रह करने में कुशल हैं, दीक्षा, शिक्षा, प्रायश्चित्त आदि देने वाले हैं, मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इनका समूह वही हुआ चतुर्विध संघ, उसके नायक हैं, आचारवत्त्व, आधारवत्त्व आदि छत्तीस गुणों से सहित हैं और जिनमुद्रा को धारण करने वाले हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

शंका—पुत्र, मित्र, धन, महल आदि सर्व परिग्रह छोड़कर शिष्यादि परिग्रहों का संग्रह करने वाले भी वे सूरि निष्परिग्रही कैसे हैं ?

समाधान—आपने सत्य कहा है, फिर भी वह मुमुक्षु जीवों का संग्रह है, न कि परिग्रह।

श्रीकुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार महाप्राभृत ग्रंथ में कहा भी है—दर्शन ज्ञान का उपदेश, शिष्यों का ग्रहण और उनका पोषण तथा जिनेन्द्र पूजा का उपदेश यह सब सरागी संयमी मुनियों की चर्या है।

इसी गाथा को तात्पर्यवृत्ति टीका में कहा है कि—जो रत्नत्रय की आराधना और शिक्षा में तत्पर ऐसे शिष्यों को स्वीकार करते हैं और उनके ही भोजन, शयन आदि की चिंता करते हुए उन्हीं का पोषण करते हैं, इस प्रकार की सभी चर्या धर्मानुरागचारित्र सहित सरागी आचार्य परमेष्ठी की होती है।

प्रश्न—ऐसे आचार्य परमेष्ठी को जानकर क्या करना चाहिए ?

उत्तर—इनको जानकर परमादर से इनका आश्रय लेना चाहिए। इससे रत्नत्रय की सिद्धि और समाधि की प्राप्ति होवेगी।।७३।।

उपाध्याय परमेष्ठी

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।
णिक्कंखभावसहिया, उवज्झाया एरिसा होंति।।७४।।

अन्वयार्थ—(रयणत्तयसंजुत्ता) जो रत्नत्रय से संयुक्त हैं, (जिणकहियपयत्थदेसया सूरा) जिनदेव कथित पदार्थों के उपदेशक हैं, शूरवीर हैं, (णिक्कंखभावसहिया) और कांक्षा रहित भावों से सहित हैं, (एरिसा उवज्झाया होंति) ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं।।७४।।

टीका—जो रत्नत्रय से सहित हैं, सर्वज्ञदेव द्वारा उपदिष्ट जीव-अजीव आदि पदार्थों का उपदेश देने वाले हैं, शूर हैं और इन्द्रिय भोगों की आकांक्षा से रहित, इहलोक-परलोक संबंधी सांसारिक सुखों की अभिलाषा से रहित अथवा ख्याति, लाभ, पूजादि भावना से रहित हैं, ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं।

इसी को कहते हैं—जो सकलचारित्र के धारी, अर्हंतमुद्रा से समन्वित, निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनि हैं, ग्यारह अंग और चौदह पूर्व का स्वयं अध्ययन करते हैं तथा अन्य मुमुक्षु मुनियों को अध्ययन कराते

हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं। ग्यारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों के पठन-पाठन की मुख्यता से इनके ये पच्चीस मूलगुण कहे गये हैं अथवा उस काल के समस्त श्रुत में पारंगत भी उपाध्याय होते हैं।

धवला टीका में कहा है—

"चतुर्दश पूर्वरूप विद्यास्थान के व्याख्यान करने वाले अथवा तात्कालिक प्रवचन ग्रन्थों के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं।[१]

ये उपाध्याय परमेष्ठी पाँच महाव्रत आदि तेरह प्रकार के चारित्र और अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हुए, शिष्यों को पढ़ाते हुए और उपदेश देते हुए भी शिष्यों का संग्रह तथा अनुग्रह नहीं करते हैं।"

प्रश्न—ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी को जानकर क्या करना चाहिए ?

उत्तर—संसार समुद्र से तिरने के लिए उपायभूत इन गुरुओं की शरण लेकर इनसे जिनागम का अध्ययन करते हुए तुम्हें केवलज्ञान के बीज ऐसे भावश्रुत को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।।७४।।

साधु परमेष्ठी

वावारविप्पमुक्का, चउव्विहाराहणासयारत्ता।
णिग्गंथा णिम्मोहा, साहू एदेरिसा होंति।।७५।।

श्री कुन्दकुन्ददेव अपनी आत्मसिद्धि के साधक ऐसे साधु परमेष्ठी का स्वरूप कहते हैं—

अन्वयार्थ—(वावारविप्पमुक्का) जो व्यापार से रहित, (चउव्विहाराहणासयारत्ता) चारों प्रकार की आराधना में सदा तत्पर (णिग्गंथा णिम्मोहा) परिग्रह ग्रंथिरहित और मोहरहित हैं, (एदेरिसा साहू होंति) इस प्रकार के साधु होते हैं।।७५।।

टीका—जो मन-वचन-काय की अशुभ चेष्टारूप व्यापार से अथवा सर्व अशुभ व्यापार से रहित हैं, जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार प्रकार की आराधनाओं में सदा अनुरागयुक्त हैं, जो दशविध बाह्य और चौदह प्रकार के अंतरंग ऐसे चौबीस प्रकार की ग्रंथि—परिग्रह से रहित होने से निर्ग्रंथ हैं और दर्शनमोह तथा चारित्रमोह से रहित होने से निर्मोही हैं, ऐसे गुरु साधु परमेष्ठी कहलाते हैं।

उसे ही कहते हैं—जो अनंतज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य स्वरूप अपनी शुद्धात्मा का साधन करते हैं, वे साधु होते हैं। ये पाँच महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुणों से सहित हैं, बारह प्रकार के तप और बाईस प्रकार के परीषहजय इन चौंतीस उत्तरगुणों का पालन करते हैं, आतापन, वृक्षमूल और अभ्रावकाश आदि योग को धारण करने वाले हैं अथवा और भी अनेक प्रकार के योग धारण करने में कुशल हैं अथवा चौरासी लाख पर्यंत उत्तरगुणों में यथाशक्ति उत्तरगुणों को धारण करते हैं वे साधु परमेष्ठी होते हैं।

---

१. धवला पुस्तक-१ पृ. ५१।

शंका—जिनको अपनी आत्मा की उपलब्धि स्वरूप सिद्धि हो चुकी है, ऐसे अर्हंत और सिद्ध नमस्कार के योग्य हैं, न कि आचार्य आदि, क्योंकि इनमें स्वात्मसिद्धि का अभाव होने से उनमें देवपने का अभाव है।

समाधान—ऐसा नहीं कहना,

शंका—क्यों ?

समाधान—क्योंकि रत्नत्रय को ही देवत्व कहा है और वह रत्नत्रय इनमें भी विद्यमान है, इसलिए आचार्य, उपाध्याय, साधुओं में भी देवत्व की हानि नहीं है।

धवला टीका में कहा भी है[१]—

तीन रत्न ही देव हैं, इनके अपने भेद से अनंतभेद हो जाते हैं, इन रत्नत्रय से सहित जीव भी देव हैं। अगर ऐसा नहीं मानोगे तो सभी अशेष जीवों में भी देवपने की आपत्ति आ जायेगी, इसलिए आचार्य आदि भी देव हैं, क्योंकि उनमें भी रत्नत्रय का अस्तित्व समान है।

शंका—संपूर्ण रत्नत्रय ही देव हैं, न कि एकदेश रत्नत्रय ?

समाधान—यदि रत्नत्रय के एकदेश में देवत्व का अभाव मानोगे तो समस्त रत्नत्रय में भी देवत्व का अभाव ही रहेगा।

शंका—आचार्य आदि में स्थित जो रत्नत्रय हैं, वे सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने वाले नहीं हैं क्योंकि वे एकदेश रत्नत्रय हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, अग्निसमूह का कार्य है पलाल के ढेर को जला देना, सो वह कार्य उसके एक कण—चिनगारी में भी पाया जाता है। इसलिए आचार्य आदि भी देव हैं, यह बात निश्चित हुई।

शंका—पंच परमेष्ठी में पूज्यता है, यह बात तो मैंने समझ ली, किन्तु सर्वकर्म मल से रहित सिद्धों के पहले अर्हंतों को नमस्कार कैसे किया है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, सिद्ध भगवान् सभी की अपेक्षा गुणों में अधिक हैं, यह ज्ञान भी अर्हंत के उपदेश से ही होता है अथवा आप्त, आगम और पदार्थों का ज्ञान भी अर्हंत के उपदेश से ही होता है, इसलिए अर्हंत के प्रसादस्वरूप उनके उपकार की अपेक्षा से उनको पहले नमस्कार करना दोषप्रद नहीं है।

शंका—सम्यग्दृष्टि जीवों को यह पक्षपात क्यों है ?

समाधान—यह पक्षपात दोष का हेतु नहीं है प्रत्युत गुण का ही हेतु है। आचारसार ग्रंथ में कहा भी है—

"गुणों में जो पक्षपात है, वह प्रमोद कहलाता है।"

---

१. धवला पुस्तक–१ पृ. ५१।

धवला टीका में भी इसी का समर्थन देखा जाता है—

"शुभपक्ष के वर्तन में किया गया पक्षपात दोष के लिए नहीं है, क्योंकि वह मोक्ष का हेतु है। जहाँ अद्वैत—अभेद प्रधान है वहाँ द्वैत गौण हो जाता है, ऐसे अद्वैत प्रधान में द्वैतनिमित्तक पक्षपात नहीं बन सकता अथवा आप्त की श्रद्धा में आप्त, आगम और पदार्थविषयक श्रद्धा की अधिकता हेतु है, ऐसा बतलाने के लिए ही अर्हंतों को आदि में नमस्कार किया है।

श्री गौतमस्वामी नवदेवों के अन्तर्गत धर्म की वंदना करते हैं–

"क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुम्।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेंद्रोक्तम्।।६।।"

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—जो क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि गुणों के समूह का साधन है, संपूर्ण लोक के हित का का हेतु है और शुभ—मोक्षस्थान में पहुँचाने वाला है ऐसे जिनेंद्रदेव द्वारा कथित धर्म की मैं वन्दना करता हूँ।।

यहाँ श्री गौतमस्वामी ने उत्तमक्षमा आदि दश धर्मों को 'धर्म' कहा है। अन्यत्र रत्नत्रय को भी धर्म कहा है। यथा—

"मिच्छणाण–मिच्छदंसण–मिच्छचारित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण–सम्मदंसण–सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तं[१]**"**

"मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र से मैं विरक्त होता हूँ और सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्त्व चारित्र जो कि जिनेंद्र देवों द्वारा प्रणीत है उसी में मैं रुचि रखता हूँ।"

इसी प्रकार वीरभक्ति में श्रीगौतम स्वामी ने "**धर्मस्य मूलं दया**" कहा है कि धर्म का मूल दया है। पुनश्च इसी वीरभक्ति में कहा है कि–

"धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं अहिंसा संजमो तवो।"

धर्म मंगल स्वरूप कहा गया है वह 'अहिंसा, संयम और तप भी है आदि।

श्री गौतमस्वामी ने जिनागम की वन्दना की है–

"मिथ्याज्ञान–तमोवृत–लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।"

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—मिथ्याज्ञानरूपी अंधकार से व्याप्त इस लोक—संसार में एक अद्वितीय ज्योतिस्वरूप, अनुपम, द्वादशांग और अंगबाह्यरूप अजेय जैनवचन—जिनआगम की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

मंगलाचरण में पाँच ज्ञानों के विवेचन में श्रुतज्ञान में इन द्वादशांग व अंगबाह्य का वर्णन संक्षेप में आ चुका है। आज वर्तमान उपलब्ध पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत जितना भी 'जैन वाङ्मय' हैं—जितने दिगंबर जैन ग्रंथ हैं वे सभी जिनागम हैं।

श्री गौतमस्वामी ने जिनचैत्य–जिनप्रतिमाओं की वन्दना की है–

''भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणाम्।।८।।''

अर्थ—भवनवासी, वैमानिक, ज्योतिषी और व्यंतर इन चार प्रकार के देवों के यहाँ तथा नरलोक– मनुष्यलोक में होने वाली अकृत्रिम–कृत्रिम सभी जितनी भी जिनेंद्रदेवों की जिनचैत्य–जिनप्रतिमायें हैं, जो कि तीनों जगत में पूज्य हैं उन सभी की मैं मन वचन काय से वन्दना करता हूँ।।

ये जिनप्रतिमायें अधिकतम जिनमंदिरों में ही विराजमान रहती हैं अतः आगे नवमें देव की वन्दना करते हैं–

श्री गौतमस्वामी जिनचैत्यालयों की वंदना करते हैं–

''भुवनत्रयेऽपि भुवन–त्रयाधिपाभ्यर्च्य तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—तीनों लोकों के इंद्रों से अर्चित ऐसे तीर्थंकर भगवान जो कि भव–संसार के भ्रमण से रहित हैं, उनके जो आलयों का समूह—जिनालय हैं, ऐसे जिनमंदिर तीनों लोकों में भी जितने हैं उन सबकी मैं भवसंताप की शांति के लिये वन्दना करता हूँ।।९।।

अकृत्रिम जिनमंदिर रचना

अकृत्रिम–अनादिनिधन–शाश्वत जिनमंदिर तीनों लोकों के असंख्यात हैं। उन मंदिरों की रचना कैसी है ? वे मंदिर बड़े से बड़े कितने बड़े हैं और छोटे से भी छोटे कितने छोटे हैं ?

उत्कृष्ट मंदिर सौ योजन लंबे, पचास योजन चौड़े और पचहत्तर योजन ऊँचे हैं। मध्यम जिनालय पचास योजन लंबे, पचीस योजन चौड़े और ३७–१/२ योजन ऊँचे हैं। जघन्य मंदिर पचीस योजन

लम्बे, १२–१/२ योजन चौड़े, १८– ३/४ योजन ऊँचे हैं।

एक योजन में चार कोश, एक कोश में–दो मील होने से ये उत्कृष्ट मंदिर १०० यो., १०० × ८ मील से गुणा करने से आठ सौ मील लंबे हैं, अर्थात् ८०० मील के किलोमीटर करने से बारह सौ अस्सी १२८० कि. मी. लंबे हैं।

सुदर्शन मेरु आदि पाँचों मेरु के भद्रसाल, नंदनवन के मंदिर, नंदीश्वरद्वीप व वैमानिक देवों के मंदिर उत्कृष्ट प्रमाण वाले हैं। मेरु के सौमनसवन के, कुण्डलगिरि व रुचकगिरि, वक्षार, इष्वाकार मानुषोत्तरपर्वत और हिमवान आदि कुलाचलों के मंदिर मध्यम प्रमाण वाले हैं। पांडुकवन के मंदिर जघन्य प्रमाण वाले हैं।

विजयार्ध पर्वत के मंदिर, जंबूवृक्ष व शाल्मलीवृक्ष के मंदिर एक कोश लंबे, १/२ कोश चौड़े व पौन कोश ऊँचे हैं।[१]

प्रत्येक मंदिर के चारों तरफ तीन परकोटे हैं। प्रथम व द्वितीय परकोटे के अंतराल में चैत्यवृक्ष हैं। जिनके परिवार वृक्ष एक लाख, चालीस हजार एक सौ उन्नीस हैं। इन सभी वृक्षों की कटनी पर चारों दिशाओं में एक-एक जिनप्रतिमाएँ हैं।

इन अकृत्रिम जिनमंदिरों को एवं उनमें–प्रत्येक में विराजमान १०८–१०८ जिनप्रतिमाओं को तथा मानस्तंभ, स्तूप व चैत्यवृक्षों में विराजमान जिनप्रतिमाओं को मेरा कोटि-कोटि नमन है।

नन्दीश्वर द्वीप के जिनमंदिर[१]

अब त्रैलोक्यस्थित अकृत्रिम चैत्यालयों का सामान्य से व्यासादिक कहते हैं—

गाथार्थ—उत्कृष्ट आदि चैत्यालयों के आयाम के अर्ध भाग प्रमाण उनका व्यास है तथा आयाम और व्यास के योग का अर्ध भाग प्रमाण उन जिनालयों का उदय (ऊँचाई) है। द्वारों की ऊँचाई के अर्धभाग प्रमाण द्वारों का व्यास (चौड़ाई) है तथा बड़े द्वारों के व्यासादि से छोटे द्वारों का व्यासादिक अर्ध–अर्ध प्रमाण है।।९७८।।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य जिनालयों का आयाम क्रम से १०० योजन, ५० योजन और २५ योजन प्रमाण है। इन्हीं जिनालयों का व्यास (चौड़ाई) आयाम के अर्ध भाग प्रमाण अर्थात् ५० योजन, २५ योजन और १२-१/२ योजन प्रमाण है तथा इनकी ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई के अर्धभाग प्रमाण अर्थात् (१०० + ५०) = १५० ÷ २ = ७५ योजन, (५० + २५) = ७५ ÷ २ = ३७.१/२ योजन और (२५ + १२-१/२) = ७५ / २ × २ = १८-३/४ योजन प्रमाण है। उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य जिनालयों के द्वारों की ऊँचाई क्रम से १६ योजन, ८ योजन और ४ योजन प्रमाण है तथा इन्हीं द्वारों की चौड़ाई, ऊँचाई के अर्धभाग प्रमाण अर्थात् ८ योजन, ४ योजन और २ योजन

---

१. त्रिलोकसार पृ. ७४९ से ७६५ तक।

प्रमाण है। छोटे-छोटे द्वारों का उदय एवं व्यास बड़े द्वारों के उदय एवं व्यास से अर्ध-अर्ध प्रमाण है अर्थात् उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य जिनालयों में जो छोटे-छोटे दरवाजे हैं उनकी ऊँचाई क्रम से ८ योजन, ४ योजन और २ योजन है तथा उनका व्यास (चौड़ाई) ४ योजन, २ योजन और एक योजन प्रमाण है।।

इस कहे हुए अर्थ को ही विशेष-दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य जिनालयों का व्यासादिक क्रम से आधा-आधा है। भद्रशाल वन, नन्दन वन, नन्दीश्वर द्वीप और वैमानिक देवों के विमानों में जो जिनालय हैं, ये उत्कृष्ट व्यासादिक प्रमाण वाले हैं तथा सौमनस वन, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, वक्षार, इष्वाकार, मानुषोत्तर पर्वत और कुलाचलों पर जो जिनालय हैं, उनका व्यासादिक मध्यम और पाण्डुक वन स्थित जो जिनालय हैं, उनका व्यासादिक जघन्य प्रमाण वाला है।।९७९-९८०।।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट जिनालयों के व्यासादिक से मध्यम जिनालयों का व्यासादिक अर्धभाग प्रमाण है और मध्यम से जघन्य जिनालयों का व्यासादिक अर्धभाग प्रमाण है। भद्रशाल वन, नन्दन वन, नन्दीश्वर द्वीप और देवों के विमानगत जो जिनालय हैं, वे उत्कृष्ट प्रमाण वाले हैं। सौमनस वन, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, वक्षार, इष्वाकार, मानुषोत्तर पर्वत और कुलाचलों पर जो जिनालय हैं, वे मध्यम तथा पाण्डुक वनस्थ जिनालय जघन्य प्रमाण वाले हैं।

इसके बाद उत्कृष्ट जिनालयों का आयाम, गाध (नींव) और द्वारों की ऊँचाई कहते हैं—

गाथार्थ—उत्कृष्ट जिनालयों का आयाम सौ योजन प्रमाण और गाध अर्ध योजन प्रमाण है। इनके द्वारों की ऊँचाई सोलह योजन प्रमाण है। उत्कृष्ट द्वारों के दोनों पार्श्व भागों में दो-दो छोटे द्वार हैं।।९८१।।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट जिनालयों की लम्बाई १०० योजन और अवगाढ अर्ध योजन प्रमाण है। इन जिनालयों के उत्कृष्ट द्वारों की ऊँचाई १६ योजन प्रमाण है। उत्कृष्ट द्वारों के दोनों पार्श्व भागों में दो-दो छोटे दरवाजे हैं।

उत्कृष्टादि विशेषण से रहित जिनालयों का आयाम कितना है ? ऐसा पूछने पर कहते हैं—

गाथार्थ—विजयार्ध पर्वत, जम्बू और शाल्मली वृक्षों पर स्थित जिनालयों का आयाम एक कोस प्रमाण है तथा अवशेष जिनालयों (भवनवासियों के भवनों एवं व्यन्तरदेवों के आवासों में स्थित) का अपने-अपने योग्य आयामादिक का प्रमाण जिनेन्द्रदेव के द्वारा देखा हुआ है अर्थात् अनेक प्रकार का है अतः यहाँ कहा नहीं जा सकता ।।९८२।।

ऊपर कहे हुए जिनालयों का परिवार सात गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—समस्त जिनभवनों के चार गोपुर द्वारों से संयुक्त मणिमय तीन कोट हैं। प्रत्येक वीथी में एक-एक मानस्तम्भ और नव-नव स्तूप हैं। उन कोटों के अन्तरालों में क्रम से वन, ध्वजा

और चैत्यभूमि हैं।।९८३।।

विशेषार्थ—समस्त जिनभवनों के चारों ओर चार गोपुर द्वारों से संयुक्त मणिमय तीन कोट हैं। प्रत्येक वीथी में एक-एक मानस्तम्भ और नव-नव स्तूप हैं। बाहर से प्रारम्भ कर प्रथम और द्वितीय कोट के अन्तराल में वन हैं। द्वितीय और तृतीय कोट के अन्तराल में ध्वजाएँ तथा तृतीय कोट के बीच चैत्यभूमि है।

गाथार्थ—उन समस्त जिन भवनों में प्रत्येक में एक सौ आठ गर्भगृह हैं तथा जिनभवनों के मध्य में रत्नों के स्तम्भों से युक्त स्वर्णमय एक-एक मण्डप है जिसकी लम्बाई ८ योजन, चौड़ाई दो योजन और ऊँचाई चार योजन प्रमाण है।

गाथार्थ—उन गर्भगृहों के मध्य में सिंहासनादि से सहित तथा विशेष नीले केश, सुन्दर वज्रमय दाँत, मूँगा सदृश ओंठ तथा नवीन कोंपल की शोभा को धारण करने वाले हैं हाथ और पैर के तलभाग जिनके दश ताल प्रमाण लक्षणों से भरी हुईं, देख रही हों मानों, बोल ही रहीं हों मानों और आदिनाथ भगवान् के बराबर है (५०० धनुष) ऊँचाई जिनकी, ऐसी रत्नमय एक सौ आठ प्रतिमाएँ हैं।।९८५-९८६।।

विशेषार्थ—उन १०८ गर्भगृहों के मध्य में सिंहासनादि से सहित रत्नमय १०८-१०८ प्रतिमाएँ हैं। जिनके विशेष नीले केश, सुन्दर वज्रमय दाँत, मूँगा सदृश ओंठ तथा नवीन कोंपल की शोभा को धारण करने वाले हाथ पैर के तल भाग हैं, जो दश ताल प्रमाण लक्षण से भरी हुई हैं। जो देखती हुई के सदृश, बोलती हुई के सदृश एवं आदिनाथ भगवान के सदृश ५०० धनुष ऊँची हैं।

वे प्रतिमाएँ कैसी हैं ?

गाथार्थ—वे जिन प्रतिमाएँ, चमरधारी नागकुमारों के बत्तीस युगलों और यक्षों के बत्तीस युगलों सहित, पृथक्-पृथक् एक-एक गर्भगृह में सदृश पंक्ति से भली प्रकार शोभायमान होती हैं। उन जिन प्रतिमाओं के पार्श्व भाग में श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाण्ह यक्ष और सानत्कुमार यक्ष के रूप अर्थात् प्रतिमाएँ हैं तथा अष्टमङ्गल द्रव्य भी होते हैं। झारी, कलश, दर्पण, पङ्खा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठोना ये आठ मंगल द्रव्य हैं, ये प्रत्येक मंगल द्रव्य १०८-१०८ प्रमाण होते हैं।।९८७-९८८-९८९।।

विशेषार्थ—वे जिन प्रतिमाएँ चौंसठ चमरों से वीज्यमान हैं अर्थात् हाथों में हैं चमर जिनके ऐसे नागकुमार के ३२ युगलों और यक्षों के ३२ युगलों से सहित हैं, पृथक्-पृथक् एक-एक गर्भगृह में सदृश पंक्ति से भली प्रकार शोभायमान होती हैं। उन प्रतिमाओं के पार्श्वभाग में श्री (लक्ष्मी) देवी, श्रुत (सरस्वती) देवी, सर्वाह्व यक्ष और सानत्कुमार यक्ष की प्रतिमाएँ तथा अष्टमंगल द्रव्य हैं। झारी, कलश, दर्पण, पङ्खा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठोना, ये आठ मङ्गल द्रव्य हैं, ये प्रत्येक मंगल द्रव्य एक सौ आठ, एक सौ आठ प्रमाण होते हैं।

इसी प्रकार तिलोयपण्णत्ती में भी कहा है—

सिरिसुददेवीणतहासव्वाण्हसणक्कुमार जक्खाणं।
रुवाणिं पत्तेक्कं पडि वररयणाइरइदाणिं।।१८८१।।(चतुर्थ अधिकार)

अर्थ—प्रत्येक प्रतिमा के प्रति उत्तम रत्नादिकों से रचित श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह व सानत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ रहती हैं।।१८८१।।

अब गर्भगृह से बाह्य का स्वरूप चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—मणि और स्वर्ण के पुष्पों से सुशोभित देवच्छन्द के पूर्व में आगे जिनमन्दिर है, उसके मध्य में चाँदी और स्वर्ण के बत्तीस हजार घड़े हैं। महाद्वार के दोनों पार्श्व भागों में चौबीस हजार धूपघट हैं तथा उस महाद्वार के दोनों बाह्य पार्श्वभागों में आठ हजार मणिमय मालाएँ हैं। उन मणिमय मालाओं के मध्य में चौबीस हजार स्वर्णमय मालाएँ हैं तथा मुखमण्डप में स्वर्णमय सोलह हजार कलश, सोलह हजार मालाएँ और सोलह हजार धूपघट हैं तथा उसी मुखमण्डप का मध्य भाग मोती और मणियों से बनी हुईं मधुर झण झण शब्द करने वाली छोटी-छोटी किंकिणियों से युक्त नाना प्रकार के घन्टा जालों की रचना से शोभायमान हैं।।।९९०-९९३।।

विशेषार्थ—मणि और स्वर्ण के पुष्पों से सुशोभित जो देवच्छन्द है, उसके पूर्व में आगे जिनमन्दिर का मध्य चाँदी और स्वर्ण के बत्तीस हजार घड़ों से युक्त है। मन्दिर के महाद्वार के दोनों पार्श्व भागों में २४००० धूपघट हैं तथा उसी महाद्वार के दोनों बाह्य पार्श्व भागों में ८००० मणिमय मालाएँ हैं और उन्हीं मणिमय मालाओं के मध्य में २४००० स्वर्णमय मालाएँ हैं तथा उस महाद्वार के आगे मुखमण्डप का मध्य भाग, मोती एवं मणियों से बनी हुई मधुर झन-झन शब्द करने वाली छोटी-छोटी किंकिणियों से संयुक्त नाना प्रकार के घंटाओं के समूह की रचना से शोभायमान है।

उस मन्दिर के छोटे द्वारों का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ—जिनमन्दिर के दक्षिणोत्तर पार्श्व भागों में छोटे-छोटे द्वार हैं। उनकी मालादिक का प्रमाण महाद्वार के प्रमाण से अर्धभाग प्रमाण है। उस मन्दिर के पृष्ठभाग में आठ हजार मणिमय मालाएँ और २४००० स्वर्णमय मालाएँ हैं।।९९४।।

ऊपरि कथित मुखमण्डपादिकों का व्यास आदि तथा उनके आगे स्थित रचना का स्वरूप पन्द्रह गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—जिनमन्दिर के आगे जिनमन्दिर सदृश ही व्यास एवं आयाम वाला और १६ योजन ऊँचा मुखमण्डप है। उस मुखमण्डप के आगे चौकोर प्रेक्षण मण्डप है, जिसका व्यास सौ योजन और ऊँचाई साधिक सोलह योजन है। उस प्रेक्षण मण्डप के आगे दो योजन ऊँचा, अस्सी योजन चौड़ा, चौकोर और स्वर्णमय पीठ है। उस पीठ के मध्य में चार के घन (६४ योजन) प्रमाण चौड़ा और

सोलह योजन ऊँचा, चौकोर मणिमय आस्थान मण्डप है। उसके आगे चालीस योजन ऊँचे स्तूप का मणिमय पीठ है। जो चार द्वारों और बारह पद्मवेदियों से संयुक्त है। उस पीठ के मध्य में तीन मेखलाओं–कटनियों से सहित, चार के घन प्रमाण अर्थात् ६४ योजन लम्बा, ६४ योजन चौड़ा और ६४ योजन ऊँचा, बहुरत्नों से रचित और जिनबिम्ब से उपचित स्तूप है। नवों स्तूपों का स्वरूप इसी क्रम से है। उस स्तूप के आगे हजार योजन लम्बा, हजार योजन चौड़ा बारह वेदियों से संयुक्त स्वर्णमय पीठ है। उस पीठ के ऊपर मणिमय तीन कोटों से संयुक्त सिद्धार्थ और चैत्य नाम के दो वृक्ष हैं। उन वृक्षों के स्कन्ध ४ योजन लम्बे और एक योजन चौड़े हैं। बारह योजन लम्बी चार महाशाखाएँ एवं अनेक छोटी शाखाएँ हैं। उन वृक्षों का उपरिम भाग बारह योजन चौड़ा है। वे वृक्ष नाना प्रकार के पत्र, फूल और फलों से सहित हैं। उनके परिवार वृक्षों की संख्या पद्मद्रह के मुख्य कमल के परिवार कमलों के प्रमाण से पाँच अधिक है।।९९५ से १००१ तक।। (सप्तक)

विशेषार्थ—जिनमन्दिर के आगे जिनमन्दिर के ही सदृश १०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा और १६ योजन ऊँचा मुखमण्डप है। उस मुखमण्डप के आगे चौकोर प्रेक्षण मण्डप है। जो १०० योजन चौड़ा, १०० योजन लम्बा और साधिक १६ योजन ऊँचा है। उस प्रेक्षण मण्डप के आगे ८० योजन लम्बा, ८० योजन चौड़ा और दो योजन ऊँचा (चौकोर) स्वर्णमय पीठ है। चबूतरे का नाम पीठ है। उस पीठ के मध्य में चौकोर, मणिमय, ६४ योजन लम्बा, चौड़ा और १६ योजन ऊँचा आस्थान मण्डप है। सभामण्डप का नाम आस्थान मण्डप है। इस आस्थान मण्डप के आगे ४० योजन ऊँचे स्तूप का मणिमय पीठ है। वह पीठ चार गोपुरद्वारों एवं बारह पद्म वेदियों से सहित है। उस पीठ के मध्य में तीन मेखलाओं अर्थात् कटनी से सहित ६४ योजन लम्बा, चौड़ा और १६ योजन ऊँचा आस्थान मण्डप है। सभामण्डप का नाम आस्थान मण्डप है। इस आस्थान मण्डप के आगे ४० योजन ऊँचे स्तूप का मणिमय पीठ है। वह पीठ चार गोपुरद्वारों एवं बारह पद्म वेदियों से सहित है। उस पीठ के मध्य में तीन मेखलाओं अर्थात् कटनी से सहित ६४ योजन लम्बा, ६४ योजन चौड़ा और ६४ योजन ऊँचा, बहुरत्नों से रचित और जिनबिम्ब से उपचित स्तूप है। इसी प्रकार के नव स्तूप हैं अर्थात् नव ही स्तूपों के स्वरूपों का वर्णन इसी स्तूप सदृश है। इन स्तूपों के ऊपर जिनबिम्ब विराजमान हैं। इस स्तूप के आगे अर्थात् चारों ओर १००० योजन लम्बा, १००० योजन चौड़ा बारह वेदियों से संयुक्त स्वर्णमय पीठ है। उस पीठ के ऊपर सिद्धार्थ और चैत्य नाम के दो वृक्ष हैं। जिन वृक्षों का स्कन्ध ४ योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा है। जिनके चार–चार महाशाखाओं की लम्बाई १२ योजन प्रमाण है। इनमें छोटी शाखाएँ अनेक हैं। इनका उपरिम भाग अर्थात् शिखर १२ योजन चौड़ा है। ये वृक्ष नाना प्रकार के पत्र, पुष्प और फलों से सहित हैं। इनके परिवार वृक्षों की संख्या पद्मद्रह के मुख्य कमल के परिवार कमलों के प्रमाण से ५ अधिक हैं अर्थात् एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस हैं।

गाथार्थ—चारों दिशाओं में उन वृक्षों के मूल में जो पीठ अवस्थित हैं उन पर चार सिद्ध प्रतिमाएँ और चार अरहन्त प्रतिमाएँ विराजमान हैं। उन प्रतिमाओं के आगे पीठ हैं जिनमें नाना प्रकार के वर्णन से युक्त महाध्वजाएँ स्थित हैं।।१००२।।

विशेषार्थ—चारों दिशाओं में स्थित सिद्धार्थवृक्ष की पीठ—कटनी पर सिद्ध प्रतिमाएँ और चैत्यवृक्ष की पीठ—कटनी पर अरहन्त प्रतिमाएँ विराजमान हैं। उन प्रतिमाओं के आगे पीठ हैं जिनमें नाना प्रकार के वर्णन से युक्त महाध्वजाएँ स्थित हैं।

शंका—सिद्ध प्रतिमा और अरहन्त प्रतिमा में क्या अन्तर है ?

समाधान—अरहन्त प्रतिमा अष्टप्रातिहार्य संयुक्त ही होती हैं किन्तु सिद्ध प्रतिमा अष्ट प्रातिहार्य रहित होती हैं।। यथा—

१. वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ के तृतीय परिच्छेद में—

प्रातिहार्याष्टकोपेतं, सम्पूर्णावयवं शुभम्।
भावरूपानुविद्धाङ्गं, कारयेद् बिम्बमर्हतां।।६९।।
प्रातिहार्यैर्विना शुद्धं, सिद्धं बिम्बमपीदृशः।
सूरीणां पाठकानां च, साधूनाम् च यथागमम्।।७०।।

अर्थ :–अष्टप्रातिहार्यों से युक्त, सम्पूर्ण अवयवों से सुन्दर तथा जिनका सन्निवेष (आकृति) भाव के अनुरूप है ऐसे अरहन्त बिम्ब का निर्माण करें।।६९।।

सिद्ध प्रतिमा शुद्ध एवं प्रातिहार्य से रहित होती हैं। आगमानुसार आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं की प्रतिमाओं का भी निर्माण करें।।७०।।

२. जयसेन प्रतिष्ठापाठ के बिम्बनिर्माण प्रकरण में भी कहा है कि—

सल्लक्षणं भावविवृद्ध–हेतुकं, सम्पूर्ण–शुद्धावयवं दिगम्बरं।
सत्प्रातिहार्य्यैर्निजचिन्हभासुरं, संकारये बिम्बमथार्हतः शुभम् ।।१८०।।
सिद्धेश्वराणां प्रतिमाऽपियोज्या, तत्प्रातिहार्यादि विना तथैव।
आचार्य–सत्पाठक–साधु–सिद्ध , क्षेत्रादिकानामपि भाववृद्धयै।।१८१।।

अर्थ :–प्रशस्त हैं लक्षण जिनके, जो भावों की विशुद्धि में कारण हैं, निर्दोष सर्व अवयवों से सहित, नग्न दिगम्बर, सुन्दर प्रातिहार्य एवं स्वकीय चिह्न से समन्वित हैं ऐसे मनोहर अरहन्त बिम्ब का निर्माण करावें। उसी प्रकार भावों की विशुद्धि के लिए प्रातिहार्य बिना सिद्धों की (आगमानुसार) आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं की भी प्रतिमाओं का निर्माण करावें। सिद्धक्षेत्र आदि की आकृतियों की भी स्थापना करें।।१८०,१८१।।

३. श्री आशाधर प्रतिष्ठासारोद्धार के प्रथम अध्याय में भी कहा है कि :—

शान्तप्रसन्नमध्यस्थ, नासाग्रस्था–विकार–दृक्।
सम्पूर्णभावरूपानु, विहाङ्ग–लक्षणान्वितम्।।६३।।
रौद्रादिदोष– निर्मुक्तं, प्रातिहार्याङ्कयक्षयुक्।
निर्माप्य विधिना पीठे, जिनबिम्बं निवेशयेत्।।६४।।

अर्थ—शान्त, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्र और अविकार दृष्टि, सम्पूर्ण भावानुरूप, स्वकीय लक्षण से समन्वित, रौद्रादि (क्रूर आदि) दृष्टि से रहित, प्रातिहार्य तथा यक्ष–यक्षणी सहित जिनबिम्ब का निर्माण कराकर विधिपूर्वक वेदिका में विराजमान करें।। ६३, ६४।।

गाथार्थ—उन ध्वजाओं के स्वर्णमय स्तम्भ सोलह योजन ऊँचे और एक कोश चौड़े हैं। उन स्वर्ण स्तम्भों के अग्रभाग रत्नमय एवं मनुष्यों के नेत्र और मन को सुन्दर लगने वाले बहुत से नाना प्रकार के ध्वजारूप वस्त्रों एवं तीन छत्रों से शोभायमान हैं। उस ध्वजापीठ के आगे जिनमन्दिर हैं, जिनकी चारों दिशाओं में नाना प्रकार के फूलों से एवं मणिमय और स्वर्णमय वेदियों से संयुक्त, सौ योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े और दश योजन गहरे चार द्रह हैं। इन द्रहों के आगे जो वीथी (मार्ग) हैं उनके दोनों पार्श्व भागों में देवों के क्रीड़ा करने के मणिमय दो प्रासाद हैं, जिनकी ऊँचाई ५० योजन और चौड़ाई २५ योजन है। इन प्रासादों के आगे तोरण हैं। वे तोरण मणिमय स्तम्भों के अग्र भाग में स्थित, मोतीमाल और घन्टाओं के समूह से युक्त तथा जिनबिम्बों के समूह से रमणीक हैं। उनकी ऊँचाई पचास योजन और चौड़ाई पच्चीस योजन प्रमाण है। उस तोरण के आगे स्फटिकमय प्रथम कोट है। उस कोट द्वार के दोनों पार्श्व भागों में कोट के भीतर सौ योजन ऊँचे और ऊँचाई के अर्धभाग प्रमाण अर्थात् ५० योजन चौड़े रत्ननिर्मापित दो मन्दिर हैं। पूर्वद्वार में मण्डपादिक का जो प्रमाण कहा था उसका अर्ध प्रमाण दक्षिणोत्तर द्वारों में ग्रहण करना चाहिए।

वे दोनों मन्दिर वन्दना मण्डप, अभिषेक मण्डप, नर्तन, संगीत और अवलोकन मण्डपों से तथा क्रीड़ागृह, गुणनगृह (शास्त्राभ्यास आदि का स्थान) और विशाल एवं उत्कृष्ट पट्टशाला से संयुक्त हैं।।१००३ से १००९।।

विशेषार्थ—उन ध्वजाओं के स्वर्णमय स्तम्भ १६ योजन ऊँचे और एक कोश चौड़े हैं। उन ध्वजाओं के स्वर्णमय स्तम्भों के अग्रभाग रत्नमय एवं मनुष्यों के मन और नेत्रों को रमणीक लगने वाले तथा नाना प्रकार के ध्वजारूप वस्त्रों से युक्त बहुत सी ध्वजाओं और तीन छत्रों से शोभायमान हैं। सम्पूर्ण ध्वजाएँ रत्नमय हैं अर्थात् पुद्गल का ही परिणमन वस्त्ररूप हुआ है। उस ध्वजा पीठ के आगे जिनमन्दिर हैं, जिनकी चारों दिशाओं में विविध प्रकार के फूलों से एवं मणिमय और स्वर्णमय वेदियों से संयुक्त, सौ योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े ओर दश योजन गहरे

चार द्रह हैं। इन द्रहों के आगे जो मार्ग हैं, उनके दोनों पार्श्व भागों में देवों के क्रीड़ा करने के मणिमय दो प्रासाद हैं जिनकी ऊँचाई ५० योजन और चौड़ाई २५ योजन है। इन प्रासादों के आगे तोरण हैं, जो मणिमय स्तम्भों के अग्रभाग में स्थित, मोतीमाल और घण्टाओं के समूह से युक्त एवं जिनबिम्बों के समूह से रमणीक है। उनकी ऊँचाई ५० योजन और चौड़ाई २५ योजन प्रमाण है। उन तोरणों के आगे स्फटिकमय प्रथम कोट है। उस कोट द्वार के दोनों पार्श्व भागों में कोट के भीतर १०० योजन ऊँचे और ५० योजन चौड़े रत्ननिर्मापित दो मन्दिर हैं। पूर्वद्वार में मण्डपादिक का जो प्रमाण कहा था उसका अर्ध प्रमाण दक्षिण और उत्तर द्वारों में ग्रहण करना चाहिए। वे दोनों मन्दिर वन्दना मण्डप, अभिषेक मण्डप, नर्तन मण्डप, संगीत मण्डप और अवलोकन मण्डपों से तथा क्रीड़ागृह, गुणनगृह (शास्त्राभ्यास आदि का स्थान) और विशाल एवं उत्कृष्ट पट्टशाला (चित्राम आदि दिखाने का स्थान) से संयुक्त हैं।

अब प्रथम और द्वितीय कोटों के अन्तराल का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ—प्रत्येक जिनमन्दिर की चारों दिशाओं में सिंह, हाथी, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र के आकार की १०८–१०८ ध्वजाएँ हैं तथा इन १०८–१०८ मुख्य ध्वजाओं में प्रत्येक की १०८–१०८ छोटी ध्वजाएँ हैं।।१०१०।।

विशेषार्थ—प्रत्येक जिनमन्दिर की चारों दिशाओं में सिंह, हाथी, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र के चिह्नों से चिह्नित १०८–१०८ मुख्य ध्वजाएँ हैं तथा इन १०८–१०८ मुख्य ध्वजाओं में प्रत्येक की १०८–१०८ ही छोटी ध्वजाएँ हैं।

प्रथम और द्वितीय कोट के बीच के अन्तराल में ध्वजाएँ हैं। प्रत्येक जिनमन्दिर की एक दिशा में सिंह चिह्नाङ्कित ध्वजाएँ १०८, हाथी चिह्नाङ्कित १०८, इसी प्रकार वृषभादि चिह्नाङ्कित भी १०८–१०८ मुख्य ध्वजाएँ हैं अर्थात् मन्दिर की एक दिशा में सिंह आदि दश प्रकार के चिह्नों को धारण करने वाली (१०८ × १०) = १०८० मुख्य ध्वजाएँ हैं। एक दिशा में १०८० हैं, अतः चार दिशाओं में (१०८०×४) = ४३२० मुख्य ध्वजाएँ हुईं। एक मुख्य ध्वजा की छोटी परिवार ध्वजाएँ १०८ हैं अतः ४३२० मुख्य ध्वजाओं की (४३२० × १०८) = ४६६५६० परिवार ध्वजाओं का प्रमाण है और एक मन्दिर सम्बन्धी सम्पूर्ण ध्वजाओं का प्रमाण (४६६५६०+४३२०) = ४७०८८० हैं। ये ध्वजाएँ प्रथम और द्वितीय कोट के अन्तराल में हैं।

अब द्वितीय कोट और तृतीय (बाह्य) कोट के अन्तराल का स्वरूप तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—द्वितीय और तृतीय कोट के अन्तराल में अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र के चार वन हैं। उन वनों में भोजनाङ्गादि दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं, जो स्वर्णमय फूलों से सुशोभित, मरकत मणिमय नाना प्रकार के पत्रों से सहित, वैडूर्य रत्नमय फलों से युक्त और विद्रुम मूँगामय

डालियों से संयुक्त हैं। उन चारों वनों के मध्य में तीन कोट और तीन पीठ से संयुक्त तथा मणिमय डाली, पत्र, पुष्प और फलों से युक्त चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं। उन चैत्यवृक्षों के मूल की चारों दिशाओं में पल्यङ्कासन और प्रातिहार्यों से युक्त जिनबिम्ब विराजमान हैं।।।१०११-१०१३।।

विशेषार्थ——दूसरे और तीसरे कोट के अन्तराल में अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र के चार वन हैं। उन वनों में स्वर्णमय फूलों से सुशोभित, मरकत मणिमय नाना प्रकार के पत्रों से सहित, वैडूर्यरत्नमय फलों से युक्त और विद्रुम मूँगामय डालियों से संयुक्त भोजनाङ्गादि दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं। उन चारों वनों के मध्य में तीन कोट एवं तीन पीठ से संयुक्त तथा मणिमय डाली, पत्र, पुष्प और फलों से युक्त चार चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं। उन चैत्यवृक्षों के मूल की चारों दिशाओं में पल्यङ्कासन एवं छत्र, चमरादि प्रातिहार्यों से युक्त जिनबिम्ब विराजमान हैं।

नन्दादि वापियों और मानस्तम्भों का विशेष स्वरूप कहते हैं——

गाथार्थ——नन्दादि सोलह वापिकाएँ तीन कोटों से संयुक्त हैं तथा वन की भूमि के निकट चतुर्थ वीथी के मध्य में तीन पीठों युक्त जिनप्रतिमा से अधिष्ठित हैं, ऊर्ध्व (अग्र) भाग जिनका तथा जो धर्मरूपी वैभव से युक्त हैं ऐसे मानस्तम्भ शोभायमान होते हैं।।१०१४।।

विशेषार्थ——पूर्वोक्त नन्दादि सोलह वापिकाएँ तीन कोटों से संयुक्त शोभायमान होती हैं और उन्हीं वनों की भूमि के निकट चतुर्थ वीथी के मध्य में, तीन पीठों से युक्त उपरिम भाग पर जिनप्रतिमा से अधिष्ठित तथा धर्मरूपी वैभव से युक्त मानस्तम्भ शोभायमान होते हैं।

इसके आगे स्वयं श्री गौतमस्वामी नवदेवों की संख्या दिखाते हुये कहते हैं–

''इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशंतु बोधिं बुधजनेष्टाम्।।१०।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—इस प्रकार पंचमहापुरुष—पांच परमेष्ठी जिनकी मैंने वन्दना की है। पुनः जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और चैत्यालय ये नव देव मुझे बुधजन इष्ट ऐसी विमल बोधि–रत्नत्रय की प्राप्ति प्रदान करें।''

संसार में जितने भी पूज्य–वन्दना करने योग्य हैं वे सभी इन नवदेवों में समाविष्ट हैं। अरिहंत देवों के पंचकल्याणक स्थान तीर्थ, मुनियों के निर्वाण व समाधिस्थान आदि तीर्थ भी सब इन्हीं में समाविष्ट हैं।

आगे जिनप्रतिमाओं की दिगंबर मुद्रा की विशेषता आदि का वर्णन करके पुनश्च चारों प्रकार के देवों के यहां के जिनमंदिर, जिन प्रतिमाओं की व मध्यलोक के अकृत्रिम–कृत्रिम जिनमंदिर जिनप्रतिमाओं की पृथक्–पृथक् वंदना की है—

''श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयंभासुरमूर्तयः।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम्।।१७।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के दैदीप्यमान भवनों में स्थित हैं जिनका स्वरूप स्वयं भासुररूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परमगति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें।।१७।।

देवों के भेद

देवों के चार भेद हैं—भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिर्वासी और कल्पवासी।

इनमें से भवनवासी, व्यंतर एवं ज्योतिर्वासी देवों को 'भवनत्रिक' कहा जाता है। भवनवासी तथा व्यंतर देव अधोलोक एवं मध्यलोक में निवास करते हैं, ज्योतिर्वासी देव मध्यलोक में रहते हैं, जबकि वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक में रहते हैं।

भवनवासी देव

भवनवासी देवों के स्थान—पहले रत्नप्रभा पृथ्वी के ३ भाग हैं। उसमें से खर भाग में राक्षस जाति के व्यंतर देवों को छोड़कर सात प्रकार के व्यंतर देवों के निवास स्थान हैं और भवनवासी के असुरकुमार जाति के देवों को छोड़कर नव प्रकार के भवनवासी देवों के स्थान हैं। रत्नप्रभा के पंकभाग नाम के द्वितीय भाग में असुरकुमार जाति के भवनवासी एवं राक्षस जाति के व्यंतरों के आवास स्थान हैं।

भवनवासी देवों के भेद—असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार।

भवनवासी देवों के भवनों का प्रमाण—असुरकुमार के ६४ लाख, नागकुमार के ८४ लाख, सुपर्णकुमार के ७२ लाख, वायुकुमार के ९६ लाख और शेष देवों के ७६-७६ लाख भवन हैं अतः ७६,००००० × ६ = ४,५६००००० + ६४,००००० + ८४,००००० + ७२,००००० + ९६,००००० = ७,७२,००००० (सात करोड़ बहत्तर लाख) भवन हैं।

जिनमंदिर—इन एक-एक भवनों में एक-एक जिनमंदिर होने से भवनवासी देवों के ७,७२,००००० प्रमाण जिनमंदिर हैं। उनमें स्थित जिनप्रतिमाओं को मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

भवनवासियों के निवास स्थान के भेद—इन देवों के निवास स्थान के भवन, भवनपुर और आवास के भेद से तीन भेद होते हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी में स्थित निवास स्थानों को भवन, द्वीप समुद्रों के ऊपर स्थित निवास स्थानों को भवनपुर और रमणीय तालाब, पर्वत तथा वृक्षादि के ऊपर स्थित निवास स्थानों को आवास कहते हैं।

इनमें नागकुमार आदि देवों में से किन्हीं के तो भवन, भवनपुर और आवासरूप तीनों ही तरह के निवास स्थान होते हैं परन्तु असुरकुमारों के केवल एक भवनरूप ही निवास स्थान हैं। इनमें भवनवासियों के भवन चित्रा पृथ्वी के नीचे दो हजार से एक लाख योजनपर्यन्त जाकर हैं। ये सब भवन समचतुष्कोण, तीन सौ योजन ऊँचे हैं और विस्तार में संख्यात एवं असंख्यात योजन प्रमाण वाले हैं।

जिनमंदिर—प्रत्येक भवन के मध्य में एक सौ योजन ऊँचे एक–एक कूट हैं, इन कूटों के ऊपर पद्मराग मणिमय कलशों से सुशोभित चार गोपुर, तीन मणिमय प्राकार, वनध्वजाओं एवं मालाओं से संयुक्त जिनगृह शोभित हैं। प्रत्येक जिनगृह में १०८–१०८ जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। जो देव सम्यग्दर्शन से युक्त हैं, वे कर्मक्षय के निमित्त नित्य ही जिन भगवान की भक्ति से पूजा करते हैं, इसके अतिरिक्त सम्यग्दृष्टि देवों से सम्बोधित किए गए अन्य मिथ्यादृष्टि देव भी कुलदेवता मानकर उन जिनेन्द्र प्रतिमाओं की नित्य ही बहुत प्रकार से पूजा करते हैं।

देवप्रासाद—जिनमंदिर के चारों तरफ अनेक रचनाओं से युक्त सुवर्ण और रत्नों से निर्मित भवनवासी देवों के महल हैं।

श्री गौतमस्वामी मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनबिंबों की वन्दना करते हैं–

''यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ—इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने प्रचुरतर प्रतिबिंब हैं उन सबको विभूति के लिए वंदन करता हूँ ।।१८।।

जम्बूद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय की संख्या

सुमेरु के १६, सुमेरु पर्वत की विदिशा में चार गजदन्त के ४, हिमवान आदि षट् कुलाचलों के ६, विदेह क्षेत्र में सोलह वक्षार पर्वतों के १६, विदेह क्षेत्र के बत्तीस विजयार्ध के ३२, भरत, ऐरावत के विजयार्ध के २, देवकुरु और उत्तरकुरु में स्थित जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्ष की शाखाओं के २, इस प्रकार १६ + ४ + ६ + १६ + ३२ + २ + २ = ७८ ऐसे जम्बूद्वीप के ७८ जिनचैत्यालय हैं।

मध्यलोक के अकृत्रिम जिनालय की संख्या

जम्बूद्वीप के समान ही धातकीखण्ड एवं पुष्करार्ध में २-२ मेरु के निमित्त से सारी रचना दूनी-दूनी होने से चैत्यालय भी दूने-दूने हैं तथा धातकीखण्ड एवं पुष्करार्ध में २-२ इष्वाकार पर्वत पर २-२ चैत्यालय हैं। मानुषोत्तर पर्वत पर चारों दिशाओं के ४, नन्दीश्वर द्वीप की चारों दिशाओं में १३-१३ चैत्यालय होने से १३ × ४ = ५२, ग्यारहवें कुण्डलवर द्वीप के कुण्डलवर पर्वत पर चारों दिशाओं के ४, तेरहवें रुचकवर द्वीप के रुचकवर पर्वत पर चारों दिशाओं के ४, सब मिलकर ७८ + १५६ + १५६ + ४ + ४ + ५२ + ४ + ४ = ४५८ चैत्यालय होते हैं। इन मध्यलोक संबंधी ४५८ चैत्यालयों को एवं उनमें स्थित सर्व जिनप्रतिमाओं को मैं मन, वचन, काय से नमस्कार करता हूँ।

कृत्रिम जिनालयों का वर्णन

युग की आदि में इंद्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये

इस प्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर जिनका हृदय दया से प्रेरित हो रहा है ऐसे भगवान आदिनाथ अपने मन में ऐसा विचार करने लगे।।१४२।। कि पूर्व और पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान में है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है।१४३।। वहाँ जिस प्रकार असि, मषी आदि छह कर्म हैं, जैसी क्षत्रिय आदि वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम-घर आदि की पृथक्-पृथक् रचना है उसी प्रकार यहाँ पर भी होनी चाहिए। इन्हीं उपायों से प्राणियों की आजीविका चल सकती है। इनकी आजीविका के लिए और कोई उपाय नहीं है।।१४४-१४५।। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर अब यह कर्मभूमि प्रकट हुई है इसलिए यहाँ प्रजा को असि, मषी आदि छह कर्मों के द्वारा ही आजीविका करना उचित है।।१४६।। इस प्रकार स्वामी वृषभदेव ने क्षण भर प्रजा के कल्याण करने वाली आजीविका का उपाय सोचकर उसे बार-बार आश्वासन दिया कि तुम भयभीत मत होओ।।१४७।। अथानन्तर भगवान् के स्मरण करने मात्र से देवों के साथ इन्द्र आया और उसने नीचे लिखे अनुसार विभाग कर प्रजा की जीविका के उपाय किये।।।१४८।। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न के समय तथा सूर्य आदि ग्रहों के अपने-अपने उच्च स्थानों में स्थित रहने और जगद्गुरु भगवान के हर एक प्रकार की अनुकूलता होने पर इन्द्र ने प्रथम ही मांगलिक कार्य किया और **फिर उसी अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना की। इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर इस प्रकार चारों दिशाओं में भी यथाक्रम से जिनमन्दिरों की रचना की।**।१४९-१५०।। तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, वन और सीमा सहित गाँव तथा खेटों की रचना की थी।।१५१।।[१]

---

१. आदिपुराण पर्व-१६ पृ. ३५९/२।

कैलाशपर्वत पर भरतचक्री द्वारा बनवाये गये मंदिर

आत्मशुद्धि से भरे सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने कहा कि यदि आप हम लोगों को कोई कार्य नहीं देते हैं तो हम भोजन भी नहीं करते हैं।।१०५।। पुत्रों का निवेदन सुनकर राजा कुछ चिन्ता में पड़ गये। वे सोचने लगे कि इन्हें कौन सा कार्य दिया जावे। अकस्मात् उन्हें याद आ गई कि अभी धर्म का एक कार्य बाकी है। उन्होंने हर्षित होकर आज्ञा दी कि **भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर महारत्नों से अरहन्तदेव के चौबीस मन्दिर बनवाये हैं,** तुम लोग उस पर्वत के चारों ओर गङ्गा नदी को उन मन्दिरों की परिखा बना दो।' उन राजपुत्रों ने भी पिता की आज्ञानुसार दण्डरत्न से वह काम शीघ्र ही कर दिया।।१०६-१०८।।[१]

सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएँ बनवाईं

उस सुलोचना ने श्री जिनेन्द्रदेव की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमाएँ बनवाई थीं और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण ही के बनवाये थे। प्रतिष्ठा तथा तत्सम्बन्धी अभिषेक हो जाने के बाद वह उन प्रतिमाओं की महापूजा करती थी, अर्थपूर्ण स्तुतियों के द्वारा श्री अर्हन्तदेव की भक्तिपूर्वक स्तुति करती थी, पात्र दान देती थी, महामुनियों का सम्मान करती थी, धर्म सुनती थी तथा धर्म को सुनकर आप्त, आगम और पदार्थों का बार-बार चिन्तवन करती हुई सम्यग्दर्शन की शुद्धता को प्राप्त करती थी। अथानन्तर—फाल्गुन महीने की अष्टान्हिका में उसने भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेव की आष्टाह्निकी पूजा की, विधिपूर्वक प्रतिमाओं की पूजा की, उपवास किया और वह कृशांगी पूजा के शेषाक्षत देने के लिए सिंहासन पर बैठे हुए राजा अकम्पन के पास गयी। राजा ने भी उठकर और हाथ जोड़कर उसके दिए हुए शेषाक्षत लेकर स्वयं अपने मस्तक पर रखे तथा यह कहकर कन्या को विदा किया कि हे पुत्रि, तू उपवास से खिन्न हो रही है अब घर जा, यह तेरे पारणा का समय है।।१७३,१७९।।[२]

हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये

अथानन्तर एक दिन विनय से जिसका शरीर झुक रहा था, ऐसा दशानन आकाश में बहुत ऊँचे चढ़कर अपने दादा सुमाली से आश्चर्यचकित हो पूछता है कि हे पूज्य! इधर इस पर्वत के शिखर पर सरोवर तो नहीं है पर कमलों का वन लहलहा रहा है सो इस महाआश्चर्य को आप देखें।।२७२-२७३।। यहाँ पृथ्वीतल पर पड़े रंग-बिरंगे बड़े-बड़े मेघ निश्चल होकर कैसे खड़े हैं ?।।२७४।। तब सुमाली ने 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर दशानन से कहा कि हे वत्स! न तो ये कमल हैं और न मेघ ही हैं।।२७५।। किन्तु सफेद पताकाएँ जिन पर छाया कर रही हैं तथा जिनमें हजारों प्रकार के तोरण बने हुए हैं ऐसे-ऐसे ये जिनमन्दिर पर्वत के शिखरों पर सुशोभित हो रहे हैं।।२७६।। **ये सब मन्दिर**

---

१. उत्तरपुराण पर्व ४८, पृ. १०। २. आदिपुराण पर्व ४३, पृ. ३६८, ३६९।

महापुरुष हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाये हुए हैं। हे वत्स! तू इन्हें नमस्कार कर और क्षण-भर में अपने हृदय को पवित्र कर।।२७७।।

पृथिवी, पर्वत, नदियों के समागम स्थान, नगर तथा गाँव आदि में जो नाना रंग के ऊँचे-ऊँचे जिनालय शोभित हो रहे हैं वे सब उसी के बनवाये हैं।।३९९।। उदार हृदय को धारण करने वाले हरिषेण ने चिरकाल तक राज्य कर दीक्षा ले ली और परम तपश्चरण कर तीन लोक का शिखर अर्थात् सिद्धालय प्राप्त कर लिया।।४००।।[१]

श्री रामचन्द्र ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! उस वंशगिरि पर जगत के चन्द्रस्वरूप **राम ने जिनेन्द्र भगवान की हजारों प्रतिमाएँ बनवायीं** थीं।।२७।। तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो झरोखे, महलों तथा छपरी आदि की रचना से शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणों से युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखा से सहित थे, सफेद और सुन्दर पताकाओं से युक्त थे, बड़े-बड़े घण्टाओं के शब्द से व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बाँसुरी और मुरज का संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो झाँझों, नगाड़ों, शंखों और भेरियों के शब्द से अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओं के द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे राम के बनवाये जिनमन्दिरों की पंक्तियां उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं।।२८,३१।।

उन मन्दिरों में सब लोगों के द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकार के लक्षणों से युक्त पंचवर्ण की जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं।।३२।।

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभा से सम्पन्न थीं तथा जिसके शिखर अनेक धातुओं से युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओं के समूह को लिप्त करने वाली जिनमन्दिरों की पंक्ति से अतिशय सुशोभित होता था।।४४।। चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्र ने जिनेन्द्र भगवान के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्य के समान प्रभा को धारण करने वाला वह पर्वत 'रामगिरि' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।४५।।[२]

धाराशिव नगर में १००८ खम्भों का जिनमंदिर

आराधना कथाकोष में करकण्डु राजा की कथा में १००८ खम्भों वाले जिनमंदिर का वर्णन आया है—

रास्ते में तेरपुर के पास राजा करकण्डु का पड़ाव पड़ा। इसी समय कुछ भीलों ने आकर नम्र मस्तक से इनसे प्रार्थना की -राजाधिराज, हमारे तेरपुर से दो-कोस दूरी पर एक पर्वत है। उस पर एक छोटा सा धाराशिव नाम का गाँव बसा हुआ है। इस गाँव में एक बहुत बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है। उसमें

---

१. पद्मपुराण पर्व-८, पृ. १८७, १८८, १८९। २. पद्मपुराण पर्व-४० पृ. १९६ से १९८ तक।

विशेषता यह है कि उसमें कोई एक हजार खम्भे हैं। वह बड़ा सुन्दर है। उसे आप देखने को चलें।[1]

लवण समुद्र में लंका नगरी में अनेकों जिनमंदिर एवं श्री शांतिनाथ मंदिर

गौतम स्वामी कहते हैं कि वह सुर और असुरों द्वारा वन्दित बीसवें मुनिसुव्रत भगवान का महाभ्युदयकारी समय था। उस समय लम्बे-चौड़े समस्त भरत क्षेत्र में यह पृथ्वी अर्हन्तभगवान की पवित्र प्रतिमाओं से अलंकृत थी।।९-१०।। देश के अधिपति राजाओं तथा गाँवों का उपभोग करने वाले सेठों के द्वारा जगह-जगह देदीप्यमान जिनमन्दिर खड़े किये गये थे।।११।। वे मन्दिर, समीचीन धर्म के पक्ष की रक्षा करने में निपुण, कल्याणकारी, भक्तियुक्त शासनदेवों से अधिष्ठित थे।।१२।। देशवासी लोग सदा वैभव के साथ जिनमें अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्य जीव सदा जिनकी आराधना करते थे, ऐसे वे जिनालय स्वर्ग के विमानों के समान सुशोभित होते थे।।१३।। हे राजन्! उस समय पर्वत-पर्वत पर, अतिशय सुन्दर गाँव-गाँव में वन-वन में, पत्तन-पत्तन में, महल-महल में, नगर-नगर में, संगम-संगम में तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे-चौराहे पर महाशोभा से युक्त जिनमन्दिर बने हए थे।।१४-१५।। वे मन्दिर शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त थे, संगीत की ध्वनि से मनोहर थे, तथा नाना वादित्रों के शब्द से उनमें क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान शब्द हो रहे थे।।१६।। वे मन्दिर तीनों संध्याओं में वन्दना के लिए उद्यत साधुओं के समूह से व्याप्त रहते थे, गम्भीर थे, नाना आचार्यों से सहित थे और विविध प्रकार के पुष्पों के उपहार से सुशोभित थे।।१७।। परम विभूति से युक्त थे, नाना रङ्ग के मणियों की कान्ति से जगमगा रहे थे, अत्यन्त विस्तृत थे, ऊँचे थे और बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से सहित थे।।१८।। उन मन्दिरों में सुवर्ण, चाँदी आदि की बनी छत्रत्रय चमरादि परिवार से सहित पाँच वर्ण की जिनप्रतिमाएँ अत्यन्त सुशोभित थीं।।१९।। विद्याधरों के नगर में स्थान-स्थान पर बने हुए अत्यन्त सुन्दर जिनमन्दिरों के शिखरों से विजयार्ध पर्वत उत्कृष्ट हो रहा था।।२०।। इस प्रकार यह समस्त संसार बाग बगीचों से सुशोभित, नाना रत्नमयी, शुभ और सुन्दर जिनमन्दिरों से व्याप्त हुआ अत्यधिक सुशोभित था।।२१।। इन्द्र के नगर के समान वह लङ्का भी भीतर और बाहर बने हुए पापापहारी जिनमन्दिरों से अत्यन्त मनोहर थी।।२२।।

जिस पर सब लोगों के नेत्र लग रहे थे, जो अन्य महलों की पंक्ति से घिरा था, नाना रत्नों से निर्मित था और चैत्यालयों से सुशोभित था, ऐसे दशानन के घर में सुवर्णमयी हजारों खम्भों से सुशोभित, विस्तृत, मध्य में स्थित, देदीप्यमान और अतिशय ऊँचा वह शान्ति जिनालय था जिसमें शान्ति जिनेन्द्र विराजमान थे।।२६।।[2]

---

१. आराधना कथाकोष हिन्दी-पृ. ४८४, ४८५ तक। २. पद्मपुराण भाग-३ पृ. ९ से ११ तक।

श्री रामचंद्र ने लंका में शांतिनाथ मंदिर के दर्शन किये
(एक हजार खंभों सहित मन्दिर)

अथानंतर समागमरूपी सूर्य से जिसका मुखकमल खिल उठा था ऐसी सीता का हाथ अपने हाथ से पकड़ श्रीराम उठे और इच्छानुकूल चलने वाले ऐरावत के समान हाथी पर बैठाकर स्वयं उस पर आरूढ़ हुए। महातेजस्वी तथा सम्पूर्ण कान्ति को धारण करने वाले श्रीराम हिलते हुए घंटों से मनोहर हाथीरूपी मेघ पर सीतारूपी रोहिणी के साथ बैठे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे।।१-३।। जिनकी बुद्धि स्थिर थी, जो अत्यधिक उन्नत प्रीति को धारण कर रहे थे, बहुत भारी जनसमूह जिनके साथ था, जो चारों ओर से बहुत बड़ी सम्पदा से घिरे थे, बड़े-बड़े अनुरागी विद्याधरों से अनुगत, उत्तम कान्तियुक्त चक्रपाणि लक्ष्मण से जो सहित थे तथा अतिशय निपुण थे ऐसे श्रीराम, सूर्य के विमान समान जो रावण का भवन था उसमें जाकर प्रविष्ट हुए।।४-६।। वहाँ उन्होंने भवन के मध्य में स्थित **श्रीशान्तिनाथ भगवान** का परम सुन्दर मन्दिर देखा। वह मन्दिर योग्य विस्तार और ऊँचाई से सहित था, **स्वर्ण के हजार खम्भों से निर्मित** था, विशाल कान्ति का धारक था, उसकी दीवालों के प्रदेश नाना प्रकार के रत्नों से युक्त थे, वह मन को आनन्द देने वाला था, विदेह क्षेत्र के मध्य में स्थित मेरुपर्वत के समान था, क्षीर समुद्र के फेनपटल के समान कान्तिवाला था, नेत्रों को बाँधने वाला था, रुणझुण करने वाली किङ्किणियों के समूह एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से सुशोभित था, मनोज्ञरूप से युक्त था तथा उसका वर्णन करना अशक्य था।।७-१०।।[१]

श्री रामचंद्र ने लंका में पद्मप्रभ भगवान के मंदिर के दर्शन किये
(एक हजार खंभों सहित मंदिर)

अथानन्तर हाथी से उतरकर, जिनका रत्नों के अर्घ आदि से सत्कार किया गया था ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मण ने विभीषण के सुन्दर भवन में प्रवेश किया।।६२।। विभीषण के विशाल भवन के मध्य में श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र का वह मन्दिर था जो रत्नमयी तोरणों से सहित था, स्वर्ण के समान देदीप्यमान था, समीप में स्थित महलों के समूह से मनोहर था, शेष नामक पर्वत के मध्य में स्थित था, प्रेम की उपमा को प्राप्त था, **स्वर्णमयी हजार खम्भों से युक्त था,** उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लम्बाई और विस्तार से सहित था, नाना मणियों के समूह से शोभित था, चन्द्रमा के समान चमकती हुई नाना प्रकार की वल्लभियों से युक्त था, झरोखों के समीप लटकती हुई मोतियों की जाली से सुशोभित था, अनेक अद्‌भुत रचनाओं से युक्त प्रतिसर आदि विविध प्रदेशों से सुन्दर था, और पाप को नष्ट करने वाला था।।६३-६७।। इस प्रकार के उस मन्दिर में श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पद्मराग मणि निर्मित वह अनुपम प्रतिमा विराजमान थी, जो अपनी प्रभा से मणिमय भूमि में कमल-समूह की

---

१. पद्मपुराण भाग-३ पृ. ९३-९४।

शोभा प्रकट कर रही थी। सब लोग उस प्रतिमा की स्तुति वन्दना कर यथायोग्य बैठ गये।।६८-६९।। तदनन्तर विद्याधर राजा, हृदय में राम और लक्ष्मण को धारण करते हुए जहाँ जिसके लिए जो स्थान बनाया गया था वहाँ यथायोग्य रीति से चले गये।।७०।।[१]

''ये व्यन्तरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ— व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें ।।१९।।

व्यन्तर देव

व्यंतर देव—रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में व्यंतर देवों के सात भेद रहते हैं—किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, भूत और पिशाच। पंक भाग में राक्षस जाति के व्यंतरों के भवन हैं। सभी व्यन्तर देवों के असंख्यात भवन हैं। उनमें तीन भेद हैं—भवन, भवनपुर और आवास। खर भाग, पंक भाग में भवन हैं। असंख्यातों द्वीप, समुद्रों के ऊपर भवनपुर हैं और सरोवर, पर्वत, नदी, आदिकों के ऊपर आवास होते हैं।

मेरु प्रमाण ऊँचे मध्यलोक में और मध्यलोक में मेरु की चूलिका तक ऊपर–ऊर्ध्वलोक में व्यन्तर देवों के निवास हैं। इन व्यन्तरों में से किन्हीं के भवन हैं, किन्हीं के भवन और भवनपुर दोनों हैं एवं किन्हीं के तीनों ही स्थान होते हैं। ये सभी आवास प्राकार (परकोटे) से वेष्टित हैं।

जिनमंदिर—इस प्रकार व्यन्तर देवों के स्थान असंख्यात होने से उनमें स्थित जिनमंदिर भी असंख्यात प्रमाण हैं क्योंकि जितने भवन, भवनपुर और आवास हैं, उतने ही जिनमंदिर हैं।

''ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान्।।२०।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

अर्थ— अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हंतों के जो शाश्वत गृह हैं उनको मैं विभूति के निमित्त नमस्कार करता हूँ ।।२०।।

---

१. पद्मपुराण भाग–३ पृ. ९७।

ज्योतिर्वासी देव

ज्योतिष्क देवों के पाँच भेद हैं—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारे। इनके विमान चमकीले होने से इन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं, ये सभी विमान अर्धगोलक सदृश हैं। ये सभी देव मेरुपर्वत को ११२१ योजन (४४,८४००० मी.) छोड़कर नित्य ही प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते हैं। इनमें चन्द्र, सूर्य और ग्रह ५१०-४८/८१ योजन प्रमाण गमन क्षेत्र में स्थित परिधियों के क्रम से पृथक्-पृथक् गमन करते हैं परन्तु नक्षत्र और तारे अपनी-अपनी परिधिरूप मार्ग में ही गमन करते हैं।

ज्योतिष्क देवों के विमान की भूमि से ऊँचाई—पाँच प्रकार के देवों के विमान इस चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन से प्रारंभ होकर ९०० योजन की ऊँचाई तक अर्थात् ११० योजन में स्थित हैं। सबसे प्रथम ताराओं के विमान हैं, जो सबसे छोटे १/४ कोस (२५० मी.) प्रमाण हैं। इन सभी विमानों की मोटाई अपने-अपने विमानों से आधी-आधी है। राहु के विमान चन्द्र के नीचे एवं केतु के विमान सूर्य के नीचे रहते हैं अर्थात् ४ प्रमाणांगुल (२००० उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर चन्द्र-सूर्य के विमान स्थित होकर गमन करते हैं। ये राहु-केतु के विमान ६-६ महीने में पूर्णिमा एवं अमावस्या को क्रम से चन्द्र एवं सूर्य के विमानों को ढँक देते हैं, इसे ही ग्रहण कहते हैं।

ज्योतिषी देवों के विमान की भूमि से ऊँचाई एवं प्रमाण का चार्ट

विमानों का	चित्रा पृथ्वी से ऊँचाई		विमान का प्रमाण		किरणें
नाम	योजन से	मील से	योजन	मील	
इस पृथ्वी से तारे	७९० यो.	३१६००००	१/४ कोस	२५० मी.	मंद किरणें
इस पृथ्वी से सूर्य	८०० यो.	३२०००००	४८/६१ यो.	३१४७(३३/६१)	१२०००
इस पृथ्वी से चन्द्र	८८० यो.	३५२००००	५६/६१ यो.	३६७२ (८/६१)	१२०००
इस पृथ्वी से नक्षत्र	८८४ यो.	३५३६०००	×	×	×
इस पृथ्वी से बुध	८८८ यो.	३५५२०००	कुछ कम १/२ कोस	कुछ कम ५०० मी.	मंद किरणें
इस पृथ्वी से शुक्र	८९१ यो.	३५६४०००	१ कोस	१००० मी.	२५००
इस पृथ्वी से गुरु	८९४ यो.	३५७६०००	कुछ कम १ कोस	कुछ कम १००० मी.	मंद किरणें
इस पृथ्वी से मंगल	८९७ यो.	३५८८०००	कुछ कम १/२ कोस	कुछ कम ५०० मी.	मंद किरणें
इस पृथ्वी से शनि	९०० यो.	३६०००००	कुछ कम १/२ कोस	कुछ कम ५०० मी.	मंद किरणें
इस पृथ्वी से राहु	× यो.	×	कुछ कम १ योजन	कुछ कम ४००० मी.	मंद किरणें
इस पृथ्वी से केतु	× यो.	×	कुछ कम १ योजन	कुछ कम ४००० मी.	मंद किरणें

वाहन जाति के देव—इन सूर्य, चन्द्र के प्रत्येक विमानों को आभियोग्य जाति के ४००० देव विमान के पूर्व में सिंह के आकार को धारण कर, दक्षिण में ४००० देव हाथी के आकार को, पश्चिम में ४००० देव बैल के आकार को एवं उत्तर में ४००० देव घोड़े के आकार को धारण कर ऐसे १६००० देव सतत खींचते रहते हैं, इसी प्रकार ग्रहों के ८०००, नक्षत्रों के ४००० एवं ताराओं के २००० वाहनजाति के देव होते हैं।

ज्योतिष्क देवों की गति—गमन में चन्द्रमा सबसे मंद है। सूर्य उसकी अपेक्षा तीव्रगामी, उससे शीघ्रतर ग्रह, इनसे शीघ्रतर नक्षत्र एवं नक्षत्रों से भी शीघ्रतर गति वाले तारागण हैं।

सूर्यादि की किरणें—ये विमान पृथ्वीकायिक (चमकीली धातु) से बने हुए अकृत्रिम हैं। सूर्य के बिम्ब में स्थित पृथ्वीकायिक जीव के आतप नामकर्म का उदय होने से उसकी किरणें उष्ण हैं। चन्द्र के बिम्ब में स्थित पृथ्वीकायिक के उद्योत नामकर्म का उदय होने से उनके मूल में शीतलता है और किरणें भी शीतल हैं, ऐसे ही तारा आदि के समझना।

विमान और जिनमंदिरों का प्रमाण—सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमानों के बीचों-बीच में एक-एक जिनमंदिर है और चारों ओर देवों के निवास स्थान बने हुए हैं। ये विमान एक राजु प्रमाण चौड़े इस मध्यलोक तक हैं अतः असंख्यात हैं, इसी निमित्त से जिनमंदिर भी असंख्यात ही हो जाते हैं। उनमें स्थित १०८-१०८ प्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे।

सूर्य का गमन क्षेत्र—सूर्य का गमन क्षेत्र जम्बूद्वीप के भीतर १०८ योजन एवं लवण समुद्र में ३३०-४८/८१ योजन है अर्थात् समस्त गमन क्षेत्र ५१०-४८/८१ योजन (२०४३१४७ १३/६१) मील है। इतने प्रमाण में १८४ गलियाँ हैं। इन गलियों में दो सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं।

दक्षिणायन-उत्तरायण—जब सूर्य प्रथम गली में रहता है, तब श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन दक्षिणायन प्रारंभ होता है और जब वह अंतिम गली में पहुँचता है, तब उत्तरायण प्रारंभ होता है।

एक मिनट में सूर्य का गमन—एक मिनट में सूर्य का गमन ४४७६२३-११/१८ मील प्रमाण है।

चक्रवर्ती द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन—जब सूर्य पहली गली में आता है, तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन के ऊपर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान में स्थित जिनबिम्ब का दर्शन कर लेते हैं। चक्रवर्ती की दृष्टि का विषय ४७२६३-७/२० योजन (१८९०५३४००० मील) प्रमाण है।

चन्द्र का गमन क्षेत्र—सूर्य के इसी गमन क्षेत्र में चन्द्र की १५ गलियाँ हैं। इनमें वह प्रतिदिन एक-एक गली में गमन करता है।

एक मिनट में चन्द्र का गमन—एक मिनट में चन्द्रमा ४२२७९६-३१/१६४७ मील तक गमन करता है।

कृष्णपक्ष-शुक्लपक्ष—जब चन्द्रबिम्ब पूर्ण दिखता है, तब पूर्णिमा होती है। राहु विमान चन्द्रविमान के नीचे गमन करता है। राहु प्रतिदिन एक-एक मार्ग में चन्द्रबिम्ब की एक-एक कला को ढँकते हुए १५ दिन तक १५ कलाओं को ढँक लेता है, तब अंतिम दिन की १६ कला में १ कला शेष रह जाती है, उसी का नाम अमावस्या है। फिर वह राहु प्रतिपदा के दिन में प्रत्येक गली में १-१ कला को छोड़ते हुए पूर्णिमा को १५ कलाओं को छोड़ देते हैं, तब पूर्णिमा हो जाती है। इस प्रकार कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष का विभाग हो जाता है।

एक चन्द्र का परिवार—इन ज्योतिषी देवों में चन्द्रमा इन्द्र है तथा सूर्य प्रतीन्द्र है अतः एक चन्द्रमा इन्द्र के एक सूर्य प्रतीन्द्र, ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, ६६ हजार ९७५ कोड़ा-कोड़ी तारें ये सब परिवार देव हैं। जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा और दो सूर्य हैं।

दिन-रात्रि का विभाग—सूर्य के गमन से ही दिन-रात्रि का विभाग होता है। मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर के ही सूर्य आदि ज्योतिषी देव गमन करते हैं। आगे के सभी ज्योतिष विमान स्थिर हैं।

''वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।''

अमृतवर्षिणी टीका-

अर्थ— जो देवों के मुकुट के अग्र भाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को चरणों द्वारा सेवन करती हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान संबंधी प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।।२१।।

ऊर्ध्वलोक

मध्यलोक के ऊपर ७ राजू ऊँचा ऊर्ध्वलोक है। वस्तुतः मध्यलोक की नगण्य ऊँचाई (१ लाख ४० योजन) ऊर्ध्वलोक से ही ली गई है। ऊर्ध्वलोक में १६ स्वर्ग (८ जोड़े), ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश और ५ अनुत्तर विमान हैं। तथा सबसे ऊपर सिद्धशिला अवस्थित है।

कल्पवासी देव

१६ स्वर्गों के नाम—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत।

बारह कल्प—सौधर्म-ईशान युगल के २ इन्द्र, सनत्कुमार-माहेन्द्र युगल के २ इन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल का १ इन्द्र, लांतव-कापिष्ठ युगल का १ इन्द्र, शुक्र-महाशुक्र युगल का १ इन्द्र, शतार-सहस्रार युगल का १ इन्द्र, आनत-प्राणत युगल के २ इन्द्र और आरण-अच्युत युगल के २ इन्द्र ऐसे १२ इन्द्र होते है। इनके स्थानों की 'कल्प' संज्ञा होने से १२ कल्प कहलाते हैं।

कल्पातीत—बारह कल्प (१६ स्वर्ग) के ऊपर ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश और ५ अनुत्तर विमान हैं, इनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि भेद न होने से ये कल्पातीत कहलाते हैं। यहाँ के सभी देव अहमिंद्र कहलाते हैं।

नौ ग्रैवेयक—अधस्तन ३, मध्यम ३ और उपरिम ३ ऐसे नौ ग्रैवेयक हैं।

अनुदिश—अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन ये चार दिशा में होने से श्रेणीबद्ध एवं सोम, सोमरूप, अंक और स्फटिक ये चार विदिशा में होने से प्रकीर्णक एवं मध्य में आदित्य नाम का विमान हैं, ऐसे ये ९ अनुदिश संज्ञक हैं।

पाँच अनुत्तर—विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित ये चार विमान चार दिशा में एवं 'सर्वार्थसिद्धि' नाम का विमान मध्य में है।

कल्प और कल्पातीतों के स्थान—मेरु तल से लेकर १-१/२ राजु में सौधर्म युगल, उसके ऊपर १ (१/२) राजु में सानत्कुमार युगल, आगे आधे-आधे राजु में ६ युगल हैं अतः १-१/२ + ११/२ = ३,१/२ × ६ = ३, ऐसे ६ राजु में ८ युगल हैं। इसके आगे १ राजु में ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर और सिद्धशिला है।

विमानों की संख्या—सौधर्म स्वर्ग में ३२००००० , ईशान में २८००००० , सानत्कुमार में १२००००० , माहेन्द्र में ८००००० , ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल में ४००००० , लांतव-कापिष्ठ में ५००००० , शुक्र-महाशुक्र में ४०००० , शतार-सहस्रार युगल में ६००० , आनत-प्राणत, आरण और अच्युत ऐसे चार कल्पों में ७०० , तीन अधोग्रैवेयक में १११ , तीन मध्यग्रैवेयक में १०७ , तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयक में ९१ , अनुदिश में ९ और पाँच अनुत्तर में ५ ऐसे सब मिलाकर ३२००००० + २८००००० + १२००००० + ८००००० + ४००००० + ५०००० + ४०००० + ६०००० + ७०० + १०७ + ९१ + ९ + ५ = ८४९७०२३ विमान हैं और एक-एक विमान में १-१ जिनमंदिर होने से इतने ही मंदिर हो जाते हैं। उनमें स्थित जिनप्रतिमाओं को मेरा मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

विमानों के भेद—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक ऐसे ३ भेद हैं। जो मध्य में है, वह इन्द्रक कहलाता है। दिशाओं के विमान श्रेणीबद्ध और अन्तराल संबंधी विमान प्रकीर्णक कहलाते हैं।

तीन लोक के कुल अकृत्रिम जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमाएँ—अधोलोक में (भवनवासी देवों के) ७ करोड़ ७२ लाख अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, मध्यलोक में ४५८ तथा ऊर्ध्वलोक में ८४ लाख ९७ हजार २३ जिनमंदिर हैं, इस प्रकार तीनों लोकों में ८ करोड़ ५६ लाख ९७ हजार ४८१ अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। प्रत्येक मंदिर में १०८ जिनप्रतिमाएँ होने से तीन लोकों की कुल अकृत्रिम जिनप्रतिमाएँ ९२५ करोड़ ५३ लाख २७ हजार ९४८ हैं। साथ ही व्यंतर एवं ज्योतिर्वासी देवों के असंख्यात भवनों में असंख्यात जिनमंदिर हैं तथा सबमें १०८–१०८ जिनप्रतिमाएँ होने से असंख्यात जिनप्रतिमाएँ हैं। मैं मन, वचन, काय से इन सभी जिनमंदिरों एवं जिनप्रतिमाओं को नमस्कार करती हूँ। इनके अतिरिक्त मध्यलोक के संख्यात कृत्रिम जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमाओं को भी मेरा नमस्कार हो।

महामुनियों को देखकर पशु भी क्रूरता छोड़ देते हैं

सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं।
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशा केकिकान्ता भुजंगीम्।।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवेऽन्ये त्यजन्ति।
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमित कलुषं योगिनं क्षीणमोहम्।।

–सम्यक्त्व कौमुदी

चैत्यभक्ति

अपरनाम

जयति भगवान् महास्तोत्रम्

(श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित संस्कृत टीका एवं)
हिन्दी–टीका सहित

श्रीगौतमादिपदमद्भुतपुण्यबन्ध-मुद्द्योतिताखिलममोहमघप्रणाशम्।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यम् निर्वाणकारणमशेषजगद्धितार्थम्[१]।।

सत्य और मुक्तिप्राप्ति के लिए हेतु तथा त्रैलोक्य का हित करने के लिए प्रयोजनभूत जिनेश्वर को मैं नमस्कार करके अद्भुत पुण्यबन्धकारक संपूर्ण विषयों को बतलाने वाला पापनाशक श्री गौतमादि ऋषियों के सफल वचनों को मैं कहता हूँ।

श्री वर्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी स्तुतिमाह—

–हरिणीछन्दः–

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। **कोऽसौ ?** भगवान् इन्द्रादीनां पूज्यः, केवलज्ञानसम्पन्नो वा। कथम्भूतोऽसौ? यस्य **पादौ प्रपद्य** प्राप्य। विशश्वसुः विश्वासं गताः ? के ते ? **परस्परवैरिणः** अहिनकुलादयः। कथम्भूताः? **कलुषहृदयाः** क्रूरमनसः। **मानोद्भ्रान्ताः** मानेनाहङ्कारेण स्तब्धत्वेन उद्भ्रान्ताः यथावदात्मस्वरूपात्प्रच्याविताः। ते कथम्भूताः सन्तो **विशश्वसुः? विगतकलुषाः** विनष्टक्रूरभावाः। किं विशिष्टौ पादौ? **हेमाम्भोजप्रचारविजृम्भितौ** हेमाम्भोजेषु सुवर्णमयपद्मेषु प्रचारः प्रकृष्टोऽन्यजनासम्भवी चरणक्रमसंचाररहितश्चारः गमनं तेन विजृम्भितौ विलसितौ शोभितौ तेषां वा प्रचारो रचना–पादन्यासे पद्मं सप्त पुरः पृष्टतश्च सप्त इत्येवंरूपः तत्र विजृम्भितौ प्रवृत्तौ विलसितौ वा। पुनरपि किंविशिष्टौ तौ इत्याह–**अमेरत्यादि** अमरा देवास्तेषां मुकुटानि तेषु छाया छायामणयः तत उद्गीर्णा निःसृता सा चासौ प्रभा च तया **परिचुम्बितौ** संश्लिष्टौ आलिङ्गितौ।।१।।

---

१. सामायिक भाष्य पृ. १०४ से १४१ तक।

श्री गौतमस्वामी श्रीवर्धमान प्रभु को प्रत्यक्ष देखकर उनकी स्तुति करते हैं–

अर्थ—सामान्य लोग क्रम से एक–एक चरण जमीन पर रखकर चलते हैं। परन्तु भगवान् जब उपदेश देने के लिए विहार करते हैं, तब वे अधर गमन करते हैं तथा उनके दो चरण आगे–पीछे न होकर सम गमन करते हैं। वे देव विरचित सुवर्णकमलों पर से विचरते हैं, तब प्रभु के चरण अतिशय सुन्दर दिखते हैं। जब प्रभु का विहार होता है, तब उनके चरणों के आगे सात कमल और पीछे सात कमल तथा पदतल में एक कमल ऐसे पन्द्रह कमलों की निर्मिति देव करते हैं। देव जब उनके चरणों में नमस्कार करते हैं, तब उनके मुकुट स्थित छायारत्नों की कान्ति जिनेन्द्र के चरणों पर पड़ने से चरण अपूर्व सुन्दर दिखते हैं। क्रूर तथा अहंकार से आत्मस्वरूप से च्युत हुए तथा परस्पर के वैरी जीव जिनेन्द्र के चरणों का आश्रय पाकर अपना क्रूर स्वभाव छोड़ देते हैं तथा तत्काल शान्त बनते हैं। देखिए, केवलज्ञान संपन्न तथा देववन्द्य महावीर प्रभु का यह सामर्थ्य कितना अवर्णनीय है। भगवन्त का सारे विश्व में विजय हो, उन्हें मेरा नमस्कार हो।।१।।

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः।
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।।
परिणतनयस्याङ्गी-भावाद्विविक्तविकल्पितं।
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।

तदन्वित्यादि–तस्माद्भगवन्नमस्कारदनु पश्चात्। जयति। कोऽसौ ? धर्मो नरकादिषु गतिषु पततः प्राणिनः धरतीति धर्मः उत्तमक्षमादिलक्षणश्चारित्रस्वरूपो वा। कथम्भूतः श्रेयान् अतिशयेन प्रशस्यः। पुनरपि कथम्भूतः ? प्रवृद्धमहोदयः प्रकर्षेण वृद्धो वृद्धिं गतो महान् उदयः स्वर्गादिपदप्राप्तिर्यस्मात्प्राणिनाम्। पुनरपि कथम्भूतः ? योऽसौ धर्मः। प्रजाःलोकान्। विपाशयति पाशाद्विमोचयति। कथम्भूतात्पाशादित्याह–कुगतीत्यादि–कुत्सिता गतिः कुगतिः, विरूपकः पन्था। विपथः मिथ्यादर्शनादिः, क्लेशो दुःखं कुगतिश्च, विपथश्च क्लेशश्च तत्तस्मात्तद्रूपादित्यर्थः। पूर्वार्द्धेन धर्मं नमस्कृत्योत्तरार्धेन जैनेन्द्रं वचो नमस्कुर्वन्नाह–परिणतेस्यादि विविधपर्यायरूपतया परिणमते यत्तत्परिणतं द्रव्यमुच्यते, तत्र नयः परिणतनयः द्रव्यार्थिकनय–स्तस्य अङ्गीभावात् अप्रधानभावात् पर्यायार्थिकनयप्राधान्यात् इत्यर्थः। अथवा परिणतं परिणामस्तत्र नयः पर्यायार्थिकनयः तस्य अङ्गीभावात्स्वीकारात्। विविक्तैर्गणधरदेवादिभिः विविक्तं वा विभिन्नं विकल्पितं अङ्गपूर्वादिभेदेन रचितम्। यदि वा विविक्तं विशुद्धं पूर्वापरविरोधदोषविवर्जितं यथाभवत्येवं विकल्पितं रचितम्। कथम्भूतं तदस्त्वित्याह–भवत इत्यादि भवतः संसारात्। त्रातृ रक्षकम्। भवतु सम्पद्यताम्। कथं तद्व्यवस्थितमित्याह त्रेधेत्यादि। त्रेधा उत्पादव्ययध्रौव्यरूपैः अङ्गपूर्वगतबाह्यरूपैः वा त्रिभिः प्रकारैर्व्यवस्थितम् । यत् जिनेन्द्रवचोऽमृतम् जिनेन्द्रवच एव अमृतम्। अमृतमिवामृतमाप्याय–कत्वात्। यथैव हि

प्राणिनो देहदुःखापनेतृत्वेनामृतं आप्यायकंतथा नारकादिमहादुःखपीडितानां तेषां तदपनेतृत्वेनाप्यायकत्वात्तद्वचोऽमृतमुच्यते।।२।।

श्री गौतमस्वामी धर्म तथा जिनेश्वर को नमस्कार करते हुए कहते हैं–

अर्थ–नरकादि दुर्गतियों में गिरते हुए प्राणियों को जो ऊपर उठाता है, उसे धर्म कहते हैं। यह उत्तमक्षमादिरूप दश प्रकार का है तथा चारित्ररूप है। इससे स्वर्ग, चक्रवर्तिपद तथा तीर्थंकरपद प्राप्त होता है। अतः यह धर्म प्रशंसनीय है। कुमति, मिथ्यात्व, क्रोधलोभादि विकार तथा नानाविध दुःखों से यह धर्म प्राणियों को मुक्त करता है। इस जैनधर्म का सारे विश्व में विजय हो। मैं इसे नमस्कार करता हूँ।

धर्म की वंदना के अनन्तर मैं जिनेन्द्र के वचन की वन्दना करता हूँ। उसकी विजय हो। अमृत प्राणियों के शारीरिक दुःख नष्ट कर उन्हें पुष्ट करता है, तद्वत् यह जिनवचनामृत नरकादि महादुःखों से पीड़ित जीवों के दुःख दूर करके उन्हें सुख देता है। अतः यह जिनवचन अमृतोपम है। इन जिनेन्द्र वचनों की रचना गणधरों ने पूर्वापरविरोधरहित की है। यह जिनेन्द्रवचन द्रव्यार्थिकनय को गौणता देकर तथा पर्यायार्थिक नय को मुख्यत्व समर्पण करके ग्यारह अंग, चौदह पूर्व तथा अंगबाह्यश्रुत का विशद तथा नाना भेदयुक्त वर्णन करता है। वस्तु के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाव का वर्णन करता है। इस प्रकार उत्तम गुणों से भूषित यह जिनवचन हमारा संसार से रक्षण करे।।२।।

भगवद्वचः स्तुत्वा तज्ज्ञानं स्तोतुं तदन्वित्याद्याह–

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी।
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं।
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।

तस्माज्जिनेन्द्रवचननमस्कारादनु पश्चात्। जिनस्येयं जैनी वित्तिः केवलज्ञानम्। जयतात् मत्यादिज्ञानेभ्यः सर्वोत्कर्षेण वर्द्धताम्। कथम्भूतेत्याह–प्रभङ्गेत्यादि–प्रभङ्गतरङ्गिणी प्रकृष्टा प्रवृद्धा वा भङ्गाःस्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादयः त एव तरङ्गाः।। कल्लोलास्ते विद्यन्ते यस्याम्। ते हि सकलवस्तुगता ग्राह्यत्वेन तत्र वर्तन्ते, स्वरूपगतास्तु तादात्म्येनेति। पुनरपि कथम्भूतेत्याह– प्रभवेत्यादि प्रभव उत्पादः विगमो विनाशो ध्रौव्यं स्थैर्यं तान्येव द्रव्याणां स्वभावाः तान्विभावयति प्रकाशयति इत्येवंशीला। इदं भगवदादिचतुष्टयं संस्तुतं सत्किं कुर्यादित्याह देयादित्यादि। देयात्कं मोक्षम्। किं कृत्वा विघट्य। किं तत् ? द्वारं। कस्य ? निरुपमसुखस्य उपमायाः निष्क्रान्तं निरुपमं तच्च तत्सुखं च अनन्तसुखम्। तस्य यद्द्वारं पिधायकं कपाटसम्पुटस्थानीयं मोहनीयं कर्म तद्विघट्य वियोज्य। कथं विघट्य ? निरर्गलं अर्गला अन्तरायं तस्याः निष्क्रान्तं

यथाभवत्येवं विघट्य। विघटितमपि हि द्वारं अर्गलासद्भावे नेष्टप्रदेशे प्रवेष्टुं प्रयच्छति। कथम्भूतं मोक्षं ? विगतरजसं रजो ज्ञानदृगावरणे सकलकर्माणि वा, विगतं विनष्टं रजो यत्र। निरत्ययं अत्ययो व्याधिः जरामरणे वा ततो निष्क्रान्तम् । अव्ययं अविनश्वरम् ।।३।।

श्री गौतमगणधर जिनेश्वर के केवलज्ञान की स्तुति करते हैं–

अर्थ—श्री जिनेश्वर का केवलज्ञान मत्यादिज्ञानों में अत्यन्त श्रेष्ठ है। ऐसे केवलज्ञान की जगत् में निरन्तर विजय हो। गौतमगणधर ने इस ज्ञान को नदी का रूपक दिया है। नदी में अनेक तरंगे उत्पन्न होती हैं। इस केवलज्ञाननदी में भी 'स्यादस्ति, स्यान्नास्ति' आदि सात प्रकार की तरंगे उत्पन्न होती हैं। ये सात भंग वस्तु के सात धर्म हैं और वे केवलज्ञान से जाने जाते हैं। अतः यह केवलज्ञानरूपी नदी 'स्यादस्त्यादि' लहरों से युक्त हैं। ऐसा कहना अनुचित नहीं है। वस्तु में ये सात धर्म कथंचित् तादात्म्यस्वरूप में रहते हैं। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्रव्य का स्वरूप है। यह केवलज्ञान ने कहा है। द्रव्य की नवीन अवस्था उत्पन्न होना उत्पाद है। द्रव्य की पूर्वावस्था नष्ट होना व्यय है तथा इन दोनों अवस्थाओं में द्रव्य स्थिर रहना ध्रौव्य है। ये तीन अवस्थाएँ जीवादि द्रव्यों की होती हैं और केवलज्ञान उन्हें स्पष्ट जानता है। गौतमगणेश्वर ने जिनेश्वर, तदुपदिष्ट जिनधर्म, उनके वचन और केवलज्ञान का वर्णन किया है, स्तुति की है। इस स्तुति से मुक्ति मिले, ऐसा अभिप्राय श्रीगौतमगणधर ने व्यक्त किया है। मोक्ष अनन्तसुखों का द्वार है। परन्तु मोहनीयादिकर्मरूपी किवाड़ों से वह बंद हो गया है। अन्तराय कर्मरूप अर्गला इस दरवाजे में लगी है और दरवाजा खुलने पर भी अन्तरायरूपी अर्गला जब तक अलग नहीं होती, तब तक वह दरवाजे के अंदर जाने में बाधा उत्पन्न करती है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्य अघातियाँ कर्म जब नष्ट होते हैं, तब मोक्ष प्राप्त होता है। यह मोक्ष रोगरहित, जरामरणरहित तथा अविनाशी है। उपर्युक्त चार पदार्थों के स्तवन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।।३।।

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

अर्हत्सिद्धेत्यादि—अर्हन्तश्च सिद्धाश्च आचार्याश्च उपाध्यायाश्च तेभ्यो नमोऽस्तु नमस्कारो भवतु। तथा च तथैव साधुभ्यो नमोऽस्तु। कथम्भूतेभ्यः ? सर्वजगद्वन्द्येभ्यः सर्वाणि च तानि जगन्ति च त्रयो लोकास्तेषां वन्द्यास्तेभ्यः। किं नियते क्षेत्रे नियतेभ्य इत्याह सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

पञ्चपरमेष्ठिनः सामान्येन नमस्कृत्य मोहादीत्यादिना अर्हतः पुनर्विशेषतो नमस्करोति। तेषां धर्मोपदेष्टृ–त्वेनोपकारकरत्वात्।।

अर्थ—जो समस्त त्रैलोक्य से वंदनीय है, ढाई द्वीपों के सर्व क्षेत्रों में हैं, ऐसे सर्व अर्हन्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पंचपरमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।।४।।

अरहंत भव्यों को उपदेश देकर उपकार करते हैं। अतः गौतम गणधर उन्हें पुनः विशेषतया नमस्कार करते हैं।

मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।।५।।

मोहो मोहनीयं स आदिर्येषां क्षुधादीनां ते च ते सर्वे दोषाश्च त एवारयोऽरिकार्यकारित्वा। यथैव ह्यारयो दुःखदा एवमेतेऽपि। तेषां घातकेभ्यः। सदा हतरजोभ्यः सदा सर्वकालं हते विनाशिते रजसी ज्ञानदृगावरणे यैः। विरहितरहस्कृतेभ्यः रहस्कृतमन्तरायो विरहितं स्फेटितं रहस्कृतं यैः। पूजार्हेभ्य इन्द्राद्युपनीतामतिशयवतीं पूजामर्हन्तीति पूजार्हास्तेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।।५।।

अर्थ—मोहनीय कर्म तथा क्षुधा, पिपासा, वृद्धावस्था आदि अठारह दोष शत्रु के समान जगत् के जीवों को दुःख देते हैं। अर्हत्परमेष्ठी ने इन मोहादि शत्रुओं का नाश किया है।

अरहंतों ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मो का भी नाश किया है। इन दो कर्मों को 'रज' कहते हैं। रहस् अर्थात् अन्तराय कर्म का भी अरहंत ने नाश किया है। इस तरह मोहनीयादि चार घातियाँ कर्मो का नाश अरिहंतों ने किया है।

देवादिकों के द्वारा पूज्य होने से उनका अर्हन् नाम भी सार्थक है। ये सारे गुण जिनमें हैं, ऐसे भगवान् अर्हन्त को मैं नमस्कार करता हूँ।।५।।

एवमर्हतो वन्दित्वा तद्धर्मं वन्दमानः क्षान्त्यार्जवादीत्याद्याह–

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।

क्षान्त्यार्जवादीत्याह–जिनेन्द्रोक्तं जिनेन्द्रप्रतिपादितम्। धर्मं उत्तमक्षमादिलक्षणं चारित्ररूपं वा वन्दे। कथम्भूतमित्याह–क्षान्तीत्यादि क्षान्तिः क्षमा, आर्जवमवक्रता ते आदिर्येषाम् । आदिशब्देन मार्दवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि गृह्यन्ते। ते च ते गुणाश्च तेषां गणः समूहः सुशोभनं साधनं यस्य स तथोक्तस्तम्। ननु चारित्रलक्षणधर्मस्य क्षान्त्यादिसुसाधनत्वं युक्तम्। न पुनः उत्तम–क्षमादिलक्षणं तस्यैव तद्धेतुत्वविरोधात् इति चेत् न द्रव्यरूपाणां तेषां भावरूपक्षमादिहेतुत्वे, भावरूपाणां च द्रव्यरूपक्षमादिहेतुत्वे, विरोधासम्भवात्। पुनरपि कथम्भूतम्? सकललोकहितहेतुं सकलाश्च ते लोकाश्च प्राणिनः तेभ्यो हितं सुखं तद्धेतुश्च तस्य हेतुस्तम्। शुभधामनि धातारं शुभं च तद्धाम च निर्वाणं तत्र धातारं स्थापयितारम्।।६।।

अरिहंत को नमस्कार कर जिनधर्म को श्रीगौतमगणधरदेव वंदन करते हैं–

अर्थ—श्रीजिनेश्वरों ने उत्तम क्षमादिरूप किंवा चारित्ररूप धर्म का भव्यों के लिए उपदेश दिया है। इस धर्म को मैं भक्ति से नमन करता हूँ। यह धर्म प्राणिमात्र को दुःख से दूर कर उनका हित करता

है तथा उन्हें अनंतसुख देता है। अत्यन्त शुभस्थान की—मोक्ष की प्राप्ति करा देता है। चारित्रधर्म की पूर्णता होने के लिए उत्तम क्षमादिकारणों की आवश्यकता होती है।।६।।

प्रश्न—क्षमादिस्वरूप धर्मों के लिए क्षमादि कारणों की ही आवश्यकता लगती है, वह समझ में नहीं आता है। क्षमादिरूप धर्म को कारण और उसी को कार्य मानना संभवनीय नहीं है। एक ही वस्तु कारण–कार्य दोनों रूप होना संभवनीय नहीं लगता।

उत्तर—भावस्वरूप क्षमादि धर्मों का द्रव्यरूपी उत्तमक्षमादि धर्म कारण है। इस रीति से मानने पर विरोध नष्ट होता है। अन्तःकरण में क्षमा होने पर अपने मुख पर क्रोध से होने वाला विकार दृष्टिगोचर नहीं होगा। बाह्यशान्ति से अन्तःशान्ति का अनुमान किया जाता है। तब बाह्यशान्ति अन्तःशान्ति को पहचानने के लिए कारण होती है तथा अन्तःशान्ति के बिना यथार्थ बाह्य क्षमादि शान्ति हो नहीं सकती। अतः वह बाह्यशान्ति का कारण है।।६।।

एवं जिनेन्द्रोक्तं धर्मं स्तुत्वा तद्वचनं स्तोतुमाह–

मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

मिथ्याज्ञानेत्यादि–मिथ्याज्ञानं विपरीतज्ञानम्। तदेव तमः तेन वृतः प्रच्छादितः स चासौ लोकश्च तस्यैकमद्वितीयं ज्योतिः जीवाद्यशेषतत्त्वप्रकाशकत्वात्। अमितगमयोगि अमितोऽपरिमितः असङ्ख्यातः स चासौ गमश्च अशेषार्थविषयं श्रुतज्ञानं तेन योगः सम्बन्धः कार्यकारणभावलक्षणः, श्रुतस्य तज्जनकत्वात्। यदि वा अमितगमोऽनन्तावबोधः केवलज्ञानं तेन योगस्तस्य तज्जन्यत्वात् सोऽस्यास्तीति तद्योगी। साङ्गोपाङ्गं अङ्गानि आचारादीनि उपाङ्गानि पूर्ववस्तुप्रभृतीनि सह तैर्वर्तते इति साङ्गोपाङ्गम्। न जीयते एकान्तवादिभिरिति अजेयम्। शक्यार्थस्य अविवक्षितत्वात् अजय्यमिति न भवति। तदेवंविधं जैनं वचनं सदा वन्दे जिनस्येदं जैनमित्यनेनेश्वरादिवचनव्यवच्छेदः। सदा इत्यनेन नियतकालविषयस्तुति–व्युदासः।।७।।

अर्थ—जिनेश्वर के वचन विपरीतज्ञानरूपी अंधकार से आच्छादित हुए जगत को प्रकाशित करने के लिए अनुपम प्रकाश के समान है क्योंकि वह संपूर्ण जीवादि पदार्थों का स्पष्ट विवेचन करता है। यह उनका वचन श्रुतज्ञान से उत्पन्न हुआ है। अर्थात् पूर्व में जिनेन्द्र भगवान् श्रुतज्ञान से पदार्थों का स्वरूप परोक्षरूप से जानते थे। उस समय उनको श्रुतज्ञान था। वे श्रुतकेवली थे। तदनंतर वे श्रुतज्ञान की आराधना से केवली हो गये। इसलिए श्रुतज्ञान केवलज्ञान की उत्पत्ति में कारण हुआ। जिनेश्वर ने केवलज्ञान से भावश्रुत की रचना की। बारह अंग, चौदहपूर्व, वस्तु वगैरह श्रुतज्ञान के उपांग है। यह श्रुतज्ञान एकान्तवादियों से अजिंक्य है। जिनेश्वर प्रतिपादित यह श्रुतज्ञान सदा जयवंत रहे।।७।।

तात्पर्य श्रुतज्ञान तथा केवलज्ञान में अन्योन्य कार्यकारणता है। प्रथम श्रुतज्ञान केवलज्ञानोत्पत्ति में कारण होता है और वह केवलज्ञान उस श्रुत को प्रकाशित करता है। इस श्रुतज्ञान की आराधना से जीवों को केवलज्ञान प्राप्त होता है, वह भी केवलज्ञान से फिर श्रुतज्ञान की उत्पत्ति करता है। इस प्रकार श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में कार्यकारण संबंध है। वह अनादिकाल से अनंतकाल तक अव्याहत चालू रहेगा।

भगवद्वचः स्तुत्वा तत्प्रतिमास्तद्वचनात्प्रसिद्धाः स्तोतुमाह–

भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

भवनेत्यादि–भवनानि च विमानानि च ज्योतिषश्च व्यन्तराश्च नराश्च भवनविमानज्योति–र्व्यन्तर-नरास्तेषां लोका निवासस्थानानि भवनविमानज्योतिर्व्यन्तरनरलोकाश्च तेषां विश्वचैत्यानि। सर्वप्रतिमाः। केषां ? जिनेश्वराणाम्। कथम्भूतानाम् ? त्रिजगदभिवन्दितानाम्। त्रिलोकाभिस्तुतानाम् । त्रेधा मनोवाक्कायैः वन्दे।।८।।

भगवद्वचनस्तवन के अनन्तर उनकी प्रतिमाओं की स्तुति श्री गौतमगणधर करते हैं–

अर्थ—भवनवासी, सौधर्मादि सर्वार्थसिद्धयन्त विमानसमूह, ज्योतिष्क, व्यन्तर व मनुष्यक्षेत्र में जिनेश्वरों के त्रैलोक्यवंदित सर्वकृत्रिम–अकृत्रिम जो असंख्य बिंब हैं, उन्हें मैं मन, वचन, काय से वन्दन करता हूँ।।८।।

एवं चैत्यान्यभिनुत्य चैत्यालयानभिनवितुं भुवनत्रयेऽपीत्याह–

भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

भुवनत्रयेऽपीत्याह–आलयालीर्वन्दे। कस्मिन् ? भुवनत्रयेऽपि अपि आलयालीत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः। न केवलं चैत्यानि किन्त्वालयालीरपि वन्दे। केषां ? भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणाम्। भुवनानां त्रयं तस्य अधिपाः स्वामिनः देवेन्द्रनरेन्द्रधरणेन्द्रास्तैरभ्यर्च्याः पूज्यास्ते च ते तीर्थकराश्च तेषाम्। विभवानां विनष्टसंसाराणाम्। आलयानां जिनगृहाणाम्। आल्यः पङ्क्तयस्ताः। भुवनत्रयसम्बन्धित्वेन प्रसिद्धाः। किमर्थं वन्दे ? भवाग्निशान्त्यै भवः संसारः स एवाग्निः बहुप्रकारदुःखसन्तापहेतुत्वात्। तस्य शान्तिःशमनं विध्यापनं विनाशस्तस्यै।।९।।

अब चैत्यालयों की वंदना करते हैं–

अर्थ—इस त्रैलोक्य में तीन लोकों के नाथ, देवेन्द्र, चक्रवर्ती तथा धरणेन्द्रों से पूजनीय तथा संसाररहित तीर्थंकरों के असंख्य जिनमंदिर हैं, उन्हें मैं दुःखसंताप उत्पन्न करने वाले संसाराग्नि की शान्ति के लिए वन्दन करता हूँ।।९।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

इतीत्यादिना स्तुत्यर्थमुपसंहृत्य स्तोता स्तुतेःफलं याचते। इत्येवमुक्तप्रकारेण। पञ्चमहा-पुरुषाः पञ्चपरमेष्ठिनः। प्रणुताः स्तुताः। न केवलमेते जिनधर्मवचनचैत्यानि चैत्यालयाश्च। ते सर्वे प्रणुताः सन्तः किं कुर्वन्तु ? दिशन्तु प्रयच्छन्तु। बोधिं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रप्राप्तिम्। किंविशिष्टाम्। विमलां क्षायिकीम्। पुनरपि किंविशिष्टाम्? बुधजनेष्टाम् बुधजना गणधरदेवादयस्तेषामिष्टा-मभिप्रेताम् ।।१०।।

अब श्री गौतमगणधर स्तुतिफल की याचना करते हैं—

अर्थ—उपर्युक्त पंचपरमेष्ठी, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनप्रतिमा और जिनमंदिर इनका मैंने स्तवन किया है। वे मुझे गणधरादि महर्षियों को प्रिय क्षायिक समाधि—रत्नत्रय प्राप्त करा दे।।१०।।

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।

इदानीं कृत्रिमाकृत्रिमधर्मोपेततया जिनप्रतिमाः स्तोतुमकृतानीत्याद्याह उपस्कन्धकच्छन्दः। वन्दे कानि? प्रतिबिम्बानि। केषाम् ? जिनानामर्हताम् । क्व? जगत्त्रये। द्युतिमत्सु मन्दिरेषु त्रिभुवने प्रचुर प्रभासमन्वित-चैत्यालयेषु स्थितानि। कथम्भूतानि? अकृतानि बुद्धिमन्निमित्तव्या-पाराजन्यानि। कृतानि च तद्व्यापारजनितानि च। अप्रमेयद्युतिमन्ति प्रचुरताप्रभायुक्तानि। मनुजामरपूजितानि इन्द्रचक्रवर्त्यादिलोकपूजितानि।।११।।

अब स्तुतिकार कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की स्तुति करते हैं–

अर्थ—इस त्रैलोक्य में अतिशय कान्तियुक्त कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिनमंदिरों में अनुपम तेजोयुक्त कृत्रिम व अकृत्रिम जिनप्रतिमाएँ हैं, जिनकी मनुष्य और सुरासुर पूजा करते हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ।।११।।

द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

काः ? प्रतिमाः। किंविशिष्टाः ? अप्रतिमाः अनुपमाः । केन व पुषा तेजसा स्वरूपेण वा। पुनरपि कथम्भूताः? द्युतिमण्डलभासुराङ्गयष्टीः द्युतिमण्डलं प्रभामण्डलं तेन भासुरा दीप्ता अङ्गयष्टिर्यासां यष्टिरिव यष्टिः संसारार्णवे पतताम्वष्टम्भहेतुत्वात्। अङ्गमेवयष्टिः। भुवनेषु त्रिषु प्रवृत्ताः प्रसृताः। जिनोत्तमानामर्हताम्। किमर्थं ता वन्दमानः प्राञ्जलिरस्मि भूतये। अर्हदादिविशिष्टपदप्राप्तये। अथवा उत्कृष्टपुरुषार्थवती विशिष्टा भूतिः, विशिष्टेषु वरप्रदेशेषु भूतिः प्रादुर्भावो यस्याः सकाशात् असौ विभूतिःपुण्यप्राप्तिः तस्यै।।१२।।

अर्थ—कान्तिमण्डल से जिनके देह चमकते हैं, ऐसे तीर्थंकरों के उपमारहित जिनबिंब इस त्रैलोक्य में असंख्य हैं। मैं उन जिनेश्वरों के सर्व बिम्बों को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। अरिहंत, सिद्ध आदि परमेष्ठियों की पदवी मुझे प्राप्त हो, ऐसी मेरी चाह है।।१२।।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

विगतायुधेत्यादि। अभिवन्दे अभिमुखीभूय स्तुवे। काः? प्रतिमाः किंविशिष्टा? अप्रतिमा अतुल्याः। कया? कान्त्या। क्व व्यवस्थिताः? प्रतिमागृहेषु चैत्यालयेषु। पुनरपि कथम्भूताः? विगतायुधविक्रियाविभूषा आयुधं प्रहरणं, विक्रिया विकारः विविधा विशिष्टा वा भूषा अलङ्कारो विगता एता यासु। इत्थम्भूताश्च ताः प्रकृतिस्थाः स्वरूपस्थाः। केषां प्रतिमाः? जिनेश्वराणाम्। किंविशिष्टानाम्? कृतिनां कृतं पुण्यं शुभायुर्नामगोत्रलक्षणं विद्यते येषां ते कृतिनस्तेषाम्। किमर्थमभिवन्दे? कल्मषशान्तये कल्मषं पापं तस्य शान्तये विनाशाय।।१३।।

अर्थ—कृत–पुण्य अर्थात् शुभ आयु, शुभ नाम तथा शुभ गोत्रादि पुण्यप्रकृतियों का उदय जिनको हैं, ऐसे जिनेश्वरों की जिनप्रतिमाएँ जिनचैत्यालयों में हैं, उनकी अद्वितीय कान्ति हैं। जिनेश्वरों का जैसा रूप था, वैसा इन प्रतिमाओं का रूप है। ये प्रतिमाएँ शस्त्रास्त्रों से रहित हैं, भूषणों से रहित तथा निर्विकार सर्वाङ्ग में शान्ति को धारण करने वाली हैं। मेरा पाप नष्ट होने के लिए मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।।१३।।

कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

कथयन्तीत्यादि। प्रणमामि कानि? प्रतिरूपाणि प्रतिबिम्बानि। कथम्भूतानि? अभिरूपमूर्ति–मन्ति अभि समन्तात् रूपं यस्याः सा चासौ मूर्तिश्च स्वरूपं विद्यते येषां ते। पुनरपि कथम्भूतानि? कथयन्ति शंसन्ति। कां? कषायमुक्तिलक्ष्मीम् कषायाणां मुक्तिरभावस्तस्या लक्ष्मीः सम्पत्तिः। तस्यां वा सत्यां लक्ष्मीरन्तरङ्गा बहिरङ्गा च विभूतिः। कया? परया शान्ततया परमोपशान्त्या मूर्त्या। केषां प्रतिरूपाणि? जिनानाम्। किंविशिष्टानाम् ? भवान्तकानां भवःसंसारस्तस्य अन्तका विनाशकास्तेषाम्। किमर्थं प्रणमामि? विशुद्धये कर्ममलप्रक्षालनाय।।१४।।

अर्थ—श्रीजिनेश्वरों की ये प्रतिमाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। अतिशय शान्त स्वरूपमयी होने से कषायों का नाश होने से प्राप्त होने वाली अन्तरंग अनंतज्ञानादि लक्ष्मी तथा बहिरंग समवसरणादि लक्ष्मी का वर्णन करती हुई–सी दिखती हैं। संसार का जिन्होंने नाश किया है, ऐसे जिनेश्वरों की इन प्रतिमाओं को मेरे कर्मरूपी मल का क्षालन होने के लिए मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

यदिदमित्यादिना स्तोता स्तुतेः फलं प्रार्थयति। यत्सुकृतं पुण्यम्। सिद्धभक्तिनीतमिदम् सिद्धानां जगत्रये प्रसिद्धानामर्हत्प्रति बिम्बानां भक्तिस्तया नीतं प्रापितं उपढौकितं मम। कथम्भूतम्? दुष्कृतवर्त्मरोधि दुष्कृतं पापं तस्य वर्त्म मार्गः अप्रशस्तमनोवाक्कायस्तद्रुणद्धीत्येवं शीलम्। तेन सुकृतेन। पटुना समर्थेन। भक्तिः स्थिरा अविचला। मे जिनधर्म एवं भवतात् भवतु। कदा? जन्मनि जन्मनि भवे भवे।।१५।।

स्तोता स्तुतिफलप्राप्ति की याचना करता है–

अर्थ—त्रैलोक्यप्रसिद्ध श्रीजिनेश्वरों की प्रतिमाओं की भक्ति करने से प्राप्त हुआ जो पुण्य, वह पाप के कारणरूप मन, वचन और शरीर की प्रवृत्तियों को रोकता है। यह मेरा समर्थ पुण्य प्रत्येक जन्म में जिनधर्म में दृढ़ भक्ति के लिए कारण होवे।।१५।।

चतुर्णिकायामरसम्बन्धित्वेन तिर्यग्लोकसम्बन्धित्वेन च जिनचैत्यस्तवनार्थमर्हतामित्याह–

अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।

पथ्यावक्त्रच्छन्दः। कीर्तयिष्यामि स्तोष्ये। कानि? चैत्यानि। केषाम् ? अर्हताम् । किंविशिष्टानाम्? सर्वभावानां सर्वे निःशेषा भावाः पदार्था विषया येषाम्। अथवा सर्वःपरिपूर्णो भावः चारित्रपरिणामः परमोदासीनलक्षणो येषाम्। पुनरपि कथम्भूतानाम् ? दर्शनज्ञानसम्पदाम् दर्शनज्ञानयोः क्षायिकरूपयोः सम्पद्येषाम् । तयोर्वा सतोः सम्पत् समवसरणादिविभूतिर्येषाम्। कथं तानि कीर्तयिष्यामि? यथास्वबुद्धि स्वमतिविभवानतिक्रमेण। किमर्थम् ? विशुद्धये कर्ममलप्रक्षालनाय।।१६।।

चतुर्णिकाय देवों के विमानादिकों में तथा मनुष्यक्षेत्र में स्थित जिनबिंबों का स्तोता स्तवन करता है–

अर्थ–संपूर्ण पदार्थ जिनके ज्ञान में प्रतिबिंबित हुए हैं अर्थात् ज्ञान के विषय हुए हैं अथवा सर्व–संपूर्ण–भाव–चारित्रपरिणाम जिनके हैं किंवा उदासीनतालक्षण चारित्रपरिणाम को–यथाख्यातचारित्र को जिन्होंने धारण किया है, केवलदर्शन और केवलज्ञान गुणों से पूर्ण, समवसरणादि बाह्य ऐश्वर्य से शोभायमान, ऐसी अर्हत्प्रतिमाओं का मेरे कर्मों का क्षय होने के लिए बुद्धि के अनुसार मैं वर्णन करता हूँ।।१६।।

श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम्।।१७।।

श्रीमदित्यादि। विधेयासुः क्रियासुः। काः? प्रतिमाः। काम् ? परमांगतिं मुक्तिम् । नोऽस्माकम्। किंविशिष्टाः? वन्दिताः सत्यः। पुनरपि किंवशिष्टाः ? श्रीमद्भावनवासस्थाः भवनेषु भवा भावना देवास्तेषां वासाः, श्रीमन्तश्च ते भावनवासाश्च तत्र तिष्ठन्ति ते तत्स्थाः। स्वयंभासुरमूर्तयः स्वयं स्वभावेन भासुरा दीप्रा मूर्तिः स्वरूपं यासाम्।।

अर्थ—अतिशय शोभायमान जो भवनवासी देवों के स्थान हैं, उनमें स्वभावतः कान्तियुक्त मूर्तिस्वरूप जिनेश्वरों के बिंब हैं। उन्हें हम वन्दन करते हैं, वे हमें मोक्ष प्रदान करें।।१७।।

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

यावन्तीत्यादि। यावन्ति यत्परिमाणानि। सन्ति विद्यन्ते। लोकेऽस्मिन् तिर्यग्लोके। अकृतानि कृतानि च तानि च तानि। भूयांसि प्रचुरतराणि चैत्यानि सर्वाणि वन्दे। भूतये विभूत्यर्थम्।।१८।।

अर्थ—इस मध्यलोक में जितने अकृत्रिम और कृत्रिम जिनबिंब हैं, उन सब जिनबिंबों को मैं मोक्षप्राप्ति के लिए वंदन करता हूँ।।१८।।

ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

ये व्यन्तरेत्यादि। ये प्रतिमागृहाः प्रतिमाश्च गृहाश्च प्रतिमानां वा गृहाः। स्थेयांसः अतिशयेन स्थिराः सर्वदावस्थायिन। क्व ? व्यन्तर विमानेषु व्यन्तरान्विशेषेण मानयन्तीति व्यन्तरविमानानि व्यन्तर निवासास्तेषु। ते च तेऽपि सङ्ख्यामतिक्रान्ता असङ्ख्याताः। सन्तु भवन्तु। नोऽस्माकम्। दोषशान्तये रागाद्युपररमाय।।१९।।

अर्थ—व्यन्तर देवों के जहाँ निवासस्थान हैं, वहाँ असंख्यात जिनमंदिर और जिनप्रतिमाएँ हैं, वे प्रतिमाएँ तथा जिनमंदिर हमारे दोषों का विनाश करें।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान्।।२०।।

ज्योतिषामित्यादि। अथ व्यन्तरविमानसम्बन्धिप्रतिमागृहस्तवनानन्तरं ज्योतिषां लोकस्य सम्बन्धिषु विमानेषु ये गृहाः सन्ति। कस्य? स्वयम्भुवोऽर्हतः। कथम्भूता अद्भुतसम्पदः आश्चर्यावहा सम्पद्विभूतिर्येषाम्। नमामि तान्। किमर्थम् ? विभूतये विभूतिनिमित्तम्।।

अर्थ—ज्योतिषी देवों के विमानों में आश्चर्यचकित वैभव को धारण करने वाले जो स्वयंभू जिनेश्वर के मंदिर हैं, उन्हें मैं ज्ञानादिगुणसंपदा प्राप्त होने के अभिप्राय से वंदन करता हूँ।।२०।।

वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम् ।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।

वन्दे इत्यादि। वन्दे काः ? तदर्च्चाः ताश्च ता वैमानिकदेवसम्बन्धिन्यः अर्चाः प्रतिमाः किं कुर्वन्ति? याः सेवन्ते किं तत् ? सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम् सुरा वैमानिकदेवा इह गृह्यन्ते ततोऽन्येषां प्रोगेवोक्तत्वात्। तेषां तिरीटानि मुकुटानि तेषामग्राणि तत्र मणयः, यदि वा अग्राः प्रधानभूताः ते च ते मणयश्च तेषां छाया दीप्त्यः ताभिरभिषेचनं स्नपनम् । कैः

क्रमैरेव चरणैरेव सर्वदा तत्पादेषु प्रणत्तोत्तमाङ्गा इत्यर्थः। किमर्थं वन्दे? सिद्धिलब्ध्ये मुक्तिप्राप्तये।।२१।।

अर्थ—स्वर्गवासी देव अपने मुकुटों के अग्रभाग में स्थित रत्नों की कान्ति से श्रीजिनेश्वरों की प्रतिमाओं के चरणों का अभिषेक करते हैं। उन जिनेश्वरप्रतिमाओं को मैं मोक्षप्राप्ति के लिए वंदन करता हूँ।।२१।।

इतीत्यादिना स्तोता स्तुतेः फलं प्रार्थयते–

इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।

इति इत्येवमुक्तप्रकारेण यासौ सङ्कीर्तिः सङ्कीर्तनं स्तुतिः। केषां? चैत्यानाम् । केषां सम्बन्धिनां चैत्यानाम् ? अर्हताम् । किंविशिष्टानाम् ? स्तुतिपथातीतश्रीभृतां स्तुतेः पन्था मार्गः तमतीता सा चासौ श्रीश्च इन्द्रादिभिरपि या स्तोतुमशक्या अन्तरङ्गा बहिरङ्गा च श्रीः तां विभ्रति ये तेषां सङ्कीर्तिः मम सर्वास्त्रवनिरोधिनी अस्तु मुक्तिप्रदा भवत्वित्यर्थः।२२।।

पुनः स्तोता स्तुति की फलयाचना करता है–

अर्थ—जिनकी अन्तरंगज्ञानादिगुणरूप सम्पत्ति तथा बहिरंग समवसरणादि विभूतिरूप दोनों विभवों का वर्णन करना इन्द्रादिकों से भी असंभव है, ऐसे जिनेश्वरों की प्रतिमाओं की जो मैंने स्तुति की है, वह मेरे पापपुण्यरूप आस्रवों का निरोध करने में कारण हो अर्थात् इस स्तुति से मुझे मोक्ष प्राप्त हो।।२२।।

–स्कन्धच्छन्दः–

अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम्।।२३।।

अर्हन्महानदस्येत्यादि। उत्तमतीर्थं दुरितं व्यपहरत्विति सम्बन्धः। कस्य तीर्थं? अर्हन्महानदस्य महांश्चासौ। नदश्च महानदः। अर्हन्नेव महानदोऽर्हन्महानदः तस्य। पूर्वप्रवृत्तसरित्प्रवाहविपरीत–प्रवाहो हि नदो भवति। अर्हन्नपि पूर्वप्रवृत्तसंसारसरित्प्रवाहविपरीत–प्रवाहत्वान्नद इत्युच्यते। भगवता च नदेन तुल्योऽन्यो नदो न संभवति, ततो विशिष्टगुणोपेत्तत्वादिति महानद इत्युच्यते। तदैवास्य ततो विशिष्टगुणोपेतत्वं तत्तीर्थस्येतरतीर्थाद्विशिष्टत्व–प्रदर्शनद्वारेण दर्शयति। उत्तमतीर्थम्—तीर्यते संसारसरिद्येन तत्तीर्थम्। द्वादशाङ्गचतुर्दशपूर्वादिलक्षणं भगवतो मतम्। उत्तमं असाधारणं तच्च तत्तीर्थं च। कथमस्योत्तमत्वं इति चेत् अतिलौकिककुहकतीर्थं यतः। लोके भवं लौकिकं कुहकतीर्थम्। कुहकतीर्थं आश्चर्यप्रधानं दम्भप्रधानं च। अतिक्रान्तं लौकिककुहकतीर्थं येन। यत्तीर्थं भवति तत्तीर्थं यात्रिकाणां पृथिवीतलवर्तिनां कतिपयानां किल दुरितस्य शरीरमलस्य च प्रक्षालनकारणं भवति। इदं त्वर्हन्महानदस्योत्तमतीर्थं

त्रिभुवनवर्तिनां भव्यजनानां तीर्थयात्रिकाणां दुरितस्य पापकर्मणः प्रक्षालने स्फेटने एकमद्वितीयं कारणम्।।२३।।

अर्थ——पूर्वदिशा की तरफ बहने वाली नदी के प्रवाह के विरुद्ध जिसका प्रवाह बहता है, उसे नद कहते हैं अर्थात् नद का प्रवाह पूर्वदिशा में बहता नहीं, वह पश्चिमाभिमुख बहता है। यहाँ स्तुतिकार ने नद का रूपक देकर अर्हत्परमेष्ठी का वर्णन किया है और वह पूर्णतया उचित है। संसाररूप नदी के प्रवाह के विरुद्ध अर्हन्नदका प्रवाह है, वह मोक्षमार्ग की तरफ जाता है। यह अरहंतरूप नद छोटा नहीं है। इस अर्हन्नद के समान कोई नद नहीं है। अतः यह विशिष्टगुणयुक्त होने से महानद है। नद में तीर्थ होते हैं, इसमें भी द्वादशाङ्ग और चौदहपूर्व स्वरूपी श्रुतज्ञान तीर्थ है। द्वादशांग और चौदह पूर्वों का वर्णन करने वाला अर्हन्मत ही इसमें तीर्थ है। जिसमें संसाररूपी नदी पार की जाती है, उसे तीर्थ कहते हैं और द्वादशांग तथा चौदहपूर्वरूप तीर्थ से संसार नदी तिरकर जनता पार हो जाती है।।२३।।

ननु तीर्थः प्रतिदिनं वहत्प्रवाहो भवति, स चात्र न भविष्यतीत्यत्राह–

लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम्।।२४।।

लोकालोकेत्यादि–लोकश्च अलोकश्च तयोः शोभनं तत्त्वं स्वरूपं। शोभनानि च जीवादीनि तत्त्वानि तस्य तेषां वा प्रतिसमन्तात्प्रत्येकं वा अवबोधनं परिच्छित्तिः तत्र समर्थानि दिव्यज्ञानानि च केवलज्ञानानि, मत्यादिसम्यग्ज्ञानानि वा, तान्येव प्रत्यहं प्रतिदिनं वहत्प्रवाहो यत्र। तर्हि कूलद्वयं तीर्थे भवति तदत्र न भविष्यतीत्याह—व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम्–व्रतानि पञ्च, शीलानि अष्टादशसहस्रसङ्ख्यानि। तान्येव अमलं निर्दोषं, विशालं विस्तीर्ण कूलद्वितयं तटद्वयं यस्य।।२४।।

अन्यमतियों के माने हुये तीर्थ में स्नान करने से केवल शरीर का मल नष्ट होगा; परन्तु अरहंतरूपमहानद के तीर्थ में स्नान करने से पापरूपमल नष्ट होता है और आत्मा में पवित्रता आती है। अतः यह तीर्थ दांभिक लोगों के तीर्थ से अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा असामान्य है। त्रैलोक्य के तीर्थयात्रा करने वाले सर्वभव्यों के पातक नष्ट करने में समर्थ होने से सर्वलौकिक–अन्यमतीय–तीर्थ इसका साम्य कदापि नहीं कर सकते हैं।

तीर्थ में से नित्य पानी बहता है, परन्तु यह अर्हन्महानदतीर्थ इस प्रकार का न होगा, इस शंका का निरसन स्तुतिकार करते हैं–

अर्थ——लौकिक——अन्यमतीयतीर्थ में से जलप्रवाह बहता हुआ देखा जाता है; परन्तु अर्हन्महानद के तीर्थ में से लोक तथा अलोक के स्वरूप जानने में समर्थ दिव्यज्ञानरूपी जल का प्रवाह सतत बहता है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञानरूपी जलप्रवाह सतत बहता है। इस अरिहंतरूपी तीर्थ के पंचव्रतसमूह और अट्ठारह हजार शीलरूपी दो सुंदर और स्वच्छ किनारे हैं। तात्पर्य——तीर्थ

में जलप्रवाह बहता है। यहाँ भी जीवादि पदार्थों को जानने वाला ज्ञानरूपी जल प्रवाह है। तीर्थ को दो किनारों से शोभा आती है। अरिहंत के तीर्थ को व्रत और शील ये दो तट हैं। अतः अर्हत् तीर्थ सुन्दर दिखाई देता है। यही साम्य इन दो तीर्थों में हैं।।२४।।

ननु तीर्थं राजहंसैर्मनोज्ञघोषेण, सिकतासमूहेन च शोभां विभर्ति न चेदं तथा भविष्यतीत्याह—

शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्तिसिकतासुभगम्।।२५।।

शुक्लध्यानेत्यादि—शुक्लध्यानान्येव स्तिमितं स्थिरं यथाभवत्येवं स्थिता राजन्तः शोभमाना राजहंसा गणधरदेवादयस्तैराजितं शोभितम्। असकृत् सर्वदा। स्वाध्यायमन्द्रघोषं शोभनो लाभपूजाख्यातिवर्जितः आध्यायः पाठः स्वाध्यायः स एव मन्द्रो मनोज्ञो घोषो नादो यत्र। नानागुणाश्चतुरशीतिलक्षगुणास्ते च समितयश्च पञ्च, गुप्तयश्च तिस्रः ता एव सिकतास्ताभिः सुभगं मनोज्ञम्।।२५।।

तीर्थ के दो किनारे राजहंस पक्षियों से, मधुर शब्दों से तथा बारीक बालुका समूह से सुन्दर दिखते हैं। ऐसी शोभा इस अर्हन् तीर्थ में नहीं होगी, इस शंका का निरसन स्तुतिकार आगे के श्लोक में करते हैं।

अर्थ—इस अरहंतरूपी महानद–तीर्थ के दो तट शुक्लध्यानरूपी स्थिर तथा सुन्दर राजहंसों से अतिशय शोभा को प्राप्त हुए हैं। लाभ, आदर, सत्कार तथा ख्याति का उद्देश्य जिनके मन में नहीं है और जो आत्म–कल्याण का हेतु केवल धारण करके स्वाध्याय करते हैं, ऐसे मुनियों के मधुर शब्दों से इस तीर्थ के किनारे शोभा को प्राप्त हुए हैं। चौरासी लाख उत्तरगुण, पांच समिति, तीन गुप्तिरूपी सिकतासमूह के प्रदेश से इस तीर्थ के किनारे सुन्दर दिखते हैं।

अथोच्यते तीर्थमावर्तपुष्पितलतातरङ्गोपेतं भवति तदुपेतत्वं चात्र न भविष्यतीत्यत्राह–

क्षान्त्यावर्तसहस्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम्।
दुःसहपरीषहाख्य - द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम्।।२६।।

क्षान्त्यावर्तेत्यादि–क्षान्तयः क्षमाः सहिष्णुतास्ता एव आवर्त–सहस्राणि यत्र। सर्वदया–विकचकुसुमविलसल्लतिकम्—सर्वेषु प्राणिषु दया सर्वदया सैव विकचकुसुमविल–सल्लतिका यत्र विकचानि विकसितानि च तानि कुसुमानि च तैर्विलसन्त्यश्च ता लतिकाश्च। दुस्सहपरीषहाख्यद्रुततररङ्गत्तरङ्गभङ्गुरनिकरम्—दुःखेन महता कष्टेन सह्यन्ते इति दुःसहाः ते च ते परीषहाख्याश्च परीषह इत्याख्या सज्ञा येषां क्षुत्पिपासादीनां त एव द्रुततराः शीघ्रतराः रङ्गत्तरङ्गा रङ्गन्तस्तिर्यक्प्रसरन्तस्ते च ते तरङ्गाश्च तेषां भङ्गुरो निकरः सङ्घातो यत्र।।२६।।

तीर्थ में भ्रम, पुष्पलता और तरंग होने से उसकी शोभा बढ़ती है। परन्तु अरिहंत के तीर्थ में इनका अभाव होगा, ऐसी शंका का परिहार–

अर्थ——यह अर्हत्तीर्थ क्षमारूपी सहस्रों भंवरों से युक्त हैं। सर्वप्राणियों पर दयारूपी पुष्पलतायें इस तीर्थ में हैं और ये पुष्पलताएँ विकसित पुष्पों से सुन्दर दिखती हैं। तथा जिनको सहन करना कठिन है, ऐसी क्षुधादि परिषहरूपी तरङ्गें बार–बार यहाँ उत्पन्न होती हैं तथा नष्ट होती हैं, ऐसा यह तीर्थ है।।२६।।

ननु फेनशैवलकर्दममकरविवर्जितं तीर्थं भवति सेव्यमिदं च तद्विवर्जितं न भविष्यतीत्याह–

व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम्।।२७।।

व्यपगतेत्यादि–व्यपगतकषायफेनम्–कषाया एव फेनः स्वच्छात्मस्वरूपस्य कालुष्य–हेतुत्वात्। विशेषेण अपगतो नष्टः स यत्र यस्माद्वा। रागद्वेषादिदोषशैवलरहितम्। रागद्वेषौ आदिर्येषां मोहादीनां ते च ते दोषाश्च त एव शैवलो व्रतिनां पातनहेतुत्वात् । स्वच्छात्मस्वरूप–जलस्य कालुष्यकारणत्वाच्च, तै रहितम्। अत्यस्तमोहकर्दमम् अत्यस्तो मोह एव कर्दमः स्वपरपरिच्छेदकस्य जीवस्वरूपस्वच्छजलस्य व्यामोहलक्षणकालुष्य–कारणत्वात्। अत्यस्तो मोहकर्दमो येन स अत्यस्तमोहकर्दमः। अतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् मकराणां प्रकरोऽविच्छिन्नसन्ततिविशेषो मरणान्येव मकरप्रकरः शरीराद्यपायहेतुत्वात् अतिदूरं निरस्तो निक्षिप्तो मरणमकरप्रकारो निर्वाणप्राप्तिहेतुत्वात् येन तत्तथोक्तम्।।२७।।

फेन, शैवाल, कीचड़ तथा मगरादि जलचरों का लौकिक तीर्थ में अभाव है। परन्तु उपर्युक्त पदार्थ अर्हत्तीर्थ में है या नहीं, इस प्रकार की शंका का समाधान–

अर्थ——इस अर्हत्तीर्थ में कषायरूपी फेन नहीं है। कारण यह कषायफेन आत्मा के निर्मलस्वरूप में निर्मलता नहीं रहने देता। अतः यह अर्हत्तीर्थ कषायफेन से रहित है। राग, द्वेष, लोभ, मोहादिक दोष रूपी शैवाल——काई भी इस अर्हत्तीर्थ में नहीं है। वह यदि होती तो यहाँ स्नान करने के लिये आने वाले मनुष्यों के चरण फिसल कर गिर जायेंगे। पानी में जब काई उत्पन्न होती है, तब उसकी स्वच्छता नष्ट होती है और वह कलुषित होता है। इस अर्हत्तीर्थ में रागद्वेषादिरूप काई यदि होती तो व्रती–लोगों का आत्मस्वरूप से पतन होता और आत्मस्वरूप का जल रागद्वेषादिरूप काई से बिगड़ जाता। इस अर्हत्तीर्थ में मोहरूपी कीचड़ नहीं है। यदि वह इसमें होता तो आत्मारूपी पानी गंदा हो जाता। पानी में जब कीचड़ प्रगट होती है, तब उसकी स्वच्छता रहती नहीं तथा उसमें स्थित पदार्थ भी स्पष्टता से दृग्गोचर नहीं होते। आत्मस्वरूप के जल में मोह की कीचड जब तक पैदा नहीं होती, तब तक वह स्वच्छ रहता है। तथा उसमें जो पदार्थ होते हैं वे भी स्वच्छ दिखते हैं। अर्थात् मोहरहित आत्मा स्वस्वरूप तथा परस्वरूप अच्छी तरह देखता है। मोह के सद्भाव में वह स्वपरवस्तु स्वरूप देखने में

असमर्थ होता है। यह अर्हत्तीर्थ जन्म–मरणरूपी मगरमच्छादि जलचरों से रहित ही है, जिनके अभाव में यह अर्हत्तीर्थ मोक्षप्राप्ति कराने में साधनभूत हुआ है।।२७।।

अथोच्यते तीर्थमनेकप्रकारपक्षिशब्दपुलिनजलावरोधजलनिर्गमधर्मैरुपेतां शोभां बिभर्ति, इदं तु तथा न भविष्यतीत्यत्राह–

ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रोद्रे-कितनिर्घोष-विविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्रवसंवरनिर्जरानिःस्रवणं।।२८।।

ऋषिवृषभेत्यादि–ऋषीणां वृभषा गणधरदेवादयः, स्तुतिस्वरूपाणि मनोज्ञानि उद्रेकितानि उत्कटशब्दितानि तानि च निर्घोषाश्च शास्त्रपाठाः स्तुतिमन्द्रोद्रेकितनिर्घोषाः, ऋषिवृषभाणां स्तुतिमन्द्रोद्रेकित–निर्घोषास्त एवं विविधा नानाप्रकारा विहगध्वानाः पक्षिशब्दा यत्र। विविधतपोनिधिपुलिनम् विविधानि बहुप्रकाराणि तपांसि निधीयन्ते येषु ते विविधतपोनिधयो मुनिवरास्त एव पुलिनं संसारसरित्प्रवाहे प्रवहतां तदुत्तरणस्थानं यत्र। सास्रवसंवरण–निर्जरानिःस्रवणम् आस्रवणमास्रवः कर्मणामागमनम् , तस्य संवरणं निवारणं यथा प्रविशतो जलस्यावरोध इति। निर्जरा उपात्तकर्मणां निर्जरणं सैव निःस्रवणं यथा उपात्तजलस्य निर्गम इति। आस्रवसंवरणं च निर्जरानिस्रवणं च ताभ्यां सह वर्तते इति सास्रवसंवरण–निर्जरानिःस्रवणम्।।२८।।

लौकिकतीर्थ अनेक पक्षियों के शब्दों से शब्दमय होता है; वह बालुकामय प्रदेश, जलसंचय तथा जल निकलने के द्वार से युक्त होता है। परन्तु अर्हत्तीर्थ वैसा नहीं होता, इस शंका का उत्तर आचार्य देते हैं—

अर्थ—यह अर्हत्तीर्थ गणधरादि श्रेष्ठ मुनियों की मधुर स्तुति, तथा शास्त्रपठनरूप नाना पक्षियों के शब्दों से युक्त हैं। अन्यमतियों के तीर्थों पर नानाविध पक्षियों की ध्वनि सुनी जाती हैं। अर्हत्तीर्थ में स्तुति तथा शास्त्र पठन के शब्द सुने जाते हैं।

यदि नदी में बहते हुए मनुष्य को बालुका प्रदेश नदी से उत्तीर्ण होने का स्थान है, वैसे अर्हत्तीर्थ में अनेक प्रकार के अनशन, अवमोदर्य आदि तपश्चरण करने वाले मुनिजन ही बालुका प्रदेशस्वरूप हैं और वे संसार–नदी के प्रवाह में बहते मनुष्य को पार लगाने के लिए बालुका प्रदेश के समान हैं। जैसे दूसरे तीर्थों में पानी अधिक नहीं आवे, इसलिए उसको प्रतिबंध करते हैं तथा अधिक पानी आ गया तो उसे निकालने की भी व्यवस्था की जाती है। वैसे अर्हत्तीर्थ भी कर्मों को जीव में आने में प्रतिबन्ध करता है और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है। अर्थात् पूर्वबद्ध कर्मों को वह आत्मा में से निकाल देता है। इस प्रकार इस अर्हत्तीर्थ का अन्यतीर्थों के साथ विलक्षण सादृश्य होने पर भी सर्व तीर्थों की अपेक्षा से यह अत्यन्त श्रेष्ठ है और यही प्राणिमात्रों का निःसंशय कल्याण करने वाला है।

गणधरचक्रधरेन्द्र- प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैःपुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम्।।२९।।

गणधरेत्यादि तदित्थम्भूतं तीर्थं पुरुषैर्बहुभिः स्नातं स्नान्त्यस्मिन्निति स्नातं स्नानस्थानम्। किंविशिष्टैस्तैः? गणधरचक्रधरेन्द्र-प्रभृतिमहाभव्यपुण्डरीकैः गणधराश्च चक्रधराश्च इन्द्राश्च ते प्रभृतय आद्या येषां ते च ते महान्तश्च ते भव्यपुण्डरीकाश्च भव्यानां प्रधानाः यदि वा महाभव्याश्च ते पुण्डरीकाश्चेति विग्रहस्तैः। कया स्नातं? भक्त्या । किमर्थं? कलिकलुषमलापकर्षणार्थम्। कलौ दुष्षमकाले कलुषं कर्म यदुपार्जितं तदेव मलं आत्मस्वरूपप्रच्छादकत्वात्तस्यापकर्षणार्थं स्फेटनार्थम् अमेयं महत्।।२९।।

अर्थ–भव्यों में अतिशय श्रेष्ठ ऐसे गणधर, चक्रधर, देवेन्द्र आदि बहुत पुरुषपुंगव जन्म जन्म में संचित किये कर्मरूपीमल का नाश करने के लिये इस महान् अर्हत्तीर्थ में भक्ति में स्नान करते हैं।

अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

तत्तीर्थं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दुस्तरमनवगात्ह्यपारं (गाह्यपारं) तच्च तत् समस्तं च निरवशेषं दुरितं कर्म, दूरमपुनरावृत्तं यथा भवत्येवं। व्यपहरतु विशेषेण निर्मूलतोऽपहरतु स्फेटयतु। किंविशिष्टस्य मम? अवतीर्णवतः तीर्थे अनुप्रविष्टस्य। किमर्थम् ? स्नातुं कर्ममलं प्रक्षालयितुम् । किंविशिष्टं तीर्थम् ? परमपावनं परमं सर्वाधिनायकत्वात्। पावनं सर्वदोषापहारकत्वात्। अनन्यजय्यस्वभाव-भावगभीरम्–अन्यैः परवादिभिः जेतुं शक्या अन्यजय्या न अन्यजय्या अनन्यजय्याः स्वभावाः स्वरूपाणि येषां ते च ते भावाश्च जीवादयः तैः गभीरमगाधम्।।३०।।

अर्थ—यह अर्हत्तीर्थ सर्व तीर्थों में श्रेष्ठ है तथा सर्वदोषों को नष्ट करता है। परवादीगण जिनका खण्डन नहीं कर सकते ऐसे अनेकान्तजीवादि पदार्थों से यह तीर्थ अतिशय गंभीर है। अर्थात् जीवादि पदार्थों का स्वभाव–वर्णन इस अर्हत्तीर्थ में ही निर्दोष लिखा हुआ दिखेगा। वह अन्यत्र नहीं दिखेगा। ऐसे इस पवित्र अर्हत्तीर्थ में स्नान के लिए उतरे हुए मेरे अनंत पातक नष्ट होवे।।३०।।

पृथ्वी छंद

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात् ,
कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकतः।।
विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम्।।३१।।

अताम्रेत्याह–जिनेन्द्र तव रूपं पुनात्विति सम्बन्धः। यत्र रूपे मुखं कथयतीव प्रकटयतीव। ते तव हृदयशुद्धिं हृदयं चित्तं ज्ञानमित्यर्थः तस्य शुद्धिं निर्मलतां प्रतिबन्धकहानिं किंविशिष्टां?

आत्यन्तिकीम्–अन्तमतिक्रान्तः कालः अत्यन्तः तस्मिन्भवाम्। क्षायिकत्वे हि तद्विशुद्धेर्न कदाचिदन्तो भवतीति। कथम्भूतं मुखम् ? अताम्रनयनोत्पलम्–ईषत्ताम्रे अताम्रे ते च ते नयने च त एव उत्पले यत्र, उत्पल–शब्देनात्र उत्पलपत्रे गृत्द्येते समुदायेषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेषु अपि वर्तन्ते इत्यभिधानात्। कोपावेशात्ते ताम्रे भविष्यत इत्यत्राह–सकल कोपवह्नेर्जयात् सकलो अनन्तानुबन्ध्यादिभेदभिन्नः स चासौ कोप एव वहिनः सन्तापहेतुत्वात् तस्य जयात् क्षयकरणात्। पुनरपि कथम्भूतम् ? कटाक्षशरमोक्षहीनम्–कामोद्रेकादिष्टे प्राणिनि तिर्यग्दृष्टिपातः कटाक्षः स एव शरो मर्मवेधित्वात् तस्य मोक्षो मोचनं तेन हीनं कुतः? अविकारतोद्रेकतः अविकारता वीतरागता तस्या उद्रेकतः परमप्रकर्षं प्राप्तत्वात् । पुनरपि किंविशिष्टम्—प्रहसितायमानं सदा प्रहसितमिव आत्मानं आचरति इति प्रहसितायमानं सदा सर्वकालम्। कुतः? विषादमदहानितः विषादान्मदाच्च कदाचिदप्रसन्नता मुखे भवति तु तयोरत्यन्तप्रक्षयतस्तन्मुखस्य सर्वदा प्रसन्नतोपपत्तेः प्रहसितायमानं सदेत्युच्यते।।३१।।

अब यहाँ से पाँच श्लोकों में जिनेश्वर के रूप का ग्रंथकार वर्णन करते हैं—

अर्थ—हे जिनेश ! आपके कमलदलतुल्य तथा किंचित् ताम्रनेत्र अतिशय मनोहर दिखते हैं। ये आपके क्रोध से ताम्र हुए होंगे ऐसा किसी के मन में प्रतिभास हो सकेगा। परन्तु वह प्रतिभास बिल्कुल अनुचित है; क्योंकि आपने अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान तथा संज्वलनरूप चार प्रकार के क्रोधरूप अग्नि का आपने नाश किया है। अतः क्रोध से आपके नेत्र लाल नहीं हुए हैं, ऐसा सिद्ध हो गया। अर्थात् आपके नेत्र नैसर्गिकता से ही किंचित् लाल हैं। हे प्रभो, आप कटाक्षरूप बाण से रहित हैं, क्योंकि आपमें राग–भाव बिलकुल नहीं है। आप में वीतरागता पूर्णतया प्रगट हुई है। राग और काम का उद्रेक होने से मनुष्य अपनी प्रियतमा को तिरछी नजर से देखता है। आपमें सराग भाव नहीं है, खेद और उन्मत्तपना उत्पन्न होने से मुख पर प्रसन्नता का भाव लुप्त होता है। परन्तु आप में ये दोनों भाव नहीं है। अतः आपका मुख सदैव प्रसन्न ही रहता है। विषाद और मद का आपने पूर्णनाश किया है अतः उनका लेश भी आपमें नहीं रहा है। अतः आपका मुख कभी भी अप्रसन्न नहीं रहता है। आपका अत्यन्त प्रसन्न मुख, आपका अन्तःकरण पूर्ण निर्मल हुआ है ऐसी सूचना करता है। तथा आपका ज्ञान पूर्ण दशा को प्राप्त हुआ है इसकी भी सूचना देता है।।३१।।

निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात्।।३२।।

पुनरपि कथम्भूतं रूपम्? निराभरणभासुरं आभरणेभ्यो निष्क्रान्तं निराभरणं। तच्च तद्भासुरं च भासनशीलं परमशोभासमन्वितम्। आभरणशोभामपि कुतस्तन्न करोति चेत्

विगतरागवेगोदयात् रागस्य वेग आवेशस्तस्योदयो विशेषेण गतो नष्टः स चासौ रागवेगोदयश्च त स्मान्निरम्बरमनोहरम्। अंबरेभ्यो वस्त्रेभ्यो निःक्रान्तं निरम्बरं तच्च तन्मनोहरं च मनोज्ञम्। कस्मात्तदम्बराण्यपि नादत्ते इत्याह प्रकृतिरूप–निर्दोषतः।

प्रकृतिरूपं सहजरूपं तत्र निर्दोषतो रागादिदोषासम्भवात् अनेन विशेषणद्वयेन श्वेतपटा भगवतः कुण्डलाद्याभरणं देवाङ्गवस्त्रादि परिधानं च परिकल्पयन्तः प्रत्युक्ताः। ननु निर्दोषत्वेऽपि लज्जाप्रच्छादनार्थं वस्त्रग्रहणं भगवतो न विरुद्धमित्यप्यनुपपन्नम् । लज्जाया एव दोषत्वात् । प्रक्षीणमोहे भगवति मोहविशेषात्मिकाया लज्जाया असम्भवाच्च। पुनरपि कथम्भूतं निरायुधसुनिर्भयम् आयुधं प्रहरणं तस्मान्निष्क्रान्तं तद्वा निष्क्रान्तं यस्मात् तन्निरायुधं इत्थम्भूतमपि सुनिर्भयम् । भयान्निष्क्रान्तं भयं वा निष्क्रान्तं यस्मात् निर्भयं सुष्ठु निर्भयं सुनिर्भयं। कुतः विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्। हिंस्यश्च हिंसा च तयोः क्रमोऽनुपरिपाटी। विशेषेण गतो नष्टः स चासौ हिंस्यहिंसाक्रमश्च वध्यवधकक्रमः। यदि हि भगवता कस्यचित् हिंस्यस्य हिंसा विधीयते तदा तेनापि भगवतः सा विधीयते इति हिंस्यहिंसाक्रमः स्यात् । न च भगवता कस्यचित्सा विधीयते परमकारुणिकत्वात्। पुनरपि किंविशिष्टं तव रूपम् ? निरामिषसुतृप्तिमत् आमिषादाहारात् निष्क्रान्तं निरामिषम्। तदित्थम्भूतमपि सुतृप्तिमत् शोभना इतरप्राणितृप्तिभ्यो विलक्षणा कवलाहाररहिता तृप्तिः सुतृप्तिः सा विद्यते यत्र तत्तद्वत् । कुतः विविधवेदनानां क्षयात् विविधा नानाप्रकाराः क्षुत्पिपासादिजनिता वेदनाः पीडाः तासां क्षयादभावात्।।३२।।

अर्थ—श्रीजिनेश्वर का रूप आभूषणों के बिना ही अत्यन्त सुन्दर दिखता है। श्री जिनेश्वर अपना देह अलंकारों से क्यों नहीं सजाते, इस प्रश्न का उत्तर यह है—उन्होंने रागभाव का मूलतः नाश किया है। मन में जब रागभाव उत्पन्न होता तब मानव अपना शरीर अलंकारों से भूषित करता है तथा अपने पास सुन्दर पदार्थ रखने की इच्छा उसे होती है। परन्तु जिन्होंने रागभाव का विनाश किया हैं उनके मन में ऐसे विचार कभी भी उत्पन्न नहीं होते। जिनेश्वर का स्वरूप वस्त्र के अभाव में भी अतिशय मनोहर दिखता है। उनको वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं थी। वे रागादि दोषों से रहित थे। अतः अपना शरीर कपड़ों से सजाने के स्वप्न में भी कभी उनको इच्छा नहीं थी। श्वेताम्बरजन भगवान जिनेश्वर को कुण्डल हार आदि आभरणों से तथा रेशमी वस्त्रों से सजाते हैं। परन्तु यह उनका सजाने का कार्य अनुचित है। ये उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है। कदाचित् निर्दोष होते हुए भी भगवान् लज्जा से अपने अंग पर वस्त्र धारण करते हैं ऐसा कथन भी योग्य नहीं हैं। क्योंकि लज्जा भी दोष ही है। जिनेश्वर ने मोहकर्म का पूर्ण नाश किया है और लज्जा भी मोहकर्म का ही एक भेद है। अर्थात् वह भी मोह के नाश से ही नष्ट हो गई है। इसलिये लज्जा से जिनेश्वर वस्त्र धारण करते हैं, यह कहना भी

योग्य नहीं है। जिनेश्वर ने अपने पास एक भी शस्त्र नहीं रखा है। अतएव वे निर्भय हैं। इसका कारण यह है कि वे किसी का भी घात नहीं करते हैं। यदि किसी का घात किया होता तो वह भी जिनेश्वर का घात करता। जिनेश्वर अतिशय दयालु होने से अपने पास शस्त्र रखने की उनको आवश्यकता ही नहीं है। तथा जिनेश्वर आहार भी ग्रहण नहीं करते हैं। तो भी उनको जो तृप्ति होती है वैसी अन्य को नहीं होती। उनको ऐसी लोकोत्तर तृप्ति होने का कारण यह है कि उन्होंने भूख, तृष्णा आदि दुःखों का पूर्ण विनाश किया है।।३२।।

मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचन्दन - प्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादि - दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुर - मपीक्षणानां प्रियम्।।३३।।

मितस्थितेत्यादि——अङ्गं शरीरं तत्र जाता अङ्गजाः केशाः। मिताः परिमिताः वृद्धिरहिताः स्थिता नखा अङ्गजाश्च यत्र। यत्समये हि केवलज्ञानमुत्पन्नं भगवतस्तत्समये यावत्परिमाणा नखाः केशाश्च अग्रेऽपि तत्परिमाणा एव तिष्ठन्ति। न पुनर्वर्द्धन्ते। गतरजोमलस्पर्शनम् । रजः पांसुः तदेव मलं तेन स्पर्शनं सम्बन्धो गतं नष्टं रजोमलस्पर्शनं यत्र। नवाम्बुरुहचन्दनप्रतिम–दिव्यगन्धोदयम्–नवं प्रत्यग्र विकसितं तच्च तदम्बुरुहं च, अम्बु पानीयं तत्र रोहति। प्रादुर्भवति इत्यम्बुरुहं कमलं तच्च चन्दनं च ताभ्यां प्रतिमः सदृशः दिव्यो अन्यजन्यशरीरासम्भवी यो गन्धस्तस्योदयः प्रादुर्भावो यत्र। रवीन्दुकुलिशादिपुण्यबहुलक्षणा–लङ्कृतम्–रविरादित्य इन्दुश्चन्द्रः कुलिशं वज्रमेतान्यादिर्येषां तानि च तानि पुण्यानि च प्रशस्तानि च बहूनि च अष्टोत्तरशतसङ्ख्यानि लक्षणानि च तैरलङ्कृतं भूषितम्। दिवाकरसहस्त्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम्–दिवाकराणां सहस्त्रं, तद्वद्भासुरमपि दीप्रमपि ईक्षणानां लोचनानां प्रियं वल्लभम्।।३३।।

अर्थ——जिनेश्वर को जब केवलज्ञान उत्पन्न होता है, तब उनके नख और केश जितने थे उतने ही वे रहते हैं ; उनकी वृद्धि आगे अधिक होती ही नहीं। इसका कारण यह है कि केवली भगवंत का शरीर परमौदारिक सप्तधातु रहित होता है। इसलिये नखों तथा केशों की बाढ़ होती नहीं। जिनेन्द्र के शरीर को धूली का स्पर्श होता ही नहीं। उनका शरीर दर्पणतुल्य निर्मल होता है। सद्यः विकसित कमल तथा नव चन्दन के समान उनके अंग का दिव्यगंध प्रकट होता है। किसी भी मनुष्य का शरीर प्रभु के शरीर समान सुगन्धित नहीं होता है। सूर्य, चन्द्र, वज्र आदिक दिव्य और उत्तम १००८ शुभ लक्षणों से प्रभु का देह अलङ्कृत होता है। तथा सहस्त्रों सूर्यों से भी अधिक दैदीप्यमान होकर भी प्रभु का देह लोगों के लोचनों को प्रिय आल्हादित करने वाला होता है।।३३।।

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः।
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्धयते।।

सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः।
शरद्विमलचन्द्रमंडल - मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

हितायेत्यादि——यद्रूपं अभि अभिमुखं समन्ताद्वा वीक्ष्य विलोक्य, शोशुध्यते अतिशयेन शुद्धो भवति। कोऽसौ ? जनः। कथम्भूतः? कलङ्कितमनाः कलङ्कितं मलिनीकृतं मनो यस्य। कैः ? प्रबलरागमोहादिभिः प्रकृष्टं बलं सामर्थ्यं येषां ते प्रबला रागश्च मोहश्च तौ आदिर्येषां द्वेषादीनां, प्रबलाश्च ते रागमोहादयश्च तैः। कथम्भूतैः? हितार्थपरिपन्थिभिः हितश्चासौ अर्थश्च मोक्षस्तस्य परिपन्थिनोऽपहारिणश्चौरा इत्यर्थः तैः। सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतःसदा सर्वदा अभिमुखं एव सम्मुखेव कथं ? सर्वतः सर्वासु दिक्षु यद्रूपं दृश्यते। केषां ? पश्यताम्। क्व? जगति। किमिव ? शरद्विमलचन्द्रमण्डलमिव शरदि शरत्काले विमलं विनष्टं घनपटलकलङ्कं तच्च तच्चन्द्रमण्डलं च चन्द्रबिम्बं तदिव उत्थितं उदितम्।।३४।।

अर्थ—जीवों का कल्याण मोक्षप्राप्ति से होता है परन्तु उसकी प्राप्ति को न होने देने वाले मोहादिक शत्रु–मनोविकार बहुत शक्तिशाली हैं। उनसे मलिन मन वाले लोग प्रभु का दर्शन करके अतिशय शुद्ध हो जाते हैं। जो जीव इस जगत में सदा प्रभु का मुख देखते हैं। उनको वह प्रभु का मुख शरद् ऋतु के उदितनिर्मल पूर्ण चन्द्र मण्डल के समान दिखता है।।३४।।

तदेतदमरेश्वर - प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीय - चरणारविन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं।
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

तदेतदित्याह——तद्रूपमेतद्द्यावर्णितप्रकारम् । अमराणामीश्वरा इन्द्राः यदि वा अमरा देवा ईश्वरा देवेन्द्रधरणेन्द्र–नरेन्द्राः तेषां प्रचला पुनः पुनः प्रणामपराः ते च ते मौलयश्च तेषां माला पङ्क्ति तत्र मणयः तेषां स्फुरन्तो दीप्रास्ते च ते किरणाश्च रश्मयः तैश्चुम्बनीयमाश्लेषणीयं चरणारविन्दे कमले तयोः द्वयं। पुनातु पवित्रीकरोतु। तव रूपं हि जिनेन्द्रभगवन् केवलज्ञान–सम्पन्न, यदि वा पूज्य। किं तत्पुनातु? जगत्सकलम्। किंविशिष्टं? अन्धीकृतं विवेकपराङ्मुखी–कृतम्। कैः? अन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः जैनतीर्थादन्यत्तीर्थं मतं येषां ते अन्यतीर्था आप्ताभिमानिनो मिथ्यादृष्टयः तेभ्यो गुरुरूपाणां बृहत्स्वरूपाणां दोषाणां रागद्वेषमोहानां ये उदयाः प्रादुर्भावास्तैः।।३५।।

अर्थ——हे केवलज्ञानसंपन्न इन्द्रादिपूज्य जिनेश्वर! यह संपूर्ण विश्व अन्यमतीय मिथ्यादृष्टि लोगों से फैलाये गये रागद्वेषमोहादिकविकारों से अन्ध बन गया है। इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती नमस्कार करते समय उनके मुकुट स्थित मणियों से स्फुरित किरणों से हे प्रभो! आपके दोनों चरण कमल आश्लिष्ट हुए हैं। वे ऐसे मिथ्यामत से अंधे हुए सर्व जगत को पवित्र करे।

तात्पर्य——राग, द्वेष मोहादिविकारों का नाश होकर सर्वत्र जैनधर्म का प्रसार हो, जिससे जनता का सच्चा हित हो सके।।३५।।

—आलोचना या अंचलिका—

इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमा-किट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसियकप्पवासियंति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

अंचलिका की संस्कृत एवं हिन्दी टीका

अथ इच्छामि भंते भगवन् अहं इच्छामि अभिलषामि। किं कर्तुं ? चेइयभत्तिकाउस्सगो कओ तस्सालोचेउं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गो यो मया कृतः तमालोचयितुम्। वर्तमानदोषनिराकरणार्थमित्यर्थः।

अहलोयतिरियलोये उड्ढलोयम्मि अधोलोकतिर्यक्लोकोर्ध्वलोकेषु। किट्टिमाकिट्टिमाणि कृत्रिमाकृत्रिमाणि। शाश्वताशाश्वतानि तानि यानि जिनचेइयाणि जिनचेइयाणि जिनचैत्यानि जिनप्रतिमाः यानि। तानि सर्वाणि तिसुवि लोएसु त्रिष्वपि लोकेषु। भवनवासियवाणविंतर-जोइसियकप्पवासियत्ति भवनवासिनोऽसुरादयः, वानव्यन्तरा वनोद्भवाः किंनरादयः, जोइसिय ज्योतिष्काः चन्द्रादयः, कप्पवासिय कल्पवासिनः सौधर्मादयः। इति चउव्विहा देवा चतुर्विधाश्च देवाश्चतुःप्रकारा देवाः अणिमाद्यष्टगुणोपेताः। कथम्भूताः सपरिवाराः पत्न्यादिसहिताः। दिव्वेहिं गंधेहिं दिव्यैः स्वर्गलोकोद्भवैः कुङ्कुमागुरुकर्पूरचन्दनादिद्रव्यैः। दिव्वेहिं पुप्फेहिं मंदारपारिजातसन्तानकादिकुसुमैः। दिव्वेहिं धूवेहिं दिव्यैर्धूपैः कृष्णागुरुदेवदारुचन्दना-दिसुगन्धद्रव्यसंजातैः। दिव्वेण चुण्णेण दिव्येन चूर्णेन। दिव्वेहिं वासेहिं दिव्यैर्वासैः कर्पूरादिकचूर्णैः। दिव्वेण ण्हाणेण दिव्येन स्नानेन क्षीरोदजलादिभिः। णिच्चकालं नित्यकालं सर्वकालं त्रिकालमित्यर्थः। अंचंति स्नपयंति। पुज्जंति पूजयन्ति। वंदंति स्तुवन्ति नमस्संति नमस्यन्ति पंचाङ्गप्रणामं कुर्वन्ति। अहमवि अहमपि इह संतो इह सन् अत्र क्षेत्रे वर्तमानः। तत्थ संताइं तत्र सन्ति पूर्वोक्तस्थानेषु वर्तमानानि। णिच्चकालं त्रिकालं अनवरतं च।

अंचेमि अर्चामि। पूजेमि पूजयामि। वंदामि स्तौमि। णमंसामि नमस्यामि प्रणिपतामि। एवंकृते सति दुक्खक्खओ शारीरमानसदुःखक्षयः, कम्मक्खओ ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मक्षयः, बोहिलाहो रत्नत्रयलाभः, सुगइगमणं मोक्षगमनं, समाहिमरणं रत्नत्रये निर्विघ्नतया अक्लीवमरणं, जिणगुणसंपत्ती जिनस्य गुणाः चतुस्त्रिंशदतिशया, अष्टमहाप्रातिहार्याणि अनन्तज्ञानादिचतुष्टयं चेत्यादयः सैव सम्पत्तिर्लक्ष्मीः। सा होउ मज्झं भवतु ममेति।।[१]

अंचलिका का अर्थ

इस प्रकार चैत्यभक्ति करने के बाद हे भगवन् ! मैंने चैत्यभक्ति का कायोत्सर्ग किया अब मैं आलोचना करने की इच्छा करता हूँ अर्थात् जो चैत्यभक्ति का कायोत्सर्ग किया है उसमें वर्तमान काल में जो दोष हुए हैं उनका निराकरण करने की मेरी इच्छा है। अर्थात् उन दोषों की मैं आलोचना करता हूँ। अधोलोक, ऊर्ध्वलोक तथा मध्यलोक में जो कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, उन सर्व मंदिरों की चतुर्णिकाय देव, असुरादिक भवनवासी, किन्नरादिक व्यंतर, चंद्र–सूर्यादिक ज्योतिष्क तथा सौधर्मादिक कल्पवासी ये सब देव मिलकर परिवार के साथ अणिमादिक आठ गुणयुक्त होकर देवांगना आदि परिवार लेकर स्वर्गलोकों का कुंकुम, अगरु, कर्पूर, चन्दन आदि पदार्थ जिसमें मिलाये हैं ऐसे दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से मंदार, पारिजात, संतानकादि दिव्यपुष्पों से, कृष्णागरु, देवदारु, चंदनादि सुगंध द्रव्यों से मिश्रित दिव्य धूप से पंचवर्णमयी माणिक्यचूर्ण से, दिव्य कर्पूरादिक वास से, कर्पूरादिक चूर्ण से, क्षीरसमुद्रादिक जलों से अभिषेक करना इत्यादिक से वे देवगण नित्यकाल अर्थात् त्रिकाल में आकर पूजते हैं, वंदन करते हैं, स्तुति करते हैं नमस्कार करते हैं। मैं भी यहाँ स्वकीय ग्रामादिक में निवास करता हुआ भी मानो ऊर्ध्वलोकादि में निवास करता हूँ। ऐसी भावना से नित्यकाल मैं त्रिकाल में अर्चन, पूजन, वंदन नमस्कार करता हूँ। जिससे मेरे दुःखों का क्षय होवे। ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों का क्षय होवे, बोधिलाभ–रत्नत्रयलाभ होवे, सुगति में गमन होवे, रत्नत्रययुक्त निर्विघ्नता से समाधिमरण प्राप्त होवे, जिनगुणों की संपत्ति की प्राप्ति होवे अर्थात् मुझे चौंतीस अतिशय, अष्टमहाप्रातिहार्य, अनन्तज्ञानादिचतुष्टय आदि की प्राप्ति होवे, ऐसी मैं इच्छा करता हूँ।

इस प्रकार श्री गौतमस्वामी ने समवसरण में विराजमान श्री महावीर स्वामी की वन्दना करके नव देवताओं की वन्दना की है पुनः अकृत्रिम–कृत्रिम जिनप्रतिमा एवं जिनालयों की वन्दना की है। यह चैत्यभक्ति नाम से प्रसिद्ध है। हम सभी दिगम्बर जैन साधु–साध्वी प्रतिदिन त्रिकाल देववन्दना—सामायिक में इस भक्ति का पाठ करते हैं।

---

१. सामायिक भाष्य पृ. १७४ से १७७ तक।

प्रथम अध्याय (चैत्यभक्ति) का सार

चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् महास्तोत्र

भगवान महावीर स्वामी का साक्षात् दर्शन कर श्री गौतमस्वामी भक्ति में गद्गद् हो '**जयति भगवान्**' शब्द का उच्चारण करके प्रभु के चरणों की वन्दना करते हुय कहते हैं–''**हेमाम्भोजप्रचार–विजृंभितौ**''

हे भगवन् ! आपके चरण कमलों के नीचे देवगण स्वर्णमयी दिव्य कमलों की रचना करते जाते हैं। इस विशेषण से केवलज्ञानी प्रभु के श्रीविहार का वैभव प्रदर्शित किया है। भगवान का श्रीविहार आकाश में अधर—पृथ्वी से पांच सौ धनुष—दो हजार हाथ ऊपर होता है। भगवान के श्रीचरणों के नीचे १२५ कमलों की रचना करते रहते हैं फिर भी भगवान उन पर भी चार अंगुल अधर ही पैर रखते हैं। यह प्रभु की गमन–विहार क्रिया स्वभाव से ही होती है न कि इच्छा से, क्योंकि प्रभु के मोहनीय कर्म का अभाव—विनाश हो जाने से उनका विहार व दिव्यध्वनि में बोलना, समवसरण में बैठना आदि क्रियायें स्वभाव से ही होती हैं।

द्वितीय चरण में—''**अमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।**''

हे भगवन् ! आपके श्रीचरणों में समस्त इंद्रगण मुकुट झुकाकर—चरणों में मस्तक रखकर नमस्कार करते हैं उस समय उनके मुकुटों में लगी हुई रत्नों की किरणें प्रभु के चरणों का स्पर्श करती हैं। इस विशेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि—प्रभु के चरणों को तीनों लोकों के सभी इन्द्र—सौ इंद्र असंख्य देवपरिवारों के साथ नमस्कार करते हैं। भगवान के चरण कमल तीनों लोकों के जीवों से वंदनीय है।

तृतीय चरण में व चतुर्थ चरण में—

''**कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणः।**
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।''

कलुषितमना मान से उन्मत्त हुये, जन्मजात, परस्पर में वैरी ऐसे मनुष्य व पशुगण सभी आपके चरणों का आश्रय लेकर वैरभाव को छोड़कर आपस में विश्वास को—परमप्रीति को प्राप्त कर लेते हैं।

इस विशेषण से भगवान के समवसरण का माहात्म्य प्रगट किया गया है।

भगवान के समवसरण में बारह सभाओं में असंख्य देव, देवियां व संख्यातों मनुष्य तथा तिर्यंच सभी परस्पर के वैरभाव को छोड़कर परमप्रीति को प्राप्त कर भगवान का दिव्य उपदेशामृत पान करते हैं। इसी हेतु से जैनशासन में सिंह और गाय एक घाट पानी पीते हुये दिखाये जाते हैं।

अनंतर श्री गौतमस्वामी ने चौथे काव्य से लेकर १० तक छह काव्यों में नवदेवों का वर्णन किया है–

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांच महापुरुष–पांच परमेष्ठी हैं। पुनश्च– जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और चैत्यालय ये चार श्री गौतमस्वामी द्वारा नमस्कार किये गये हैं।

पुनः ११ वें पद्य से लेकर १५ वें पद्य तक अकृत्रिम और कृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना की है।

अनंतर तीनों लोकों के समस्त अकृत्रिम व कृत्रिम जिनमंदिर व जिनप्रतिमाओं की वन्दना की है। इसमें चारों प्रकार के देवों के यहाँ जो तीनों लोकों में जिनमंदिर व जिनप्रतिमायें हैं, उन सभी की वन्दना के साथ–साथ मध्यलोक के कृत्रिम व अकृत्रिम जिनचैत्यों की वंदना की है अर्थात् अधोलोक के भवनवासी देवों के जिनचैत्यों की, मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनमंदिर व प्रतिमाओं की तथा मध्यलोक में ही व्यंतर व ज्योतिषी देवों के जिनबिंबों की पुनश्च वैमानिक देव—ऊर्ध्वलोक के सभी जिनमंदिरों की वंदना करके यह स्पष्ट किया है कि–जिनप्रतिमाओं की वन्दना से केवल पुण्यास्रव होता है इतना ही नहीं है प्रत्युत–''**चैत्यानां संकीर्तिः सर्वास्त्रवनिरोधिनी**'' यह जिनप्रतिमाओं की स्तुति संपूर्ण आस्रव को रोकने वाली अर्थात् पूर्ण संवर कराने वाली होवे है।

यह संपूर्ण चतुर्निकाय देवों के व मध्यलोक के चैत्य– चैत्यालयों की वंदना–पद्य १६ से २२ तक ७ पद्यों में बहुत ही सुंदर है।

अनंतर काव्य २३ से ३० तक ८ काव्यों में अर्हंतदेव को महानद–महातीर्थ बनाकर उसमें स्नान की बात कही है तथा स्वयं श्रीगौतमस्वामी ने कहा है कि हे प्रभो ! मैं इस महातीर्थ में स्नान हेतु उतरा हूँ मेरे भी समस्त दुरित–पापों को व कर्मों को दूर कीजिये।

यह प्रकरण बहुत रोचक है।

पुनश्च काव्य ३१ से ३५ तक ५ काव्यों में भगवान की वीतराग मुद्रा का बहुत ही विशेष वर्णन किया है।

अनंतर अंचलिका में संपूर्ण कृत्रिम–अकृत्रिम जिनचैत्य, चैत्यालयों की वंदना की है।

भावार्थ—इस प्रकार संक्षेप में इस चैत्यभक्ति में नवदेवों की वन्दना, कृत्रिम–अकृत्रिम जिनचैत्यालयों की विशेष वन्दना व अर्हंतरूपी महातीर्थ में अवगाहन–स्नान की बातें कही गई हैं। संक्षेप से समय के अनुसार इनका विवेचन करना चाहिए।

तीन लोक मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यसंबंधि–अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुजिनधर्मजिनागम-जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः।

तीन लोक के अकृत्रिम जिनमंदिर

अधोलोक में खरभाग–पंकभाग में भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख (७,७२०००००) जिनमंदिर हैं।

मध्यलोक में जंबूद्वीप आदि से रुचकवर नाम के तेरहवें द्वीप तक चार सौ अट्ठावन (४५८) जिनमंदिर हैं।

ऊर्ध्वलोक में सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि अनुत्तर तक चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस (८४,९७,०२३) जिनमंदिर हैं।

इन तीनों लोकों के जिनमंदिरों की संख्या आठ करोड़, छप्पन लाख, सत्तानवे हजार, चार सौ इक्यासी है। (८,५६,९७,४८१) हैं।

प्रत्येक अकृत्रिम जिनमंदिर में १०८ प्रतिमायें होती हैं, अतः—८,५६,९७,४८१ × १०८ = ९२५,५३,२७,९४८ जिनप्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे।

व्यंतर देवों के भवन अधोलोक में असंख्यातों हैं व मध्यलोक में भवनपुर, आवास भी असंख्यातों हैं। सभी में जिनमंदिर हैं।

ज्योतिर्वासी सूर्य, चंद्रमा आदि भी मध्यलोक में असंख्यात द्वीप–समुद्रों तक अंसख्यातों हैं। इन सभी में अकृत्रिम जिनमंदिर भी असंख्यातों हैं उनमें १०८–१०८ प्रतिमायें भी असंख्यातों हैं।

इसी प्रकार मध्यलोक में भवनवासी देवों के भवनपुर, आवास भी असंख्यातों हैं। इन सभी के अकृत्रिम जिनमंदिर, जिनप्रतिमाओं को नमस्कार होवे।

मध्यलोक में ढाई द्वीप तक देव, मनुष्य आदि द्वारा बनवाये गये अतीत, वर्तमान व भविष्यत् काल की अपेक्षा अनंतों हो जाते हैं। अतः–

–दोहा–

त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१।।

इति श्रीगौतमस्वामीप्रणीत–श्रीगौतमगणधरवाण्यां गणिनीज्ञानमती-
विरचित–अमृतवर्षिणीटीकायां मंगलाचरणसमन्वित–
चैत्यभक्तिनामा प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

समवसरण स्तोत्र

-गणिनी ज्ञानमती

–दोहा–

चिन्मय चिंतामणि प्रभो, गुण अनंत की खान।
समवसरण वैभव सकल, वह लवमात्र समान।।१।।

–शंभुछंद–

जय जय तीर्थंकर क्षेमंकर, तुम धर्म चक्र के कर्ता हो।
जय जय अनंतदर्शन सुज्ञान, सुखवीर्य चतुष्टय भर्त्ता हो।।
जय जय अनंत गुण के धारी, प्रभु तुम उपदेश सभा न्यारी।
सुरपति की आज्ञा से धनपति, रचता है त्रिभुवन मनहारी।।२।।

प्रभु समवसरण गगनांगण में, बस अधर बना महिमाशाली।
यह इंद्र नीलमणि रचित गोल, आकार बना गुणमणिमाली।।
सीढ़ी इक एक हाथ ऊँची, चौड़ी सब बीस हजार बनी।
नर बाल वृद्ध लूले लंगड़े, चढ़ जाते सब अतिशायि घनी।।३।।

पहला परकोटा धूलिसाल, बहुवर्ण रत्न निर्मित सुंदर।
कहिं पद्मराग कहिं मरकतमणि, कहिं इन्द्रनीलमणि से मनहर।।
इसके अभ्यंतर चारों दिश, हैं मानस्तंभ बने ऊँचे।
ये बारह योजन से दिखते[१], जिनवर से द्विदश गुण ऊँचे।।४।।

इनमें चारों दिश जिनप्रतिमा उनको सुरपति नरपति यजते।
ये सार्थक नाम धरें दर्शन से, मानी मान गलित करते।।
इस समवसरण के चार कोट, अरु पाँच वेदिकायें ऊँची।
इनके अंतर में आठ भूमि फिर प्रभु की गंधकुटी ऊँची।५।।

इस धूलिसाल अभ्यंतर में है भूमि चैत्यप्रासाद प्रथम।
एकेक जैन मंदिर अंतर से, पाँच पाँच प्रासाद सुगम।।
चारों गलियों में उभय तरफ दो दोय नाट्याशालायें हैं।
अभिनय करतीं जिनगुण गातीं, सुर भवनवासि कन्यायें हैं।।६।।

फिर वेदी वेढ़ रही ऊँची, गोपुर द्वारों से युक्त वहाँ।
द्वारों पर मंगलद्रव्य निधी, ध्वज तोरण घंटा ध्वनी महा।।

---

१. हरिवंशपुराण।

फिर आगे खाई स्वच्छ नीर से, भरी दूसरी भूमी है।
फूले कुवलय कमलों से युत, हंसों के कलरव की ध्वनि है।।७।।

फिर दूजी वेदी के आगे, तीजी है लताभूमि सुन्दर।
बहुरंग बिरंगे पुष्प खिले, जो पुष्पवृष्टि करते मनहर।।
फिर दूजा कोट बना स्वर्णिम, गोपुर द्वारों से मन हरता।
नवनिधि मंगल घट धूप घटों, युत में प्रवेश करती जनता।।८।।

आगे उद्यान भूमि चौथी, चारों दिश बने बगीचे हैं।
क्रम से अशोक वन सप्तपर्ण, चंपक अरु आम्र तरु के हैं।।
प्रत्येक दिशा में एक एक, तरु चैत्यवृक्ष अतिशय ऊँचे।
इनमें जिन प्रतिमा प्रातिहार्ययुत, चार चार मणिमय दीखें।।९।।

इसके आगे वेदी सुन्दर, फिर ध्वजाभूमि ध्वज से शोभे।
फिर रजतवर्णमय परकोटा, गोपुर द्वारों से युत शोभे।।
फिर कल्पवृक्ष भूमी छट्ठी, दशविध के कल्पवृक्ष इसमें।
प्रतिदिश सिद्धार्थ वृक्ष चारों हैं, सिद्धों की प्रतिमा उनमें।।१०।।

चौथी वेदी के बाद भवन, भूमी सप्तमि के उभय तरफ।
नव नव स्तूप रत्न निर्मित, उनमें जिनवर प्रतिमा सुखप्रद।।
परकोटा स्फटिकमयी चौथा, मरकत मणि गोपुर से सुन्दर।
उस आगे श्रीमंडप भूमी, बारह कोठों से जनमनहर।।११।।

फिर पंचम वेदी के आगे, त्रय कटनी सुन्दर दिखती हैं।
पहली कटनी पर यक्ष शीश पर, धर्मचक्र चारों दिश हैं।।
दूजी कटनी पर आठ महाध्वज, नवविधि मंगल द्रव्य धरे।
तीजी कटनी पर गंधकुटी पर, जिनवर दर्शन पाप हरें।।१२।।

जय जय जिनवर सिंहासन पर, चतुरंगुल अधर विराज रहे।
जय जय जिनवर की दिव्यध्वनी, सुनकर सब भविजन तृप्त भये।।
सब जातविरोधी प्राणीगण, आपस में मैत्री भाव धरें।
जो वंदे ध्यावें गुण गावें, वे ज्ञानमती कैवल्य करें।।१३।।

–दोहा–

चतुर्मुखी ब्रह्मा तुम्हीं, ज्ञान व्याप्त जग विष्णु।
देवों के भी देव हो, महादेव अरि जिष्णु।।१४।।

श्री महावीर स्तोत्र

-गणिनी ज्ञानमती

-स्रग्धरा छन्द-

श्रीमान् वीरोऽतिवीरः त्रिभुवनमहितः सौख्यराशिर्जिनेन्द्रः।
यो जातः कुंडपर्यां भविकमलरविः सोऽस्ति सिद्धार्थपुत्रः।।
आषाढ़े शुक्लषष्ठ्यां सुरनरविनुतो गर्भमायात् जनन्यां।
पित्रोः पूजां विदध्युः किल दिविजगणाः रत्नधारा ववर्षुः।।१।।

चैत्रे शुक्ले जिनेशः त्रययुतदशमे पावने जायतेस्म।
हृदयैः संगीतवाद्यैः सुरगिरिशिखरे सोऽभिषिक्तः सुराद्यैः।।
मार्गे कृष्णे दशम्यां व्रतगुणमणिभिर्भूषितो जातरूपः।
ध्याने लीनः कदाचित् समदभवकृतस्तूपसर्गस्य जेता।।२।।

राधे शुक्लादशम्यां ग्रसितकलितमाः उद्ययौ ज्ञानसूर्यः।
लोकालोकप्रकाशी ह्यनवधिकिरणैः ध्वस्तमोहांधकारः।।
कृष्णस्याद्ये दिने ते किल नभसि महावीर ! दिव्यध्वनिः स्यात्।
त्वत्स्याद्वादामृतं भोः भवगदहरणं देव ! अद्यावधीह।।३।।

ऊर्जे कृष्णे निशांते चतुरधिदशमे वासरे मुक्तिमाप्नोत्।
पावापुर्यां च वीरः सहजसुखमयः सप्तहस्तोच्छ्रितोऽसौ।।
कौमार्ये ध्वस्तमारः भुवि किल चरमस्तीर्थकृन्नाथवंशी।
स्वर्णाभो वर्धमानो हतदुरितरविः सिंहचिन्हेन ज्ञातः।।४।।

मातंगो यक्षदेवो जिनवचनरता सात्र सिद्धायिनी च।
ताभ्यां ते पादपद्मं विजितभव ! सदापूजितं विश्ववंद्यं।।
त्रैलोक्येशं जिनं त्वामहमपि सततं सन्मते ! वीर ! वंदे।
याचेऽहं तत्फलं भोः! जिनगुणभृत्संपदं देहि मह्यं।।५।।

-अनुष्टुप् छन्द-

वर्षद्वासप्ततेरायुः त्रिशलानंदनो जिनः।
भक्त्यानिशं स्तवीमि, त्वां ज्ञानमत्यै श्रियै त्वरं।।६।।

नवदेवता स्तोत्र

-गणिनी ज्ञानमती

दोहा– विश्ववंद्य नवदेवता, नवलब्धी दातार।
नमूँ नमूँ नित भक्ति से, भरूँ सुगुण भंडार।।१।।

–शंभु छंद–

जय जय अर्हंत देव जिनवर, जय जय छ्यालिस गुण के धारी।
जय समवसरण वैभव श्रीधर, जय जय अनंत गुण के धारी।।
जय जय जिनवर केवलज्ञानी, गणधर अनगार केवली सब।
जय गंधकुटी में दिव्यध्वनी, सुनते असंख्य सुर नर पशु सब।।२।।

इक सौ सत्तर जो कर्मभूमि, उनमें जिनवर होते रहते।
फिर कर्म अघाती भी हनकर, वे सिद्धिवधू वरते रहते।।
ये सिद्ध अनंतानंत हुए, हो रहे और भी होवेंगे।
जय जय सब सिद्धों की वे मुझ, सिद्धी में हेतू होवेंगे।।३।।

निज साम्य सुधारस आस्वादी, मुनिगण जहं नित्य विचरते हैं।
आचार्य प्रवर चउविध संघ के, नायक जहं मार्ग प्रवर्ते हैं।।
दीक्षा शिक्षा देकर शिष्यों पर, अनुग्रह निग्रह भी करते।
प्रायश्चित देकर शुद्ध करें, बालकवत् पोषण भी करते।।४।।

गुरु उपाध्याय मुनि अंग पूर्व, शास्त्रों का वाचन करते हैं।
चउविध संघों को यथायोग्य, श्रुत का अध्यापन करते हैं।।
मिथ्यात्व तिमिर से मार्ग भ्रष्ट, जन को सम्यक् पथ दिखलाते।
जो परम्परा से गुरुमुख से, पढ़ते वे निज निधि को पाते।।५।।

निज आत्म साधना में प्रवीण, अतिघोर तपस्या करते हैं।
वे साधू शिवमारग साधें, बहु ऋद्धि सिद्धि को वरते हैं।।
विक्रिया ऋद्धि चारण ऋद्धी, सर्वौषधि ऋद्धी धरते हैं।
अक्षीण महानस ऋद्धी से, सब जन को तर्पित करते हैं।।६।।

इन सब ही कर्मभूमियों में, जन्में ही मुनि बन सकते हैं।
फिर गगन गमन ऋद्धी बल से, सर्वत्र भ्रमण कर सकते हैं।।
वे ढाईद्वीप तक ही जाते, उससे बाहर नहिं जा सकते।
नर जन्म व मुक्ती मार्ग यहीं, यहाँ से ही सिद्धी पा सकते।।७।।

तीर्थंकर धर्मचक्रधारी, जिनधर्म प्रवर्तन करते हैं।
इन कर्मभूमियों में ही वे, शिवपथ का वर्तन करते हैं।।
जय जय इस जैनधर्म की जय, यह सार्वभौम है धर्म कहा।
सब प्राणिमात्र को अभयदान, देवे सब सुख की खान कहा।।८।।

तीर्थंकर के मुख से खिरती, वाणी सब जन कल्याणी है।
गणधर गुरु उसको धारण कर, सब ग्रंथ रचें जिनवाणी है।।
गुरु परम्परा से अब तक भी, यह सारभूत जिनवाणी है।
इसकी जो स्तुति भक्ति करे, उनके भव-भव दुख हानी है।।९।।

इस जंबूद्वीप की आठ सहस, अरु चार शतक चौबिस प्रतिमा।
उनचास सहस छह सौ चौंसठ, ये मध्यलोक की जिनप्रतिमा।।
नवसौ पचीस कोटि त्रेपन, अरु लाख सत्ताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, त्रिभुवन की मैं नित नमूँ सही।।१०।।

व्यंतर ज्योतिष के असंख्यात, जिनगृह की जिनप्रतिमाएं हैं।
प्रति जिनगृह इक सौ आठ, एक सौ आठ रहें प्रतिमायें हैं।।
इन ढाई द्वीप दो समुद्र में, कृत्रिम जिनप्रतिमा अगणित हैं।
सुरपति चक्री हलधर आदिक, नर सुरकृत वंदित सुखप्रद हैं।।११।।

जो प्रतिमा प्रातिहार्य संयुत, अरु यक्ष यक्षिणी से युत हैं।
निज चिन्ह व मंगल द्रव्य सहित, वे अर्हंतों की प्रतिकृति हैं।।
सब प्रातिहार्य चिन्हादि रहित, प्रतिमा सिद्धों की कहलाती।
अथवा अकृत्रिम प्रतिमाएं, सब सिद्धों की मानी जाती।।१२।।

आचार्य उपाध्याय साधू की, प्रतिमाएँ कर्मभूमि में है।
कुछ पंचपरमेष्ठी नव देवों की, प्रतिमाएं भी निर्मित हैं।।
अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय, साधु पंच परमेष्ठी हैं।
जिनधर्म जिनागम जिनप्रतिमा, जिनगृह सब मिल नव देव कहें।।१३।।

इस जंबूद्वीप के अकृत्रिम, जिनमंदिर अट्ठत्तर ही हैं।
जिनमंदिर शाश्वत चार शतक, अट्ठावन मध्यलोक में हैं।।
ये सात करोड़ बहत्तर लख, जिनमंदिर भवनवासि के हैं।
चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेइस वैमानिक के हैं।।१४।।

अठ कोटि सुछप्पन लक्ष सत्तानवे, सहस चार सौ इक्यासी।
सब जिनगृह व्यंतर ज्योतिष के, उन संख्यातीत कही राशी।।
त्रिभुवन के ये शाश्वत मंदिर, उन सबका वंदन करते हैं।
नरपति सुरपति निर्मित जिनगृह, उन सबको भी नित नमते हैं।।१५।।

इन ढाईद्वीपों से बाहर, बस शाश्वत जिनगृह जिनप्रतिमा।
नहिं पंच परमगुरु आदि वहाँ, नहिं शिवपथ नहिं नर गमन वहाँ।।
सब इंद्र इंद्राणी देव-देवियाँ, भक्ती से वहाँ जाते हैं।
वंदन पूजन अर्चन करके, अतिशायी पुण्य कमाते हैं।।१६।।

फिर भी इन कर्मभूमियों में, जन्मे मानव सुकृतशाली।
जो रत्नत्रय का साधन कर, शिव प्राप्त करें महिमाशाली।।
तीर्थंकर आदि महापुरुषों, को सुरपति भी वंदन करते।
कब मिले मनुज भव तप धारें, शिव लहें भावना मन धरते।।१७।।

इन कर्मभूमि की महिमा से ही, जंबूद्वीप महान कहा।
निज आत्म सुधारस आस्वादी, मुनिगण करते हैं वास यहाँ।।
बहिरात्म अवस्था छोड़ अंतरात्मा बन नर पुरुषार्थ करें।
परमानंदामृत आस्वादी, परमात्मा बन शिवनारि वरें।।१८।।

हे नाथ ! अनादी से लेकर, अब तक भि अनंतों कालों तक।
चारों गति में मैं घूम रहा, दुख सहा अनंतों कालों तक।।
अब धन्य हुआ तुम भक्ति मिली, सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया।
बस रत्नत्रय को पूर्ण करो, इस हेतू से ही शरण लिया।।१९।।

जय जय अर्हंत सिद्ध सूरी, जय उपाध्याय साधूगण की।
जय जय जिनधर्म जिनागम की, जय जय जिनबिंब जिनालय की।।
जय त्रयकालिक नवदेवों की, जय चिन्मय ज्योति निरंजन की।
जय जय त्रैलोक्य अभयदायक, जय जय जय श्रीजिनशासन की।।२०।।

दोहा- नमूँ नमूँ नवदेवता, मिले सर्व इष्टार्थ।
केवल 'ज्ञानमती' सहित, फले मोक्ष पुरुषार्थ।।२१।।

चैत्यवंदनाष्टक

(गणिनी ज्ञानमती विरचित)

त्रिभुवन के जितने चैत्यालय, अकृत्रिम उनको नित वंदूं।
भव भव के संचित पाप पुंज, उन सबको इक क्षण में खंडूं।।
असुरों के चौंसठ लाख नागसुर, के चौरासी लाख कहे।
वायुसुर के छ्यानवे लाख सुपरण के बाहत्तर लक्ष कहे।।१।।

विद्युत् अग्नी स्तनित उदधि, दिक् द्वीपकुमार भवनवासी।
इन छह में पृथक्-पृथक् जिनगृह, छीयत्तर लक्ष सुगुण-राशी।।
सब लक्ष बहत्तर सात कोटि, ये जिनगृह भवनालय सुर के।
ये अधोलोक के जिनमंदिर, नितप्रति वंदूं अंजलि करके।।२।।

इस मध्यलोक के पांच मेरु, के अस्सी तीस कुलाचल के।
रजताचल के इक सौ सत्तर, अस्सी हैं वक्षाराचल के।।
गजदंत गिरी के बीस भवन, जंबू शाल्मलि के दश मानें।
इष्वाकृति नग के चार चार, मनुजोत्तर के भी भव हानें।।३।।

अंजनगिरि के चउ दधिमुख के, सोलह रतिकर के बत्तिस हैं।
नंदीश्वर द्वीप जिनालय ये, बावन अतिशय गुणमंडित हैं।।
कुंडलगिरि रुचकगिरी के भी, हैं चार चार सब मिल करके।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर मध्यलोक भर के।।४।।

व्यंतरवासी ज्योतिष सुर के, सब संख्यातीत जिनालय हैं।
इस ऊपर ऊर्ध्वलोक में भी, वैमानिक वंदित आलय हैं।।
सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर, बत्तीस लाख शाश्वत मानो।
ईशान स्वर्ग में अट्ठाइस, हैं लाख जिनालय सरधानो।।५।।

सानत्कुमार में बारह लख, माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लक्ष।
दिव ब्रह्मयुगल में चार लाख, लांतव युग में पच्चास सहस।।
चालिस हजार दिव शुक्र युगल में, छह हजार युग शतार में।
जिननिलय सात सौ आनत औ, प्राणत आरण अच्युत दिव में।।६।।

ग्रैवेयक तीन अधो में हैं, इक सौ ग्यारह मध्यम त्रय में।
हैं इक सौ सात तथा जिनगृह, हैं इक्यानवे ऊर्ध्व त्रय में।।
नव अनुदिश में नव जिनमंदिर, पंचानुत्तर में पांच कहें।
इन सबका वंदन करते ही, भविजन मनवांछित सिद्धि लहें।।७।।

तीनों लोकों के ये जिनगृह, सब आठ कोटि छप्पन सुलक्ष।
सत्तानवे सहस चार सौ औ, इक्यासी प्रमित कहे शाश्वत।।
नव सौ पच्चीस कोटि त्रेपन, हैं लाख सताइस सहस सही।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, प्रति जिनगृह इक सौ आठ कहीं।।८।।

सब जिनगृह में अनुपम शाश्वत, मानस्तंभादिक रचनायें।
वर्णन पढ़ते ही जन मन में, दर्शन की इच्छा प्रकटायें।।
जिनबिंब पांच शत धनुष तुंग, उन वीतराग छवि मनहारी।
मैं केवल ''ज्ञानमती'' हेतू, नित नमूँ जिनालय सुखकारी।।९।।

-दोहा-

त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१०।।

कृतिकर्म विधि

लघुचैत्यभक्ति

(पद्यानुवाद–गणिनी ज्ञानमती)

भरत आदि क्षेत्रों में हिमवन, आदि सभी पर्वत ऊपर।
नन्दीश्वर द्वीपों में पाँचों, मेरू के अस्सी मंदिर।।
मध्यलोक में जितने भी जिनवर के मंदिर शाश्वत हैं।
उन सबको मैं नितप्रति वंदूं वे भवदधि से तारक हैं।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष वैमानिक देवों के गृह में।
पृथ्वीतल में कृत्रिम अकृत्रिम जितने भी जिनगृह हैं।।
इस जग में मनुजों से निर्मित सुरनर से पूजित मंदिर।
भावसहित उन सबको वंदूं स्मरण करूं मैं शिर नत कर।।२।।

जम्बूद्वीप धातकी पुष्करअर्ध अढाई द्वीपों में।
रत्नत्रयधर तीर्थंकर हों इक सौ सत्तर क्षेत्रों में।।
श्वेत लाल नीले स्वर्णिम अरु हरित वर्ण के जिनवर ये।
कर्मेंधन को भस्म किया त्रयकालिक जिन को वंदन है।।३।।

मेरु कुलाचल रजतगिरि जम्बू शाल्मलि तरु गिरि वक्षार।
चैत्यवृक्ष मनुजोत्तर अंजन दधिमुख रतिकर इष्वाकार।
कुंडल रुचकाचल इन सब पर जिनगृह भावन व्यंतर के।
ज्योतिष के स्वर्गों के जिनगृह इन सबको प्रणमूं रुचि से।।४।।

कुंदकुसुम शशि बर्फ हार सम धवल चंद्रप्रभु सुविधि हैं।
इन्द्रनील सम दो जिन लालकमल सम दो व हरित दो हैं।।
सोलह जिनवर तप स्वर्णसम जन्ममृत्युहत सुरनुत हैं।
ये सज्ज्ञानसूर्य चौबिस जिन हम सबको सिद्धी देवें।।५।।

–दोहा–

तीन लोक के जिनभवन, नमूँ अनंतों बार।
'ज्ञानमती' कैवल्य हो, मिले स्वात्म सुखसार।।१०।।

कृतिकर्म विधि

(अध्याय २)

श्रीगौतमस्वामी उवाच—

कृतिकर्म प्रयोगविधि

अथ देववन्दनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं श्रीचैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर सामायिक दण्डक पढ़ें।)

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

सामायिक दंडक (पद्यानुवाद)

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं–अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अमृतवर्षिणी टीका–

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त कर एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से या बैठकर योगमुद्रा से सत्ताईस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर "थोस्सामिस्तव" पढ़ें।)

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्मदेशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान्।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन-ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।

भगवन् ! सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन कायमन, त्रिकरण से न करूँ दुःखकर।।५।।

नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूं निंदूं गर्हूं, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में **९ बार महामंत्र का जाप्य**, पुनः पंचांग नमस्कार-तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा द्वारा हाथ जोड़कर 'थोस्सामिस्तव' पढ़ें।)-

थोस्सामिस्तव

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे।।१।।

लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।

उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।

एवं मए अभित्थुया, विहुय-रयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।

थोस्सामि स्तवन

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।

लोकोद्योतक धर्म तीर्थकर, श्रीजिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउबीस अर्हंत तथा, केवलि-गण का गुणगान करूँ।।२।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।३।।

सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्मप्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।४।।

जिनवर कुन्थु अरह मल्लिप्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्टनेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।५।।

इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पहासत्ता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

लघु सिद्धभक्ति

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

–अंचलिका–

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान्।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।
चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।

—लघु सिद्धभक्ति —(पद्यानुवाद)

श्रीमन् वर्द्धमान को प्रणमूँ, जिनने अरि को नमित किया।
जिनके पूर्ण ज्ञान में त्रिभुवन, गौखुर सम दिखलाई दिया।।१।।

तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

—अंचलिका —

हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग् रत्नत्रय युक्ता।।१।।

पयिट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीदाणागदवट्टमाण–कालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।[१]

अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व–लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

मध्यलोक जिनालय वंदना

जय जय मध्यलोक के जिनगृह चार शतक अट्ठावन।
जय जय अकृत्रिम मणिमय जिनमंदिर जन मन भावन।।
जय जय पाँचमेरु के अस्सी जिनमंदिर सुखकारी।
जय जंबूशाल्मलि तरु आदिक दश जिनगृह दुःख हारी।।5।।
जय जय कुलपर्वत के जिनगृह तीस अकृत्रिम शोभें।
जय जय गजदंतों के जिनगृह बीस भव्य मन लोभें।।
जय जय जय वक्षार गिरी के अस्सी जिनगृह सुंदर।
जय जय जय विजयार्ध अचल के जिनगृह इक सौ सत्तर।।6।।
जय जय इष्वाकार अचल के चार जिनालय शाश्वत।
जयजय मनुजोत्तर पर्वत के चार जिनालय भास्वत।।
जय जय नंदीश्वर के बावन जिनमंदिर अभिरामा।
जय जय कुंडलगिरि रुचक गिरी के चार-चार जिनधामा।।7।।

-गणिनी ज्ञानमती

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

लघु कृतिकर्म विधि/ कायोत्सर्ग विधि

यह लघु सामायिक दण्डक और लघु थोस्सामि पाठ प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में लघु भक्तियों के पाठ में उपलब्ध हुआ है अतः लघु भक्ति के पाठ में लघु सामायिक दण्डक और लघु थोस्सामिस्तव कर सकते हैं ऐसा जाना जाता है। जैसे कि स्वाध्याय के समय लघु श्रुतभक्ति आदि में लघु कृतिकर्म कर सकते हैं।

अथ .....क्रियायां .....भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(यह प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार करें, पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़ें।)

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि, ताव कालं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र पढ़ें पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामिस्तव पढ़ें।)

लघु कायोत्सर्ग विधि

अथ.....क्रियायां.....भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

चत्तारि मंगलं–अरिहंत मंलगं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

–थोस्सामिस्तव–

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवर लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणा।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके पुनः जिस भक्ति के लिए कायोत्सर्ग किया हो, उस भक्ति को पढ़ें।)

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव!
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।१।।

(९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

–थोस्सामिस्तव–

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिनप्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।
लोकोद्योतक धर्मतीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूँ।
जिन चौबीस अर्हंत तथा, केवलिगण का गुणगान करूँ।।१।।

केवलज्ञानप्राप्त श्रीपार्श्वनाथ वंदना

-उपजातिछंद-

श्री पार्श्वनाथः स्वपरात्मविज्ञः,
श्रेणीं श्रितः स्वात्मजशुक्लयोगैः।
घातीनि हत्वा जगदेकसूर्यः,
कैवल्यमाप्नोत् तमहं स्तवीमि।।

स्वपरभेदवित् पारस स्वात्मज, ध्यानशुक्ल श्रेणी पर चढ़।
घात घातिया केवल पायो, त्रिभुवनसूर्य नमूँ शुचि कर।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

कृतिकर्म विधि के विषय में वर्णन

अंग बाह्य के १४ भेदों में से जो 'कृतिकर्म' नाम से छठा प्रकीर्णक है। वह कृतिकर्म विधि का विस्तार से वर्णन करता है। आज यद्यपि ये अंगबाह्य नाम से १४ प्रकीर्णक हमारे लिये उपलब्ध नहीं है तो भी इनका अंश–अंश ज्ञान उपलब्ध श्रुतशास्त्रों से प्राप्त होता है।

इस कृतिकर्म में जो सामायिक दण्डक पढ़े जाते हैं वे श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से ही निकले हुये हैं। एवं 'थोस्सामि स्तव'' भी उन्हीं श्रीगौतमस्वामी की ही रचना है, ऐसा निश्चित है।

इसमें 'णमोकार महामंत्र', एवं 'चत्तारिमंगल पाठ' अनादिनिधन हैं किसी के द्वारा रचित नहीं है, ऐसा सिद्ध किया जा चुका है।

प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के संघ में आचार्यश्री के समक्ष यही निर्णय रहा था। 'क्रियाकलाप' ग्रंथ को ७८ वर्ष पूर्व पं. पन्नालालजी सोनी शास्त्री ने संपादन करके छपाया था। उसमें भी इन्होंने 'थोस्सामि स्तव' को श्री कुंदकुंद कृत भक्ति में नहीं लिया है।

यह कृतिकर्म प्रकीर्णक नाम से 'अंगबाह्य श्रुत' अनादि है अतः कृतिकर्म विधि भी अनादि है। फिर भी हमें आगे कही जाने वाली कृतिकर्म प्रयोगविधि के 'सामायिक दण्डक' व 'थोस्सामि' पाठ के बारे में ये अनादि हैं ऐसा कहीं प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए मैं इन्हें 'अनादि' नहीं कह सकती हूँ फिर भी गुरुपरम्परा से मान्य ये दोनों पाठ श्री गौतमस्वामी प्रणीत ही हैं यह निश्चित है। इसमें सामायिकदण्डक पाठ में **'सदा करेमि किरियम्मं'** वाक्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। यही वाक्य कृतिकर्म विधि के माहात्म्य को प्रदर्शित कर रहा है।

इन्हीं हेतुओं से हम इस 'कृतिकर्म' को श्रीगौतम स्वामी प्रणीत ही मानते हैं। यह कृतिकर्म विधि षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक १३वीं में भी वर्णित है। इसमें भी 'सामायिक दण्डक' व 'थोस्सामि स्तव' पाठ आया है। अतः यह अत्यर्थ प्राचीन, प्रमाणीक श्री गौतमस्वामी प्रणीत ही है ऐसा निश्चित है।

अनंतर यही 'कृतिकर्म विधि' देववंदना अपरनाम सामायिक में भी कई बार आती है। जैसा कि–

षट्खंडागम ग्रंथ पु. १३ में–

''तमादाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तियोणदं चदुस्सिरं वारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम।।२८।।'' इस सूत्र से स्पष्ट है। इसका विस्तृत स्पष्टीकरण "देववंदना अपरनाम सामायिक" पुस्तक में मैंने संकलित किया है उसे भी आप अवश्य पढ़ें।

यह कृतिकर्म विधि षट्खण्डागम–धवला एवं जयधवला ग्रंथ में तथा मूलाचार, आचारसार, चारित्रसार आदि ग्रंथों में वर्णित है। इस विधि से भगवान का दर्शन व वंदन करने से असंख्यातों गुणा कर्मनिर्जरा होती है और महान पुण्य का संचय होता है।

किसी भी भक्तिपाठ के लिए जो विधि धवला, जयधवला आदि शास्त्रों में कही गई है। उसको

'कृतिकर्म' या 'क्रियाकर्म' कहते हैं। उसी को यहाँ पहले संक्षेप में बताते हैं—

एक बार के कायोत्सर्ग में—यह आगे लिखी विधि की जाती है उसी का नाम कृतिकर्म है। यह विधि देववन्दना, प्रतिक्रमण आदि सर्व क्रियाओं में भक्तिपाठ के प्रारम्भ में की जाती है।

जैसे देववन्दना में चैत्यभक्ति के प्रारम्भ में—

'अथ पौर्वाण्हिक-देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं श्रीचैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं'।

यह प्रतिज्ञा हुई, इसको बोलकर भूमि स्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करें । यह एक अवनति हुई। अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके 'णमो अरिहंताणं.... चत्तारिमंगलं...अड्ढाइज्जदीव....इत्यादि पाठ बोलते हुए... दुच्चरियं वोस्सरामि' तक पाठ बोले यह 'सामायिक स्तव' कहलाता है। पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। इस तरह 'सामायिक दण्डक' के आदि और अन्त में तीन-तीन आवर्त और एक-एक शिरोनति होने से छह आवर्त और दो शिरोनति हुईं। पुनः नौ बार णमोकार मन्त्र को सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में जपकर भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करें । इस तरह प्रतिज्ञा के अनन्तर और कायोत्सर्ग के अनन्तर ऐसे दो बार अवनति हो गयीं।

बाद में तीन आवर्त, एक शिरोनति करके 'थोस्सामि स्तव' पढ़कर अन्त में पुनः तीन आवर्त, एक शिरोनति करें। इस तरह चतुर्विंशतिस्तव के आदि और अन्त में तीन-तीन आवर्त और एक-एक शिरोनति करने से छह आवर्त और दो शिरोनति हो गयीं । ये सामायिक स्तव सम्बन्धी छह आवर्त, दो शिरोनति तथा चतुर्विंशतिस्तव संबंधी छह आवर्त, दो शिरोनति मिलकर बारह आवर्त और चार शिरोनति हो गयीं।

इस तरह एक कायोत्सर्ग के करने में दो प्रणाम, बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं।

जुड़ी हुई अंजुलि को दाहिनी तरफ से घुमाना सो आवर्त का लक्षण है।

इतनी क्रियारूप कृतिकर्म को करके ''जयतु भगवान्'' इत्यादि चैत्यभक्ति का पाठ पढ़ना चाहिए । ऐसे ही जो भी भक्ति जिस क्रिया में करना होती है तो यही विधि की जाती है।

वन्दना योग्य मुद्रा—मुद्रा के चार भेद हैं—जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दनामुद्रा, मुक्ताशुक्तिमुद्रा। इन चारों मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं।

जिनमुद्रा—दोनों पैरों में चार अंगुल प्रमाण अन्तर रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटकाकर कायोत्सर्गरूप से खड़े होना सो जिनमुद्रा है। **योगमुद्रा**—पद्मासन, पर्यंकासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित रखने को जिनेन्द्रदेव योगमुद्रा कहते हैं। **वन्दनामुद्रा**—दोनों हाथों को मुकुलितकर और कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े होने से वन्दनामुद्रा होती है। **मुक्ताशुक्तिमुद्रा**—दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए को मुक्ताशुक्तिमुद्रा कहते हैं।

णमोकार मंत्र एवं चत्तारि मंगल पाठ

(अनादि निधन है)

महामंत्र णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।१।।

इस महामंत्र को णमोकार मंत्र, अपराजित मंत्र, अनादि मंत्र व सार्वभौम मंत्र भी कहते हैं।

आज के उपलब्ध सम्पूर्ण जैन वाङ्मय में दो ही मंत्र अनादिनिधन मान्य हैं—१. **णमोकार महामंत्र, २. चत्तारि मंगल पाठ।**

श्रीमान् उमास्वामी आचार्य ने कहा है–

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः।
तेष्वप्ययं परतरं प्रथितं पुरापि, लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः।।३।।

श्लोकार्थ—उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्तयुग पहले व्यतीत हो चुके हैं, उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ।

'णमोकार मंत्रकल्प' में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने भी कहा है–

महापंचगुरोर्नाम, नमस्कारसुसम्भवम्।
महामंत्रं जगज्जेष्ठ-मनादिसिद्धमादिदम्।।६३।।

महापंचगुरूणां, पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्।
उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये।।६८।।

श्लोकार्थ—नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत् में ज्येष्ठ—सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है।।६३।।

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित्त होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए।।६८।।

श्री गौतम स्वामी ने पाक्षिक प्रतिक्रमण में कुछ पंक्तियाँ ऐसी रखी हैं, जिनसे भी स्पष्ट है कि यह महामंत्र व चत्तारिमंगल पाठ अनादिकालीन हैं। यथा—

''काऊण णमोक्कारं, अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरिय-उवज्झायाणं, लोयम्मि य सव्वसाहूणं।।''

''णमोक्कारपदे अरहंतपदे सिद्धपदे आयरियपदे उवज्झायपदे साहुपदे मंगलपदे लोगोत्तमपदे सरणपदे।।'' (पाक्षिक प्रतिक्रमण)

–पद्यानुवाद–

अरिहंतों को कर नमस्कार सिद्धों को नमस्कार करके।
आचार्य उपाध्याय को व लोक में सर्वसाधु को भी नमते।।
जो नमस्कार पद अर्हत् पद अरु सिद्धपदाचार्य पद में।
उपाध्याय साधूपद मंगल-लोकोत्तम शरणं पद में।।

'णमोक्कार पदे' आदि दण्डक सूत्रों में णमोकार पद में अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुपद ये पांच पद हैं तथा मंगलपद, लोकोत्तमपद व शरणपद से चत्तारि मंगल पाठ आ जाता है क्योंकि चत्तारि मंगल पाठ में—चत्तारि मंगलं, चत्तारि लोगुत्तमा और चत्तारि सरणं पद ही मुख्य है।

षट्खण्डागम धवला टीका पुस्तक ९ में कालशुद्धि में साधुओं के लिए श्वासोच्छ्वासपूर्वक महामंत्र जपने का विधान है। इससे भी स्पष्ट होता है इस महामंत्र को श्वासोच्छ्वासपूर्वक जपने की विधि अनादि है।

यथा—महामंत्र को १०८ बार जपने से ३०० (३२४) श्वासोच्छ्वास हो जाते हैं। इस एक जाप्य से एक उपवास का फल प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्रों में वर्णित हैं।

अत्र कालशुद्धिकरणविधानमभिधास्ये। तं जहा—पच्छिमरत्तिसज्झायं खमाविय बहिं णिक्कलिय पासुवे भूमिपदेसे काओसग्गेण पुव्वाहिमुहो ट्ठाइदूण णवगाहापरियट्टणकालेण पुव्वदिसं सोहिय पुणो पदाहिणेण पल्लट्टिय एदेणेव कालेण जम-वरुण-सोमदिसासु सोहिदासु छत्तीसगाहुच्चारणकालेण (३६) अट्ठसदुस्सासकालेण वा कालसुद्धी समप्पदि (१०८)। अवरण्हे वि एवं चेव कालसुद्धी कायव्वा। णवरि एक्केक्काए दिसाए सत्त-सत्तगाहापरियट्टणेण परिच्छिण्णकाला त्ति णायव्वा। एत्थ सव्वगाहापमाणमट्ठावीस (२८) चउरासीदिउस्सासा (८४)। पुणो अणत्थमिदे दिवायरे खेत्तसुद्धिं कादूण अत्थमिदे कालसुद्धिं पुव्वं व कुज्जा। णवरि एत्थ कालो वीसगाहुच्चारणमेत्तो (२०) सट्ठिउस्सासमेत्तो वा (६०)। अवररत्ते णत्थि वायणा, खेत्तसुद्धिकरणोवायाभावादो। ओहि-मणपज्जवणाणीणं सयलंगसुदधराण-मागासट्ठियचारणाणं मेरु-कुलसेलगब्भट्ठियचारणाणं च अवररत्तियवाचणा वि अत्थि अव-गयखेत्तसुद्धीदो। अवगयराग-दोसाहंकारट्ट-रुद्दज्झाणस्स पंचमहव्वयकलिदस्स तिगुत्तिगुत्तस्स णाण-दंसण-चरणादिचारणवड्ढिदस्स भिक्खुस्स भावसुद्धी होदि।''[1]

यहाँ कालशुद्धि करने के विधान को कहते हैं। वह इस प्रकार है—पश्चिम रात्रि के स्वाध्याय को समाप्त करके बाहर निकलकर प्रासुक भूमि प्रदेश में कायोत्सर्ग से पूर्वाभिमुख स्थित होकर नौ गाथाओं के उच्चारणकाल से पूर्व दिशा को शुद्ध करके फिर प्रदक्षिणरूप से पलटकर इतने ही काल से दक्षिण, पश्चिम व उत्तर दिशाओं को शुद्ध कर लेने पर छत्तीस ३६ गाथाओं के उच्चारणकाल से अथवा एक सौ

1. षट्खण्डागम, धवला टीका पुस्तक 9, पृ. 254।

आठ १०८ उच्छ्वासकाल से कालशुद्धि समाप्त होती है। अपराण्हकाल में भी इसी प्रकार ही कालशुद्धि करना चाहिए। विशेष इतना है कि इस समय की कालशुद्धि एक-एक दिशा में सात-सात गाथाओं के उच्चारणकाल से सीमित है, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ सब गाथाओं का प्रमाण अट्ठाईस २८ अथवा उच्छ्वासों का प्रमाण चौरासी ८४ है। पश्चात् सूर्य के अस्त होने से पहले क्षेत्रशुद्धि करके सूर्य के अस्त हो जाने पर पूर्व के समान कालशुद्धि करना चाहिए। विशेष इतना है कि यहाँ काल बीस २० गाथाओं के उच्चारण प्रमाण अथवा साठ ६० उच्छ्वास प्रमाण है। अपररात्रि अर्थात् रात्रि के पिछले भाग में वाचना नहीं है, क्योंकि उस समय क्षेत्रशुद्धि करने का कोई उपाय नहीं है। अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, समस्त अंगश्रुत के धारक, आकाशस्थित चारण तथा मेरु व कुलाचलों के मध्य में स्थित चारण ऋषियों के अपररात्रिक वाचना भी है, क्योंकि वे क्षेत्रशुद्धि से रहित हैं अर्थात् भूमि पर न रहने से उन्हें क्षेत्रशुद्धि करने की आवश्यकता नहीं होती। राग, द्वेष, अहंकार, आर्त व रौद्र ध्यान से रहित, पाँच महाव्रतों से युक्त, तीन गुप्तियों से रक्षित तथा ज्ञान, दर्शन व चारित्र आदि आचार से वृद्धि को प्राप्त भिक्षु के भावशुद्धि होती है।

चत्तारिमंगल पाठ

(अनादि निधन है)

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ह्रौं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा। अनादि सिद्धमंत्रः।

(हस्तलिखित वसुनंदि प्रतिष्ठासार संग्रह)

इसलिए ये महामंत्र और चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है, ऐसा स्पष्ट है।

वर्तमान में विभक्ति लगाकर 'चत्तारिमंगल पाठ'—नया पाठ पढ़ा जा रहा है। जो कि विचारणीय है।

परिवर्तित पाठ—नया पाठ-

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहूं मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

यह पाठ लगभग ४० वर्षों से अपनी दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। देखें प्रमाण — 'ज्ञानार्णव' जैसे प्राचीन ग्रंथ में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही है। यह विक्रम सम्वत् १९६३ से लेकर कई संस्करणों में वि.सं. २०५४ तक में प्रकाशित है। पृ. ३०९ पर यही प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठातिलक जो कि वीर सं. २४५१ में सोलापुर से प्रकाशित है, उसमें पृष्ठ ४० पर यही प्राचीन पाठ है। आचार्य श्री वसुविंदु-अपरनाम जयसेनाचार्य द्वारा रचित 'प्रतिष्ठापाठ' जो कि वीर सं. २४५२ में प्रकाशित है। उसमें पृ. ८१ पर प्राचीन पाठ ही है। हस्तलिखित 'श्री वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ संग्रह' में भी प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठासारोद्धार जो कि वीर सं. २४४३ में छपा है, उसमें भी यही पाठ है। 'क्रियाकलाप' जो कि वीर सं. २४६२ में छपा है, उसमें भी तथा जो 'सामायिकभाष्य' श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा 'देववंदना' की संस्कृत टीका है, उसमें भी अरहंत मंगलं-अरहंत लोगुत्तमा,..... अरहंत सरणं पव्वज्जामि, यही पाठ है पुनः यह संशोधित नया पाठ क्यों पढ़ा जाता है। क्या ये पूर्व के आचार्य व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे? इन आचार्यों की कृति में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कहाँ तक उचित है ?

जिनवाणी वंदना

जो परमब्रह्मपथ अवलोकन, इच्छुक हैं भव्यात्मा उनको।
स्याद्वाद रहस्य बता करके, भुक्ती मुक्ती देती सबको।।
चिन्मयज्योती मोहांधकार, हरिणी हे जिनवाणी माता।
रवि उदय पूर्वदिशी जेत्री, त्रिभुवन द्योतित करणी माता।।1।।

जो अनादि से दुर्लभ अचिन्त्य, आनन्त्य मोक्षसुख है जग में।
हे सरस्वती मातः! वह भी, तव प्रसाद से अतिसुलभ बने।।
आश्चर्यकारि स्वर्गादिक सब, ऐश्वर्य प्राप्त हों भक्तों को।
मेरे सब वाञ्छित पूर्ण करो, हे मातः! नमस्कार तुमको।।2।।

संपूर्ण स्त्री की सृष्टी में, चूड़ामणि हो हे सरस्वती!
तुम से ही दयाधर्म की औ, संपूर्ण गुणों की उत्पत्ती।।
मुक्ती के लिए प्रमुख कारण, माँ सरस्वती! मैं नमूँ तुम्हें।
तव चरण कमल में शीश धरूँ, भक्तीपूर्वक नित नमूँ तुम्हें।।3।।

पद्यानुवाद-गणिनी ज्ञानमती

लघु सिद्धभक्ति

अमृतवर्षिणी टीका–

यह दैवसिक प्रतिक्रमण से ली गई है। इसमें ''श्रीमते वर्धमानाय'' श्लोक को यहीं से इस पुस्तक में मंगलाचरण में लिया है। उसका ''अमृतवर्षिणी'' टीका में विस्तृत विवेचन हो चुका है।

''**तवसिद्धे**'' पद्य में सिद्धों का संक्षिप्त वर्णन है।

तप से सिद्ध में श्रीबाहुबली स्वामी का उदाहरण सर्वोत्तम है। दीक्षा लेते ही श्रीबाहुबली ने एक वर्ष का 'आतापन' योग ले लिया था और वर्ष पूर्ण होते ही तथा जो विकल्प था कि ''भरतचक्री को मुझ से क्लेश हो गया है। ''इत्यादि इस 'प्रेम शल्य' के निमित्त से केवलज्ञान नहीं हुआ किन्तु उसी दिन भरत चक्रवर्ती ने आकर नमस्कार किया और बाहुबली निःशल्य होकर क्षपकश्रेणी में आरोहण कर शुक्लध्यान से घातिया कर्मों का नाश कर केवली बन गये। देखिये महापुराण–

संक्लिष्टो भरताधीशः सोऽस्मत्त इति यत्किल।
हृद्यस्य हार्दं तेनासीत् तत्पूजाऽपेक्षि केवलम्[१]।।१८६।।

अर्थ–वह भरतेश्वर मुझसे संक्लेश को प्राप्त हुआ है अर्थात् मेरे निमित्त से उसे दुःख पहुँचा है, यह विचार बाहुबली के हृदय में विद्यमान रहता था, इसलिए केवलज्ञान ने भरत की पूजा की अपेक्षा की थी।

भावार्थ–भरत के पूजा करते ही बाहुबली का हृदय निश्चिंत हो गया और उसी समय उन्हें केवलज्ञान भी प्राप्त हो गया।।१८६।।

श्रीगौतमस्वामी ने शल्य आठ प्रकार की मानी हैं, उसी में यह–'**पेम्मसल्लाए**[२], प्रेम शल्य पांचवीं शल्य है क्योंकि बाहुबली स्वामी के महापुराण के अनुसार 'माया, मिथ्या, निदान' इन तीनों शल्य में से एक भी नहीं थी, महापुराण पर्व छत्तीस में उन्हें एक वर्ष के ध्यान में संपूर्ण ऋद्धियां व मनःपर्ययज्ञान माना है जो कि भावलिंगी सच्चे महामुनियों के ही संभव है।

क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध, बोधित बुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इनके द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य है।।९।।[३]

क्षेत्र–क्षेत्र की अपेक्षा किस क्षेत्र में सिद्ध होते हैं ? प्रत्युत्पन्नग्राही नय, ऋजुसूत्रनय वा निश्चयनय की अपेक्षा से स्वप्रदेश लक्षण सिद्धक्षेत्र में (अपने आत्मप्रदेशों में) ही सिद्धि होती है। भूतग्राही (अतीत को ग्रहण करने वाले) व्यवहार नय की अपेक्षा आकाश प्रदेश में वा जन्म का उद्देश्य लेकर कथन किया जाय तो पन्द्रह कर्मभूमियों में और अपहरण–संहरण की अपेक्षा ढाईद्वीप प्रमाण मानुषक्षेत्र

---

१. आदिपुराण भाग–२, पर्व ३६। २. दैवसिक प्रतिक्रमण मुनिचर्या पु. पृ. ४३। ३. तत्त्वार्थवृत्ति पृ. ७०२ से ७०७ तक।

में सिद्धि (मुक्तिपद की प्राप्ति) होती है। संहरण (अपहरण) दो प्रकार का होता है स्वकृत और परकृत। चारण ऋद्धिधारी मुनियों का और विद्याधरों का स्वकृत संहरण है अर्थात् विद्याधर और चारणऋद्धिधारी मुनि स्वयमेव सारे मानुष क्षेत्र जा सकते हैं और सारे मानुषक्षेत्र में कहीं पर भी कर्मों का नाश कर सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। देव आदि के द्वारा अन्य मुनियों का संहरण परकृत संहरण है यानी मुनि आदि उनके द्वारा ले जाये जाकर समुद्र आदि में डाल दिये जाते हैं, वह परकृत संहरण है। संहरण की अपेक्षा मानुषक्षेत्र में स्थित नदी, समुद्र, पर्वत आदि सर्व स्थानों में सिद्धि हो सकती है।

चारित्र–चारित्र की अपेक्षा किस चारित्र से सिद्धि होती है ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं विशेष, व्यपदेश (भेद) रहित "यह मैं सर्व सावद्ययोग से विरक्त होता हूँ" इस प्रकार सामायिक चारित्र से (अभेद चारित्र से) सिद्धि होती है। ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा यथाख्यातचारित्र से सिद्धि होती है। व्यवहारनय की अपेक्षा पाँचों चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातचारित्र) से सिद्धि होती है अथवा किसी के परिहारविशुद्धि चारित्र रहित चार चारित्र से मुक्ति होती है।

ज्ञान–किस ज्ञान से सिद्धि होती है ? ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा केवलज्ञान से सिद्धि (मुक्ति) होती है। व्यवहारनय से पश्चात्कृत मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इन दो ज्ञानों से मुक्ति होती है। मतिज्ञान , श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानों से या मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्यय इन तीनों ज्ञानों से वा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन चार ज्ञानों से मुक्ति होती है। इसका अर्थ है– पूर्व में मतिज्ञान श्रुतज्ञान में स्थित होकर पश्चात् केवलज्ञान उत्पन्न करके सिद्ध होते हैं तथा मति, श्रुत, अवधि वा मति, श्रुत, मनःपर्यय इन तीन को प्राप्त कर पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्त होते हैं वा मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञानों की प्राप्ति के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्त होते हैं।

अवगाहना–कितनी अवगाहना से जीव मुक्त होता है ? ऐसा पूछने पर कहते हैं–आत्म–प्रदेश में व्याप्त करके रहना इसका नाम अवगाहना है। वह अवगाहना दो प्रकार की है–जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण है और जघन्य अवगाहना साढ़े तीन अरत्नि प्रमाण है। जो जीव सोलह वर्ष में सात हाथ शरीर वाला होता है वह गर्भ से आठवें वर्ष में साढ़े तीन हाथ शरीर वाला होता है और उस जीव की आठ वर्ष की अवस्था में मुक्ति होने से जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ रहती है। (जो १६ वर्ष में साढ़े तीन हाथ शरीर वाला होता है, उसकी मुक्ति नहीं होती है)। मध्यम अवगाहना के अनेक भेद हैं अतः मध्यम अवगाहना की अपेक्षा अनेक अवगाहना से सिद्धि होती है।

अन्तर—सिद्ध होने वाले पुरुषों के परस्पर कितना अन्तर होता है ? ऐसा पूछने पर कहते हैं कि सिद्धि को प्राप्त होने वाले सिद्धों का जघन्य अन्तर दो समय और उत्कृष्ट अन्तर आठ समय है अर्थात्

यदि जीव निरन्तर मोक्ष में जाते रहें तो जघन्य दो समय तक और उत्कृष्ट आठ समय तक अन्तर होगा। उसके बाद नियम से अन्तर पड़ जाता है अथवा कोई भी जीव मोक्ष में नहीं जाय तो जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक नहीं जाते अर्थात् जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट छह मास का अन्तर पड़ता है। उसके अनन्तर कोई–न–कोई जीव मोक्ष में जाता ही है।

संख्या—कितनी संख्या में जीव एक साथ मोक्ष में जा सकते हैं। जघन्य से एक समय में एक जीव मोक्ष जाता है और उत्कृष्ट से एक समय में एक साथ एक सौ आठ जीव सिद्ध हो सकते हैं।

अब **अल्पबहुत्व** कहते हैं–क्षेत्रादि भेदों की अपेक्षा भेद को प्राप्त हुए जीवों की परस्पर संख्याविशेष प्राप्त करना अल्पबहुत्व है। जैसे–प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) नय की अपेक्षा सिद्धक्षेत्र में सिद्ध होने वाले जीवों का अल्पबहुत्व नहीं है। अब–भूतपर्व नय की अपेक्षा विचार करते हैं–क्षेत्रसिद्ध जीव दो प्रकार के हैं–जन्मसिद्ध और संहरण सिद्ध। इनमें से संहरणसिद्ध जीव सबसे अल्प हैं। इनसे जन्मसिद्ध जीव संख्यात गुणे हैं। क्षेत्रों का विभाग इस प्रकार है–कर्मभूमि, अकर्मभूमि, समुद्र, द्वीप, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक; इनमें से ऊर्ध्वलोक सिद्ध सबसे स्तोक हैं। इनसे अधोलोक सिद्ध संख्यातगुणे है, इनसे तिर्यग्लोक सिद्ध संख्यातगुणे है। समुद्रसिद्ध सबसे स्तोक हैं। इनसे द्वीपसिद्ध संख्यात गुणे हैं। यह सामान्यरूप से कहा है। विशेषरूप से विचार करने पर लवण–समुद्र सिद्ध सबसे स्तोक हैं। इनसे कालोद सिद्ध संख्यातगुणे हैं। इनसे जम्बूद्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं। इनसे धातकीखंडद्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं। इनसे पुष्करार्द्धद्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं।

व्यवहारनय से उत्सर्पिणी काल में सिद्ध होने वाले अल्प हैं और अवसर्पिणी काल में सिद्ध होने वाले उनसे कुछ अधिक हैं। अनुत्सर्पिणी अनवसर्पिणी काल में सिद्ध होने वाले उनसे संख्यातगुणे हैं।

ऐसे ये सिद्ध भगवान आठों कर्मों से छूटकर मुख्य आठ गुणों से समन्वित हैं। ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर विराजमान हैं अर्थात् लोकाकाश के अग्रभाग में विराजमान हैं न कि लोकाकाश के ऊपर अलोकाकाश में, क्योंकि आगे 'धर्मास्तिकाय' का अभाव होने से तथा अलोकाकाश जीवों का अस्तित्व न होने से सिद्ध भगवान भी लोकाकाश में ही हैं ऐसा समझना।

ये सभी सिद्ध भगवान अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालों की अपेक्षा अनंतानंत हैं। उन सभी सिद्धों की वंदना करते हुये, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधिलाभ–रत्नत्रय की प्राप्ति और पूर्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिपूर्वक करण हो एवं हे भगवन् ! आपके गुणों की संपत्ति मुझे प्राप्त हो या जिनेंद्र भगवान के गुणों की प्राप्ति होवे, यही याचना की गई है।

कृतिकर्म विधि के प्रमाण

(विभिन्न ग्रंथों से)

(जैन साधु एवं श्रावकों के लिए)

अमृतवर्षिणी टीका–

कषायप्राभृत ग्रंथ में कहा है—

जिण-सिद्धाइरिय-बहुसुदेसु वंदिज्जमाणेसु जं कीरइ कम्मं तं किदियम्मं णाम। तस्स आदाहीण-तिक्खुत्त-पदाहिण-तिओणद-चदुसिर-वारसावत्तादि-लक्खणं विहाणं फलं च किदियम्मं वण्णेदि।[1]

जिनदेव, सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय की वन्दना करते समय जो क्रिया की जाती है उसे कृतिकर्म कहते हैं । उस कृतिकर्म के आत्माधीन होकर किए गए तीन बार प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार नमस्कार और बारह आवर्त आदि रूप लक्षण, भेद तथा फल का वर्णन कृतिकर्म प्रकीर्णक करता है।

षट्खण्डागम पुस्तक-१ से प्रमाण—

किदियम्मं अरहंत-सिद्ध-आइरिय-बहुसुद-साहूणं पूजाए विहाणं वण्णेइ[2]**।**

कृतिकर्म नाम का अर्थाधिकार अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु की पूजा आदि की विधि का वर्णन करता है।

षटखण्डागमः पुस्तक-९ से प्रमाण—

किदियम्मं अरहंत-सिद्धाइरिय-उवझाय-गणचिंतय-गणवसहाईणं कीरमाण-पूजाविहाणं वण्णेदि। एत्थुववुज्जंती गाहा-

दुओणदं जहाजादं बारसावत्तमेव वा।
चउसीसं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजए[3]**।।६४।।**

कृतिकर्म अधिकार अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गणचिन्तक (साधुसंघ के कार्यों की चिन्ता करने वाले) और गणवृषभ (गणधर) आदिकों की, की जाने वाली पूजा के विधान का वर्णन करता है। यहाँ उपयुक्त गाथा—

यथाजात अर्थात् जातरूप के सदृश क्रोधादि विकारों से रहित होकर दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धियों से संयुक्त कृतिकर्म का प्रयोग करना चाहिये ।।६४।।

---

1. जयधवला (कषायपाहुड़) पृ. 118। 2. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक–1 पृ. 98।
3. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक–9 पृ. 19।

गोम्मटसार जीवकाण्ड ग्रंथ से प्रमाण—

कृतेः क्रियायाः कर्म-विधानं अस्मिन् वर्ण्यते इति कृतिकर्म । तच्च अर्हत्सिद्धाचार्य-बहुश्रुतसाध्वादिनव-देवतावन्दनानिमित्तमात्माधीनताप्रादक्षिण्यत्रिवारत्रिनवतिचतुःशिरो द्वादशावर्तादिलक्षणनित्य-नैमित्तिकक्रियाविधानं च वर्णयति।[1]

जिसमें कृति अर्थात् क्रिया का कर्म—विधान कहा जाता हैं, वह क्रियाकर्म है। उसमें अरहन्त, सिद्ध-आचार्य, बहुश्रुत (उपाध्याय), साधु आदि नौ देवताओं की वन्दना के निमित्त आत्माधीनता (अपने अधीन होना) , तीन बार प्रदक्षिणा, तीन बार नमस्कार, चार बार सिर नमाना, बारह आवर्त आदि रूप नित्य-नैमित्तिक क्रिया-विधान का वर्णन होता है।

षट्खण्डागम ग्रंथ में कहा है—

जं तं किरियाकम्मं णाम ।।२७।।

तस्स अत्थविवरणं कस्सामो—

तमादाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम।।२८।

तं किरियाकम्मं छव्विहं आदाहीणादिभेदेण । तत्थ किरियाकम्मे कीरमाणे अप्पा-यत्तत्तं अपरवसत्तं **आदाहीणं** णाम। पराहीणभावेण किरियाकम्मं किण्ण कीरदे ? ण ; तहा किरियाकम्मं कुणमाणस्स कम्मक्खयाभावादो जिणिंदादिअच्चासणदुवारेण कम्म-च। वंदणकाले गुरुजिणजिणहराणं पदक्खिणं काऊण णमंसणं **पदाहीणं** णाम। पदाहिणणमंसणादिकिरियाणं तिण्णिवारकरणं **तिक्खुत्तं** णाम। अधवा एक्कम्हि चेव दिवसे जिणगुरुरिसिवंदणाओ तिण्णिवारं किज्जंति त्ति **तिक्खुत्तं** णाम। तिसंज्झासु चेव वंदणा कीरदे अण्णत्थ किण्ण कीरदे ? ण; अण्णत्थ वि तप्पडिसेहणियमाभावादो। तिसंज्झासु वंदणणियमपरूवणट्ठं तिक्खुत्तमिदि भणिदं। ओणदं अवनमनं भूमावासनमित्यर्थः। तं च तिण्णिवारं कीरदे त्ति **तियोणदमिदि** भणिदं। तं जहा-सुद्धमणो धोदपादो जिणिंददंसण-जणिदहरिसेण पुलइदंगो संतो जं जिणस्स अग्गे बइसदि तमेगमोणदं। जमुट्ठिऊण जिणिंदादीणं विण्णत्तिं कादूण बइसणं तं बिदियमोणदं। पुणो उट्ठिय सामाइयदंडएण अप्पसुद्धिं काऊणसकसायदेहुस्सग्गं करिय जिणाणंतगुणे ज्झाइय चउवीसतित्थयराणं वंदणं काऊण पुणो जिणजिणालयगुरवाणं संथवं काऊण जं भूमीए बइसणं तं तदियमोणदं। एवं एक्केक्कम्हि किरियाकम्मे कीरमाणे तिण्णि चेव ओणमणाणि होंति । सव्वकिरियाकम्मं चदुसिरं होदि। तं जहा—सामाइयस्स आदीए जं जिणिंदं पडि सीसणमणं तमेगं सिरं । तस्सेव अवसाणे जं सीसणमणं तं विदियं सीसं। थोस्सामिदंडयस्स आदीए जं सीसणमणं तं तदियं सिरं। तस्सेव अवसाणे जं णमणं तं चउत्थं सिरं । एवमेगं किरियाकम्मं **चदुसिरं** होदि। ण अण्णत्थ णवणपडिसेहो

1. गोम्मटसार जीवकाण्ड-जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका पृ. 614-615।

एदेण कदो, अण्णत्थणवणणियमस्स पडिसेहाकरणादो। अधवा सव्वं पि किरियाकम्मं चदुसिरं चदुप्पहाणं होदि ; अरहंतसिद्धसाहुधम्मे चेव पहाणभूदे कादूण सव्वकिरियाकम्माणं पउत्ति-दंसणादो। सामाइयथोस्सामिदंडयाणं आदीए अवसाणे च मणवयणकायाणं विसुद्धिपरावत्तणवारा बारम हवंति। तेण एगं किरियाकम्मं **बारसावत्तमिदि** भणिदं । एदं **सव्वं पि किरियाकम्मं णाम।**[1]

अब क्रिया कर्म का अधिकार है ।।२७।।

इसके अर्थ का खुलासा अगले सूत्र में करते हैं—

आत्माधीन होना, प्रदक्षिणा करना, तीन बार करना, तीन बार अवनति, चार बार सिर नवाना और बारह आवर्त, यह सब क्रियाकर्म है ।।२८।।

आत्माधीन होना आदि के भेद से वह क्रियाकर्म छह प्रकार का है। उनमें से क्रियाकर्म करते समय आत्माधीन होना अर्थात् परवश न होना आत्माधीन होना कहलाता है।

शंका—पराधीनभाव से क्रियाकर्म क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकार क्रियाकर्म करने वाले के कर्मों का क्षय नहीं होता और जिनेंद्रदेव आदि की आसादना होने से कर्मों का बन्ध होता है।

वंदना करते समय गुरु, जिन और जिनगृह की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करना प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदि क्रियाओं का तीन बार करना त्रिःकृत्वा है। अथवा एक ही दिन में जिन, गुरु और ऋषियों की वंदना तीन बार की जाती है, इसलिये इसका नाम त्रिःकृत्वा है।

शंका—तीनों ही संध्याकालों में वंदना की जाती है, अन्य समय में क्यों नहीं की जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्य समय में भी वंदना के प्रतिषेध का कोई नियम नहीं है।

तीनों सन्ध्या कालों में वंदना के नियम का कथन करने के लियें 'त्रिःकृत्वा' ऐसा कहा है।

'ओणद' का अर्थ अवनमन अर्थात् भूमि में बैठना है। वह तीन बार किया जाता है। इसलिये तीन बार अवनमन करना कहा है। यथा—शुद्धमन, धौतपाद और जिनेंद्र के दर्शन से उत्पन्न हुये हर्ष से पुलकित वदन होकर जो जिनदेव के आगे बैठना, यह प्रथम अवनति है। तथा जो उठकर जिनेंद्र आदि के सामने विज्ञप्ति कर बैठना, यह दूसरी अवनति है। फिर उठकर सामायिक दण्डक के द्वारा आत्मशुद्धि करके, कषायसहित देह का उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) करके, जिनदेव के अनन्त गुणों का ध्यान करके, चौबीस तीर्थंकरों की वंदना करके फिर जिन, जिनालय और गुरु की स्तुति करके जो भूमि में बैठना, वह तीसरी अवनति है। इस प्रकार एक-एक क्रियाकर्म करते समय तीन ही अवनति होती हैं।

सब क्रियाकर्म चतुःशिर होता है। यथा—सामायिक के आदि में जो जिनेंद्रदेव को सिर नवाना

---

1. षट्खण्डागम, धवला टीका सहित पु. 13, पृ. 88 से 90 तक।

वह एक सिर है। उसी के अन्त में जो सिर नवाना वह दूसरा सिर है। 'थोस्सामि' दण्डक के आदि में जो सिर नवाना वह तीसरा सिर है। तथा उसी के अन्त में जो नमस्कार करना वह चौथा सिर है। इस प्रकार एक क्रियाकर्म चतुःशिर होता है। इससे अन्यत्र नमन का प्रतिषेध नहीं किया गया है क्योंकि शास्त्र में अन्यत्र नमन करने के नियम का कोई प्रतिषेध नहीं है। अथवा सभी क्रियाकर्म चतुःशिर अर्थात् चतुःप्रधान होता है, क्योंकि अरिहंत, सिद्ध, साधु और धर्म को प्रधान करके सब क्रियाकर्मों की प्रवृत्ति देखी जाती है। सामायिक और थोस्सामि दण्डक के आदि और अन्त में मन, वचन और काय की विशुद्धि के परावर्तन बारह बार होते हैं, इसलिये एक क्रियाकर्म बारह आवर्त से युक्त कहा है। यह सब ही क्रियाकर्म है।

मूलाचार में कहा है—

दोणदं तु जधाजादं बारसावत्तमेव य।
चदुस्सिरं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजदे[1]।।६०३।।

गाथार्थ—**जातरूप सदृश (मुनि[2]) दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धि सहित कृतिकर्म का प्रयोग करें।।६०३।।**

आचारवृत्ति टीका—

दोणदं—द्वे अवनती पंचनमस्कारादावेकावनतिर्भूमिसंस्पर्शस्तथा चतुर्विंशतिस्तवादौ द्वितीयाऽवनतिः शरीरनमनं द्वे **अवनती जहाजादं**-यथाजातं जातरूपसदृशं क्रोधमान-मायासंगादिरहितं । **बारसावत्तमेव य** द्वादशावर्त्ता एवं च पंचनमस्कारोच्चारणादौ मनोवचनकायानां संयमनानि शुभयोगवृत्तयस्त्रय आवर्त्तास्तथा पंचनमस्कारसमाप्तौ मनोवचनकायानां शुभवृत्तयस्त्रीण्यन्यान्यावर्त्तनानि तथा चतुर्विंशतिस्तवादौ मनोवचनकायाः शुभवृत्तयस्त्रीण्यपराण्यावर्त्तनानि तथा चतुर्विंशतिस्तवसमाप्तौ शुभमनोवचनकायवृत्तय-स्त्रीण्यावर्त्तनान्येवं द्वादशधा मनोवचनकायवृत्तयो द्वादशावर्त्ता भवति, अथवा चतसृषु दिक्षु चत्वारः प्रणामा एकस्मिन् भ्रमणे एवं त्रिषु भ्रमणेषु द्वादश भवंति, **चदुस्सिरं** चत्वारि शिरांसि पंचनमस्कारस्यादावंते च करमुकुलांकितशिरःकरणं तथा चतुर्विंशति-स्तवस्यादावंते च करमुकुलांकितशिरःकरणमेवं चत्वारि शिरांसि भवंति, **त्रिशुद्धं** मनोवचनकायशुद्धं क्रियाकर्म प्रयुंक्ते करोति । द्वे अवनती यस्मिन् तत् द्व्यवनति क्रियाकर्म द्वादशावर्त्ताः यस्मिंस्तत् द्वादशावर्त्तं, मनोवचनकायशुद्ध्या चत्वारि शिरांसि यस्मिन् तत् चतुःशिरः क्रियाकर्मैवं विशिष्टं यथाजातं क्रियाकर्म प्रयुंजीतेति।।६०३।।

आचारवृत्ति (हिन्दी)—दो अवनति—पंच नमस्कार के आदि में एक बार अवनति अर्थात् भूमि स्पर्शनात्मक नमस्कार करना तथा चतुर्विंशति स्तव के आदि में दूसरी बार अवनति—शरीर का नमाना

---

1. मूलाचार, पृ. 442 से 444 तक। 2. यहाँ मूलाचार में मुनियों का प्रकरण है।

अर्थात् भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना ये दो अवनति हैं। यथाजात—जातरूप सदृश क्रोध,मान,माया और संग—परिग्रह या लोभ आदि रहित कृतिकर्म को मुनि करते हैं। द्वादश आवर्त—पंच नमस्कार के उच्चारण के आदि में मन वचन काय के संयमनरूप शुभयोगों की प्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त, पंचनमस्कार की समाप्ति में मनवचनकाय की शुभप्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त, तथा चतुर्विंशतिस्तव की आदि में मन वचन काय की शुभप्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त एवं चतुर्विंशतिस्तव की समाप्ति में शुभ मन वचन काय की प्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त—ऐसे मन वचन काय की शुभप्रवृत्तिरूप बारह आवर्त होते हैं।

चतुःशिर—पंचनमस्कार के आदि और अन्त में कर मुकुलित करके अंजलि जोड़कर माथे से लगाना तथा चतुर्विंशतिस्तव के आदि और अन्त में मुकुलित करके माथे से लगाना ऐसे चार शिर—शिरोनति होती हैं।

इस तरह से एक कृतिकर्म में दो अवनति, बारह आवर्त और चार शिरोनमन होते हैं। मन वचन काय की शुद्धिपूर्वक यथाजात मुनि इस विधानयुक्त कृतिकर्म का प्रयोग करें।

आचारसार[1] ग्रंथ में कहा है—

क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहम्।
विज्ञाप्येति समुत्थाय गुरुस्तवनपूर्वकम्।।३५।।
कृत्वा करसरोजातमुकुलालंकृतं निजम्।
भाललीलासरः कुर्यात् त्र्यावर्त्तां शिरसो नतिं।।३६।।

अन्वयार्थ—(अस्यां) इस **(क्रियायां)** क्रिया में **(अस्याः)** इस **(भक्तेः)** भक्ति का **(व्यत्सर्गं)** कायोत्सर्ग **(अहं)** मैं **(करोमि)** करता हूं **(इति)** इस प्रकार **(विज्ञाय)** विज्ञापन करके **(समुत्थाय)** उठकर **(गुरुस्तवनपूर्वकम्)** गुरु स्तवन पूर्वक **(निजं)** अपने **(करसरोजातमुकुलालंकृतं)** हस्त कमल की कुड्मलाकृति को **(भाललीलासरः)** ललाट पर **(कृत्वा)** करके **(त्र्यावर्त्तां)** तीन आवर्त और **(शिरसः)** मस्तक से **(नतिं)** नमस्कार को **(कुर्यात्)** करे ।

भावार्थ—मैं इस क्रिया में इस भक्ति का कायोत्सर्ग करता हूं। जैसे—पौर्वाण्हिक देववंदना में "चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं" इस प्रकार विज्ञापन करे । तदनंतर उठकर "णमो अरिहंताणं" इत्यादि पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर अपने कर–कमल की अंजुलि को मस्तक पर रखकर तीन आवर्त सहित नमस्कार करे ।।३५-३६।।

आद्यस्य दंडकस्यादौ मंगलादेरयं क्रमः।
तदन्तेऽप्यंगव्युत्सर्गः कार्योतस्तदनन्तरम्।।३७।।

---

1. आचारसार पृ. 191-192।

कुर्यात्तथैव ''थोस्सामी'' त्याद्यार्याद्यंतयोरपि।
इत्यस्मिन् द्वादशावर्त्ताः शिरोनतिचतुष्टयम्।।३८।।युग्मं।।

अन्वयार्थ—(आद्यस्य) आदि **(दंडकस्य)** दंडक के **(आदौ)** आदि में **(मंगलादेः)** मंगलादि का **(अयं)** यह **(क्रमः)** क्रम है । **(तदन्ते)** चत्तारिमंगलं आदि दंडक के अन्त में **(अपि)** भी **(अंगव्युत्सर्गः)** कायोत्सर्ग **(कार्यः)** करना चाहिये। **(अतः)** इसलिए **(तदनन्तरं)** इसके बाद **(तथैव)** उसी प्रकार **(थोस्सामि)** थोस्सामि **(इत्यादि)** इत्यादि पाठ **(कुर्यात्)** करे **(इति)** इस प्रकार **(अस्मिन्)** कायोत्सर्ग में **(आर्याद्यन्तयोः)** आर्या छंद—थोस्सामि स्तवन के आदि और अन्त में **(अपि)** भी **(द्वादशावर्त्ताः)** बारह आवर्त **(शिरोनतिचतुष्टयं)** चार शिरोनति **(कुर्यात्)** करना चाहिये ।

भावार्थ—एक भक्ति के दंडक की आदि में मंगलादि का यही क्रम है अर्थात् भक्तिपूर्वक क्रिया और भक्ति का विज्ञापन करे । एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके दंडक पढ़े । दंडक के बाद एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके कायोत्सर्ग करे । तदनन्तर एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करे। इस प्रकार एक कायोत्सर्ग में चार शिरोनति और बारह आवर्त्त करना चाहिये ।।३७-३८।।

ग्रंथारंभे समाप्तौ च स्वाध्याये स्तवनादिषु।
सप्तविंशतिरुच्छ्वासा व्युत्सर्गे दुर्मनस्यपि।।३९।।

अन्वयार्थ—(स्वाध्याये) स्वाध्याय में **(च)** और **(स्तवनादिषु)** स्तवन आदि में **(दुर्मनसि अपि)** विकृति परिणाम के होने पर भी **(व्युत्सर्गे)** कायोत्सर्ग में **(सप्तविंशतिः)** सत्ताईस **(उच्छ्वासः)** उच्छ्वास हैं।

भावार्थ—ग्रन्थ के आरम्भ, समाप्ति, स्वाध्याय, पंचपरमेष्ठी की वन्दना और दुर्भावना के कायोत्सर्ग में सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिए ।।३९।।

चारित्रसार में कहा है—

क्रियां कुर्वाणो वीर्योपगूहनमकृत्वा शक्त्यनुरूपतः स्थितेनाशक्तः सन् पर्यंकासनेन वा त्रिकरणशुद्ध्या संपुटीकृतकरः क्रियाविज्ञापनपूर्वकं सामायिक-दंडकमुच्चारयेत् , तदावर्त्तत्रयं यथाजातं शिरोन्नमनमेकं भवति, अनेन प्रकारेण सामायिकदंडकसमाप्तावपि प्रवर्त्य यथोक्तकालं जिनगुणानुस्मरणसहितं कायव्युत्सर्गं कृत्वा द्वितीयदण्डकस्यादावन्ते च तथैव प्रवर्त्तनं, एवमेकैकस्य कायोत्सर्गस्य द्वादाशावर्त्ताश्चत्वारि शिरोवनमनानि भवन्ति । अथवैकस्मिन् प्रदक्षिणीकरणे चैत्यादीनामभिमुखीभूतस्याऽऽवर्त्तत्रयैकावनमने कृते चतसृष्वपि दिक्षु द्वादशावर्त्ताश्चतस्रः शिरोवनतयो भवन्ति । आवर्त्तानां शिरःप्रणतीनामुक्तप्रमाणा-दाधिक्यमिति न दोषाय। उक्तं च —

दुउणदं जहाजादं वारसावत्तमेव च। चदुस्सिरं तिसुद्धिं च किदियम्मं पउंजदे।।[1]

1. चारित्रसार पृ. 143 से 144।

क्रिया करते समय अपनी शक्ति को कभी नहीं छिपाना चाहिये, अपनी शक्ति के अनुसार खड़े होकर कायोत्सर्ग करना चाहिये । यदि खड़े होने की सामर्थ्य न हो तो पर्यंकासन से बैठकर करना चाहिये। मन, वचन,काय तीनों की शुद्धतापूर्वक दोनों हाथों का संपुट बांधकर करने योग्य क्रियाओं की प्रतिज्ञा कर सामायिक दंडक के (सामायिक पाठ का) उच्चारण करना चाहिये । उस समय तीन आवर्त, यथाजात अवस्था धारण कर एक शिरोनति करना चाहिये । इसी प्रकार सामायिक दंडक के समाप्त होने पर भी सब क्रियाएं करनी चाहिये । इस तरह शास्त्रों में लिखे हुए समय तक भगवान् जिनेन्द्रदेव के गुणों का स्मरण करते हुए कायोत्सर्ग करना चाहिये । इसी प्रकार दूसरे दंडक के प्रारंभ और अंत में करना चाहिये। इस प्रकार एक-एक कायोत्सर्ग के बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं अथवा एक-एक प्रदक्षिणा में (दिशा बदलते समय) उस दिशा संबंधी चैत्य-चैत्यालय के सन्मुख तीन आवर्त और एक शिरोनति करनी चाहिये । इस प्रकार चारों दिशाओं में बारह आवर्त और चार शिरोनति करनी चाहिये । आवर्त और शिरोनति का जो प्रमाण ऊपर लिखा है उससे अधिक करना कुछ दोष नहीं गिना जाता । कहा भी है—दुउणदं इत्यादि ।

अर्थात्—दो आसनों से यथाजात अवस्था धारण कर बारह आवर्त, चार शिरोनति और मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक काल का नियम कर प्रभु की वंदना करनी चाहिये।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है—

अधुना सामायिकगुणसम्पन्नत्वं श्रावकस्य प्ररूपयन्नाह—

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामायिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी।।१८।।[1]

सामयिकः समयेन प्राक्प्रतिपादितप्रकारेण चरतीति सामायिकगुणोपेतः । किंविशिष्टः? **चतुरावर्तत्रितयः** चतुरो वारानावर्तत्रितयं यस्य । एकैकस्य हि कायोत्सर्गस्य विधाने 'णमो अरहंताणस्य थोस्सामे'-श्चाद्यन्तयोः प्रत्येकमावर्तत्रितयमिति एकैकस्य हि कायोत्सर्गविधाने चत्वार आवर्ता तथा तदाद्यन्तयोरे-कैकप्रणामकरणाच्चतुः प्रणामः स्थित ऊर्ध्वं कायोत्सर्गोपेतः । यथाजातो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहचिन्ताव्यावृत्तः। **द्विनिषद्यो** द्वे निषद्ये उपवेशने यस्य । देववन्दनां कुर्वता हि प्रारम्भे समाप्तौ चोपविश्य प्रणामः कर्तव्यः । त्रियोगशुद्धः त्रयो योगा मनोवाक्कायव्यापाराः शुद्धा सावद्यव्यापाररहिता यस्य । **अभिवन्दी** अभिवन्दत इत्येवंशीलः । कथं ? त्रिसंध्यं ।।१८।।

अब वह श्रावक सामायिक गुण से संपन्न होता है, यह कहते हैं—

चतुरावर्तेति—(यः) जो **(चतुरावर्तत्रितयः)** चार बार तीन तीन आवर्त करता है, **(चतुःप्रणामः)** चार प्रणाम करता है, **(स्थितः)** कायोत्सर्ग से खड़ा होता है, **(यथाजातः)**

---

1. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (समन्तभद्र-भारती) पृ. 241-242।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी होता है, (**द्विनिषद्यः**) दो बार बैठकर नमस्कार करता है (**त्रियोगशुद्धः**) तीनों योगों को शुद्ध रखता है और (**त्रिसन्ध्यं**) तीनों सन्ध्याओं में (**अभिवन्दी**) वन्दना करता है (**सः**) वह (**सामायिकः**) सामायिक प्रतिमाधारी है।

टीकार्थ—इस श्लोक में सामायिक प्रतिमा का लक्षण बतलाते हुए उसकी विधि का भी निर्देश किया गया है। सामायिक करने वाला पुरुष एक-एक कायोत्सर्ग के बाद चार बार तीन-तीन आवर्त करता है अर्थात् प्रत्येक दिशा में 'णमो अरहंताणं' इस आद्य सामायिक दण्डक और 'थोस्सामि हं' इस अन्तिम स्तव दण्डक के तीन-तीन आवर्त और एक-एक प्रणाम इस तरह बारह आवर्त और चार प्रणाम करता है। श्रावक इन आवर्तादिक की क्रियाओं को खड़े होकर करता है, सामायिक की अवधि के भीतर यथाजात—नग्नमुद्राधारी के समान बाह्याभ्यन्तर परिग्रह की चिन्ता से दूर रहता है। 'देववन्दना' करने वाले को प्रारम्भ में और समाप्ति में बैठकर प्रणाम करना चाहिये। इस विधि के अनुसार दो बार बैठकर प्रणाम करता है अर्थात् सामायिक प्रारम्भ करने के लिये प्रथम बार कायोत्सर्ग कर तीन आवर्त करता है, उसके बाद बैठकर पृथ्वी में शिर झुकाता हुआ नमस्कार करता है और सामायिक के बाद कायोत्सर्ग करता है, उसके बाद भी बैठकर पृथ्वी में शिर झुकाता हुआ नमस्कार करता है। तीनों योगों को शुद्ध रखता है अर्थात् वह सावद्य व्यापार का त्याग करता है और तीनों संध्याओं में वन्दना करता है।

अनगारधर्मामृत में कहा है—

सामायिकादित्रयस्य व्यवहारानुसारेण प्रयोगविधिं दर्शयति—

सामायिकं णमो अरहंताणमिति प्रभृत्यथ स्तवनम्।
थोस्सामीत्यादि जयति भगवानित्यादिवन्दनां युंज्यात्।।५६।।[1]

युंज्यात् संयतो देशसंयतो वा प्रयोजयेत् । किं तत् ? **सामायिकं** सामायिकदण्डकम्। कीदृशम्? **णमो अरहंताणं इति प्रभृति** । तथानन्तरं युञ्ज्यात् । किं तत् ? स्तवनं चतुर्विंशतिस्तवनं स्तवदण्डकम्। कीदृशम् ? **थोस्सामि इत्यादि**। अथ अनतंरं युञ्ज्यात् । काम् ? **जयति भगवानित्यादिवन्दनाम्**। अत्रैक आदिशब्दो लुप्तनिर्दिष्टो द्रष्टव्यः । तेन अर्हत्सिद्धादिवन्दना गृह्यते ।

संयमी साधुओं को तथा देशसंयमी श्रावकों को भी णमो अरहंताणं आदि सामायिक दण्डक में बताये हुये पाठ के अनुसार सामायिक और थोस्सामि इत्यादि पाठ के अनुसार चतुर्विंशतिस्तव तथा "जयति भगवान्" इत्यादि के अनुसार वन्दना करनी चाहिये।

इस श्लोक में एक आदि शब्द का लुप्त निर्देश है। अतएव इस वन्दना के प्रकरण में अरहंत वन्दना, सिद्ध वन्दना आदि का भी संग्रह समझ लेना चाहिये।

---

1. अनगार धर्मामृत पृ. 577।

विशेष—इस प्रकार श्रावक और श्राविकाएँ देवदर्शन, अभिषेक, पूजन व सामायिक में पूर्वकथित 'कृतिकर्म विधि' का प्रयोग करें क्योंकि अनगारधर्मामृत में "युंज्यात् संयतो देशसंयतो वा" आया है। इस कथन से श्रावकों के लिए भी करना कहा है।

मुनियों के कृतिकर्म

षट्खण्डागम, कसायपाहुड़, मूलाचार, आचारसार आदि महान ग्रंथों में आचार्यदेव श्री पुष्पदंत-भूतबलिसूरि, श्री कुंदकुंददेव, मूलाचार के टीकाकार सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री वसुनंदि आचार्य, आचारसार ग्रंथ के कर्ता सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री वीरनन्दि आचार्य आदि अनेक आचार्यों ने—यह कृतिकर्म विधि बतलाई है तथा चारित्रसार ग्रंथ के कर्ता श्री चामुण्डराय श्रावक व अनगारधर्मामृत के कर्ता पण्डितप्रवर श्री आशाधर श्रावक जैसे विद्वानों ने भी पूर्वाचार्यों के अनुसार यथास्थान पूर्वाचार्यों के ग्रंथों के प्रमाण उद्धृत कर-कर इन क्रियाओं की पुष्टि की है।

मुख्यरूप से ये कृतिकर्म मुनियों के व आर्यिकाओं के अहोरात्र—दिनरात के अट्ठाईस माने हैं। उसी में त्रिकालदेववंदना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति के दो-दो ऐसे २ × ३ = ६ कृतिकर्म देववंदना अर्थात् सामायिक के माने हैं। दैवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण के चार-चार व चार समय के स्वाध्याय के तीन-तीन तथा रात्रियोग प्रतिष्ठापन व निष्ठापन के दो ऐसे ६ + ८ + १२ + २ = २८ कृतिकर्म कहे हैं।[१]

इनका विस्तृत वर्णन मुनिचर्या नाम की पुस्तक में प्रयोगविधि में दिया गया है।

व्रती श्रावकों के कृतिकर्म

क्षुल्लक, ऐलक की आवश्यक क्रियायें—

उद्दिष्टत्यागी क्षुल्लक, ऐलक और अनुमतित्यागी दसवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकों के लिए भी इन्हीं अट्ठाईस कायोत्सर्गरूप कृतिकर्म का विधान है। यथा-

वंदना त्रितये काले, प्रतिक्रांते द्वयं तथा।
स्वाध्यायानां चतुष्कं च, योगिभक्तिद्वयं पुनः।।
उत्कृष्टश्रावकेनामूः कर्तव्या यत्नतोऽन्वहं।
षडष्टौ द्वादश द्वे च, क्रमशोऽमूषु भक्तयः।।

त्रिकाल वंदना में छह, प्रातःकाल-सायंकाल दोनों समय के प्रतिक्रमण में आठ, चार स्वाध्याय में बारह और योगिभक्ति में दो ऐसी ६ + ८ + १२ + २ = २८ भक्तियाँ कायोत्सर्ग सहित क्रम से उत्कृष्ट श्रावकों को प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। यही क्रिया क्षुल्लिकाओं के लिए भी समझनी चाहिए।

---

१. मूलाचार गाथा ६०२, अनगार धर्मामृत आदि।

सामान्य श्रावक के कृतिकर्म

सामान्य श्रावकों के लिए देवपूजा जो विधिवत् की जाती है, उसमें सिद्ध, चैत्य, पंचगुरु व शांति भक्ति इन चार भक्ति संबंधी चार कृतिकर्म अवश्य करने चाहिए। पुनः मध्यान्ह व सायं सामायिक में दो-दो कृतिकर्म ऐसे ८ कृतिकर्म होते हैं।

जिनवाणी वंदना

श्रुतदेवी बारह अंगों से, निर्मित जिनवाणी मानी है।
सम्यग्दर्शन है तिलक किया, चारित्र वस्त्र परिधानी है।।
चौदह पूर्वों के आभरणों से, सुंदर सरस्वती माता।
इस विध से द्वादशांग कल्पित, जिनवाणी सरस्वती माता।।1।।

श्रुत 'आचारांग' कहा मस्तक, मुख 'सूत्रकृतांग' सरस्वति का।
ग्रीवा है 'स्थानांग' कहा, श्री जिनवाणी श्रुतदेवी का।।
'समवाय अंग' 'व्याख्या प्रज्ञप्ती', माँ की उभय भुजाएं हैं।
द्वय 'ज्ञातृकथांग' 'उपासकाध्ययनांग' स्तन कहलाये हैं।।2।।

नाभी है 'अंतकृद्दशांग' वर नितंब 'अनुत्तरदशांग' है।
वर 'प्रश्नव्याकरण अंग' मात का, जघनभाग कहते श्रुत हैं।।
पादद्वय 'विपाकसूत्रअंग' 'दृष्टिवादांग' कहें श्रुत में।
'सम्यक्त्व' तिलक हैं अलंकार, चौदह पूरब मानें सच में।।3।।

'चौदहों प्रकीर्णक' श्रुत वस्त्रों में, बने बेल-बूटे सुंदर।
ऐसी ये सरस्वती माता, जो द्वादशांगवाणी सुखकर।।
संपूर्ण पदार्थों के ज्ञाता, तीर्थंकर की जो दिव्यध्वनी।
सब द्रव्यों के पर्यायों की, 'श्रुतदेवी' अधिष्ठात्रि मानी।।4।।

-गणिनी ज्ञानमती

सामायिक दण्डकः

(संस्कृत एवं हिन्दी टीका)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।[१]

टीका–अरिहननाद्रजोहननाद्रहस्याभावाच्च परिप्राप्तानंतचतुष्टयस्वरूपाः, शतेन्द्रादिविनिर्मिता-मतिशयवतीं पूजामर्हंतीत्यर्हंतः–

घातिक्षयजमनन्तज्ञानादिचतुष्टयं विभूत्याढ्यम्।
येषामस्त्यर्हन्तस्तेत्र जिनेन्द्राः समुद्दिष्टाः।।१।।

विशिष्टशुक्लध्यान[२]महोदयान्निखिलकर्मापाये सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान् साधितवन्तो ये ते सिद्धाः—

शुक्लध्यानविशेषान्निरस्तनिःशेषकर्मसंघाताः।
सम्यक्त्वादिगुणाढ्याः सिद्धाः सिद्धिं प्रयच्छन्तु।।२।।

सामायिक दण्डक का हिन्दी अनुवाद

अमृतवर्षिणी टीका–

''णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।१।।'' इस महामंत्र में जिनको नमस्कार किया है, उन अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के गुणों का स्पष्टीकरण ग्रंथकार श्री प्रभाचन्द्र देव करते हैं।[३]

प्रथमतः अरिहन्त शब्द का निरुक्तिपूर्वक स्पष्टीकरण—मैं अरिहंत परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ। मोहनीय कर्म को 'अरि' कहते हैं। इसका घात–नाश करने से तथा ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों की रजसंज्ञा और रहस्य अन्तरायकर्म की संज्ञा है, इन सबका अभाव होने से जिनेन्द्र भगवान अरिहंत कहे गये हैं। अर्थात् मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय इन चार कर्मों का हनन करने से प्रभु को अरिहंत नाम प्राप्त हुआ है। उपर्युक्त चार घातिकर्मों का नाश करने से उन्हें अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त शक्ति ये चार गुण प्रकट हो गये हैं। भगवान का अर्हन् भी नाम है। अर्ह धातु से अर्हन् शब्द निष्पन्न हुआ है। अर्ह का अर्थ पूजायोग्य होना—इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्त्यादिकों से की हुई अतिशय प्रभावना युक्त पूजा को प्राप्त हुए जिनेन्द्र को अर्हन् कहते हैं।

अर्थात् घातिकर्मों का क्षय होने से उत्पन्न हुए समवसरण, चौंसठ चामर, तीन छत्र, सिंहासन विभव की पूर्णता के साथ अनन्तचतुष्टय जिनको हैं, वे अर्हन्त हैं वे ही यहाँ जिनेन्द्र कहे गये हैं।।१।।

---

१. क्रियाकलाप, पृ. १४२ से १४७ तक। २. माहात्म्यान इत्यपि पाठः। ३. सामायिक भाष्य पृ. ८६ से ९९ तक।

स्वयं पंचधाचारमाचरंति शिष्यांश्चाचारयंति ये ते आचार्याः—

पंचधाचरन्त्याचारं शिष्यानाचारयंति च।
सर्वशास्त्रविदो धीरास्तेत्राचार्याः प्रकीर्तिताः।।३।।

ये स्वयं पंचाचारमाचरन्ति नान्यानाचारयन्त द्वादशांगादिशास्त्रं तु शिष्यानध्यापयंति ते उपाध्यायाः। उपेत्य अधीयते मोक्षार्थं शास्त्रमेतेभ्य इति व्युत्पत्तेः–

दिशंति द्वादशांगादिशास्त्रं लोभादिवर्जिताः।
स्वयं शुद्धव्रतोपेता उपाध्यायास्तु ते मताः।।४।।

शिष्याणां दीक्षादिदानाध्यापनपराङ्मुखाः सकलकर्मोन्मूलनसमर्था मोक्षमार्गानुष्ठानपरा ये ते साधवः। सिद्धिं साधयंति साधयिष्यंतीति वा साधवः–

ये व्याख्यांति न शास्त्रं न ददति दीक्षादिकं च शिष्याणाम्।
कर्मोन्मूलनशक्ता ध्यानरतास्तेत्र साधवो ज्ञेयाः।।५।।

सर्वशब्दः साधूनां विशेषणं, सर्वे च ते साधवश्चेति। तेषां अर्हदादीनां संबंधी नमो नमस्कारोऽस्तु। नमःशब्दयोगे चतुर्थी प्राप्नोतीति चेन्न प्राकृते चतुर्थ्या विधानासंभवात्। यदि वा पंचानामपि परमेष्ठिनां

व्युपरतक्रियानिवर्ति नामक चतुर्थ शुक्लध्यान के माहात्म्य से संपूर्ण कर्मों का नाश होने से सम्यक्त्वादिक आठ गुणों को जिन्होंने साध्य किया है, उन्हें सिद्ध परमेष्ठी कहना चाहिये।

अर्थात् शुक्लध्यान की विशेषता से जिन्होंने सम्पूर्ण कर्मसमूह नष्ट कर दिये हैं तथा जो सम्यक्त्वादि गुणों के अधिपति हुए हैं, वे सिद्धपरमात्मा हमें सिद्धि—मोक्ष प्रदान करें।।२।।

स्वयं पांच आचारों का पालन करते हैं तथा शिष्यों को पालन कराते हैं वे आचार्य परमेष्ठी हैं।

जो दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार इन पाँच आचारों का स्वयं पालन करते हैं तथा शिष्यों को भी पालन कराते हैं, जो सर्व शास्त्रों के ज्ञाता और धीर–उपसर्गादिकों को सहते हैं, वे आचार्य परमेष्ठी हैं।।३।।

जो आचारादि बारह अंगों का, उत्पादादि चौदह पूर्वों का तथा सामायिकादि अंगबाह्य शास्त्रों का ज्ञान शिष्यों को प्रदान करते हैं, उनको उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। मोक्षप्राप्ति की इच्छा मन में धारण कर जिनके संनिध आकर अध्ययन किया जाता है, वे उपाध्याय परमेष्ठी कहलाते हैं। इन वाक्यों का स्पष्टीकरण—

अर्थ—शिष्यों से अपने को कुछ लाभ होवे ऐसी इच्छा जिनको नहीं है तथा जगत में अपनी कीर्ति फैलाने की भी जिनके मन में इच्छा नहीं है। जो निःस्पृह होकर वात्सल्य से शिष्यों के हितार्थ द्वादशांगादि शास्त्रों का ज्ञान उनको देते हैं वे उपाध्याय पद के धारक मुनिराज हैं। वे अपने अहिंसादि महाव्रतों की रक्षा करते हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं।

लुप्तविभक्तिकः सर्वशब्दो लोकशब्दश्च विशेषणं। ततो णमो लोए सव्व अरहंताणमित्यादिः संबंधः कर्तव्यः। नन्वर्हदादयः संज्ञाभेदाः किं नानात्मनामेते संभवंति किं वा एकस्यापीति चेत् , अर्हदादिलक्षणोपेतत्वे एकस्य नानात्मनां च तत्संज्ञाभेदाविरोधः। एकस्य तल्लक्षणभेदोऽपि कथं विरोधादिति चेन्नावस्थाभेद एकस्यापि तत्संभवाविरोधात् तल्लक्षणभेदश्चोक्तः प्रागिति।

चत्तारि मंगलं–अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं,
साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

टीका–अर्हदादयश्चत्वारो भव्यानां मलगालनहेतुत्वात् मंगं सुखं तत्प्राप्तिहेतुत्वाद्वा मंगलम्। आचार्योपाध्याययोः पृथग्मंगलत्वप्रसङ्गाचत्वार इत्येतदयुक्तमिति चेन्न तयोर्निखिलकर्मोन्मूलन-समर्थध्यानपरत्वादिसाधुगुणोपेतत्वेन साधुष्वंतर्भावात्।

शिष्यों को जो दीक्षा देते नहीं, संघरक्षण नहीं करते हैं तथा शिष्यों को जो पढ़ाते नहीं हैं, दीक्षादानादिकार्यों से पराङ्मुख हो गये हैं, जो सर्व कर्मों को नष्ट करने में दत्तचित्त हैं, रत्नत्रयाराधना करने में सतत तत्पर रहते हैं, जो मोक्षमार्ग का आचरण करने में लीन हुए हैं वे साधु हैं। जो मोक्ष को सिद्ध करते हैं, जिन्होंने मोक्षसिद्धि प्राप्त की हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहना चाहिये।।५।।

जो शास्त्र का निरूपण करते नहीं, जो शिष्यों को दीक्षा, प्रायश्चित, व्रतादिक नहीं देते हैं, कर्मनाश करने में खूब प्रयत्नशील हैं, सतत आत्मध्यान में तत्पर रहते हैं, उनको साधु परमेष्ठी कहते हैं। यहाँ "सर्व" शब्द साधु का विशेषण है। उन सर्व अर्हदादिकों को मेरा नमस्कार हो अथवा सर्व शब्द तथा लोक शब्द भी पंचपरमेष्ठियों का विशेषण है। अतः मंत्र इस प्रकार कहना चाहिए। "**णमो लोए सव्व अरहंताणं। णमो लोए सव्व सिद्धाणं।**" इत्यादि।

शंका—ये अर्हदादि नाम अनेक आत्माओं के हैं अथवा एक ही आत्मा के ये अनेक नाम है ?

उत्तर—ये नाम एक व्यक्ति के अथवा अनेक व्यक्ति के भी होते हैं। उनमें कुछ विरोध नहीं हैं। अरहंत, सिद्ध आदि नाम विशिष्ट अवस्था के द्योतक हैं। अर्थात् एक आत्मा भी आचार्य, उपाध्याय, साधु, अरहंत और सिद्ध ऐसी अवस्थाएँ क्रम से धारण करता है। किंवा कोई आचार्य अवस्था, कोई उपाध्यायपदवी, कोई साधुदशा धारण करते हैं। अतः अनेक व्यक्तियों के भी ये नाम हो सकते हैं। ऊपर सब अवस्थाओं के लक्षण भी कहे हैं।

ये पूर्वकथित अर्हदादिक चार मंगल हैं, ऐसा कथन—ये अर्हदादिक चार भव्यों के लिए मंगल हैं; क्योंकि ये भव्यों का मल–गालन करने में कारण हैं। मंग—सुख, उसकी प्राप्ति होने में ये अर्हदादिक कारण हैं, अतः मंगल हैं।

शंका—आचार्य और उपाध्याय भी पृथक् मंगल होने से चार ही मंगल कहना योग्य नहीं है। उसका समाधान यह है। ये दोनों परमेष्ठी संपूर्ण कर्मों के नाशक ध्यानों की सिद्धि में तत्पर रहने से

चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा,
साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

टीका—उत्तमगुणोपेतत्वात, उत्तमपदप्राप्तत्वात्, उत्तममार्गाधिरूढत्वात् , भव्यानामुत्तमगुणादि–प्राप्तिहेतुत्वाद्वा अर्हदादयश्चत्वार उत्तमाः।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि– अरहंत सरणं पव्वज्जामि,
सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

टीका–दुर्जयकर्मारातिप्रभवदुःखार्णवोत्तरणहेतुभूतत्वादार्हदादीन् चतुरः शरणं प्रव्रजामि। संसारमहादुःखार्णवे–ऽन्यस्योत्तरणहेतुत्वासंभवात्।

तथा साधु अट्ठाईस मूलगुणयुक्त होने से तीनों का समावेश उपर्युक्त चार मंगलों में हो जाता है। इसलिए चार ही मंगलदायक हैं, यह कहना अविरुद्ध है। उपर्युक्त समानता होने से आचार्य और उपाध्यायजी का साधू में जैसा अन्तर्भाव होता है, वैसे आचार्य, उपाध्याय के भिन्न–भिन्न लक्षण भी ऊपर दिखाये हैं। अतः भेदनय से उनकी भिन्नता मानकर पंचपरमेष्ठीपना भी इस तरह सिद्ध हो जाता है।

ये चार जैसे मंगल हैं, वैसे ये चार लोगोत्तम भी हैं। उनके लोगोत्तमत्व का वर्णन इस प्रकार समझना—

लोकोत्तम ४ हैं—अरिहंत लोकोत्तम हैं, सिद्ध लोकोत्तम हैं, साधु लोकोत्तम हैं और केवलियों से कहा हुआ धर्म लोकोत्तम है। संसारीलोगों में अनन्तचतुष्टय दिखता नहीं, अरहन्तों में दिखता है। सिद्धों में सम्यक्त्वादि आठ गुण लोकोत्तम हैं। आचार्यों में स्वयं पंचाचार पालन करना तथा शिष्यों से पालन कराना लाकोत्तम गुण हैं। उपाध्याय द्वादशांग का अध्ययन शिष्यों से कराते हैं। अतः इन गुणों से उपाध्याय लोकोत्तम हैं। साधुओं में २८ मूलगुण हैं तथा वे आत्मध्यानरत रहते हैं। अतः उनमें भी लाकोत्तमत्त्व है। केवलियों से कहा हुआ धर्म उत्तम क्षमादिगुणयुक्त तथा रत्नत्रययुक्त है। अतः वह भी लोकोत्तम है। ये अरंहतादिक चार उत्तमपद को प्राप्त होने से, उत्तम रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग पर अधिरूढ़ होने से तथा भव्यों को उत्तम गुणों की प्राप्ति कराने में कारण होने से लोकोत्तम हैं।

इन चार की ही शरण जाना चाहिए, ऐसा आचार्य कहते हैं–

मैं चार की ही शरण जाता हूँ। मैं अरिहंतों की शरण लेता हूँ, सिद्धों की शरण लेता हूँ, साधुओं की शरण लेता हूँ और केवलियों से कहे हुए धर्म की शरण जाता हूँ। इन अर्हत्सिद्धादि चार की मैं शरण जाता हूँ। जीतने को कठिन ऐसे कर्मरूपी शत्रुओं से उत्पन्न दुःखरूपी समुद्र से भव्यजीवों को पार उतारने वाले अर्हदादिकों की मैं शरण लेता हूँ। इनको छोड़कर अन्य हरिहरादिक इस संसाररूप महादुःखसमुद्र से जीवों को पार नहीं लगा सकते।

अड्ढाइज्जदीव–दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

टीका–क्वते अर्हदादयः संभवंतीत्याह–अड्ढाइज्जेत्यादि। पण्णारसकम्मभूमिसु–पंचभरताः पंचैरावताः पंचविदेहाश्चेति कर्मभूमयस्तासूत्पन्ना येऽर्हदादयः, अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु–जंबूद्वीपो धातकीखंडः पुष्कराद्धश्चेत्यर्धतृतीयद्वीपाः, लवणोदः कालोदश्चेति द्वौ समुद्रौ तन्मध्ये ये व्यवस्थिताः, पंचदशसु कर्मभूमिषु हि स्वयमेवोत्पन्ना अन्यत्रोपसर्गवशादृद्धिवशाद्वार्हदादयो व्यवस्थिताः तेषां सदा करोमि क्रियाकर्मेत्येनेनाभिसंबंधः। तत्र कीदृक्स्वरूपाणां अर्हतां सदा करोमि क्रियाकर्मेत्याह–जावअरहंताणमित्यादि। जाव–यावतां यत्परिमाणानामनाद्यनिधनकालप्रवृत्तानां, अरहंताणं अर्हतां। भयवंताणं—भगवतां ज्ञानवतां पूज्यानां वा। आदियराणं–आदितीर्थप्रवर्तकानां। तित्थयराणं–तीर्थं श्रुतमर्हतां उत्तमक्षमादिलक्षणो धर्मश्च संसारसागरोत्तरणहेतुत्वात्, तत्कृतवतां। जिणाणं–जिनानां

ये अर्हदादिक कहाँ उत्पन्न होते हैं, इस प्रश्न का उत्तर—

ढाईद्वीपों में अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप तथा लवणसमुद्र और कालोदसमुद्र के प्रदेशों में उत्पन्न होते हैं। ढाईद्वीपों में पंद्रह कर्मभूमियाँ हैं—५ भरत, ५ ऐरावत और ५ विदेह। इनमें तीर्थंकरादिकों की उत्पत्ति होती हैं। तथापि भोगभूमि और समुद्रप्रदेश में भी इनका अस्तित्व दिखता है। वह इस प्रकार—

कर्मभूमियों में तो इनका निवास स्वयं होता है और समुद्र तथा भोगभूमियों में उपसर्गवश या ऋद्धिविशेष के कारण अस्तित्व होता है। मुनि कभी कभी भोगभूमियों में उपदेश देने के लिए ऋद्धि से जाते हैं, ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है। एक कर्मभूमि के मुनि उपसर्ग के कारण अन्य कर्मभूमि में मुक्त हुए, ऐसे उल्लेख मिलते हैं। अरिहंत अनादिकाल से उत्पन्न हो रहे हैं तथा वे अविच्छिन्नरूप से उत्पन्न होते रहेंगे अर्थात् वे अनाद्यनिधन हैं। तीर्थंकर ज्ञानादि विभूति से मंडित और त्रिलोकपूज्य होते हैं। अरहंत जिन धर्मोद्धारक होने से तीर्थंकर कहलाते हैं। उनका कहा हुआ द्वादशाङ्ग शास्त्र तथा उनसे कहा गया क्षमादिरूप दशधर्म तीर्थ कहा जाता है। ये उभय तीर्थ भव्यों को संसार से तारते हैं। अतः उनको तीर्थ कहते हैं। इस तीर्थ को अरहंत उत्पन्न करते हैं। अतः उन्हें तीर्थंकर कहा जाता है।

भयंकर नानाविध दुःखों को उत्पन्न करने वाले कर्मों को अरिहंतों ने जीता है। अतः उनको 'जिन' कहते हैं। गणधरों को 'देशजिन' कहते हैं। उनमें भी श्रेष्ठ होने से अरिहंत जिनोत्तम कहलाते हैं। उन्हें केवली भी कहते हैं। इस प्रकार नाना नामों को धारण करने वाले अरहंतों की स्तुति करके अब मैं क्रियाकर्म आलोचनादिक कर्त्तव्यकर्म करता हूँ।

अनेकविषमभवगहनव्यसनप्रापणहेतुकर्मारात्युन्मूलकानां। जिणोत्तमाणं–देशजिनेभ्यो गणधरदेवादिभ्य उत्कृष्टानां। केवलियाणं–केवलज्ञानसम्पन्नानां। तथा जाव सिद्धाणं–यत्परिमाणानां सिद्धानां सदा क्रियाकर्म करोमि। कथंभूतानां? बुद्धाणं–निखिलार्थज्ञानवतां। अनेन मुक्तात्मनां जडरूपता यौगोपकल्पिता प्रत्युक्ता। परिणिव्वुदाणं–परिनिर्वृतानां सुखीभूतानामित्यर्थः। अनेन सांख्यैर्मुक्तस्य शुद्धं यच्चैतन्यमात्रमिष्टं तन्निरस्तं। अंतयडाणं–अशेषकर्मणां तत्प्रभवसंसारस्य चान्तं विनाशं कृतवतामित्यनेन सदा मुक्तत्वमीश्वरस्य निराकृतं। यदि वा एकैकस्य तीर्थकरस्य काले दश दश अंतकृतो भवंति तद्रूपाणां। ये हि दुर्द्धरोपसर्गं प्राप्यांतर्मुहूर्तमध्ये घातिकर्मक्षयं कृत्वा केवलमुत्पाद्य शेषकर्मक्षयं च विधाय सिद्धयन्ति तेंतकृत इत्युच्यंते। पारयडाणं–संसारमहोदधेः पारं पर्यंतं कृतवतां। पारगयाणमिति पाठे पारंगतानां। तथा आचार्यादीनां यत्परिमाणानां सदा क्रियाकर्म करोमि। किंविशिष्टानां ? धम्माइरियाणं–धर्मश्चारित्रं 'चारित्तं खलु धम्मो' इत्याभिधानात् उत्तमक्षमादिरूपो वा तमाचरतां आचायतां वा आचार्याणां। धम्मदेसयाणं–उपाध्यायानामित्यर्थः। धम्मणायगाणं–धर्मानुष्ठातृणां सर्वसाधूनामित्यर्थः। कथंभूतानामेतेषां पंचानामित्याह–धम्मेत्यादि धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं–धर्म एव वरं चातुरंगं स्वकार्यकरणे अप्रतिहतप्रसरत्वात् तस्य चक्रवर्तिनां स्वामिनां। देवाहिदेवाणं–देवानां चतुर्णिकायरूपाणां अधिदेवानां–वंद्यानामित्यर्थः। अथ गुणिनः स्तुत्वा गुणांस्तोतुमाह–णाणाणमित्यादि ज्ञानदर्शनचारित्राणां सदा करोमि क्रियाकर्म। गुणनामानंत्यसंभवेऽपि रत्नत्रयस्य प्राधान्येन मोक्षोपायभूतत्वात्तदेव स्तुतं।

अब मैं सिद्धों की स्तुति करता हूँ। सिद्धपरमेष्ठियों को सर्व परपदार्थों का ज्ञान होता है। अतः उन्हें बुद्ध कहते हैं। यौगमती मुक्तात्माओं को ज्ञानरहित मानते हैं। उनका निरसन करने के लिए आचार्य सिद्धों को 'बुद्ध' कहते हैं। जैनाचार्य नैयायिक के समान मुक्तात्माओं को ज्ञानरहित नहीं मानते हैं। ज्ञान आत्मस्वभाव होने से कर्म के अभाव से मुक्तदशा में पूर्णावस्था को पहुँचता है। अतः मुक्तात्माओं को अज्ञानी कहना योग्य नहीं है। सिद्ध अनंत सुखी होने से 'परिनिर्वृत्त' कहे जाते हैं। मुक्तदशा में शुद्धचेतना रहती है। अतः वह ज्ञान और सौख्यरहित है सांख्यजन ऐसा कहते हैं। परन्तु ज्ञान के समान ही सुख भी आत्मधर्म होने से मुक्तदशा में भी कायम रहता है। अतः सिद्ध अनंतसुखी होते हैं।

संपूर्ण कर्मों का तथा संसार का नाश करने वाले सिद्धों को अन्तकृत् कहते हैं, 'अन्तकृत्' शब्द से जीव की मुक्तिदशा अनादि नहीं है, यह अभिप्राय सिद्ध होता है। नैयायिकों ने ईश्वर को सदामुक्त कहा है। उनका निरसन करने के लिए आचार्यों ने 'अन्तकृत्' शब्द की योजना की है। मुक्तावस्था सापेक्ष है, संसारदशा के बिना मुक्तावस्था नहीं है। संसारदशा नष्ट होकर ही मुक्तदशा जीव की प्रकट होती है। जगत् में सदामुक्त कोई नहीं है।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा, वचसा कायेण ण करेमि, ण कारेमि, करंतं पि ण समणुमणामि तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि, गरहामि, जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

टीका–अर्हदानीनां क्रियाकर्म कुर्वाणो भंते–भगवन् प्रथमतस्तावत्सामायिकं करोमि। किं पुनः सामायिकं इति चेत् माध्यस्थ्यं रागद्वेषयोरभावः। तदुक्तं।

जीवियमरणे लाहालाहे संजोगविप्पजोगे य।
बंधुरिसुहदुक्खादिसु समदा सामाइयं णाम।।१।।

तं च कुर्वाणः सव्वं–सर्वमपि सावज्जजोगं–अशुभमनोवाक्कायव्यापारं पच्चक्खामि–परित्यजामि। कथं? जावजीवं—जीवितपर्यन्तं। कथं ? तिविहेण–तदेव त्रैविध्यं दर्शयति मणसा वचिया कायेणेति। कायेन तावत्स्वयं न करोमि, वचसा न कारयामि, मनसा अन्यं कुर्वन्तमपि सावद्ययोगं न समनुमन्ये। एवं वचसा मनसा च न करोमीत्यादि योज्यम्। तस्सेत्यादि–तस्य अर्हदादिक्रियाकर्मणः संबंधिनमतीचारं

अन्तकृत् शब्द से दूसरा अर्थ भी यहाँ ग्राह्य है। प्रत्येक तीर्थंकर के समय दारुण उपसर्ग सहनकर दशदशमुनि मुक्त होते हैं। वे अन्तर्मुहूर्त में घातिकर्मों के विनाश से केवलज्ञान प्राप्त करके उसी समय आयुकर्मादिक अघातिकर्मों का भी नाश होने से मुक्त होते हैं।

सिद्धपरमेष्ठी संसारसमुद्र के दूसरे किनारे को प्राप्त कर लेते हैं। अतः उन्हें पारकृत् कहते हैं। ऐसे अनेक नाम धारण करने वाले सिद्धों की स्तुति करके मैं क्रियाकर्म करता हूँ।

अब धर्माचार्य की स्तुति करते हैं—वे धर्माचार्य धर्मोपदेश देते हैं। '**चारित्तं खलु धम्मो**' निश्चय से चारित्र को धर्म कहा है। अथवा उत्तम क्षमादिरूप दशधर्म है, उनका आचरण वे करते हैं तथा शिष्यों से आचरण कराते हैं।

धर्मोपदेश देने वाले उपाध्याय परमेष्ठी की मैं स्तुति करता हूँ। धर्म की साधना करने वाले साधुपरमेष्ठी की मैं स्तुति करता हूँ। रत्नत्रय धर्म का आचरण करने वाले सर्वसाधुजनों की मैं स्तुति करता हूँ। ये पंचपरमेष्ठी धर्मरूपसैन्य के स्वामी हैं, चक्रवर्ती है। ये चतुर्णिकाय देवों से वन्दनीय है तथा रत्नत्रयस्वरूप जगद्वन्द्य है। इनकी स्तुति करके मैं क्रियाकर्म करता हूँ। हे भगवन् अब 'मैं सामायिक करता हूँ। माध्यस्थ्य को—रागद्वेषों के अभाव को सामायिक कहते हैं। इस सामायिक का स्वरूप ऐसा कहा है—

जीवित, मरण, लाभ और हानि, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, बंधु–शत्रु, सुख तथा दुःख इन अवस्थाओं में समताभाव रखना ही सामायिक कहलाता है अर्थात् कषायों का उद्रेक न होने देना सामायिक है।

दोषं भंते–भगवन् पडिक्कमामि निराकरोमि। कथं तत् पडिक्कमामि इत्याह णिंदामीत्यादि। कृतदोषस्यात्मसाक्षिकं हा दुष्टं कृतमिति चेतसि भावनं निंदा। गुर्वादिसाक्षिकं तदेव गर्हेत्युच्यते। न केवलं सावद्ययोगमेव प्रत्याख्यामि किन्तु जाव अरहंताणं–यावत्कालमर्हतां। भयवंताणं–भगवतां ज्ञानवतां पूज्यानां वा, पज्जुवासं करेमि–विशुद्धेन मनसा भगवतोऽनुचिंतनं पर्युपासनं सेवां तत्करोमि, तावकालं–तावत्कालं, पावकम्मं, पापं–अशुभं संसारप्रवृद्धिनिमित्तं कर्म यस्मात्पापाय वा कर्म क्रिया व्यापारो यस्य, दुच्चरियं–दुष्टं संसारप्रवृत्तिनिमित्तं चरित्रं चेष्टितं व्यापारो यस्य वोस्सरामि–व्युत्सृजामि तत्रोदासीनो भवामि इत्यर्थः।

हे भगवन् , यदि कोई व्यक्ति पापप्रवृत्ति कर रहा है तो उसे सामायिक करने वाला मैं मन, वचन, काय के द्वारा सम्मति नहीं दूँगा। तथा वचन और शरीर से भी स्वयं अशुभप्रवृत्ति नहीं करूंगा, किसी के द्वारा अशुभप्रवृत्ति नहीं कराऊँगा तथा करने वाले को सम्मति प्रदान नहीं करूँगा।

सामायिक करते समय जो दोष मैंने किये हों, उनकी मैं निन्दा और गर्हा करके त्याग करता हूँ। "हाय ! मैंने पापकार्य किये, मैं दुष्ट हूँ" इस प्रकार से अपनी आत्मसाक्षी से निर्भर्त्सना करना निंदा है तथा देव, गुरु, शास्त्र के आगे मैंने अशुभ कार्य किये, ऐसा कहकर अपनी निंदा करना, उसे गर्हा कहते हैं। यही निंदा और गर्हा में अन्तर है।

जबतक शुद्ध अन्तःकरण से पूज्य सर्वज्ञ अर्हत् परमेष्ठी का चिन्तन, सेवाभक्ति करूँगा, तब तक संसारवर्द्धक पापकर्म तथा अशुभचेष्टाओं का त्याग करता हूँ। उन पापकर्मों में तथा अशुभ चेष्टाओं में मैं उदासीन रहूँगा।

श्रीपार्श्वनाथ जिनस्तुतिः

-उपजातिछंद-

कल्याणकल्पद्रुमसारभूतं,
चिंतामणिं चिंतितदानदक्षम्।
श्रीपार्श्वनाथस्य सुपादपद्मं,
नमामि भक्त्या परया मुदा च।।

जो कल्याण कल्पतरु सार-भूत चिंतामणि चिंतितदा।
श्रीपारस प्रभु पादकमल को, भक्तिभाव से नमूँ मुदा।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

थोस्सामि स्तवः (चतुर्विंशतिस्तवः)

(संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित)

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुयरयमले महप्पण्णे[1]।।१।।

टीका—थोस्सामीत्यादि गाहाबंधः। थोस्सामि–स्तोष्ये अहं। कान्? तित्थयरे–तीर्थकरान्। कथंभूतान् ? जिणवरे–देशजिनेभ्यो गणधरादिभ्यो वरान् श्रेष्ठान्। केवलीअणंतजिणे–न विद्यतेऽन्तो यस्येत्यनन्तः संसारस्तं जितवंतः, यदि वा न विद्यते अंतो येषां ते अनंतास्ते च ते जिनाश्च, केवलिनश्च ते अनंतजिनाश्च। णरपवरलोयमहिए—नरप्रवराश्च ते लोकाश्च चक्रवर्त्यादयः तैः महिताः पूजिताः। यदि वा नरप्रवराश्च ते लोकमहिताश्चेति ग्राह्यम्। विहुयरयमले–रजसी, ज्ञानदृगावरणे आत्मस्वरूपप्रच्छादकत्वात् त एव मला विधूता रजोमला यैस्ते। महप्पण्णे–महः पूजा आपन्ना यैः अथवा महाप्रज्ञाः। ननु केवलज्ञानोपेतत्वात्तेषां कथं मतिज्ञानविशेषा प्रज्ञा स्यादित्ययुक्तं यतस्तदुपेतत्वेपि तेषां भूतपूर्वगत्या महाप्रज्ञत्वं दृष्टव्यम्।

लोयस्सुज्जोययरे–केवलज्ञानेन लोकप्रकाशकान्। धम्मं तित्थंकरे—धर्मश्चारित्रं उत्तमक्षमादिश्च, तीर्थमागमस्तत्कृतवन्तः। तीर्थकरानेव स्तोतुमुद्यतो भवान् तदा मुण्डकेवलिनो भवतोऽवंद्याः

थोस्सामि स्तव की हिन्दी टीका (२४ तीर्थंकरों की स्तुति)

अमृतवर्षिणी टीका–

आत्मा के स्वरूप को ढकने वाले ज्ञानावरण तथा दर्शनावरणरूप मल को धोने वाले, धोकर नष्ट करने वाले, चक्रवर्त्यादि श्रेष्ठ पुरुषों से पूज्य देशजिन गणधरादिकों से श्रेष्ठ, अनन्त संसार को जिन्होंने जीत लिया है अथवा अनादिकाल से अनन्तकाल पर्यंत जो सतत उत्पन्न होते रहते हैं। अतः वे अरिहन्त अनन्त हैं, केवलज्ञान संपन्न, पूज्य तथा महाबुद्धिमान तीर्थंकरों की मैं भक्ति से स्तुति करता हूँ। निज केवलज्ञान से जगत् स्थित सर्व वस्तुओं को जानने वाले अर्थात् सर्वेश चारित्रधर्म किंवा रत्नत्रय धर्म या क्षमादि दशलक्षणरूप धर्म तथा द्वादशांगों की रचना करने वाले इस अवसर्पिणी काल के चतुर्थकाल में उत्पन्न हुए चौबीस तीर्थंकरों की मैं भक्ति से स्तुति करता हूँ।

केवलज्ञान सम्पन्न गणधरादिकों को, सामान्य केवलियों को और मूक केवलियों की भी मैं वन्दना करता हूँ। ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त,

---

2. क्रियाकलाप, पृ. 147 से 149।

लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।

उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।

प्राप्नुवंतीत्याशंकापनोदार्थमाह जिणे इत्यादि–जिनान् मुण्डकेवलिनो वन्दे, विहुयरयमले इत्यादि विशेषणचतुष्टयं अत्रापि संबंधनीयम्। इदानीं तीर्थकरान् स्तोष्ये इति संग्रहवाक्येन यत्प्रतिज्ञातं तत् अरहंते इत्यादिना विवृणोति। अरहंते—घातिकर्मक्षये अनंतज्ञानसंपन्नान् तीर्थकृतः, कित्तिस्से–निजनिजनामोपेतान्प्रणामपूर्वकं व्यावर्णशिष्ये। केवलिणो–केवलज्ञानोपेतान्, चउवीसं चेव–इदानींतनावसर्पिणीचतुर्थकाल–संबंधिनश्चतुर्विंशतिसंख्योपेतानेव उसहमित्यादि नामोपलक्षितानर्हतः कीर्तयिष्यामि।

स्वशक्त्या भक्त्या च स्तुतेभ्यः स्तावकः स्वात्मनः फलमभिलषन्नेवमित्यादिना आह—एवमुक्तप्रकारेण अशेषपापहारिभिः परस्परविलक्षणनामविशेषैरनुपमाचिन्त्यानंतगुणोपेताः मए–मया अभित्थुया–अभिष्टुता भगवंतः, विहुयरयमला–निरावरण इत्यर्थः। पहीणजरमरणाप्रक्षीणजरमरणा मुक्ता इत्यर्थः। चउवीसं पि चतुर्विंशतिरपि। तित्थयरा—तीर्थकराः, जिणवरा–देशजिनेभ्य उत्कृष्टा मे स्तावकस्य पसीयंतु–प्रसन्ना भवंतु।

शीतल, श्रेयान् , वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व व महावीर अर्थात् वर्धमान ये चौबीस तीर्थंकर इस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ विभाग में हुए हैं, मैं उनका वन्दन करता हूँ।

निरावरण ज्ञान और दर्शन गुणों को धारण करने वाले, जन्म, जरा—वृद्धावस्था, मृत्यु आदि अट्ठारह दोषों का नाश करने वाले तीर्थंकरों की मैंने स्तुति की है। वे मेरे ऊपर प्रसन्न होवें। जगत् श्रेष्ठ, कर्मविनाशक, कृतकृत्य तीर्थंकरों की मैंने वचनों से स्तुति की हैं, मन से मैंने उन्हें नमस्कार किया है और शरीर से उनकी पूजा की है। ये तीर्थंकर मुझे आरोग्य—ज्ञान का लाभ, धर्मध्यान और शुक्लध्यान तथा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कराने वाले हों। आरोग्य ज्ञान शब्द का अर्थ केवलज्ञान है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण ये दो कर्म रोग के समान हैं। रोग से आरोग्य नष्ट होता है, उसी तरह ये दो कर्म आत्मा का आरोग्य नष्ट करते हैं। अतः इन दो कर्मों को रोग कहते हैं। इनका नाश होने से प्राप्त ज्ञान को आरोग्यज्ञान कहते हैं। वह केवलज्ञानरूप है अथवा मिथ्यात्वरूपी रोग से ज्ञान में विपरीतता आती है।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।
एवं मए अभित्थुया, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।
चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहिय पहासत्ता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

कित्तिय वंदिय महिया–कीर्तिता वाचा, वंदिता मनसा, महिताः पूजिताः कायेन एदे–एते चतुर्विंशतितीर्थकराः लोगुत्तमा–सकलजनेभ्य उत्कृष्टाः सिद्धा–कृतकृत्याः। इत्थंभूता भगवंतो दिंतु–प्रयच्छन्तु। किं तदित्याह आरोग्गेत्यादि। आरोग्गणाणलाहं–परिपूर्णज्ञानलाभं केवलज्ञानप्राप्तिमित्यर्थः। कथं आरोग्यं ज्ञानं उच्यते इति चेत् व्युत्पत्तितः। तथाहि–रोग इव रोगो ज्ञानावरणं ज्ञानस्वरूपोपघातकत्वात्। न विद्यते रोगोऽस्येत्यरोगं तस्य भाव आरोग्यं तेन युक्तं ज्ञानं आरोग्यज्ञानं निखिलज्ञानावरणप्रक्षयप्रभवं ज्ञानमित्यथः। अथवा रोगो मिथ्यात्वं ज्ञानस्य विपर्ययहेतुतयोपपीडकत्वात्, तेन रहितं यद्विज्ञानपंचकं तदारोग्यज्ञानमिति ग्राह्यम्। समाहिं च–धर्म्यं शुक्लध्यानं च समाधिः चारित्रमित्यर्थः। बोहिं–बुध्यते यथावत्पदार्थस्वरूपं येन स तावद्बोधिः सम्यग्दर्शनमित्यर्थः। रत्नत्रयलाभं मे प्रयच्छन्तित्यर्थः।

चंदेहिं णिम्मलयरा–चंद्रेभ्यो निर्मलतराः प्रक्षीणाशेषावरणत्वात्। आइचेहिं अहियपहा–आदित्येभ्योऽधिकप्रभाः अन्तः सकललोकोद्योतकेवलज्ञानप्रभासमन्वितत्वात्, बहिश्चासाधारण-देहदीप्तियुक्तत्वात्। सत्ता-प्रशस्ताः परमोपशमप्राप्ता वा। अहियं पयासंता इति च क्वचित्पाठः। आदित्येभ्योऽधिकं यथा भवत्येवं पदार्थान्प्रकाशयन्तः। सायर इव गंभीरा–अलक्ष्यमाणगुणरत्न-परिमाणत्वात्, सिद्धा–परीतसंसारत्वात्। मम-मे स्तुतिकर्तुः सिद्धिं–सकलकर्मविप्रमोक्षं दिशंतु–प्रयच्छन्त्विति।

मिथ्यात्व का नाश होने से ज्ञान में सत्यपना आता है। इसलिये पाँच ज्ञानों को आरोग्यज्ञान कहते हैं। ऐसे आरोग्यज्ञान की प्राप्ति चौबीस तीर्थंकर मुझे करावे, ऐसी मेरी उनसे प्रार्थना है। ये चौबीस तीर्थंकर आवरणों के नाश से चन्द्र से भी अधिक निर्मल है। इनकी आत्मा सर्व विश्व को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान से युक्त है। ये तीर्थंकर वैराग्य की चरम सीमा को प्राप्त हुए हैं। समुद्र गंभीर होने से उसके अंदर के रत्न दिखते नहीं है, वैसे अनन्त दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि अनन्तगुण अवर्णनीय है। अतएव ये जिनेश्वर समुद्रसम गंभीर हैं। संसार का अन्त करने से उन्हें सिद्ध कहते हैं। वे मेरे समस्त कर्मों का हरण करें।[१]

---

१. सामायिक भाष्य पृ. १०० से १०३ तक।

''अड्ढाइज्जदीव दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु।''

अमृतवर्षिणी टीका–

मध्यलोक का वर्णन

मध्यलोक–यह मध्यलोक १ राजू चौड़ा है। इस तीन लोक के बीच में १४ राजू ऊँची, एक राजू चौड़ी और एक राजू मोटी एक त्रसनाली है। त्रस जीव इसी में रहते हैं मध्यलोक में असंख्यात द्वीप–समुद्र हैं।

इसमें सर्वप्रथम द्वीप का प्रथम जंबूद्वीप है। यह थाली के समान गोल है, एक लाख योजन अर्थात् (४०,०००००००) मील व्यास वाला है। इसको घेरकर २ लाख योजन व्यास वाला लवणसमुद्र है। इसको घेरकर कालोदधि समुद्र है। इसे घेरकर पुष्करद्वीप है। इसी के ठीक बीच में मानुषोत्तर पर्वत है जो कि चूड़ी के समान आकार वाला है। यहीं तक जंबूद्वीप, धातकीद्वीप और आधा पुष्कर ये ढाईद्वीप माने जाते हैं। ऐसे ही एक–एक द्वीप को घेरकर एक–एक समुद्र होने से जितने द्वीप हैं उतने ही समुद्र हैं, जो कि पूर्व–पूर्व के द्वीप–समुद्र से दूने–दूने विस्तार वाले हैं।

जम्बूद्वीप–जम्बूद्वीप के ठीक बीच में सुमेरु पर्वत है यह एक लाख योजन ऊँचा है। इसकी नींव चित्रा पृथ्वी के नीचे एक हजार योजन है और भूमि से ऊपर ९९ हजार योजन है इसकी चूलिका ४० योजन ऊँची है।

इस गोलाकार द्वीप में दक्षिण से लेकर उत्तर तक पूर्व–पश्चिम लंबे ऐसे छह कुलपर्वत हैं, जिनके नाम हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी हैं। इन पर्वतों से विभाजित सात क्षेत्र है–भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। एक–एक क्षेत्र में २–२ नदियां ऐसे गंगा–सिन्धु, रोहित्–रोहितास्या आदि १४ महानदियाँ हैं।

विदेहक्षेत्र–विदेह के बीच में सुमेरु पर्वत होने से उसके दक्षिण और उत्तर में देवकुरु और उत्तरकुरु भोगभूमि हैं तथा पूर्व और पश्चिम में पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह है पूर्व विदेह के मध्य में सीता नदी से दक्षिण और उत्तर में ऐसे दो भाग हो गये पुनः दक्षिण में चार वक्षार और तीन विभंगा नदी से आठ देश हो गये, ऐसे ही उत्तर में आठ क्षेत्र हुए एवं पश्चिम विदेह में भी चार–चार वक्षार तथा तीन–तीन विभंगा नदियों से ८–८ क्षेत्र होने से कुल ३२ विदेह क्षेत्र हो जाते हैं।

''एक–एक विदेह दश में ९६ करोड़ ग्राम, २६ हजार नगर, १६ हजार खेट, २४ हजार खर्वट, ४ हजार मंडब, ४८ हजार पत्तन, ९९ हजार द्रोण, १४ हजार संवाह और २८ हजार दुर्गावटी है। एक–एक

विदेह में एक–एक उपसमुद्र हैं, उन पर एक–एक टापू हैं। वहाँ ५६ अन्तरद्वीप, २६ हजार रत्नाकर और ७०० कुक्षिवास हैं ये रत्नों के क्रय–विक्रय के स्थान हैं।"[१]

१७० कर्मभूमियाँ–जंबूद्वीप में एक भरत, एक ऐरावत एवं बत्तीस विदेह क्षेत्र हैं तथा धातकी–खंडद्वीप में पूर्वधातकीखण्ड और पश्चिमधातकीखंड एवं पुष्कराद्वीप में पूर्व–पुष्करार्धद्वीप और पश्चिमपुष्करार्धद्वीप ऐसे दो–दो भाग हो गये हैं। इसमें विजय, अचल, मंदर और विद्युन्माली ऐसे चार मेरु हैं तथा एक–एक भरत, एक–एक ऐरावत और ३२–३२ विदेह होने से ५ भरत, ५ ऐरावत और ३२ × ५ = १६० विदेह हो जाते हैं। प्रत्येक में छह–छह खण्ड होने से मध्य के आर्यखंड में कर्मभूमि व्यवस्था है। इस प्रकार ये १७० कर्मभूमियां मानी है।

अधिकतम तीर्थंकर १७० एवं कम से कम २० होते हैं–इन्हीं १७० कर्मभूमियों के आर्यखंडों में यदि एक साथ अधिकतम तीर्थंकर या चक्रवर्ती या नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र होवें तो अधिकतम १७० हो सकते हैं और कम से कम एक–एक मेरु संबंधि विदेहों में ४–४ ऐसे ४ × ५ =२० तीर्थंकर तो रहते ही हैं।

कहा भी है–

तित्थद्धसयलचक्की सट्ठिसयं पुह वरेण अवरेण।
वीसं वीसं सयले खेत्ते सत्तरिसयं वरदो।।६८१।।[२]

तीर्थंकर, अर्धचक्री और सकलचक्री ये विदेहक्षेत्र की अपेक्षा अधिकतम १६० एवं कम से कम बीस होते हैं। इन्हीं में भरत–ऐरावत के भी मिला देने से अधिकतम १७० हो जाते हैं।

इस गाथा से स्पष्ट है कि श्रीऋषभदेव और श्री महावीरस्वामी जैसे तीर्थंकर महापुरुष इन कर्मभूमियों में अनन्तों हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे।" **चतुर्थकालो विदेहे चावस्थित एव।**[३]" इस नियम के अनुसार विदेह–क्षेत्रों में हमेशा चतुर्थकाल ही रहता है, षट्काल परिवर्तन नहीं होता है।

भरत और ऐरावत क्षेत्रों की अपेक्षा यह चतुर्विंशति स्तव कहा गया है। किन्तु पूर्व–विदेह और अपरविदेह की अपेक्षा से सामान्य तीर्थंकर स्तव समझना चाहिए। इस प्रकार से इसमें कोई दोष नहीं है अर्थात् पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों में ही चतुर्थ काल में चौबीस–चौबीस तीर्थंकर होते हैं किन्तु एक सौ साठ विदेह क्षेत्रों में हमेशा ही तीर्थंकर होते रहते हैं अतः उनकी संख्या का कोई नियम नहीं है। उनकी अपेक्षा से इस आवश्यक को सामान्यतया तीर्थंकर स्तव ही कहना चाहिए इसमें कोई दोष नहीं है।

ढाईद्वीप–जंबूद्वीप, धातकीखंड और आधा पुष्करद्वीप–इसे पुष्करार्धद्वीप कहते हैं, इसीलिये ये दो पूरे द्वीप और मानुषोत्तर से पहले का आधा पुष्करार्ध द्वीप ये ढाईद्वीप कहलाते हैं। जंबूद्वीप में एक

---

१. त्रिलोकसार गाथा ६७४ से ६७७ तक। २. त्रिलोकसार गाथा ६८१।
३. त्रिलोकसार गाथा ८८२ की टीका का अंश।

भरत, एक ऐरावत व एक महाविदेह ऐसे तीन तथा धातकीखंड में दो भरत, दो ऐरावत व दो महाविदेह तथा पुष्करार्ध में भी दो भरत, दो ऐरावत व दो महाविदेह ऐसे ५ भरत, ५ ऐरावत व ५ विदेह मिलकर पंद्रह कर्मभूमियाँ मुख्यरूप से हैं। विदेहों में ३२ × ५ = १६० भेद भी ऊपर आपको दिखाये हैं ये विशेष व्यवस्था है।

सभी विदेह क्षेत्रों में मनुष्यों की ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है और आयु एक करोड़ वर्ष पूर्व प्रमाण रहती है। वहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र और नारायण अधिक से अधिक हों तो प्रत्येक एक सौ साठ, एक सौ साठ होते हैं और कम से कम हों तो प्रत्येक बीस–बीस होते हैं।

भावार्थ–अढ़ाई द्वीप में पाँच विदेह क्षेत्र हैं और एक–एक विदेह क्षेत्र के बत्तीस–बत्तीस भेद हैं इसलिए सबके मिलाकर एक सौ साठ भेद हो जाते हैं, यदि तीर्थंकर आदि शलाकापुरुष प्रत्येक विदेह क्षेत्र में एक–एक होवें तो एक सौ साठ हो जाते हैं और कम से कम हों तो एक–एक महाविदेह सम्बन्धी चार–चार नगरियों में अवश्यमेव होने के कारण बीस ही होते हैं। इस प्रकार ५ भरत ५ ऐरावत व १६० विदेह इन सब कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए तीर्थंकर आदि महापुरुष अधिक से अधिक हों तो एक सौ सत्तर हो सकते हैं।[१]

दो समुद्र—इसी प्रकार लवण समुद्र व कोलोदधि समुद्र इन दो तक ही मनुष्यों का आवागमन संभव है। लवण समुद्र में लंका द्वीप आदि अनेक द्वीप—टापू जैसे माने गये हैं। वहां भी विद्याधर मनुष्य आदि रहते हैं मुनियों का होना, ऋद्धिधारी मुनियों का आना–जाना संभव है जैसे कि रावण की मृत्यु के दिन ही वहां ५६ हजार मुनियों का संघ पहुँच गया था।[२] ये सभी मुनि आकाशगामी ऋद्धिधारी थे। लिखा है–

''रावणे जीवति प्राप्तो, यदि स्यात् स महामुनिः।
लक्ष्मणेन समं प्रीति–र्जाता स्यात्तस्य पुष्कला।।५४।।

जहाँ ऋद्धिधारी मुनि रहते हैं वहां दो सौ योजन तक पृथ्वी उपद्रव रहित हो जाती है और वहाँ पर रहने वाले सभी जीव परस्पर में निर्वैर हो जाते हैं। आचार्य कहते हैं कि–यदि यह संघ प्रातःकाल में आ जाता तो रावण और लक्ष्मण की परस्पर में परम प्रीति हो जाती। रात्रि में अनंतवीर्य सूरि को केवलज्ञान प्रगट हो जाता है और देवों के आगमन का दुंदभि वाद्य आदि का मधुर शब्द होने लगता है। इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण और मेघवाहन आदि विद्याधर वहाँ पहुँचकर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर महामुनि बन जाते हैं। शशिकान्ता आर्यिका से संबोधन को प्राप्त हुई मंदोदरी आदि ४८ हजार स्त्रियाँ संयम धारण कर आर्यिका हो जाती है।

---

१. उत्तर पुराण पृ २६२। २. पद्मपुराण भाग–३ पर्व ७८, पृ. ८०।

इस प्रकार इन ढाईद्वीप और दो समुद्रों तक ही अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं का इन पांचों परमेष्ठी का अस्तित्व है। खास करके दोनों समुद्रों में तीर्थंकर भगवंतों के समवसरण संभव नहीं है। कदाचित् उपसर्ग आदि के निमित्त से मुनियों को वहां कोई देव या विद्याधर ले जाकर डाल देते हैं और वहाँ समुद्रों में उन्हें यदि केवलज्ञान होकर निर्वाण हो जाता है तो इस अपेक्षा से अरिहंत और सिद्धों का अस्तित्व होता है। उपसर्ग आदि की अपेक्षा से ही संपूर्ण ढाईद्वीप से व दोनों समुद्रों से अनंतानंत सिद्ध हो चुके हैं क्योंकि ढाईद्वीप के मानुषोत्तर पर्वत की सीमा तक ही ४५ लाख योजन की सिद्धशिला है जो कि सिद्धों के समूह से पूर्णतया भरी हुई है अर्थात् वहां ४५ लाख योजन तक सिद्धशिला से ऊपर अनंतानंत सिद्ध विराजमान हैं।

गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के अनमोल वचन

गुरुपने की इच्छा कभी मत करो क्योंकि गुरुभार रहित हल्के बनने से परमात्म पद की प्राप्ति होती है। दीक्षा धारण करने के लिए शारीरिक शक्ति की अपेक्षा मानसिक शक्ति की प्रबलता आवश्यक है।

''आदियराणं''

अमृतवर्षिणी टीका–

आदितीर्थ–प्रवर्तकानां'' टीकाकार श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने कहा है–

पाँच भरतक्षेत्र और पाँच ऐरावत क्षेत्र इन दश क्षेत्रों में कर्मभूमि में अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी के चतुर्थ काल में जो भी प्रथम तीर्थंकर होते हैं वे सभी तीर्थंकर 'आदिकर' कहलाते हैं चूँकि अवसर्पिणी में उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि में असि, मषि आदि षट् क्रियाओं के न होने से व उत्सर्पिणी में छठे, पंचमकाल के कर्मभूमि के व्यतीत हो जाने से विधिवत् चतुर्थ काल के प्रारम्भ में वर्णव्यवस्था आदि के सुचारु न होने से ये प्रथम तीर्थंकर षट्क्रिया, वर्ण–व्यवस्था आदि क्रियाओं को अपने अवधिज्ञान से, विदेह क्षेत्रों में शाश्वत कर्मभूमि की व्यवस्था को जानकर, उसी प्रकार व्यवस्था बनाकर या बतलाकर युगस्रष्टा, आदिब्रह्मा, विधाता व प्रजापति कहलाते हैं। ये सभी वर्तमान चौबीसी में आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के समान ही व्यवस्था बतलाते हैं, ऐसा समझना।

इसी प्रकार अध्याय–७ में '**आदिकम्मं**' पद आया है उसकी टीका देखें—

''**आइकम्मं'' कर्मभूम्यनुप्रवेशे प्रथमतः प्रवृत्तमसिमषिकृष्यादिकं कृत्रिमं कर्म।**[१]

इसी प्रकार अध्याय ९ में '**आदियरेहिं**' पद की टीका देखें—

''**आदियरेहिं**'' आदिमुच्छिन्नस्य तीर्थस्य प्रथमप्रवृत्ति ये कुर्वन्ति त आदिक–रास्तैः।।[२]

भगवान ऋषभदेव के द्वारा विद्या, शिक्षा आदि

उन सब राजकुमारों में तेजस्वियों में भी तेजस्वी भरत सूर्य के समान सुशोभित होता था और समस्त संसार से अत्यन्त सुन्दर युवा बाहुबली चन्द्रमा के समान शोभायमान होता था।।६९।। शेष राजपुत्र ग्रह, नक्षत्र तथा तारागण के समान शोभायमान होते थे। उन सब राजपुत्रों में ब्राह्मी दीप्ति के समान और सुन्दरी चाँदनी के समान सुशोभित होती थी।।७०।। उन सब पुत्र–पुत्रियों से घिरे हुए सौभाग्यशाली भगवान् वृषभदेव ज्योतिषी देवों के समूह से घिरे हुए ऊँचे मेरु पर्वत की तरह सुशोभित होते थे।।७१।।[३]

अथानन्तर किसी एक समय भगवान् वृषभदेव सिंहासन पर सुख से बैठे हुए थे कि उन्होंने अपना चित्त कला और विद्याओं के उपदेश देने में व्यापृत किया—लगाया।।७२।। उसी समय उनकी ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की पुत्रियाँ मांगलिक वेष–भूषा धारणकर उनके निकट पहुँची।।७३।। वे दोनों ही पुत्रियाँ कुछ–कुछ उठे हुए स्तनरूपी कुड्मलों से शोभायमान और बाल्य अवस्था के अनन्तर

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ९९–१००, २. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी–पृ. १४२। ३. आदिपुराण पर्व–१६।

प्राप्त होने वाली किशोर अवस्था में वर्तमान थीं अतएव अतिशय सुन्दर जान पड़ती थीं।।७४।। वे दोनों ही कन्याएँ बुद्धिमती थीं, विनीत थी, सुशील थीं, सुन्दर लक्षणों से सहित थीं, रूपवती थीं और मानिनी स्त्रियों के द्वारा भी प्रशंसनीय थी।।७५।।

क्या ये दोनों दिव्य कन्याएँ हैं ? अथवा नागकन्याएँ हैं ? अथवा दिक्कन्याएँ है ? अथवा सौभाग्य देवियाँ हैं, अथवा लक्ष्मी और सरस्वती देवी हैं, अथवा उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं ? अथवा उनका अवतार हैं ? अथवा क्या जगन्नाथ (वृषभदेव) रूपी महासमुद्र से उत्पन्न हुई लक्ष्मी हैं ? क्योंकि इनकी यह आकृति अनेक कल्याणों का अनुभव करने वाली है इस प्रकार लोग बड़े आश्चर्य के साथ जिनकी प्रशंसा करते हैं ऐसी उन दोनों कन्याओं ने विनय के साथ भगवान् के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया।।९०-९३।। दूर से ही जिनका मस्तक नम्र हो रहा है ऐसी नमस्कार करती हुई उन दोनों पुत्रियों को उठाकर भगवान् ने प्रेम से अपनी गोद में बैठाया, उन पर हाथ फेरा, उनका मस्तक सूँघा और हँसते हुए उनसे बोले कि आओ, तुम समझती होगी कि हम आज देवों के साथ अमरवन को जायेंगी परन्तु अब ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि देव लोग पहले ही चले गऐ हैं।९४-९५।। इस प्रकार भगवान् वृषभदेव क्षणभर उन दोनों पुत्रियों के साथ क्रीड़ा कर फिर कहने लगे कि तुम अपने शील और विनयगुण के कारण युवावस्था में भी वृद्धा के समान हो।।९६।।

तुम दोनों का यह शरीर, यह अवस्था और यह अनुपम शील यदि विद्या से विभूषित किया जाये तो तुम दोनों का यह जन्म सफल हो सकता है।।९७।। इस लोक में विद्यावान् पुरुष पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है।।९८।। विद्या ही मनुष्यों का यश करने वाली है, विद्या ही पुरुषों का कल्याण करने वाली है, अच्छी तरह से आराधना की गयी विद्या देवता ही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली है।।९९।। विद्या मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु है, विद्या ही चिन्तामणि है, विद्या ही धर्म, अर्थ तथा कामरूप फल से सहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न करती है।।१००।। विद्या ही मनुष्यों का बन्धु है, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ-साथ जाने वाला धन है और विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है।।१०१।। इसलिए हे पुत्रियों, तुम दोनों विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो क्योंकि तुम दोनों के विद्या ग्रहण करने का यही काल है।।१०२।। भगवान् वृषभदेव ने ऐसा कहकर तथा बार-बार उन्हें आशीर्वाद देकर अपने चित्त में स्थित श्रुतदेवता को आदरपूर्वक सुवर्ण के विस्तृत पट्टे पर स्थापित किया, फिर दोनों हाथो से 'अ आ' आदि वर्णमाला लिखकर उन्हें लिपि (लिखने का) उपदेश दिया और अनुक्रम से इकाई-दहाई आदि अंकों के द्वारा उन्हें संख्या के ज्ञान का भी उपदेश दिया। **भावार्थ**—ऐसी प्रसिद्धि है कि भगवान् ने दाहिने हाथ से वर्णमाला और बायें हाथ से संख्या लिखी थी।।१०३-१०४।।

तदनन्तर जो भगवान् के मुख से निकली हुई है, जिसमें 'सिद्धं नमः' इस प्रकार का मंगलाचरण अत्यन्त स्पष्ट है, जिसका नाम सिद्धमातृका है, जो स्वर और व्यंजन के भेद से दो भेदों को प्राप्त है, जो समस्त विद्याओं में पायी जाती है, जिसमें अनेक संयुक्त अक्षरों की उत्पत्ति है, जो अनेक बीजाक्षरों से व्याप्त है और जो शुद्ध मोतियों की माला के समान है ऐसी अकार को आदि लेकर हकार पर्यन्त तथा विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय इन अयोगवाह पर्यन्त समस्त शुद्ध अक्षरावली को बुद्धिमती ब्राह्मी पुत्री ने धारण किया और अतिशयसुन्दरी, सुन्दरी देवी ने इकाई, दहाई आदि स्थानों के क्रम से गणित शास्त्र को अच्छी तरह धारण किया।।१०५-१०८।। वाङ्मय के बिना न तो कोई शास्त्र है और न कोई कला है, इसलिए भगवान् वृषभदेव ने सबसे पहले उन पुत्रियों के लिए वाङ्मय का उपदेश दिया था।।१०९।। अत्यन्त बुद्धिमती उन कन्याओं ने सरस्वती देवी के समान अपने पिता के मुख से संशय, विपर्यय आदि दोषों से रहित शब्द तथा अर्थरूप समस्त वाङ्मय का अध्ययन किया था।।११०।। वाङ्मय के जानने वाले गणधरादि देव व्याकरण शास्त्र, छन्दशास्त्र और अलंकार शास्त्र इन तीनों के समूह को वाङ्मय कहते हैं।।१११।। उस समय स्वयम्भू अर्थात् भगवान वृषभदेव का बनाया हुआ एक बड़ा भारी व्याकरण शास्त्र प्रसिद्ध हुआ था उसमें सौ से भी अधिक अध्याय थे और वह समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर था।।११२।। इसी प्रकार उन्होंने अनेक अध्यायों में छन्दशास्त्र का भी उपदेश दिया था और उसके उक्ता, अत्युक्ता आदि छब्बीस भेद भी दिखलाये थे।।११३।। अनेक विद्याओं के अधिपति भगवान् ने प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्वित्रिलघुक्रिया, संख्या और अध्वयोग छन्दशास्त्र के इन छह प्रत्ययों का भी निरूपण किया था।।११४।। भगवान् ने अलंकारों का संग्रह करते समय अथवा अलंकार संग्रह ग्रंथ में उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का कथन किया था, उनके शब्दालंकार और अर्थालंकाररूप दो मार्गों का विस्तार के साथ वर्णन किया था और माधुर्य ओज आदि दश प्राण अर्थात् गुणों का भी निरूपण किया था।।११५।।

अथानन्तर ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों पुत्रियों की पदज्ञान (व्याकरण ज्ञान) रूपी दीपिका से प्रकाशित हुई समस्त विद्याएँ और कलाएँ अपने आप ही परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो गयी थीं।।११६।। इस प्रकार गुरु अथवा पिता के अनुग्रह से जिनने समस्त विद्याएँ पढ़ ली हैं ऐसी वे दोनों पुत्रियाँ सरस्वती देवी के अवतार लेने के लिए पात्रता को प्राप्त हुई थी। **भावार्थ**—वे इतनी अधिक ज्ञानवती हो गयी थीं कि साक्षात् सरस्वती भी उनमें अवतार ले सकती थी।।११७।।

जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव ने इसी प्रकार अपने भरत आदि पुत्रों को भी विनयी बनाकर क्रम से आम्नाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये।।११८।। भगवान् ने भरत पुत्र के लिए अत्यन्त विस्तृत बड़े-बड़े अध्यायों से स्पष्टकर अर्थशास्त्र और संग्रह (प्रकरण) सहित नृत्यशास्त्र पढ़ाया था।।११९।। स्वामी वृषभदेव ने अपने पुत्र वृषभसेन के लिए जिसमें गाना, बजाना आदि अनेक पदार्थों का संग्रह है और जिसमें सौ से भी अधिक अध्याय हैं ऐसे गन्धर्व शास्त्र का व्याख्यान किया था।।१२०।।

अनन्तविजय पुत्र के लिए नाना प्रकार के सैकड़ों अध्यायों से भरी हुई चित्रकला–सम्बन्धी विद्या का उपदेश दिया और लक्ष्मी या शोभा सहित समस्त कलाओं का निरूपण किया।।१२१।। इसी अनन्त–विजय पुत्र के लिए उन्होंने सूत्रधार की विद्या तथा मकान बनाने की विद्या का उपदेश दिया।। उस विद्या के प्रतिपादक शास्त्रों में अनेक अध्यायों का विस्तार था तथा उसके अनेक भेद थे।।१२२।। बाहुबली पुत्र के लिए उन्होंने कामनीति, स्त्री–पुरुषों के लक्षण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, घोड़ा–हाथी आदि के लक्षण जानने के तन्त्र और रत्नपरीक्षा आदि के शास्त्र अनेक प्रकार के बड़े–बड़े अध्यायों के द्वारा सिखलाये।।१२३-१२४।। इस विषय में अधिक कहने से क्या प्रयोजन है ? संक्षेप में इतना ही बस है कि लोक का उपकार करने वाले जो–जो शास्त्र थे भगवान् आदिनाथ ने वे सब अपने पुत्रों को सिखलाये थे।।१२५।।

जिस प्रकार स्वभाव से देदीप्यमान रहने वाले सूर्य का तेज शरद् ऋतु के आने पर और भी अधिक हो जाता है उसी प्रकार जिन्होंने अपनी समस्त विद्याएँ प्रकाशित कर दी हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव का तेज उस समय भारी अद्‌भुत हो रहा था।।१२६।। जिन्होंने समस्त विद्याएँ पढ़ ली हैं ऐसे पुत्रों से भगवान् वृषभदेव उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि शरद्‌ऋतु में अधिक कान्ति को प्राप्त होने वाला सूर्य अपनी किरणों से सुशोभित होता है।।१२७।। अपने इष्ट पुत्र और इष्ट स्त्रियों से घिरे हुए भगवान् वृषभदेव का बहुत भारी समय निरन्तर अनेक प्रकार के दिव्य भोग भोगते हुए व्यतीत हो गया।।१२८।। इस प्रकार अनेक प्रकार के भोगों का अनुभव करते हुए भगवान् का बीस लाख पूर्व वर्षों का कुमारकाल पूर्ण हुआ था ऐसी उत्तम मुनिगणधरदेव ने गणना की है।।१२९।। इसी बीच में काल के प्रभाव से महौषधि, दीप्तौषधि, कल्पवृक्ष तथा सब प्रकार की औषधियाँ शक्तिहीन हो गयी थीं।।१३०।। मनुष्यों के निर्वाह के लिए जो बिना बोये हुए उत्पन्न होने वाले धान्य थे वे भी काल के प्रभाव से पृथिवी में प्रायः करके विरलता को प्राप्त हो गये थे—जहाँ कहीं कुछ–कुछ मात्रा में ही रह गये थे।।१३१।। जब कल्पवृक्ष रस, वीर्य और विपाक आदि से रहित हो गये तब वहाँ की प्रजा रोग आदि अनेक बाधाओं से व्याकुलता को प्राप्त होने लगी।।१३२।। कल्पवृक्षों के रस, वीर्य आदि के नष्ट होने से व्याकुल मनोवृत्ति को धारण करती हुई प्रजा जीवित रहने की इच्छा से महाराज नाभिराज के समीप गयी।।१३३।। तदनन्तर नाभिराज की आज्ञा से प्रजा भगवान् वृषभनाथ के समीप गयी और अपने जीवित रहने के उपाय प्राप्त करने की इच्छा से उन्हें मस्तक झुकाकर नमस्कार करने लगी।।१३४।। अथानन्तर अन्नादि के नष्ट होने से जिसे अनेक प्रकार के भय उत्पन्न हो रहे हैं और जो सबको शरण देने वाले भगवान् की शरण को प्राप्त हुई है, ऐसी प्रजा सनातन–भगवान् के समीप जाकर इस प्रकार निवेदन करने लगी कि।।१३५।।

हे देव, हम लोग जीविका प्राप्त करने की इच्छा से आपकी शरण में आये हुए हैं इसलिए हे तीन लोक के स्वामी, आप उसके उपाय दिखलाकर हम लोगों की रक्षा कीजिए।।१३६।। हे विभो, जो

कल्पवृक्ष हमारे पिता के समान थे—पिता के समान ही हम लोगों की रक्षा करते थे वे सब मूल सहित नष्ट हो गये हैं और जो धान्य बिना बोये ही उत्पन्न होते थे वे भी अब नहीं फलते हैं।।१३७।। हे देव ! बढ़ती हुई भूख, प्यास आदि की बाधाएँ हम लोगों को दुखी कर रही है। अन्न–पानी से रहित हुए हम लोग अब एक क्षण भी जीवित रहने के लिए समर्थ नहीं हैं।।१३८।। हे देव ! शीत, आतप, महावायु और वर्षा आदि का उपद्रव आश्रयरहित हम लोगों को दुखी कर रहा है इसलिए आज इन सबके दूर करने के उपाय कहिए।।१३९।। हे विभो, आप इस युग के आदि कर्ता है और कल्पवृक्ष के समान उन्नत हैं, आपके आश्रित हुए हम लोग भय के स्थान कैसे हो सकते हैं ?।।१४०।। इसलिए हे देव, जिस प्रकार हम लोगों की आजीविका निरुपद्रव हो जाये, आज उसी प्रकार उपदेश देने का प्रयत्न कीजिए और हम लोगों पर प्रसन्न होइए।।१४१।।

इस प्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर जिनका हृदय दया से प्रेरित हो रहा है ऐसे भगवान् आदिनाथ अपने मन में ऐसा विचार करने लगे।।१४२।। कि पूर्व और पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है।।१४३।। वहाँ जिस प्रकार असि, मषी आदि छह कर्म हैं, जैसी क्षत्रिय आदि वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम–घर आदि की पृथक्–पृथक् रचना है उसी प्रकार यहाँ पर भी होनी चाहिए। इन्हीं उपायों से प्राणियों की आजीविका चल सकती है। इनकी आजीविका के लिए और कोई उपाय नहीं है।।१४४-१४५।। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर अब यह कर्मभूमि प्रकट हुई है, इसलिए यहाँ प्रजा को असि, मषी आदि छह कर्मों के द्वारा ही आजीविका करना उचित है।।१४६।। इस प्रकार स्वामी वृषभदेव ने क्षणभर प्रजा के कल्याण करने वाली आजीविका का उपाय सोचकर उसे बार–बार आश्वासन दिया कि तुम भयभीत मत होओ।।१४७।।

अथानन्तर भगवान् के स्मरण करने मात्र से देवों के साथ इन्द्र आया और उसने नीचे लिखे अनुसार विभाग कर प्रजा की जीविका के उपाय किये।।१४८।। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न के समय तथा सूर्य आदि ग्रहों के अपने–अपने उच्च स्थानों में स्थित रहने और जगद्गुरु भगवान् के हर एक प्रकार की अनुकूलता होने पर इन्द्र ने प्रथम ही मांगलिक कार्य किया और फिर उसी अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना की। इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर इस प्रकार चारों दिशाओं में भी यथाक्रम से जिनमन्दिरों की रचना की।।१४९-१५०।। तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, वन और सीमा सहित गाँव तथा खेड़ों आदि की रचना की थी।।१५१।।

सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, वंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कौशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार,

सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, वाह्लीक, तुरुष्क, शक और केकय इन देशों की रचना की तथा इनके सिवाय उस समय और भी अनेक देशों का विभाग किया।।१५२-१५६।। इन्द्र ने उन देशों में से कितने ही देश यथासम्भवरूप से अदेवमातृक अर्थात् नदी–नहरों आदि से सींचे जाने वाले, कितने ही देश देवमातृक अर्थात् वर्षा के जल से सींचे जाने वाले और कितने ही देश साधारण अर्थात् दोनों से सींचे जाने वाले निर्माण किये थे।।१५७।। जो पहले नहीं थे नवीन ही प्रकट हुए थे ऐसे देशों से वह पृथिवीतल ऐसा सुशोभित होता था मानो कौतुकवश स्वर्ग के टुकड़े ही आये हों।।१५८।। विजयार्ध पर्वत के समीप से लेकर समुद्र पर्यन्त कितने ही देश साधारण थे, कितने ही बहुत जलवाले थे और कितने ही जल की दुर्लभता से सहित थे, उन देशों से व्याप्त हुई पृथिवी भारी सुशोभित होती थी।।१५९।।

जिस प्रकार स्वर्ग के धामों–स्थानों की सीमाओं पर लोकपाल देवों के स्थान होते हैं उसी प्रकार उन देशों की अन्त सीमाओं पर भी सब ओर अन्तपाल अर्थात् सीमारक्षक पुरुषों के किले बने हुए थे।।१६०।। उन देशों के मध्य में और भी अनेक देश थे जो लुब्धक, आरण्य, चरट, पुलिन्द तथा शबर आदि म्लेच्छ जाति के लोगों के द्वारा रक्षित रहते थे।।१६१।। उन देशों के मध्यभाग में कोट, प्राकार, परिखा, गोपुर और अटारी आदि से शोभायमान राजधानी सुशोभित हो रही थीं।।१६२।। जिनका दूसरा नाम स्थानीय है ऐसे राजधानीरूपी किले को घेरकर सब ओर शास्त्रोक्त लक्षण वाले गाँवों आदि की रचना हुई थी।।१६३।। जिनमें बाड़ से घिरे हुए घर हों, जिनमें अधिकतर शूद्र और किसान लोग रहते हों तथा जो बगीचा और तालाबों से सहित हों, उन्हें ग्राम कहते हैं।।१६४।। जिसमें सौ घर हों उसे निकृष्ट अर्थात् छोटा गाँव कहते हैं तथा जिसमें पाँच सौ घर हों और जिसके किसान धनसम्पन्न हों उसे बड़ा गाँव कहते हैं।।१६५।। छोटे गाँवों की सीमा एक कोस की और बड़े गाँवों की सीमा दो कोस की होती है। इन गाँवों के धान के खेत सदा सम्पन्न रहते हैं और इनमें घास तथा जल भी अधिक रहता है।।१६६।।

नदी, पहाड़, गुफा, श्मशान, क्षीरवृक्ष अर्थात् थूबर आदि के वृक्ष, बबूल आदि कँटीले वृक्ष, वन और पुल ये सब उन गाँवों की सीमा के चिन्ह कहलाते हैं अर्थात् नदी आदि से गाँवों की सीमा का विभाग किया जाता है।।१६७।। गाँव के बचाने और उपभोग करने वालों के योग्य नियम बनाना, नवीन वस्तु के बनाने और पुरानी वस्तु की रक्षा करने के उपाय, वहाँ के लोगों से बेगार कराना, अपराधियों को दण्ड देना तथा जनता से कर वसूल करना आदि कार्य राजाओं के अधीन रहते थे।।१६८।। जो परिखा, गोपुर, अटारी, कोट और प्राकार से सुशोभित हो, जिसमें अनेक भवन बने हुए हों, जो बगीचे और तालाबों से सहित हो, जो उत्तम रीति से अच्छे स्थान पर बसा हुआ हो, जिसमें पानी का प्रवाह पूर्व और उत्तर के बीच वाली ईशान दिशा की ओर हो और जो प्रधान पुरुषों के रहने के योग्य हो, वह प्रशंसनीय पुर अथवा नगर कहलाता है।।१६९-१७०।। जो नगर नदी और पर्वत से घिरा

हुआ हो उसे बुद्धिमान् पुरुष खेट कहते हैं और जो केवल पर्वत से घिरा हुआ हो उसे खर्वट कहते हैं।।१७१।। जो पाँच सौ गाँवों से घिरा हो उसे पण्डितजन मडम्ब मानते हैं और जो समुद्र के किनारे हो तथा जहाँ पर लोग नावों के द्वारा उतरते हैं–(आते जाते हैं) उसे पत्तन कहते हैं।।१७२।। जो किसी नदी के किनारे पर हो उसे द्रोणमुख कहते हैं और जहाँ मस्तक पर्यन्त ऊँचे–ऊँचे धान्य के ढेर लगे हों वह संवाह कहलाता है।।१७३।। इस प्रकार पृथिवी पर जहाँ–तहाँ अपने–अपने योग्य स्थानों के अनुसार कहीं–कहीं पर ऊपर कहे हुए गाँव नगर आदि की रचना हुई थी।।१७४।। एक राजधानी में आठ सौ गाँव होते हैं, एक द्रोणमुख में चार सौ गाँव होते हैं और एक खर्वट में दो सौ गाँव होते हैं। दश गाँवों के बीच जो एक बड़ा भारी गाँव होता है उसे संग्रह (जहाँ पर हर एक वस्तुओं का संग्रह रखा जाता हो) कहते हैं। इसी प्रकार घोष तथा आकर आदि के लक्षणों की भी कल्पना कर लेनी चाहिए अर्थात् जहाँ पर बहुत घोष (अहीर) रहते हैं उसे घोष कहते हैं और जहाँ पर सोने, चाँदी आदि की खान हुआ करती है उसे आकर कहते हैं।।१७५-१७६।। इस प्रकार इन्द्र ने बड़े अच्छे ढंग से नगर, गाँवों आदि का विभाग किया था इसलिए वह उसी समय से पुरन्दर इस सार्थक नाम को प्राप्त हुआ था।।१७७।। तदनन्तर इन्द्र भगवान् की आज्ञा से इन नगर, गाँव आदि स्थानों में प्रजा को बसाकर कृतकृत्य होता हुआ प्रभु की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया।।१७८।। असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये छह कार्य प्रजा की आजीविका के कारण हैं। भगवान् वृषभदेव ने अपनी बुद्धि की कुशलता से प्रजा के लिए इन्हीं छह कर्मों द्वारा वृत्ति (आजीविका) करने का उपदेश दिया था सो ठीक ही है क्योंकि उस समय जगद्गुरु भगवान् सरागी ही थे वीतरागी नहीं थे। **भावार्थ**—सांसारिक कार्यों का उपदेश सराग अवस्था में दिया जा सकता है।।१७९-१८०।।

उन छह कर्मों में से तलवार आदि शस्त्र धारणकर सेवा करना असिकर्म कहलाता है, लिखकर आजीविका करना मषिकर्म कहलाता है, जमीन को जोतना–बोना कृषिकर्म कहलाता है, शास्त्र अर्थात् पढ़ाकर या नृत्य–गायन आदि के द्वारा आजीविका करना विद्याकर्म है, व्यापार करना वाणिज्य है और हस्त की कुशलता से जीविका करना शिल्पकर्म है वह शिल्पकर्म चित्र खींचना, फूल, पत्ते काटना आदि की अपेक्षा अनेक प्रकार का माना गया है।।१८१-१८२।। उसी समय आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ने तीन वर्णों की स्थापना की थी जो कि क्षतत्राण अर्थात् विपत्ति से रक्षा करना आदि गुणों के द्वारा क्रम से क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कहलाते थे।।१८३।। उस समय जो शस्त्र धारणकर आजीविका करते थे वे क्षत्रिय हुए, जो खेती, व्यापार तथा पशुपालन आदि के द्वारा जीविका करते थे वे वैश्य कहलाते थे और जो उनकी सेवा–शुश्रूषा करते थे वे शूद्र कहलाते थे। वे शूद्र दो प्रकार थे– एक कारु और दूसरा अकारु। धोबी आदि शूद्र कारु कहलाते थे और उनसे भिन्न अकारु कहलाते थे। कारु शूद्र भी स्पृश्य तथा अस्पृश्य के भेद से दो प्रकार के माने गये हैं उनमें जो प्रजा से बाहर रहते हैं

उन्हें अस्पृश्य अर्थात् स्पर्श करने के अयोग्य कहते हैं और नाई वगैरह को स्पृश्य अर्थात् स्पर्श करने के योग्य कहते हैं।।१८४-१८६।।

उस समय प्रजा अपने-अपने योग्य कर्मों को यथायोग्यरूप से करती थी। अपने वर्ण की निश्चित आजीविका को छोड़कर कोई दूसरी आजीविका नहीं करता था इसलिए उनके कार्यों में कभी शंकर (मिलावट) नहीं होता था। उनके विवाह, जाति सम्बन्ध तथा व्यवहार आदि सभी कार्य भगवान् आदिनाथ की आज्ञानुसार ही होते थे।।१८७।। उस समय संसार में जितने पाप रहित आजीविका के उपाय थे वे सब भगवान् वृषभदेव की सम्मति में प्रवृत्त हुए थे सो ठीक है क्योंकि सनातन ब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ही है।।१८८।। चूँकि युग के आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ने इस प्रकार कर्मयुग का प्रारम्भ किया था इसलिए पुराण के जानने वाले उन्हें कृतयुग नाम से जानते हैं।।१८९।। कृतकृत्य भगवान् वृषभदेव आषाढ़मास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन कृतयुग का प्रारम्भ करके प्राजापत्य (प्रजापतिपने) को प्राप्त हुए थे अर्थात् प्रजापति कहलाने लगे थे।।१९०।। इस प्रकार जब कितना ही समय व्यतीत हो गया और छह कर्मों की व्यवस्था से जब प्रजा कुशलतापूर्वक सुख से रहने लगी तब देवों ने आकर शीघ्र ही उनका सम्राट पद पर अभिषेक किया उस समय उनका प्रभाव स्वर्गलोक और पृथिवीलोक में खूब ही प्रकट हो रहा था।।१९१-१९२।।

यद्यपि भगवान् के राज्याभिषेक का अन्य विशेष वर्णन करने से कोई लाभ नहीं है इतना वर्णन कर देना ही बहुत है कि आदर से भरे हुए देवों ने दिव्य जल से उन आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेव का अभिषेक किया था तथापि उसका कुछ अन्य वर्णन कर दिया जाता है क्योंकि प्रायः साधारण मनुष्य अत्यन्त प्रसिद्ध बात को भी नहीं जानते हैं।।१९३-१९४।। उस समय समस्त संसार आनन्द से भर गया था, देवलोग इन्द्र को आगे कर स्वर्ग से अवतीर्ण हुए थे—उतरकर अयोध्यापुरी आये थे।।१९५।। उस समय अयोध्यापुरी खूब ही सजायी गयी थी। उसके मकानों के अग्रभाग पर बाँधी गयी पताकाओं से समस्त आकाश भर गया था।।१९६।। उस समय राजमन्दिर में बड़ी आनन्द-भेरियाँ बज रही थीं, स्त्रियाँ मंगलगान गा रही थीं और देवांगनाएँ नृत्य कर रही थीं।।१९७।। देवों के बन्दीजन मंगल गानों के साथ-साथ भगवान् के पराक्रम पढ़ रहे थे और देवलोग सन्तोष से 'जय जीव', इस प्रकार की घोषणा कर रहे थे।।१९८।। राज्याभिषेक के प्रथम ही पृथिवी के मध्यभाग में जहाँ मिट्टी की वेदी बनायी गयी थी और उस वेदी पर जहाँ देव-कारीगरों ने बहुमूल्य श्रेष्ठ आनन्द मण्डप बनाया था, जो रत्नों के चूर्ण समूह से बनी हुई रंगावली से चित्रित हो रहा था। और जहाँ अनेक मंगलद्रव्यों का संग्रह हो रहा था ऐसे राजमहल के आँगनरूपी रंगभूमि में योग्य सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके भगवान् वृषभदेव को बैठाया और जब गन्धर्व देवों के द्वारा प्रारम्भ किए हुए संगीत के समय होने वाला मृदंग का गम्भीर शब्द समस्त दिक्तटों के साथ-साथ तीन लोकरूपी कुटी के मध्य में व्याप्त हो रहा था तथा नृत्य करती हुई देवांगनाओं के पढ़े जाने वाले संगीत के स्वर में स्वर मिलाकर किन्नर

जाति की देवियाँ कानों को सुख देने वाला भगवान् का यश गा रही थीं उस समय देवों ने तीर्थोदक से भरे हुए सुवर्ण के कलशों से भगवान वृषभदेव का अभिषेक करना प्रारम्भ किया।।१९९-२०८।। भगवान् के राज्याभिषेक के लिए गंगा और सिन्धु इन दोनों महानदियों का वह जल लाया गया था जो हिमवत्पर्वत की शिखर से धारारूप में नीचे गिर रहा था तथा जिसने पृथिवी तल को छुआ तक भी नहीं था। **भावार्थ**—नीचे गिरने से पहले ही जो बरतनों में भर लिया गया था।।२०९।।

इसके सिवाय गंगाकुण्ड से गंगा नदी का स्वच्छ जल लाया गया था और सिन्धुकुण्ड से सिन्धु नदी का निर्मल जल लाया गया था।।२१०।। इसी प्रकार ऊपर से पड़ती हुई अन्य नदियों का स्वच्छ जल भी उनके गिरने के कुण्डों से लाया गया था।।२११।। श्री, ह्री आदि देवियाँ भी पद्म आदि सरोवरों का जल लायी थीं जो कि सुवर्णमय कमलों की केसर के समूह से पीतवर्ण हो रहा था।।२१२।। सायंकाल के समय खिलने वाले सुगन्धित कमलों की सुगन्ध से मधुर, अतिशय मनोहर और नील कमलों सहित तालाबों का जल लाया गया था। जो बाहर प्रकट हुए मोतियों के समूह से अत्यन्त श्रेष्ठ है ऐसा लवणसमुद्र का जल भी लाया गया था।।२१३।। नन्दीश्वर द्वीप में जो अत्यन्त स्वच्छ जल से भरी हुई नन्दोत्तरा आदि वापिकाएँ हैं उनका भी स्वच्छ जल लाया गया था।।२१४।। इसके सिवाय क्षीरसमुद्र, नन्दीश्वर समुद्र तथा स्वयम्भूरमण समुद्र का भी जल सुवर्ण के बने हुए दिव्य कलशों में भरकर लाया गया था।।२१५।।

इस प्रकार ऊपर कहे हुए प्रसिद्ध जल से जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव का अभिषेक किया गया था। चूँकि भगवान् का शरीर स्वयं ही पवित्र था अतः अभिषेक से वह क्या पवित्र होता ? केवल भगवान् ने ही अपने स्वयं पवित्र अंगों से उस जल को पवित्र कर दिया था।।२१६।। उस समय भगवान के मस्तक पर देवों के द्वारा छोड़ी हुई जल की धारा ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो उस मस्तक को राज्यलक्ष्मी का आश्रय समझ कर ही छोड़ी गयी हो।।२१७।। चर और अचर पदार्थों के गुरु भगवान् वृषभदेव के मस्तक पर पड़ती हुई जल की छटाएँ ऐसी शोभायमान होती थी मानो संसार का सन्ताप नष्ट करने वाली और निर्मल गुणों की सम्पदाएँ ही हों।।२१८।। यद्यपि भगवान् का शरीर स्वभाव से ही पवित्र था तथापि इन्द्र ने गंगा नदी के जल से उसका अभिषेक किया था इसलिए उसकी पवित्रता और अधिक हो गयी थी।।२१९।। उस समय इन्द्रों ने केवल भगवान् के अंगों का ही प्रक्षालन नहीं किया था किन्तु देखने वाले पुरुषों की मनोवृत्ति, नेत्र और शरीर का भी प्रक्षालन किया था। **भावार्थ**—भगवान् का राज्याभिषेक देखने में मनुष्यों के मन, नेत्र तथा समस्त शरीर पवित्र हो गये थे।।२२०।।

उस समय नृत्य करती हुई देवांगनाओं के कटाक्षरूपी वाण उस जल के प्रवाह में प्रतिबिम्बित हो रहे थे इसलिए ऐसे मालूम होते थे मानो उन पर तेज पानी रखा गया हो और इसलिए वे मनुष्यों के चित्त को भेदन कर रहे थे। **भावार्थ**—देवांगनाओं के कटाक्षों से देखने वाले मनुष्यों के चित्त भिद जाते

थे।।२२१।। भगवान् के शरीर के संसर्ग से पवित्र हुई निर्मल जल से समस्त पृथिवी व्याप्त हो गयी थी इसलिए वह ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वामी वृषभदेव की राज्य सम्पदा से सन्तुष्ट होकर अपने शुभ भाग्य से बढ़ ही रही हो।२२२।। इन्द्र जब सुवर्ण के बने हुए कलशों से भगवान् का अभिषेक करते थे तब भगवान ऐसे सुशोभित होते थे जैसे कि सायंकाल में होने वाले बादलों से मेरु पर्वत सुशोभित होता है।।२२३।। नाभिराज को आदि लेकर जो बड़े–बड़े राजा थे उन सभी ने सब राजाओं में श्रेष्ठ यह वृषभदेव वास्तव में राजा के योग्य हैं ऐसा मानकर उनका एक साथ अभिषेक किया था।।२२४।। नगर निवासी लोगों ने भी, किसी ने कमलपत्र के बने हुए दोने से और किसी ने मिट्टी के घड़े से सरयू नदी का जल लेकर भगवान् के चरणों का अभिषेक किया था।।२२५।। मागध आदि व्यन्तर देवों के इन्द्रों ने भी तीन ज्ञान को धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव की 'यह हमारे देश के स्वामी हैं' ऐसा मानकर प्रीतिपूर्वक पवित्र अभिषेक के द्वारा पूजा की थी।।२२६।। भगवान् वृषभदेव का सबसे पहले तीर्थ जल से अभिषेक किया था फिर कषाय जल से अभिषेक किया गया और फिर सुगन्धित द्रव्यों से मिले हुए सुगन्धित जल से अन्तिम अभिषेक किया गया था।।२२७।। तदनन्तर जिनका अभिषेक किया जा चुका है ऐसे भगवान ने कुछ–कुछ गरम जल से भरे हुए स्नान योग्य सुवर्ण के कुण्ड में प्रवेश कर सुखकारी स्नान का अनुभव किया था।।२२८।। भगवान ने स्नान करने के अन्त में जो माला, वस्त्र और आभूषण उतारकर पृथिवी पर छोड़ दिये थे–डाल दिये थे उनसे वह पृथिवीरूपी स्त्री ऐसी मालूम होती थी मानो उसे स्वामी के शरीर का स्पर्श करने वाली वस्तुएँ ही प्रदान की गयी हों। **भावार्थ**—लोक में स्त्री पुरुष प्रेमवश एक दूसरे के शरीर से छुए गये वस्त्राभूषण धारण करते हैं यहाँ पर आचार्य ने भी उसी लोकप्रसिद्ध बात को उत्प्रेक्षालंकार में गुम्फित किया है।।२२९।। इस प्रकार जब देवों के बन्दीजन उच्च स्वर से शुभस्नानसूचक मंगल पाठ पढ़ रहे थे तब भगवान् वृषभदेव ने राज्यलक्ष्मी को धारण करने अथवा उसके साथ विवाह करने योग्य स्नान को प्राप्त किया था। तदनन्तर जिनका अभिषेक पूर्ण हो चुका है और जिनकी आरती की जा चुकी है ऐसे भगवान् को देवों ने स्वर्ग से लाये हुए माला, आभूषण और वस्त्र आदि से अलंकृत किया।।२३१।।

'महामुकुटबद्ध राजाओं के अधिपति भगवान् वृषभदेव ही हैं' यह कहते हुए महाराज नाभिराज ने अपने हाथ से भगवान के मस्तक पर मुकुट बांधा था।।२३२।। जगत् मात्र के बन्धु भगवान् वृषभदेव के ललाट पर पट्टबन्ध भी रखा जो कि ऐसा मालूम होता था मानो यहाँ–वहाँ भागने वाली चंचल राज्यलक्ष्मी को स्थिर करने वाला एक बन्धन ही हो।।२३३।।

तदनन्तर नाट्यशास्त्रों को जानने वाला इन्द्र उस सभारूपी रंगभूमि में आनन्द के साथ आनन्द नाम का नाटक कर स्वर्ग को चला गया।।२३९।। जो अपना कार्य समाप्त कर चुके हैं और जिनके चित्त की वृत्ति भगवान् के चरणों की सेवा में लगी हुई है ऐसे देव और असुर उस इन्द्र के साथ ही अपने–अपने स्थानों पर चले गये।।२४०।।

अथानंतर–कर्मभूमि की रचना करने वाले भगवान वृषभदेव ने अपने पिता महाराज नाभिराज से साम्राज्य पाकर नीचे लिखे अनुसार प्रजा के पालन करने का प्रयत्न किया।।२४१।। प्रथम ही भगवान ने प्रजा की सृष्टि उत्पन्न की, तदनंतर प्रजा के आजीविका के नियम बनाये और फिर प्रजा के लिये अपनी–अपनी मर्यादा के उल्लंघन न करने का नियम बनाया, इस प्रकार वे अपनी प्रजा का शासन करने लगे।।२४२।। उस समय भगवान ने अपने दोनों हाथों में शस्त्र धारण कर क्षत्रियों की रचना की अर्थात् उन्हें शस्त्रविद्या सिखलाई सो ठीक ही है क्योंकि जो हाथ में शस्त्र लेकर दूसरे सबल व शत्रु के प्रहार से जीवों की रक्षा करे उन्हें ही क्षत्रिय कहते हैं।।२४३।। तदनंतर भगवान ने अपने ऊरुओं से यात्रा करना अर्थात् परदेश जाना दिखलाकर वैश्यों की सृष्टि की, सो भी ठीक ही है क्योंकि समुद्र आदि जल प्रदेशों में तथा स्थल प्रदेशों में यात्रा करके व्यापार करना वैश्यों की मुख्य आजीविका है।।२४४।। सदा नीच कामों में तत्पर रहने वाले शूद्रों की रचना भगवान ने अपने पैरों से ही की, सो ठीक ही है क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन उत्तम वर्णों के पैर दाबना, हर तरह से उनकी सेवा सुश्रूषा करना, उनकी आज्ञा पालन करना आदि शूद्रों की आजीविका अनेक प्रकार की कही गई है।।२४५।। इस प्रकार तीन वर्णों की सृष्टि तो प्रथम ही हो चुकी थी उसके बाद भगवान वृषभदेव के पुत्र महाराज भरत अपने मुख से शास्त्रों का अध्ययन (पाठ) कराते हुये ब्राह्मणों की रचना करेंगे और पढ़ना, पढ़ाना, दान देना, दान लेना, पूजा करना, कराना आदि उनकी आजीविका के उपाय होंगे।।२४६।। शूद्र को शूद्र की वृत्ति (आजीविका) का पालन करना चाहिये, अन्य कार्य नहीं करना चाहिये। नैगम अर्थात् वैश्य को वाणिज्य– व्यापारादिरूप वृत्ति करना चाहिए, क्वचित् शुश्रूषारूप वृत्ति भी कर सकता है राजन्य अर्थात् क्षत्रियवर्ण को शस्त्रधारी हो प्रजा का संरक्षण करना चाहिए क्वचित् व्यापार अथवा सेवा वृत्ति भी कर सकता है ब्राह्मणों को अध्ययन, अध्यापनादि कार्य करना चाहिये; क्वचित् अन्य वर्ण सम्बन्धी वृत्ति का आश्रय कर सकता है।।२४७।। इस प्रकार वर्णित अपनी वृत्ति अर्थात् आजीविका के क्रम का उल्लंघन कर जो अन्य प्रकार की वृत्ति को अपनायेगा वह राजाओं के द्वारा दण्डनीय होगा। ऐसा न होने पर वर्णसंकीर्णता होगी।।२४८।। भगवान वृषभदेव ने चारों वर्ण तथा उनका विवाह संबंध आदि की रचना करने के पहिले ही असि, मसि, कृषि आदि छह कर्मों की रचना कर दी थी और उस समय से लोग अपने कर्म करने लग गये थे इसलिये उन कर्मों के करने से इस भारतवर्ष में कर्मभूमि प्रगट हो गई थी। भावार्थ–अब तक भोगभूमि थी, अब असि, मसि आदि कर्मकर जीविका होने से कर्मभूमि कही जाती थी।।२४९।। इस प्रकार भगवान वृषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य आदि प्रजा की रचना की और उसका योग अर्थात् जो वस्तु नहीं है उसे उत्पन्न करना और क्षेम अर्थात् जो वस्तु विद्यमान है उसकी रक्षा करना इन दोनों को अच्छी तरह चलाने के लिये बड़ी युक्ति से हा, मा और धिक्कार ये तीनों प्रकार के दंड स्थापन किये थे।।२५०।। दुष्ट पुरुषों का निग्रह करना अर्थात् उन्हें दंड देना और सज्जन पुरुषों का पालन करना यह क्रम कर्मभूमि से पहिले अर्थात्

भोगभूमि में नहीं थी, क्योंकि भोगभूमि में प्रजा के सब लोग निरपराध होते थे, कोई भी कुछ अपराध नहीं करता था।।२५१।। यदि कर्मभूमि में दंड देने वाला राजा न होगा तो फिर संसार में मात्स्य न्याय की प्रवृत्ति हो जायेगी अर्थात् जिस प्रकार बड़ी–२ मछलियाँ छोटी–२ मछलियों को खा जाती हैं उसी प्रकार की रीति यहाँ भी प्रचलित हो जायेगी, क्योंकि यह प्रसिद्ध ही है कि जो अंतरंग का दुष्ट और बलवान होता है वह निबल को खा जाता है अर्थात् उसे पीड़ा देता है।।२५२।। यदि अपराधी लोगों को दंड दिया जायेगा तो फिर वे दंड के डर से कुमार्ग की ओर नहीं दौड़ेंगे इसलिये अपराधी लोगों को दंड देने वाला राजा अवश्य होना चाहिये और ऐसा राजा ही पृथ्वी को जीत सकता है।।२५३।। जिस प्रकार बिना किसी तरह की पीड़ा दिये दूध देने वाली गाय से दूध निकालने में गाय सुखी रहती है और उसका दूध बढ़ता है। उसी प्रकार राजा को प्रजा से भी धन वसूल करना चाहिये उस पर अधिक पीड़ा देने वाला कर नहीं लगाना चाहिये, ऐसा करने से ही प्रजा सुखी रहती है और धन भी अच्छा वसूल हो जाता है।।२५४।। यही समझकर भगवान वृषभदेव ने नीचे लिखे हुये पुरुषों को प्रजा को दंड आदि देने वाला राजा बनाया सो ठीक ही है क्योंकि प्रजा का योग अर्थात् जो वस्तु नहीं है उसे उत्पन्न करना और क्षेम अर्थात् जो वस्तु है उसकी रक्षा का उपाय करना, इन दोनों का विचार करना राजा के ही आधीन है।।२५५।।

भगवान् ने हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ इन चार महा भाग्यशाली क्षत्रियों को बुलाकर उनका यथोचित सम्मान और सत्कार किया। तदनन्तर राज्याभिषेक कर उन्हें महामाण्डलिक राजा बनाया। ये राजा चार हजार अन्य छोटे–छोटे राजाओं के अधिपति थे।।२६६–२५७।। सोमप्रभ, भगवान् से कुरुराज नाम पाकर कुरुदेश का राजा हुआ और कुरुवंश का शिखामणि कहलाया।।२५८।। हरि, भगवान् की आज्ञा से हरिकान्त नाम को धारण करता हुआ हरिवंश को अलंकृत करने लगा क्योंकि वह श्रीमान् हरिपराक्रम अर्थात् इन्द्र अथवा सिंह के समान पराक्रमी था।।२५९।। अकम्पन भी, भगवान् से श्रीधर नाम पाकर उनकी प्रसन्नता से नाथवंश का नायक हुआ।।२६०।। और काश्यप भी जगद्गुरु भगवान् से मघवा नाम प्राप्तकर उग्रवंश का मुख्य राजा हुआ सो ठीक ही है। स्वामी की सम्पदा से क्या नहीं मिलता है ? अर्थात् सब कुछ मिलता है।।२६१।। तदनन्तर भगवान् आदिनाथ ने कच्छ, महाकच्छ आदि प्रमुख–प्रमुख राजाओं का सत्कार कर उन्हें अधिराज के पद पर स्थापित किया।।२६२।। इसी प्रकार भगवान् ने अपने पुत्रों के लिए भी यथायोग्यरूप से महल, सवारी तथा अन्य अनेक प्रकार की सम्पत्ति का विभाग कर दिया था सो ठीक ही है क्योंकि राज्यप्राप्ति का यही तो फल है।।२६३।।

उस समय भगवान ने मनुष्यों को इक्षु का रस संग्रह करने का उपदेश दिया था इसलिए जगत् के लोग उन्हें इक्ष्वाकु कहने लगे।।२६४।। 'गो' शब्द का अर्थ स्वर्ग है जो उत्तम स्वर्ग हो उसे सज्जन पुरुष 'गोतम' कहते हैं। भगवान् वृषभदेव स्वर्गों में सबसे उत्तम सर्वार्थसिद्धि से आये थे इसलिए वे 'गौतम'

इस नाम को भी प्राप्त हुए थे।।२६५।। 'काश्य' तेज को कहते हैं भगवान् वृषभदेव उस तेज के रक्षक थे इसलिए 'काश्यप' कहलाते थे उन्होंने प्रजा की आजीविका के उपायों का भी मनन किया था इसलिए वे मनु और कुलधर भी कहलाते थे।।२६६।। इनके सिवाय तीनों जगत् के स्वामी और विनाशरहित भगवान् को प्रजा 'विधाता' विश्वकर्मा' और 'स्रष्टा' आदि अनेक नामों से पुकारती थी।।२६७।। भगवान् का राज्यकाल तिरसठ लाख पूर्व नियमित था सो उनका वह भारी काल, पुत्र–पौत्र आदि से घिरे रहने के कारण बिना जाने ही व्यतीत हो गया अर्थात् पुत्र–पौत्र आदि के सुख का अनुभव करते हुए उन्हें इस बात का पता भी नहीं चला कि मुझे राज्य करते हुए कितना समय हो गया है।।२६८।। महादेदीप्यमान भगवान् वृषभदेव ने अयोध्या के राज्यसिंहासन पर आसीन होकर पुण्योदय से प्राप्त हुई साम्राज्यलक्ष्मी का सुख से अनुभव किया था।।२६९।।

इस प्रकार सुर और असुरों के गुरु तथा अचिन्त्य धैर्य के धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव को इन्द्र उनके विशाल पुण्य के संयोग से भोगोपभोग की सामग्री भेजता रहता था जिससे वे सुखपूर्वक सन्तोष को प्राप्त होते रहते थे। इसलिए हे पण्डितजन! पुण्योपार्जन करने में प्रयत्न करो।।२७०।। इस संसार में पुण्य से सुख प्राप्त होता है। जिस प्रकार बीज के बिना अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार पुण्य के बिना सुख नहीं होता। दान देना, इन्द्रियों को वश करना, संयम धारण करना सत्यभाषण करना, लोभ का त्याग करना और क्षमाभाव धारण करना आदि शुभ चेष्टाओं से अभिलषित पुण्य की प्राप्ति होती है।।२७१।। सुर, असुर, मनुष्य और नागेन्द्र आदि के उत्तम–उत्तम भोग, लक्ष्मी, दीर्घ आयु, अनुपम रूप, समृद्धि, उत्तम वाणी, चक्रवर्ती का साम्राज्य, इन्द्रपद, जिसे पाकर फिर संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता ऐसा अरहन्त पद और अन्तरहित समस्त सुख देने वाला श्रेष्ठ निर्वाण पद इन सभी की प्राप्ति एक पुण्य से ही होती है इसलिए हे पण्डितजन! यदि स्वर्ग और मोक्ष के अचिन्त्य महिमा वाले श्रेष्ठ सुख प्राप्त करना चाहते हो तो धर्म करो क्योंकि वह धर्म ही स्वर्गों के भोग और मोक्ष के अविनाशी अनन्त सुख की प्राप्ति कराता है। वास्तव में सुखप्राप्ति होना धर्म का ही फल है।।२७२–२७३।। हे सुधीजन ! यदि तुम सुख प्राप्त करना चाहते हो तो हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनियों के लिए दान दो, तीर्थंकरों को नमस्कार कर उनकी पूजा करो, शीलव्रतों का पालन करो और पर्व के दिनों में उपवास करना नहीं भूलो।।२७४।। इस प्रकार जो प्रशस्त लक्ष्मी के स्वामी थे, स्थिर रहने वाले भोगों का अनुभव करते थे, स्नेह रखने वाले अपने पुत्र–पौत्रों के साथ सन्तोष धारण करते थे। इन्द्र सूर्य और चन्द्रमा आदि उत्तम–उत्तम देव जिनकी आज्ञा धारण करते थे और जिन पर किसी की आज्ञा नहीं चलती थी ऐसे भगवान् वृषभदेव सिंहासन पर आरूढ़ होकर इस समुद्रान्त पृथिवी का शासन करते थे।।२७५।।

शिल्प क्रिया के अन्तर्गत वास्तुविद्या में–
जिनप्रतिमा निर्माण विधि

अमृतवर्षिणी टीका–

अथ बिम्बं जिनेन्द्रस्य, कर्तव्यं लक्षणान्वितम्।
ऋज्वायतसुसंस्थानं, तरुणांगं दिगम्बरम्।।१।।

जिनेन्द्र भगवान का प्रतिबिम्ब सरल, लंबा, सुंदर, समचतुरस्र संस्थान तरुण अवस्थाधारी, नग्न जातलिंगधारी सर्व लक्षणसंयुक्त करना योग्य है।।१।।

श्रीवत्सभूषितोरस्कं, जानुप्राप्तकराग्रजं।
निजांगुलप्रमाणेन, साष्टांगुलशतायुतम्।।२।।

श्रीवत्सचिन्ह से भूषित है वक्षस्थल जिनका और गोड़े पर्यंत (घुटने पर्यंत) लंबायमान हैं भुजा जिनकी, ऐसे निजांगुल के प्रमाण से १०८ भागप्रमाण जिनबिम्ब बनाना-बनवाना चाहिए।।२।। जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा चित्र की, लेप की, शिला की, धातु की बनावें। उसके अंग-अंग की गोलाई तथा ऊँचाई यथाक्रम कहते हैं एवं उनका मान, प्रमाण, उन्मान भी कहते हैं।।३।।

उक्तं च—

मृत्तिका, काष्ठ और विलेपन आदि की प्रतिमाएँ पूज्य नहीं हैं।

कांख आदि स्थानों में रोमों से रहित तथा मूँछ-दाढ़ी के केश से रहित प्रारंभ से अंत तक प्रलंबक—ऊँचाई को लिए हुए प्रतिबिम्ब बनावें।।४।।

उक्तं च—

वृद्ध, बाल अंग से रहित, शांतमुद्रा, श्रीवृक्ष करके (सहित) हृदय से सुशोभित, नख-केश रहित, धातु या चित्र-विचित्र पाषाण में वैराग्य से विभूषित तपश्चरण में तत्पर ऐसा जिनबिम्ब बनावें।।७।। ताल, मुख, वितस्ति, द्वादशांगुल ये शब्द एकार्थवाची हैं। इस मान से जिनबिम्ब को नव भागों में कल्पित करना।।५।। वहाँ १०८ भाग में १२ भाग मुख रखे, ४ भाग ग्रीवा रखे और ग्रीवा से हृदयपर्यंत १२ भाग रखना।।६।। हृदय से १२ भाग के अन्तर से नाभि रखे, नाभि से लिंग का मूल गुदापर्यंत १२ भाग पेडू रखे। लिंग के मूल से गोडे तक जंघा २४ भाग रखे।।७।। ४ भाग प्रमाण गोड़ा—घुटने रखे, घुटने से टिकूण्यां (?) तक २४ भाग का अन्तर रखे। टिकूण्यां से पादतलपर्यंत ४ भाग का अन्तर रखे। ऐसे ९ स्थान १०८ भाग प्रमाण में करना है।।८।।

मस्तक के १२ भाग के ३ हिस्से का कथन

दाढ़ी से मस्तक के केश पर्यंत १२ भाग चौड़ा और १२ भाग ऊँचा मुख करें।

ऊँचाई के यथाक्रम से ३ विभाग करे।

मुख के १२ भाग ऊँचाई में ३ भाग

४ भाग प्रमाण ललाट

४ भाग प्रमाण नासिका

४ भाग प्रमाण ठोडी

नासिका का रंध्र ४ यव अर्थात् आधा भाग करें। इसी प्रकार नासिका पाली अर्थात् रंध्र का ऊपरी भाग भी ४ यव प्रमाण करे।

ललाट का कथन

ललाट ४ भाग ऊँचा, ८ भाग चौड़ा अर्ध चन्द्राकार बनावे। वह ललाट किंचित् ऊँचा व नीचा दिखता हुआ बनावे और ललाट की अग्रकोटी नम्र अर्थात् झुकी हुई रखे।

केश का कथन

ललाट के ऊपर का केशस्थान ५ भाग रखे। उष्णीष भी ५ भाग रखे। ऊपर अर्थात् उसके ऊपर चोटी २ भाग क्रमरूप चूड़ा उतार रखे।

ऐसे ललाट से चोटी तक १२ भाग रखे। पीछे ग्रीवा के केश से भी चोटी- पर्यंत १२ भाग रखे।

मस्तक के दोनों पार्श्व में शंख नाम दो हाड ४ भाग चौड़ा रखे।

भंवारे— भ्रूलता ४ भाग लंबे मध्य में मोटा दोनों अग्र में कृश चढ़ाये हुए धनुष के आकार के शोभनीक बनावे।।१३।।

भंवारे और नेत्र का कथन

भंवारा १ (१/२) भाग चौड़ा आदि में, पाव भाग चौड़ा अन्त में रखे, बाकी शोभनीक बनावें। दोनों भंवारे के मध्य में केशों का अंतर २ भाग रखे।।१४।। नेत्र की लम्बाई सफेदी सहित ३ भाग करना तथा केवल सफेदी का प्रमाण द्वयंगुल अर्थात् २ भाग करें। दोनों ही नेत्र कमलपुष्प के समान मनोहर करें।।१५।। नेत्र की सफेदी के मध्य में श्यामतारा १ भाग रखें। इसके बीच तारिका जो छोटी कनिका गोल १ भाग का तीसरा हिस्सा चौड़ी रखें। भृकुटी के मध्य से नीचे की वांफणी (.....) तक ३ भाग चौड़े नेत्र रखें।।१६।।

मुख फाड़ का कथन

नासिका के मूल में दोनों के बीच दो भाग का अन्तर रखना। ऊपर का ओंठ २ भाग लंबा १ भाग ऊँचा रखें।।१७।।

मुख का फाड़ (.....) ४ भाग लंबी रखे, ऊपर के ओंठ के नासिका की नीचे की गोजी अर्थात् प्रणाली अर्द्ध भाग लंबी और एक भाग का तीसरा हिस्सा चौड़ी रखे।।१८।। नीचे का ओंठ १ अंगुल मोटा, १ अंगुल चौड़ा अर्थात् (और) २ अंगुल लंबा रखें।।१९।।

उक्तं च—

कर्ण ६ भाग लंबे, ४ भाग चौड़े करे, बीच में छिद्र की नाली यव की नाली समान करें, इसका अन्तर अर्द्धांगुल प्रमाण करे।। नेत्रों की ऊँचाई अर्थात् भंवारे की ऊँचाई के सीध में कर्णवर्तिका बनावे। वैसे ही नेत्रों के अन्त्यभाग की सीध में छिद्र रहित कर्णपूर बनावे।।२५।।

नासिका कथन

करवीर अर्थात् नेत्र की सफेदी के समान नासापुट की रचना करें। नासिका के पर्यंत भाग के तुल्य तारिका बनावे।।२६।। दोनों के कर्णों के अन्तर १८ भाग अगाड़ी (आगे) से रखें व चौदह भाग पिछाड़ी (पीछे) से रखें, ऐसे दोनों मिलकर ३२ भाग होते हैं।।२७।।

ग्रीवा का विस्तार

ग्रीवा का विस्तार १२ भाग रखे, कोहनी का विस्तार ५ भाग (पौने छह भाग) रखें।।२८।।

भुज का कथन

कोहनी का परिधि १६ भाग की रखें, कोहनी से पौंछा (पहुँचा) अर्थात् कलाई तक क्रम से हानिरूप चूड़ा उतार रखें।।२९।। कोहनी के नीचे भुजा मध्य १ भाग का त्रिभाग घाटि (कम) ५ भाग रखें। परिधि चौदह (१४) भाग करें।।३०।। पोंछया (पहुँचा) अर्थात् कलाई का विस्तार ४ भाग रखे। परिधि १२ अंगुल (भाग रखें।।३१।। अर्थात् यहाँ परिधि तिगुनी है।

अंगुली का कथन

पोंछा (कलाई) से मध्य अंगुली का अग्रभाग तक १२ भाग रखे। हाथ के मध्य की अंगुली ५ भाग रखे।।३२।। अनामिका और तर्जनी दोनों अंगुली मध्यमा से अर्द्ध पर्व घाटि (कम) रखे।।३३।। कनिष्ठा-अंगुली अनामिका से १ पोरवा घाटि—कम रखे। कलाई (पौंछा) से कनिष्टिका के मूल के ५ भाग अंतर रखे।।३४।। तर्जनी तथा मध्यमा के प्रमाण से कनिष्ठा मोटाई में अर्द्धभाग कम रखें, चौड़ाई से त्रिगुणी करें।।३५।। अंगूठा ४ भाग लंबा रखें, विस्तार १ भाग से कुछ अधिक रखें।।३६।। अंगूठे के दो पर्व करे, गोलाई ४ भाग करे, बाकी चारों ही अंगुलियों के तीन-तीन पर्व करें।।३७।। पाँचों ही अंगुलियों के अर्द्धपर्व समान नख रखें, अपने अंगुल के समान करके सब अंगुली सम पर्व बनावें।।३८।।

हथेली ७ भाग लंबी, ५ भाग चौड़ी रखें। इसकी मध्य गोलाई १२ भाग रखें।।३९।। अंगूठे के मूल में और तर्जनी के मूल में २ भाग का अन्तर रखें। भुजा गोल संधि जोड़ से मिली हुई गोपुच्छ सदृश करें।।४०।। दोनों हाथ हाथी के सूंढ के आकार के लंबे गोड़े से (जानु से) मिले हुए, न तो अत्यंत नीचे न ऊँचे छिद्र रहित पुष्ट गोल करें।।४१।। अंगुलियों को मिलापयुक्त, स्निग्ध, ललित, उपचयसंयुक्त शंख, चक्र, सूर्य, कमल आदि उत्तम चिन्हों से सहित बनावें।।४२।।

वक्षस्थल —छाती का कथन

वक्षस्थल २४ भाग चौड़ा रखें, उसके मध्य श्रीवत्स का चिन्ह बनावें। पीठ सहित वक्षस्थल की परिधि ५६ भाग रखें। भुजा तक ३६ भाग चौड़ी मय भुजा के वक्षस्थल करें। इस खवे से उस खवे तक ३६ भाग करें अर्थात् इस कंधे से उस कंधे तक ३६ भाग रखें। दोनों स्तन के मध्य १२ भाग का अन्तर रखें। स्तन की चूँची २ भाग चौड़ी रखें। चूंची के मध्य की वींटली पाव (१/४) भाग प्रमाण करें।।४४।।

नाभि का कथन

नाभि का मुख १ भाग चौड़ा गोल, शंख के मध्य भाग समान ऊँडा (गहरा) दक्षिणावर्त मनोहर करें।।४५।।

आगे लिंग का कथन

नाभि के मध्य से लिंग का मूल ८ भाग का रखें। उन आठ भाग में ८ रेखा करें।।४६।।

कमर का कथन

कटि—कमर १८ भाग चौड़ी रखें, जिसकी परिधि अड़तालीस (४८) भाग की करें।।४७।।

बैठक के हाड़ का कथन

बैठक का हाड़ (.....) त्रिकोण ८ भाग लंबा करें, कमर के पीछे के भाग में कूला गोल ६ भाग प्रमाण बनावें।।४८।।

बांसे के हाड़ का कथन

स्कंध के सूत से गुदापर्यंत ३६ भाग लंबा आधा भाग मोटा बांसे का हाड़ रखें।।४९।।

लिंग का दूसरा कथन

लिंग का विस्तार मूल में २ भाग, मध्य में १ भाग, अग्र में चतुर्थ भाग रखें, जिसकी गोलाई त्रिगुणी करें।।५०।।

उक्तं च—

लिंग ५ भाग लंबा और २ भाग चौड़ा बनावें।। दोनों पोता पुष्ट व समान ५ भाग लंबे ४ भाग चौड़े आम की गुठली के समान बनावें।।५१।।

जंघा का कथन चरण तक

२४ भाग लंबे दोनों जंघा पुष्ट करें, ११ भाग मूल में व ९ भाग मध्य में विस्ताररूप करें।।५२।। ७ भाग गोड़े के पास चौड़ा करें, इनकी परिधि तिगुनी करें। दोनों गोड़े समान, गोल, जंघा से मिले हुए पुष्ट

बनावें।।५३।। गोड़ा के नीचे जंघा अर्थात् पींडी गोल २४ भाग लंबी करें, जंघा के मध्य पींडी का विस्तार ६ भाग प्रमाण करें।।५४।। टिकूण्यां-.....के पास ५ भाग १ भाग का त्रिभाग घाटि—कम ५ भाग रखें, इनकी गोलाई विस्तार से त्रिगुणी करें।।५५।। दोनों टिकूण्यां १ भाग रखें, इनकी गोलाई विस्तार से तिगुनी करें, चरण पगथली एड़ी से अंगूठा तक १४ भाग लंबी शुभलक्षण सहित करें।।५६।। टिकूण्यां से अंगूठा का अग्रभागपर्यंत १२ भाग रखें, टिकूण्यां के पीछे एड़ी २ भाग रखें। इनकी गोलाई विस्तार में त्रिगुणी करें।।५७।। एड़ी नीचे से दोय २ भाग, बगल में किंचित् न्यून, मध्य में ऊँची गोल रखें, जिसकी गोलाई ६ भाग रखें।।५८।। अंगुष्ट और प्रदेशिनी ३ भाग लंबी करें, प्रदेशिनी से मध्यमा १ भाग का सोलहवाँ भाग छोटी करें। मध्यमा से अनामिका १ भाग का आठवाँ भाग छोटी करें, अनामिका से कनिष्टिका—कनिष्ठा भी १ भाग का आठवाँ भाग छोटी रखें।।५९।। अंगुष्ट—अंगूठा मध्य में २ भाग चौड़ा रखें, मूल में तथा मध्य में किंचित् न्यून करें। बाकी चारों ही अंगुली १ भाग चौड़ी रखें।।६०।।

इन सबकी गुलाई—गोलाई शोभनीक त्रिगुणी करे, अंगुष्ट-अंगूठे में २ पर्व करें। बाकी अंगुलियों में (३-३) तीन-तीन पर्व करें।।६१।। अंगूठे का नख १ भाग रखें। प्रदेशिनी का नख १ भाग का आधा भाग रखें। बाकी तीन अंगुलियों का नख अनुक्रम से किंचित्-किंचित् न्यून करें।।६२।। पादतल एडी के पास ४ भाग, मध्य में ५ भाग एवं अन्त में ६ भाग चौड़ा है।।६३।। चरणयुगल पुष्ट इकसार—एकसदृश छिद्ररहित, सुंदर शंख, चक्र, अंकुश, कमल, यव, छत्र आदि शुभ चिन्हों से युक्त करें।।६४।। इस प्रकार कायोत्सर्ग प्रतिमा बनावें। बाकी के उपांग शोभनीक पुष्ट करें।।६५।।

विशेष—आचार्य श्रीवसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ से यह प्रकरण मैंने यहाँ उद्धृत किया है। मांगीतुंगी में निर्मित १०८ फुट ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा में मैंने शिल्पकार नाठा जी को यही प्रमाण देकर पूर्ण सांगोपांग खड्गासन प्रतिमा के निर्माण की अनुमति प्रदान की है।

पद्मासन प्रतिमा कथन

इस प्रकार कायोत्सर्ग प्रतिमा के लक्षण हैं। पद्मासन के भी कितने ही भाग ये ही हैं, किन्तु जहाँ भेद है सो—उसे विशेषरूप से कहते हैं।।६६।। कायोत्सर्ग प्रतिमा के १०८ भाग किये थे, उनके आधे ५४ भाग पद्मासन प्रतिमा के करना। पलोटी—पलाथी दोनों गोड़ेपर्यंत चौड़ी—चौड़ाई रखें। आयाम—चौड़ाई तिरछी गोडे के बीच से खवे के बीच तक (कंधे के बीच तक) नापें। पलोठी के ऊपर से शिर के केश तक ५४ भाग नापें।

भावार्थ—चारों भाग ५४ नापें, शोभनीक बनावें। प्रक्षाल के जल निकलने का स्थान चरण चौकी के ऊपर रखें। लिंग ८ भाग नीचा नाभि से बनावें (अर्थात् नाभि से ८ भाग नीचे लिंग बनावें) तब पानी का निकास चरण चौकी के नीचे आवेगा। लिंग के मुख के नीचे कर पानी का निकास करना, तब प्रतिमा शुद्ध बनेगी।।६७।।

दोनों हाथों की अंगुली के और पेडू के अन्तर ४ भाग का रखें। पौंछा—पहुँचा से कोहनीपर्यंत यथाशोभित हानिरूप अन्तर रखें। कोहनी के पास २ भाग का उदर से अन्तर रखें।।६८।। ऐसी कायोत्सर्ग तथा पद्मासनरूप प्रतिमा अरिहंत की आठ प्रातिहार्य युक्त सम्पूर्ण अवयवों से पूर्ण शुभ भावों से युक्त बनावें।।६९।।

सिद्ध प्रतिमा, आचार्यादि की प्रतिमा

पूर्वोक्त लक्षण संयुक्त, प्रातिहार्यरहित जो हैं, वे सिद्ध प्रतिमा है। आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की प्रतिमाएँ आगम के अनुसार सुन्दर बनावें।।७०।।

यक्ष की प्रतिमा का कथन

ऐसे ही यक्षों की, देवता आदि की सम्पूर्ण अलंकार से भूषित, सवारी, शस्त्र-आयुध से सहित सर्वांग सुन्दर प्रतिमाएँ बनावें।।७१।।

प्रतिमा के शुभाशुभ कथन

सम्पूर्ण लक्षणों से संयुक्त भी जिनबिम्ब दृष्टि से रहित शोभा नहीं पाते हैं। इसलिए दृष्टि का प्रकाशन करना चाहिए।।७२।। न तो दृष्टि अत्यन्त उघड़ी—खुली करें, न मिची हुई करें, न तिरछी, न ऊँची—ऊपर को देखती हुई, न नीचे को देखती हुई करें, प्रत्युत अर्द्धोन्मीलित, शांतिरूप दृष्टि करें।।७३।। नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि पड़ती हुई, शांत, प्रसन्न, निर्विकार, मध्यस्थ दृष्टि वाली ऐसी जिनप्रतिमा बनावें।।७४।। यदि तिरछी दृष्टि है तो अर्थनाश, विरोध और भय होगा। यदि अधोमुख—नीची दृष्टि है, तो पुत्र का नाश होगा और यदि ऊँची दृष्टि होगी तो भार्या का नाश होगा।।७५।। स्तब्ध अर्थात् सम्मुख दृष्टि होवे, तो शोक, उद्वेग, संताप और धन का क्षय होता है। शान्त दृष्टि होवे तो सौभाग्य, पुत्र, धन और शांति की वृद्धि होती है।।७६।। सदोष प्रतिमा नहीं बनाना, क्योंकि वह अशुभ को देने वाली है। यदि रौद्ररूप प्रतिमा है, तो राजा का नाश करती है और दुर्बल अंगयुक्त होवे, तो द्रव्य का नाश करती है।।७७।। सूक्ष्म अंगधारक प्रतिमा होवे तो क्षय करती है, चिपटा मुख की होवे तो दुःख को देने वाली होगी, नेत्र रहित होगी तो नेत्र विध्वंस करेगी और छोटे मुख की होगी तो अशोभित होगी अथवा शोक को कराने वाली होगी। बड़े उदर की होवे तो उदर रोग होगा, कृश हृदय की होगी तो हृदयरोग होगा, कंधा हीन होवे तो भाई का नाश होगा और यदि शुष्क जंघा होगी तो नरेन्द्र का नाश होगा।।७९।। यदि पादहीन है, तो प्रजा की हानि होगी, कटि—कमर हीन है—कमर कृश है, तो वाहन का नाश होगा, इस प्रकार दोषों को जान करके दोषवर्जित जिनप्रतिमा बनावें।।८०।। सामान्यरूप से मैंने यह प्रतिमा के लक्षण कहे हैं, विशेषरूप से श्रावकाचार आदि ग्रंथों में स्पष्टतया वर्णित है, वहाँ से जानना चाहिए।।८१।।

''तित्थयराणं।''

अमृतवर्षिणी टीका–

तीस चौबीसी एवं विद्यमान बीस तीर्थंकर भगवान

आज हमारा और आपका सौभाग्य है कि शास्त्रों में पांच भरत व पांच ऐरावत के आर्यखंडों में चतुर्थकाल में होने वाले भूत, वर्तमान व भविष्यकालीन तीर्थंकर भगवंतों के नाम पाये गये हैं। उन्हीं के अनुसार मैंने ये ५ भरत, ५ ऐरावत के ऐसे १० × ३ = ३० चौबीसी के नाममंत्र यहां दे दिये हैं।

इसी प्रकार पांच महाविदेहों के ४–४ नाम प्राप्त होने से उनके ५ × ४ = २० नाममंत्र भी दे दिये हैं। ये बीस तीर्थंकर भगवान आज भी वहां–वहां विदेह क्षेत्रों में विद्यमान हैं। ये समवसरण में विराजमान हैं। इसीलिये इन्हें विद्यमान अथवा विहरमाण तीर्थंकर भी कहते हैं।

इस प्रकार २४ × ३० = ७२० तीर्थंकर। ७२० + २० = ७४०–सात सौ चालीस तीर्थंकर भगवंतों को मेरा अनंतानंत बार नमस्कार होवे।

तीस चौबीसी के सात सौ बीस वन्दना मंत्र

(७२० वन्दना मंत्र)

मंगलाचरण

दोहा

ढाई द्वीप में पण भरत, ऐरावत भी पंच।
इनमें तीनों काल के, तीर्थंकर भगवंत।।१।।

इन चौबीसी तीस के, सात शतक अरु बीस।
नाम मंत्र उनके जपूँ, नमूँ नमाकर शीश।।२।।

(१)

जंबूद्वीप भरतक्षेत्र के भूतकालीन चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री निर्वाणतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री सागरतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री महासाधुतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री विमलप्रभतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री श्रीधरतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री सुदत्ततीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री अमलप्रभतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री उद्धरतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री अंगिरतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री सन्मतितीर्थंकराय नमः।

११. ॐ ह्रीं श्री सिंधुतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री कुसुमाँजलितीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री शिवगणतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री उत्साहतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री ज्ञानेश्वरतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री परमेश्वरतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री विमलेश्वरतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री यशोधरतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री कृष्णतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री ज्ञानमतितीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री शुद्धमतितीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री भद्रतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री अतिक्रांततीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री शांततीर्थंकराय नमः।

(२)

जंबूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री वृषभतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री अजिततीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री संभवतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री अभिनंदनतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री सुमतितीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंततीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री शीतलतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री श्रेयोतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री विमलतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री कुंथुनाथतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री अरनाथतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रततीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री नमिनाथतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री महावीरतीर्थंकराय नमः।

(३)

जंबूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के भविष्यत्कालीन चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री महापद्मतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री सुरदेवतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री स्वयंप्रभतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री सर्वात्मभूततीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री देवपुत्रतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री कुलपुत्रतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री उदंकतीर्थंकराय नमः।

९. ॐ ह्रीं श्री प्रौष्ठिलतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री जयकीर्तितीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रततीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री अरनाथतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री निष्पापतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री निष्कषायतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री विपुलतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री निर्मलतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री चित्रगुप्ततीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री समाधिगुप्ततीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री स्वयंभूतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री अनिवर्तकतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री जयनाथतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री विमलतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री देवपालतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री अनंतवीर्यतीर्थंकराय नमः।

(४)

जंबूद्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भूतकालीन चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री पंचरूपतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री जिनधरतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री सांप्रतिकतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री ऊर्जयंततीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री आधिक्षायिकतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री अभिनंदनतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री रत्नसेनतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री रामेश्वरतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री अनंगोज्झिततीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री विन्यासतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री अशेषतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री सुविधानतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री प्रदत्ततीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री कुमारतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री सर्वशैलतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री प्रभंजनतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री सौभाग्यनाथतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री व्रतविंदुतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री सिद्धकरतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री ज्ञानशरीरतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री कल्पद्रुमतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री तीर्थफलेशतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री दिनकरतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री वीरप्रभतीर्थंकराय नमः।

(५)

जंबूद्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री बालचंद्रतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री सुव्रततीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री अग्निसेनतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री नंदिसेनतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री श्रीदत्ततीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री व्रतधरतीर्थंकराय नमः।

७. ॐ ह्रीं श्री सोमचन्द्रतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री धृतदीर्घतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री शतायुष्यतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री विवसिततीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री श्रेयोतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री विश्रुतजलतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री सिंहसेनतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री उपशांततीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री गुप्तशासनतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री अनंतवीर्यतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री अभिधानतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री मरुदेवतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री श्रीधरतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री शामकंठतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री अग्निप्रभतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री अग्निदत्ततीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री वीरसेनतीर्थंकराय नमः।

(६)

जंबूद्वीप संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भविष्यत्कालीन चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्रीसिद्धार्थतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री विमलतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री जयघोषतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री नंदिसेनतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री स्वर्गमंगलतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री वज्राधारीतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री निर्वाणतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री धर्मध्वजतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री सिद्धसेनतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री महासेनतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री रविमित्रतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री सत्यसेनतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री चंद्रनाथतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री महीचंद्रतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री श्रुतांजनतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री देवसेनतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री सुव्रतनाथतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री जिनेंद्रनाथतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री सुकौशलतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री विमलतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री अमृतसेनतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री अग्निदत्ततीर्थंकराय नमः।

(७)

पूर्वधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के भूतकालीन चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री रत्नप्रभतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री अमितनाथतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री संभवनाथतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री अकलंकतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री चंद्रस्वामितीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री शुभंकरतीर्थंकराय नमः।

७. ॐ ह्रीं श्री तत्त्वनाथतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री सुंदरस्वामितीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री पुरंधरतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री स्वामिदेवतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री देवदत्ततीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री वासवदत्ततीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री श्रेयोनाथतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री विश्वरूपतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री तपस्तेजोतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री श्रीपतिबोधदेवतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री सिद्धार्थदेवतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री संयमतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री विमलतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री देवेन्द्रतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री प्रवरनाथतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री विश्वसेनतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री मेघनंदितीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री त्रिजेतृकतीर्थंकराय नमः।

(८)

पूर्वधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री युगादिदेवतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री सिद्धांततीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री महेशनाथतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री परमार्थनाथतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री समुद्धरतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री भूधरनाथतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री उद्योततीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री आर्जवतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री अभयनाथतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री अप्रकंपतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री पद्मनाथतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री पद्मनंदितीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री प्रियंकरतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री सुकृतनाथतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री भद्रनाथतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री मुनिचंद्रतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री पंचमुष्टितीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री त्रिमुष्टितीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री गांगिकनाथतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री गणनाथतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री सर्वांगदेवतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मेंद्रनाथतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री इन्द्रदत्ततीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री नायकनाथतीर्थंकराय नमः।

(९)

पूर्वधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री श्रीसिद्धार्थतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री सम्यग्गुणतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्रदेवतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री संपन्ननाथतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री सर्वस्वामितीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री मुनिनाथतीर्थंकराय नमः।

७. ॐ ह्रीं श्री विशिष्टदेवतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री अमरनाथतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मशांतितीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री पर्वनाथतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री अकामुकदेवतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री ध्याननाथतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री कल्पतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री संवरनाथतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री स्वास्थ्यनाथतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री आनंदनाथतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री रविप्रभतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री सुनंदतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री सुकर्णदेवतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री सुकर्मदेवतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री अममदेवतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री शाश्वतनाथतीर्थंकराय नमः।

(१०)

पूर्वधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री वज्रस्वामितीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री उदत्ततीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री सूर्यस्वामितीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री पुरुषोत्तमतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री शरणस्वामितीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री अवबोधतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री विक्रमतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री निर्घंटिकतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री हरीन्द्रतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री परित्रेरिततीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री निर्वाणसूरितीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री धर्महेतुतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री चतुर्मुखतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री सुकृतेंद्रतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री श्रुताम्बुतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री विमलार्कतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री देवप्रभतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री धरणेंद्रतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री सुतीर्थनाथतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री उदयानंदतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री सर्वार्थदेवतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री धार्मिकतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री क्षेत्रस्वामितीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री हरिचंद्रतीर्थंकराय नमः।

(११)

पूर्वधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री अपश्चिमतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंततीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री अर्हदेवतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री चरित्रनाथतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री सिद्धानंदतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री नंदगतीर्थंकराय नमः।

७. ॐ ह्रीं श्री पद्मकूपतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री उदयनाभितीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री रुकमेंदुतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री कृपालुतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री प्रौष्ठिलतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री सिद्धेश्वरतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री अमृतेन्दुतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री स्वामिनाथतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री भुवनलिंगतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री सर्वरथतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री मेघनंदतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री नंदिकेशतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री हरिनाथतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री अधिष्ठतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री शांतिकदेवतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री नंदीस्वामितीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री कुंदपार्श्वतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री विरोचनतीर्थंकराय नमः।

(१२)

पूर्वधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री प्रवरवीरतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री विजयप्रभतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री सत्पदतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री महामृगेंद्रतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री चिंतामणितीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री अशोकितीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री द्विमृगेन्द्रतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री उपवासिकतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री पद्मचंद्रतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री बोधकेंदुतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री चिताहिमतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री उत्साहिकतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री अपाशिवतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री देवजलतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री नारिकतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री अनघतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री नागेंद्रतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री नीलोत्पलतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री अप्रकंपतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री पुरोहिततीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री भिंदकनाथतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री निर्वाचतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री विरोषिकतीर्थंकराय नमः।

(१३)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री प्रियमित्रतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री सुमितनाथतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री आदिनाथतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री अतिव्यक्ततीर्थंकराय नमः।

७. ॐ ह्रीं श्री कलासेनतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री कर्मजित्तीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री प्रबुद्धतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री प्रव्रजिततीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री सुधर्मतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री तमोदीपतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री वज्रनाथतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री बुद्धनाथतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री प्रबंधदेवतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री अतीतनाथतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री प्रमुखतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री पल्योपमतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री अकोपतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री निष्ठिततीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री मृगनाभितीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री देवेन्द्रतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री पदस्थतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री शिवनाथतीर्थंकराय नमः।

(१४)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री विश्वचंद्रतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री कपिलतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री वृषभदेवतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री प्रियतेजोतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री प्रशमतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री विषमाँगतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री चारित्रनाथतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री प्रभादित्यतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री मुंजकेशतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री वीतवासतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री सुराधिपतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री दयानाथतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री सहस्त्रभुजतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री जिनसिंहतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री रैवतनाथतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री बाहुस्वामितीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री श्रीमालितीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री अयोगदेवतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री अयोगिनाथतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री कामरिपुतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री आरंभतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री गर्भज्ञातितीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री एकार्जिततीर्थंकराय नमः।

(१५)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी भरतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री रक्तकेशतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री चक्रहस्ततीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री कृतनाथतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री परमेश्वरतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री सुमूर्तितीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री मुक्तिकांततीर्थंकराय नमः।

७. ॐ ह्रीं श्री निकेशितीर्थंकराय नमः। ८. ॐ ह्रीं श्री प्रशस्ततीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री निराहारतीर्थंकराय नमः। १०. ॐ ह्रीं श्री अमूर्ततीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री द्विजनाथतीर्थंकराय नमः। १२. ॐ ह्रीं श्री श्रेयोगततीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री अरुजनाथतीर्थंकराय नमः। १४. ॐ ह्रीं श्री देवनाथतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री दयाधिकतीर्थंकराय नमः। १६. ॐ ह्रीं श्री पुष्पनाथतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री नरनाथतीर्थंकराय नमः। १८. ॐ ह्रीं श्री प्रतिभूततीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री नागेन्द्रतीर्थंकराय नमः। २०. ॐ ह्रीं श्री तपोधिकतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री दशाननतीर्थंकराय नमः। २२. ॐ ह्रीं श्री आरण्यकतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री दशानीकतीर्थंकराय नमः। २४. ॐ ह्रीं श्री सात्विकतीर्थंकराय नमः।

(१६)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री सुमेरुतीर्थंकराय नमः। २. ॐ ह्रीं श्री जिनकृततीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री कैटभनाथतीर्थंकराय नमः। ४. ॐ ह्रीं श्री प्रशस्तदायकतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री निर्दमनतीर्थंकराय नमः। ६. ॐ ह्रीं श्री कुलकरतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री वर्धमानतीर्थंकराय नमः। ८. ॐ ह्रीं श्री अमृतेंदुतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री संख्यानंदतीर्थंकराय नमः। १०. ॐ ह्रीं श्री कल्पकृततीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री हरिनाथतीर्थंकराय नमः। १२. ॐ ह्रीं श्री बहुस्वामितीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री भार्गवतीर्थंकराय नमः। १४. ॐ ह्रीं श्री भद्रस्वामितीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री पविपाणितीर्थंकराय नमः। १६. ॐ ह्रीं श्री विपोषिततीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचारितीर्थंकराय नमः। १८. ॐ ह्रीं श्री असाक्षिकतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री चारित्रेशतीर्थंकराय नमः। २०. ॐ ह्रीं श्री पारिणामिकतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री शाश्वतनाथतीर्थंकराय नमः। २२. ॐ ह्रीं श्री निधिनाथतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री कौशिकतीर्थंकराय नमः। २४. ॐ ह्रीं श्री धर्मेशतीर्थंकराय नमः।

(१७)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री साधिततीर्थंकराय नमः। २. ॐ ह्रीं श्री जिनस्वामितीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री स्तमितेन्द्रतीर्थंकराय नमः। ४. ॐ ह्रीं श्री अत्यानंदतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री पुष्पोत्फुल्लतीर्थंकराय नमः। ६. ॐ ह्रीं श्री मंडिततीर्थंकराय नमः।

७. ॐ ह्रीं श्री प्रहतदेवतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री मदनसिद्धतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री हसदिंद्रतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री चंद्रपार्श्वतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री अब्जबोधतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री जिनबल्लभतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री सुविभूतिकतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री ककुद्भासतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री सुवर्णनाथतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री हरिवासकतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री प्रियमित्रतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री धर्मदेवतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री प्रियरततीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री नंदिनाथतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री अश्वानीकतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री पर्वनाथतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री चित्रहृदयतीर्थंकराय नमः।

(१८)

पश्चिमधातकीखंड संबंधी ऐरावतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री रवीन्दुतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री सौकुमारतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री पृथ्वीवान्तीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्रीकुलरत्नतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री सोमनाथतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री वरुणतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री अभिनंदनतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री सर्वनाथतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री सुदृष्टितीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री शिष्टतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री सुधन्यतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री सोमचंद्रतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री क्षेत्राधीशतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री सदंतिकनाथतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री जयंतदेवतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री तमोरिपुतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री निर्मितदेवतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री कृतपार्श्वतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री बोधिलाभतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री बहुनंदतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री सुदृष्टितीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री कुंकुमनाभतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री वक्षेशतीर्थंकराय नमः।

(१९)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी भरतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री दमनेंद्रतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री मूर्तस्वामितीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री विरागस्वामितीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री प्रलंबतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री पृथ्वीपतितीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री चारित्रनिधितीर्थंकराय नमः।

७. ॐ ह्रीं श्री अपराजिततीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री सुबोधकतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री बुद्धीशतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री वैतालिकतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री त्रिमुष्टिनाथतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री मुनिबोधतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री तीर्थस्वामितीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री धर्मधीशतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री धरणेशतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री प्रभवदेवतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री अनादिदेवतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री अनादिप्रभुतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री सर्वतीर्थनाथतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री निरुपमदेवतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री कौमारिकतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री विहारगृहतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री धरणीश्वरतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री विकासदेवतीर्थंकराय नमः।

(२०)

पूर्वपुष्करार्ध संबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री जगन्नाथतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री प्रभासनाथतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री स्वरस्वामीतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री भरतेशतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री दीर्घाननतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री विख्यातकीर्तितीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री अवसानितीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री प्रबोधतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री तपोनाथतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री पावकतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री त्रिपुरेश्वरतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री सौगततीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री वासवतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री मनोहरतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री शुभकर्मईशतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री इष्टसेवititतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री विमलेंद्रतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री धर्मवासतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री प्रसादतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री प्रभामृगांकतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री उज्झितकलंकतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री स्फटिकप्रभतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री गजेन्द्रतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री ध्यानजयतीर्थंकराय नमः।

(२१)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी भरतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री वसंतध्वजतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री त्रिजयंततीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री त्रिस्तंभतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री परब्रह्मतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री अबालिशतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री प्रवादितीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री भूमानन्दतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री त्रिनयनतीर्थंकराय नमः।

९. ॐ ह्रीं श्री विद्वानतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री परमात्मप्रसंगतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री भूमीन्द्रतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री गोस्वामीतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री कल्याणप्रकाशिततीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री मंडलतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री महावसुतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री उदयवानतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री दिव्यज्योतिर्जिनेन्द्राय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री प्रबोधेशतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री अभयांकतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री प्रमिततीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री दिव्यस्फारकतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री व्रतस्वामितीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री निधानतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री त्रिकर्मातीर्थंकराय नमः।

(२२)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी ऐरावतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री कृतिनाथतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री उपविष्टतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री देवादित्यतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री आस्थानिकतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री प्रचंद्रतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री वेषिकतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री त्रिभानुतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री वज्रांगतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री अविरोधीतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री अपापतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री लोकोत्तरतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री जलधिशेषतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री विद्योततीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री सुमेरुतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री विभावितीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री वत्सलतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री जिनालयतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री तुषारतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री भुवनस्वामितीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री सुकामतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री देवाधिदेवतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री अकारिमतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री बिंबिततीर्थंकराय नमः।

(२३)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री शंकरतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री अक्षवासतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री नग्नतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री नग्नाधिपतितीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री नष्टपाखंडतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री स्वप्नवेदतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री तपोधनतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री पुष्पकेतुतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री धार्मिकतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री चंद्रकेतुतीर्थंकराय नमः।

११. ॐ ह्रीं श्री अनुरक्तज्योतितीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री वीतरागतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री उद्योततीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री तपोपेक्षतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री मधुनादतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री मरुदेवतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री दमनाथतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री वृषभस्वामितीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री शिलातनतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री विश्वनाथतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री महेन्द्रतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री नंदतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री तमोहरतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मजतीर्थंकराय नमः।

(२४)

पूर्वपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी ऐरावतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री यशोधरतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री सुकृतनाथतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री अभयघोषतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री निर्वाणतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री व्रतवासतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री अतिराजतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री अश्वदेवतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री अर्जुनतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री तपश्चन्द्रतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री शारीरिकतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री महेशतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री सुग्रीवतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री दृढप्रहारतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री अम्बरीकतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री दयाततीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री तुम्बरतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री सर्वशीलतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री प्रतिजाततीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री जितेन्द्रियतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री तपादित्यतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री रत्नाकरतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री देवेशतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री लांछनतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री सुप्रदेशतीर्थंकराय नमः।

(२५)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी भरतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री पद्मचन्द्रतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री रत्नांगतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री अयोगिकेशतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री सर्वार्थतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री ऋषिनाथतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री हरिभद्रतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री गुणाधिपतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री पारत्रिकतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मनाथतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री मुनीन्द्रतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री दीपकतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री राजर्षितीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री विशाखदेवतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री अनिंदिततीर्थंकराय नमः।

१५. ॐ ह्रीं श्री रविस्वामितीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री सोमदत्ततीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री जयस्वामितीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री मोक्षनाथतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री अग्रभासतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री धनुःसंगतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री रोमांचकतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री मुक्तिनाथतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री प्रसिद्धनाथतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री जितेशतीर्थंकराय नमः।

(२६)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री सर्वांगस्वामितीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री पद्माकरतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री प्रभाकरतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री बलनाथतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री योगीश्वरतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री सूक्ष्मांगतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री व्रतचलातीततीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री कलंबकतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री परित्यागतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री निषेधिकतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री पापापहारितीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री सुस्वामितीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री मुक्तिचंद्रतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री अप्राशिकतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री जयचंद्रतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री मलाधारितीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री सुसंयततीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री मलयसिंधुतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री अक्षधरतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री देवधरतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री देवगणतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री आगमिकतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री विनीततीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री रतानंदतीर्थंकराय नमः।

(२७)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी भरतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री प्रभावकतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री विनतेंद्रतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री सुभावकतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री दिनकरतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री अगस्त्येजीतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री धनदत्ततीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री पौरवतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री जिनदत्ततीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री मुनिसिंधुतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री आस्तिकतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री भवानीकतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री नृपनाथतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री नारायणतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री प्रशमौकतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री भूपतितीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री सुदृष्टितीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री भवभीरुतीर्थंकराय नमः।

१९. ॐ ह्रीं श्री नंदनतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री भार्गवतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री सुवसुतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री परावशतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री वनवासीकतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री भरतेशतीर्थंकराय नमः।

(२८)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी ऐरावतक्षेत्र के अतीत चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री उपशांततीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री फाल्गुणतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री पूर्वासतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री सौधर्मतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री गौरिकतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री त्रिविक्रमतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री नरसिंहतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री मृगवसुतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री सोमेश्वरतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री सुधासुरतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री अपापमल्लतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री विवाधतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री संधिकस्वामितीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री मान्धात्रतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री अश्वतेजोतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री विद्याधरतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री सुलोचनतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री मौननिधितीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री अम्बरीकतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री चित्रगणतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री मणिरिंद्रतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री सर्वकालतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री भूरिश्रवणतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री पुण्यांगतीर्थंकराय नमः।

(२९)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री गांगेयकतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री नल्लवासवतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री भीमतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री दयाधिकतीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री सुभद्रतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री स्वामितीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री हनिकतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री नंदिघोषतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री रूपबीजतीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री वज्रनाथतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री संतोषतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री सुधर्मतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री फणीश्वरतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री वीरचन्द्रतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री मेधानिकतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री स्वच्छनाथतीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री कोपक्षयतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री अकामतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री धर्मधामतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री सूक्तिसेनतीर्थंकराय नमः।

२१. ॐ ह्रीं श्री क्षेमंकरतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री दयानाथतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री कीर्तिपतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री शुभंकरतीर्थंकराय नमः।

(३०)

पश्चिमपुष्करार्ध द्वीपसंबंधी ऐरावतक्षेत्र के भावी चौबीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्री अदोषिकतीर्थंकराय नमः।
२. ॐ ह्रीं श्री वृषभदेवतीर्थंकराय नमः।
३. ॐ ह्रीं श्री विनयानंदतीर्थंकराय नमः।
४. ॐ ह्रीं श्री मुनिभारततीर्थंकराय नमः।
५. ॐ ह्रीं श्री इंद्रकतीर्थंकराय नमः।
६. ॐ ह्रीं श्री चंद्रकेतुतीर्थंकराय नमः।
७. ॐ ह्रीं श्री ध्वजादित्यतीर्थंकराय नमः।
८. ॐ ह्रीं श्री वसुबोधतीर्थंकराय नमः।
९. ॐ ह्रीं श्री मुक्तिगततीर्थंकराय नमः।
१०. ॐ ह्रीं श्री धर्मबोधतीर्थंकराय नमः।
११. ॐ ह्रीं श्री देवांगतीर्थंकराय नमः।
१२. ॐ ह्रीं श्री मारीचिकतीर्थंकराय नमः।
१३. ॐ ह्रीं श्री सुजीवनतीर्थंकराय नमः।
१४. ॐ ह्रीं श्री यशोधरतीर्थंकराय नमः।
१५. ॐ ह्रीं श्री गौतमतीर्थंकराय नमः।
१६. ॐ ह्रीं श्री मुनिशुद्धितीर्थंकराय नमः।
१७. ॐ ह्रीं श्री प्रबोधिकतीर्थंकराय नमः।
१८. ॐ ह्रीं श्री सदानीकतीर्थंकराय नमः।
१९. ॐ ह्रीं श्री चारित्रनाथतीर्थंकराय नमः।
२०. ॐ ह्रीं श्री शतानंदतीर्थंकराय नमः।
२१. ॐ ह्रीं श्री वेदार्थतीर्थंकराय नमः।
२२. ॐ ह्रीं श्री सुधानीकतीर्थंकराय नमः।
२३. ॐ ह्रीं श्री ज्योतिर्मुखतीर्थंकराय नमः।
२४. ॐ ह्रीं श्री सुराघ्र्यतीर्थंकराय नमः।

तीस चौबीसी मंत्र समाप्त।

(१)

पाँच महाविदेह संबंधी विद्यमान बीस तीर्थंकर वन्दना मंत्र

१. ॐ ह्रीं श्रीसीमंधरजिनेंद्राय नमः, २. ॐ ह्रीं श्रीयुगमंधरजिनेन्द्राय नमः, ३. ॐ ह्रीं श्रीबाहुजिनेन्द्राय नमः, ४. ॐ ह्रीं श्रीसुबाहुजिनेंद्राय नमः, ५. ॐ ह्रीं श्रीसंजातकजिनेन्द्राय नमः, ६. ॐ ह्रीं श्रीस्वयंप्रभजिनेन्द्राय नमः, ७. ॐ ह्रीं श्रीऋषभाननजिनेन्द्राय नमः, ८. ॐ ह्रीं श्री अनंतवीर्यजिनेंद्राय नमः, ९. ॐ ह्रीं श्रीसूरिप्रभजिनेन्द्राय नमः, १०. ॐ ह्रीं श्रीविशालकीर्तिजिनेन्द्राय नमः, ११. ॐ ह्रीं श्रीवज्रधरजिनेन्द्राय नमः, १२. ॐ ह्रीं श्रीचंद्राननजिनेंद्राय नमः, १३. ॐ ह्रीं श्रीचंद्रबाहुजिनेन्द्राय नमः, १४. ॐ ह्रीं श्रीभुजंगमजिनेन्द्राय नमः, १५. ॐ ह्रीं श्री–ईश्वरजिनेंद्राय नमः, १६. ॐ ह्रीं श्रीनेमिप्रभजिनेन्द्राय नमः, १७. ॐ ह्रीं श्रीवीरसेनजिनेन्द्राय नमः, १८. ॐ ह्रीं श्रीमहाभद्रजिनेन्द्राय नमः, १९. ॐ ह्रीं श्रीदेवयशोजिनेन्द्राय नमः, २०. ॐ ह्रीं श्री अजितवीर्यजिनेन्द्राय नमः।

''जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं''

अमृतवर्षिणी टीका–

भरत चक्रवर्ती

भगवान ऋषभदेव की यशस्वती रानी से भरत महाराज का जन्म हुआ था। भगवान ने दीक्षा के लिए जाते समय भरत को साम्राज्य पद पर प्रतिष्ठित किया था। एक समय राज्यलक्ष्मी से युक्त राजर्षि भरत को एक ही साथ नीचे लिखे हुए तीन समाचार मालूम हुए थे। पूज्य पिता को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, अन्तःपुर में पुत्र का जन्म हुआ है और आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ है। क्षणभर में भरत ने मन में सोचा कि केवलज्ञान का उत्पन्न होना धर्म का फल है, चक्र का प्रकट होना अर्थ का फल है और पुत्र का उत्पन्न होना काम का फल है अतः भरत महाराज ने सबसे पहले समवसरण में जाकर भगवान की पूजा की, उपदेश सुना तदनन्तर चक्ररत्न की पूजा करके पुत्र का जन्मोत्सव मनाया।

अनन्तर भरत महाराज ने दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर दिया। चक्ररत्न सेना के आगे-आगे चलता था। सम्पूर्ण षट्खण्ड पृथ्वी को जीत लेने के बाद वापस आते समय कैलाश पर्वत को समीप देखकर सेना को वहाँ ठहराकर स्वयं समवसरण में जाकर राजा भरत ने विधिवत् भगवान की पूजा की और वहाँ से आकर सेना सहित अयोध्या के समीप आ गये।

उस समय भरत महाराज का चक्ररत्न नगर के गोपुरद्वार को उल्लंघन कर आगे नहीं जा सका, तब चक्ररत्न की रक्षा करने वाले कितने ही देवगण चक्र को एक स्थान पर खड़ा हुआ देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए। भरत महाराज भी सोचने लगे कि समस्त दिशाओं को विजय करने में जो चक्र कहीं नहीं रुका, आज मेरे घर के आँगन में क्यों रुक रहा है ?

इस प्रकार से बुद्धिमान भरत ने पुरोहित से प्रश्न किया। उसके उत्तर में पुरोहित ने निवेदन किया कि हे देव! आपने यद्यपि बाहर के लोगों को जीत लिया है तथापि आपके घर के लोग आज भी आपके अनुकूल नहीं हैं, वे आपको नमस्कार न करके आपके विरुद्ध खड़े हुए हैं। इस बात को सुनकर भरत ने हृदय में बहुत कुछ विचार किया। अनन्तर मंत्रियों से सलाह करके कुशल दूत को सबसे पहले अपने निन्यानवे भाइयों के पास भेज दिया।

वे भाई दूत से सब समाचार विदित करके विरक्तमना भगवान ऋषभदेव के समवसरण में जाकर दीक्षित हो गये। अनन्तर भरत ने मन में दुःख का अनुभव करते हुए चक्र के अभ्यन्तर प्रवेश न करने से विचार-विमर्शपूर्वक एक दूत को युवा बाहुबली भाई के पास भेजा। दूत के समाचार से बाहुबली ने कहा

कि "मैं भरत को भाई के नाते नमस्कार कर सकता हूँ किन्तु राजाधिराज कहकर उन्हें नमस्कार नहीं कर सकता, पूज्य पिता की दी हुई पृथ्वी का मैं पालन कर रहा हूँ, इसमें उनसे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है", इत्यादि समाचारों से बाहुबली ने यह बात स्पष्ट कर दी कि यदि वे मुझसे जबरदस्ती नमस्कार कराना चाहते हैं तो युद्ध भूमि में ही अपनी-अपनी शक्ति का परिचय दे देना चाहिए। इस वातावरण से महाराज भरत सोचने लगे, अहो! जिन्हें हमने बालकपन से ही स्वतंत्रतापूर्वक खिला-पिलाकर बड़ा किया है, ऐसे अन्य कुमार यदि मेरे विरुद्ध आचरण करने वाले हों तो खुशी से हों परन्तु बाहुबली तरुण, बुद्धिमान, परिपाटी को जानने वाला, विनयी, चतुर और सज्जन होकर भी मेरे विषय में विकार को कैसे प्राप्त हो गया? इस प्रकार छह प्रकार की सेना सामग्री से सम्पन्न हुए महाराज भरतेश्वर ने अपने छोटे भाई को जीतने की इच्छा से अनेक राजाओं के साथ प्रस्थान किया।

दोनों तरफ की सेना के प्रवाह को देखकर दोनों ओर के मुख्य-मुख्य मंत्री विचार कर इस प्रकार कहने लगे कि क्रूर ग्रहों के समान इन दोनों का युद्ध शान्ति के लिए नहीं है क्योंकि ये दोनों ही चरमशरीरी हैं, इनकी कुछ भी क्षति नहीं होगी, केवल इनके युद्ध के बहाने से दोनों ही पक्ष के लोगों का क्षय होगा, इस प्रकार निश्चयकर तथा भारी मनुष्यों के संहार से डरकर मंत्रियों ने दोनों की आज्ञा लेकर धर्म युद्ध करने की घोषणा कर दी अर्थात् इन दोनों के बीच जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध में जो विजय प्राप्त करेगा, वही विजय लक्ष्मी का स्वयं स्वीकार किया हुआ पति होगा।

मनुष्यों से एवं असंख्य देवों से भूमण्डल और आकाशमण्डल के व्याप्त हो जाने पर इन दोनों का दृष्टियुद्ध प्रारंभ हुआ किन्तु बाहुबली ने टिमकार रहित दृष्टि से भरत को जीत लिया, जलयुद्ध में भी बाहुबली ने भरत के मुँह पर अत्यधिक जल डालकर आकुल करके जीत लिया क्योंकि भरत की ऊँचाई पाँच सौ धनुष और बाहुबली की पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण थी। मल्लयुद्ध में भी बाहुबली ने भरत को जीतकर उठाकर अपने कंधे पर बिठा लिया। दोनों पक्ष के राजाओं के बीच ऐसा अपमान देख भरत ने क्रोध से अपने चक्ररत्न का स्मरण किया और उसे बाहुबली पर चला दिया परन्तु उनके अवध्य होने से वह चक्र बाहुबली की प्रदक्षिणा देकर तेजरहित हो उन्हीं के पास ठहर गया। उस समय बड़े-बड़े राजाओं ने चक्रवर्ती को धिक्कार दिया और दुःख के साथ कहा कि 'बस-बस' यह साहस रहने दो, बंद करो, यह सुनकर चक्रवर्ती और भी अधिक संताप को प्राप्त हुए। आपने खूब पराक्रम दिखाया, ऐसा कहकर बाहुबली ने भरत को उच्चासन पर बैठाया।

इस घटना से बाहुबली उसी समय विरक्त हो गये और संसार, शरीर, वैभव आदि की क्षणभंगुरता का विचार करते हुए बड़े भाई भरत से अपने अपराध की क्षमा कराकर तपोवन को जाने लगे, तब भरत भी अत्यधिक दुःखी होकर बाहुबली को समझाने और रोकने लगे। बाहुबली अपने वैराग्य को अचल करके तपोवन को चले गये और दीक्षा लेकर एक वर्ष का योग धारण कर लिया। एक वर्ष की

ध्यानावस्था में सर्पों ने चरणों के आश्रय वामीरन्ध्र बना लिये, पक्षियों ने घोंसले बना लिये और लताएँ ऊपर तक चढ़कर बाहुबली के शरीर को ढँकने लगीं किन्तु योग चक्रवर्ती बाहुबली भगवान योग में लीन थे।

इधर भरत महाराज का चक्रवर्ती पट्ट पर महासाम्राज्य अभिषेक हुआ। दीक्षा लेते समय बाहुबली ने एक वर्ष का उपवास किया था, जिस दिन उनका वह उपवास पूर्ण हुआ, उसी दिन भरत ने आकर उनकी पूजा की और पूजा करते ही उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। "वह[१] भरतेश्वर मुझसे संक्लेश को प्राप्त हुआ है अर्थात् मेरे निमित्त से उसे दुःख पहुँचा है, यह विचार बाहुबली के हृदय में विद्यमान रहता था, इसलिए भरत के पूजा करते ही बाहुबली का हृदय विकल्प रहित हो गया और उसी समय उन्हें केवलज्ञान प्रकट हो गया। भरतेश्वर ने बहुत ही विशेषता से बाहुबली की पूजा की। केवलज्ञान प्रकट होने के पहले जो भरत ने पूजा की थी, वह अपना अपराध नष्ट करने के लिए ही थी और अनन्तर की पूजा केवलज्ञान के महोत्सव की थी। उस समय देव कारीगरों ने बाहुबली भगवान की गंधकुटी बनाई थी। समस्त पदार्थों को जानने वाले बाहुबली अपने वचनरूपी अमृत के द्वारा समस्त संसार को संतुष्ट करते हुए पूज्य पिता भगवान ऋषभदेव के सामीप्य से पवित्र हुए कैलाशपर्वत पर जा पहुँचे।

ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति—किसी समय भरत सोचते हैं कि मैं जिनेन्द्रदेव का महामह यज्ञ कर धन वितरण करता हुआ समस्त संसार को संतुष्ट करूँ, सदा निःस्पृह रहने वाले मुनि तो हमसे धन लेते नहीं परन्तु ऐसा गृहस्थ भी कौन है जो धन-धान्य आदि सम्पत्ति के द्वारा पूजा करने योग्य है? जो अणुव्रतों में मुख्य है, श्रावकों में श्रेष्ठ है उसे दान देना उचित है। ऐसा सोचकर भरत ने योग्य व्यक्तियों की परीक्षा करने की इच्छा से समस्त राजाओं को बुलाया और घर के आँगन में हरे-भरे अंकुर, पुष्प और फल खूब डलवा दिये। उन लोगों में जो अव्रती थे वे बिना कुछ सोच विचार के राजमंदिर में चले आये। राजा भरत ने उन्हें एक ओर हटाकर बाकी बचे हुए लोगों को बुलाया। पाप से डरने वाले कितने लोग तो वापस चले गये और कितने लोग वापस लौटने लगे, परन्तु चक्रवर्ती के विशेष आग्रह से जब कुछ लोग दूसरे प्रासुक मार्ग से ले जाये गये तब प्रश्न करने पर उन्होंने कहा—महाराज! आज पर्व के दिन कोंपल, हरे पत्ते तथा पुष्प आदि का विघात नहीं किया जाता, हे देव! हरे अंकुर आदि में अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं ऐसे सर्वज्ञ देव के वचन हैं। इस उत्तर से भरत महाराज बहुत प्रभावित हुए और व्रतों में दृढ़ रहने वाले उन सबकी प्रशंसा कर उन्हें दान, मान आदि से सम्मानित कर पद्म नामक निधि से प्राप्त हुए एक से लेकर ग्यारह तक की संख्या वाले ब्रह्मसूत्र नाम के व्रतसूत्र से उन सबके चिन्ह किये। भरत ने इन्हें उपासकाध्ययनांग से इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का उपदेश दिया। त्रेपन

---

१. संक्लिष्टो भरताधीशः सोऽस्मत्त इति यत्किल। हृद्यस्य हार्दं तेनासीत् तत्पूजापेक्षि केवलम्।।१८६।। आदिपुराण पर्व ३६, पृ. २१७।

गर्भान्वय क्रियाएँ, अड़तालीस दीक्षान्वय क्रियाएं और सात कर्त्रान्वय क्रियाएं भी बतलाईं। व्रतों के संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक धन कमाने से वैश्य और नीच वृत्ति का आश्रय लेने से शूद्र कहलाते हैं।

भरत के सोलह स्वप्न—कुछ काल बीत जाने के बाद एक दिन चक्रवर्ती भरत ने अद्भुत फल दिखाने वाले कुछ स्वप्न देखे। उनके देखने से खेद खिन्न हो भरत ने यह समझ लिया कि इनका फल कटु है और ये पंचम काल में फल देने वाले होंगे। इस प्रकार विचार कर भरत ने भगवान के समवसरण में जाकर पूजा-भक्ति आदि करके भगवान से प्रार्थना की—हे भगवन्! मैंने सिंह, सिंह के बालक आदि सोलह स्वप्न देखे हैं, उनका फल क्या है? और मैंने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की है, वह योग्य है या अयोग्य? कृपया हमारे संशय को दूर कीजिए। यद्यपि अवधिज्ञान से भरत ने इन स्वप्नों का फल जान लिया था, फिर भी सभी को विशेष जानकारी होने के लिए भगवान से सुनना चाहते थे। भरत का प्रश्न समाप्त होने पर जगद्गुरु भगवान अपनी दिव्यध्वनि से सभा को संतुष्ट करने लगे। हे भरतराज! सुनो! (१) तुमने जो 'पृथ्वी पर अकेले विहार कर पर्वत की चोटी पर चढ़ते हुए तेईस सिंह देखे हैं' उसका फल यह है कि महावीर स्वामी को छोड़कर शेष तीर्थंकरों के समय दुष्ट नयों की उत्पत्ति नहीं होगी। (२) 'अकेले सिंह के पीछे हिरणों के बच्चे' देखने से महावीर के तीर्थ में परिग्रही कुलिंगी बहुत हो जावेंगे। (३) 'बड़े हाथी के बोझ को घोड़े पर लदा' देखने से पंचम काल के साधु तपश्चरण के समस्त गुणों को धारण करने में समर्थ नहीं होगे। (४) 'सूखे पत्ते खाने वाले बकरों को देखने' से आगामी काल में मनुष्य दुराचारी हो जावेंगे। (५) 'गजेन्द्र के कंधे पर चढ़े हुए वानरों' को देखने से आगे चलकर क्षत्रियवंश नष्ट हो जावेंगे, नीच कुल वाले पृथ्वी का पालन करेंगे। (६) 'कौवों के द्वारा उलूक को त्रास दिया जाना' देखने से मनुष्य धर्म की इच्छा से जैन मुनियों को छोड़कर अन्य साधुओं के पास जावेंगे। (७) 'नाचते हुए बहुत से भूतों के देखने से' लोग व्यंतरों को देव समझकर उनकी उपासना करने लगेंगे। (८) 'मध्य भाग में शुष्क और चारों तरफ से पानी से भरे हुए तालाब' के देखने से धर्म मध्य भागों से हटकर यत्र-तत्र रह जावेगा। (९) 'धूल से मलिन हुए रत्नों की राशि के देखने से' पंचमकाल में ऋद्धिधारी उत्तम मुनि नहीं होंगे। (१०) 'कुत्ते को नैवेद्य खाते हुए' देखने से व्रत रहित ब्राह्मण गुणी पात्रों के समान आदर पावेंगे। (११) 'ऊँचे स्वर से शब्द करते हुए तरुण बैल का विहार' देखने से पंचमकाल में अधिकतर लोग तरुण अवस्था में मुनिपद को धारण करेंगे। (१२) 'परिमण्डल से घिरे हुए चन्द्रमा' के देखने से पंचमकाल के मुनियों में अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान नहीं होगा। (१३) 'परस्पर मिलकर जाते हुए दो बैलों के' देखने से पंचमकाल में मुनिजन साथ-साथ रहेंगे, अकेले विहार करने वाले नहीं होंगे। (१४) 'मेघों के

आवरण में रुके हुए सूर्य' के देखने से प्रायः पंचमकाल में केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय नहीं होता है। (१५) 'सूखे वृक्ष के देखने से' स्त्री-पुरुषों का चारित्र भ्रष्ट हो जायेगा। (१६) 'जीर्ण पत्तों के देखने से' महा औषधियों का रस नष्ट हो जावेगा।

हे भरत! इन स्वप्नों को तुम बहुत समय बाद का फल देने वाला समझो तथा जो तुमने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की है, सो आज तो ठीक है किन्तु ये भी पंचमकाल में जाति के मद से युक्त होकर प्रायः धर्मद्रोही हो जावेंगे, फिर भी अब जिनकी सृष्टि की है, उन्हें नष्ट करना ठीक नहीं है।

भगवान के उपर्युक्त वचन को सुनकर भरत महाराज अपना संशय दूर करके ऋषभदेव को बार-बार प्रणाम करके वहाँ से लौटे। खोटे स्वप्नों से होने वाले अनिष्ट की शांति के लिए जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक और उत्तम पात्र को दान देना आदि पुण्य कार्य किये।

चक्रवर्तियों का वैभव

प्रत्येक चक्री उत्तम संहनन, उत्तम संस्थान से युक्त सुवर्ण वर्ण वाले होते हैं। उनके छ्यानवे हजार रानियाँ होती हैं—इनमें ३२००० आर्यखण्ड की कन्याएँ, ३२००० विद्याधर कन्याएं और ३२००० म्लेच्छ खण्ड की कन्याएँ होती हैं। प्रत्येक चक्रियों के संख्यात हजार पुत्र-पुत्रियाँ, ३२००० गणबद्ध राजा, ३६० अंगरक्षक, ३६० रसोइये, ३५००००० (साढ़े तीन करोड़) बंधुवर्ग, ३०००००० गायें, १००००००० थालियाँ, ८४००००० भद्र हाथी, ८४००००० रथ, १८००००००० घोड़े, ८४०००००० उत्तर वीर, ८८००० म्लेच्छ राजा, अनेकों करोड़ विद्याधर, ३२००० मुकुटबद्ध राजा, ३२००० नाट्यशालाएँ, ३२००० संगीतशालाएँ और ४८००००००० पदातिगण होते हैं।

सभी चक्रवर्तियों में से प्रत्येक ९६००००००० ग्राम, ७५००० नगर, १६००० खेट, २४००० कर्वट, ४००० मटंब, ४८००० पत्तन, ९९००० द्रोणमुख, १४००० संवाहन, ५६ अन्तर्द्वीप, ७०० कुक्षि निवास, २८००० दुर्गादि होते हैं एवं चौदह रत्न, नवनिधि और दशांग भोग होते हैं।

चौदह रत्न—गज, अश्व, गृहपति, स्थपति, सेनापति, पट्टरानी और पुरोहित ये सात जीवरत्न हैं। छत्र, असि, दण्ड, चक्र, कांकिणी, चिन्तामणि और चर्म ये सात रत्न निर्जीव होते हैं। चक्रवर्तियों के चामरों (चँवरों) को बत्तीस यक्ष ढोरते हैं।

नवनिधि—काल, महाकाल, पांडु, मानव, शंख, पद्म, नैसर्प, पिङ्गल और नाना रत्न ये नवनिधियाँ श्रीपुर में उत्पन्न हुआ करती हैं। इन नवनिधियों में से प्रत्येक क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्य, भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, हर्म्य, आभरण और रत्नसमूहों को दिया करती हैं।

चक्रवर्तियों के २४ दक्षिण मुखावर्त धवल व उत्तम शंख, एक कोड़ाकोड़ी १००००००००००००० हल होते हैं। रमणीय भेरी और पट बारह-बारह होते हैं, जिनका शब्द बारह योजन प्रमाण देश में सुना जाता है।

दशांग भोग—दिव्यपुर, रत्न, निधि, सैन्य, भाजन, भोजन, शय्या, आसन, वाहन और नाट्य ये उन चक्रवर्तियों के दशांग भोग कहे जाते हैं।

इन चक्रवर्तियों की अवगाहना, आयु, राज्यकाल आदि का वर्णन चार्ट में देखिए।

चार्ट नं. १

द्वादश चक्रवर्ती

	नाम	उत्सेध	आयु	कुमारकाल	मंडलीक काल
१.	भरत	५०० धनुष	८४ लाख पूर्व	७७०००० पूर्व	१००० वर्ष
२.	सगर	४५० धनुष	७२ लाख पूर्व	५०००० पूर्व	५०००० पूर्व
३.	मघवा	४२(१/२) धनुष	५००००० वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष
४.	सनत्कुमार	४२ धनुष	३००००० वर्ष	५०००० वर्ष	५०००० वर्ष
५.	शान्ति	४० धनुष	१००००० वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष
६.	कुंथु	३५ धनुष	९५००० वर्ष	२३७५० वर्ष	२३७५० वर्ष
७.	अर	३० धनुष	८४००० वर्ष	२१००० वर्ष	२१००० वर्ष
८.	सुभौम	२८ धनुष	६०००० वर्ष	५००० वर्ष	५००० वर्ष
९.	पद्म	२२ धनुष	३०००० वर्ष	५०० वर्ष	५०० वर्ष
१०.	हरिषेण	२० धनुष	१०००० वर्ष	३२५ वर्ष	३२५ वर्ष
११.	जयसेन	१५ धनुष	३००० वर्ष	३०० वर्ष	३०० वर्ष
१२.	ब्रह्मदत्त	७ धनुष	७०० वर्ष	२८ वर्ष	५६ वर्ष

चक्र.	विजयकाल	राज्यकाल	संयमकाल	प्राप्त गति
१.	६०००० वर्ष	६ लाख पूर्व ६१००० वर्ष	१ लाख पूर्व	मुक्ति प्राप्त
२.	३०००० वर्ष	७० लाख पूर्व ३०००० वर्ष	१ लाख पूर्व	मुक्ति प्राप्त
३.	१०००० वर्ष	३९०००० वर्ष	५०००० वर्ष	सनत्कुमार कल्प
४.	१०००० वर्ष	९०००० वर्ष	१००००० वर्ष	सनत्कुमार कल्प
५.	८०० वर्ष	२४२०० वर्ष	२५००० वर्ष	मुक्ति प्राप्त
६.	६०० वर्ष	२३१५० वर्ष	२३७५० वर्ष	मुक्ति प्राप्त
७.	४०० वर्ष	२०६०० वर्ष	२१००० वर्ष	मुक्ति प्राप्त

८.	५०० वर्ष	४९५०० वर्ष	० वर्ष	सप्तम नरक
९.	३०० वर्ष	१८७०० वर्ष	१०००० वर्ष	मुक्ति प्राप्त
१०.	१५० वर्ष	८८५० वर्ष	३५० वर्ष	मुक्ति प्राप्त
११.	१०० वर्ष	१९०० वर्ष	४०० वर्ष	मुक्ति प्राप्त
१२.	१६ वर्ष	६०० वर्ष	० वर्ष	सप्तम नरक

भरत चक्रवर्ती प्रथम चक्रवर्ती थे और भगवान ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे, उन्हीं के नाम से यह भरतभूमि 'भारत' कहलाती है। इन्होंने दीक्षा लेते ही अन्तर्मुहूर्त मात्रकाल में केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया था। इनका जीवनवृत्त महापुराण और भरतेशवैभव में देखिए। इनके भाई कामदेव पदधारक बाहुबली से इनका मानभंग, विजयभंग हुआ है, इसे हुण्डावसर्पिणी काल का दोष बताया है।

बहुत काल तक साम्राज्य सुख का अनुभव करते हुए महाराज भरत ने किसी समय दर्पण में मुख देखते हुए एक श्वेत केश देखा और तत्क्षण भोगों से विरक्त हो गये। अपने पुत्र अर्ककीर्ति को राज्यपद देकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली, उन्हें उसी समय मनःपर्ययज्ञान प्रकट हो गया और उसके बाद ही केवलज्ञान प्रकट हो गया। ये भरतकेवली अब देवाधिदेव भगवान हो गये और इन्द्रों द्वारा वन्दनीय गंधकुटी में विराजमान हो गये। बहुत काल तक भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हुए अन्त में शेष कर्मों का नाश करके मुक्तिधाम को प्राप्त हो गये।

बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण

विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये नौ बलभद्र हुए हैं।

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषपुंडरीक, पुरुषदत्त, नारायण और कृष्ण ये नौ नारायण हुए हैं।

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासंध ये नौ प्रतिनारायण हुए हैं।

त्रिपृष्ठ आदि पाँच नारायणों में से प्रत्येक क्रम से श्रेयांसनाथ आदिक पाँच तीर्थंकरों की वंदना करते थे। अर और मल्लिनाथ तीर्थंकर के अन्तराल में दत्तनामक नारायण हुए हैं। सुव्रत और नमि स्वामी के मध्य में लक्ष्मण और भगवान नेमिनाथ के समय में कृष्ण नारायण हुए हैं। नारायण के बड़े भाई ही बलदेव और नारायण के प्रतिशत्रु ही प्रतिनारायण होते हैं।

चार्ट नं. २
नौ बलदेव

	नाम	उत्सेध	आयु	प्राप्त गति
१.	विजय	८० धनुष	८७००००० वर्ष	मोक्ष
२.	अचल	७० धनुष	७७००००० वर्ष	मोक्ष
३.	धर्म	६० धनुष	६७००००० वर्ष	मोक्ष
४.	सुप्रभ	५० धनुष	३७००००० वर्ष	मोक्ष
५.	सुदर्शन	४५ धनुष	१७००००० वर्ष	मोक्ष
६.	नन्दी	२९ धनुष	६७००० वर्ष	मोक्ष
७.	नन्दिमित्र	२२ धनुष	३७००० वर्ष	मोक्ष
८.	राम	१६ धनुष	१७००० वर्ष	मोक्ष
९.	पद्म	१० धनुष	१२०० वर्ष	ब्रह्म कल्प

चार्ट नं. ३
नौ नारायण

	नाम	उत्सेध	आयु	कुमार काल
१.	त्रिपृष्ठ	८० धनुष	८४००००० वर्ष	२५००० वर्ष
२.	द्विपृष्ठ	७० धनुष	७२००००० वर्ष	२५००० वर्ष
३.	स्वयंभु	६० धनुष	६०००००० वर्ष	१२५०० वर्ष
४.	पुरुषोत्तम	५० धनुष	३०००००० वर्ष	७०० वर्ष
५.	पुरुषसिंह	४५ धनुष	१०००००० वर्ष	३०० वर्ष
६.	पुरुष पुण्डरीक	२९ धनुष	६५००० वर्ष	२५० वर्ष
७.	दत्त	२२ धनुष	३२००० वर्ष	२०० वर्ष
८.	नारायण	१६ धनुष	१२००० वर्ष	१०० वर्ष
९.	कृष्ण	१० धनुष	१००० वर्ष	१६ वर्ष

नारायण	मण्डलीक काल	विजयकाल	राज्यकाल	प्राप्त गति
१.	२५००० वर्ष	१००० वर्ष	८३४९००० वर्ष	सप्तम नरक
२.	२५००० वर्ष	१०० वर्ष	७१४९९०० वर्ष	षष्ठ नरक

३.	१२५०० वर्ष	९० वर्ष	५९७४९१० वर्ष	षष्ठ नरक
४.	१३०० वर्ष	८० वर्ष	२९९७९२० वर्ष	षष्ठ नरक
५.	१२५० वर्ष	७० वर्ष	९९८३८० वर्ष	षष्ठ नरक
६.	२५० वर्ष	६० वर्ष	६४४४० वर्ष	षष्ठ नरक
७.	५० वर्ष	५० वर्ष	३१७०० वर्ष	पंचम नरक
८.	३०० वर्ष	४० वर्ष	११५६० वर्ष	चतुर्थ नरक (तृतीय नरक पद्म पु. से)
९.	५६ वर्ष	८ वर्ष	९२० वर्ष	तृतीय नरक

चार्ट नं. ४

नौ प्रतिशत्रु

	नाम	उत्सेध	आयु	प्राप्त गति
१.	अश्वग्रीव	८० धनुष	८४००००० वर्ष	सप्तम नरक
२.	तारक	७० धनुष	७२००००० वर्ष	षष्ठ नरक
३.	मेरक	६० धनुष	६०००००० वर्ष	षष्ठ नरक
४.	मधुकैटभ	५० धनुष	३०००००० वर्ष	षष्ठ नरक
५.	निशुम्भ	४५ धनुष	१०००००० वर्ष	षष्ठ नरक
६.	बलि	२९ धनुष	६५००० वर्ष	षष्ठ नरक
७.	प्रहरण	२२ धनुष	३२००० वर्ष	पंचम नरक
८.	रावण	१६ धनुष	१२००० वर्ष	चतुर्थ नरक (तृतीय नरक पद्म पु. से)
९.	जरासंध	१० धनुष	१००० वर्ष	तृतीय नरक

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र

अयोध्या के राजा दशरथ के चार रानियाँ थीं, उनके नाम थे—अपराजिता, सुमित्रा, केकयी और सुप्रभा। अपराजिता (कौशल्या) ने पद्म (रामचन्द्र) नाम के पुत्र को जन्म दिया। सुमित्रा से लक्ष्मण, केकयी से भरत और सुप्रभा से शत्रुघ्न ऐसे दशरथ के चार पुत्र हुए। राजा दशरथ ने इन चारों को विद्याध्ययन आदि में योग्य कुशल कर दिया।

लंका नगरी—किसी समय अजितनाथ के समवसरण में राक्षसों के इन्द्र भीम और सुभीम ने प्रसन्न होकर पूर्व जन्म के स्नेहवश विद्याधर मेघवाहन को कहा कि हे वत्स! इस लवण समुद्र में अतिशय सुन्दर हजारों महाद्वीप हैं। उन द्वीपों में से एक 'राक्षस द्वीप' है, जो सात सौ योजन लम्बा तथा इतना ही चौड़ा है। इसके मध्य में नौ योजन ऊँचा, पचास योजन चौड़ा, 'त्रिकूटाचल' नाम का पर्वत है। उस पर्वत के नीचे तीस योजन विस्तार वाली लंका नगरी है। हे विद्याधर! तुम अपने बंधुवर्ग के साथ उस नगरी में जावो और सुख से रहो। ऐसा कहकर भीम इन्द्र ने उसे एक देवाधिष्ठित हार भी दिया था। इन्हीं की परम्परा में राजा रत्नश्रवा की रानी केकसी से दैदीप्यमान प्रतापी पुत्र ने जन्म लिया। बहुत पहले राजा मेघवाहन को राक्षसों के इन्द्र भीम ने जो हार दिया था, हजार नागकुमार जिसकी रक्षा करते थे, जिसकी किरणें सब ओर फैल रही थीं और राक्षसों के भय से इतने दिनों तक जिसे किसी ने नहीं पहना था, उस बालक ने उसे मुट्ठी से खींच लिया। माता ने बड़े प्रेम से बालक को वह हार पहना दिया, तब उसके असली मुख के सिवाय उस हार में नौ मुख और दीखने लगे, जिससे सबने बालक का नाम 'दशानन' रख दिया। उसके बाद रानी ने भानुकर्ण, चन्द्रनखा और विभीषण को जन्म दिया था। राक्षसों द्वारा दी गई लंका नगरी में रहने से ये लोग राक्षस वंशी कहलाते थे।

सीता का विवाह—मिथिला नगरी के राजा जनक की रानी विदेहा की सुपुत्री सीता थी। किसी समय राजा जनक ने पुत्री के ब्याह के लिए स्वयंवर मंडप बनवाया और यह घोषणा कर दी कि जो वज्रावर्त धनुष को चढ़ायेगा, वही सीता का पति होगा। श्री रामचन्द्र ने उस वज्रावर्त धनुष को चढ़ाया और लक्ष्मण ने समुद्रावर्त धनुष को चढ़ाया। रामचन्द्र के गले में सीता ने वर-माला डाली एवं चन्द्रवर्धन विद्याधर ने अपनी अठारह कन्याओं की शादी लक्ष्मण से कर दी। उस समय भरत को विरक्त देख केकयी की प्रेरणा से पुनः स्वयंवर विधि से राजा कनक ने अपनी लोकसुन्दरी का ब्याह भरत के साथ कर दिया।

रामचन्द्र का वनवास—किसी समय राजा दशरथ वैराग्य को प्राप्त हो गये और रामचन्द्र को राज्यभार देकर दीक्षा लेने का निश्चय किया। उसी समय भरत भी विरक्तचित्त होकर दीक्षा के लिए उद्यत होने लगे। इसी बीच भरत की माता केकयी घबराकर तथा मन में कुछ सोचकर पति

के पास पहुँची और समयोचित वार्तालाप के अनन्तर उसने पूर्व में ब्याह के समय सारथी का कुशल कार्य करने के उपलक्ष्य में राजा द्वारा प्रदत्त 'वर' जो कि अभी तक धरोहररूप में था, उसे माँगा और पति की आज्ञा के अनुसार उसने कहा कि 'मेरे पुत्र के लिए राज्य प्रदान कीजिए'। यह वर देकर राजा दशरथ ने रामचन्द्र को बुलाकर रामचन्द्र से शोकपूर्ण शब्दों में यह सब हाल कह दिया। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र पिता को अनेक प्रकार से समझाकर शोकमुक्त करके भ्राता लक्ष्मण और सती सीता के साथ वन में चले गये और दशरथ ने भी मुनि दीक्षा ले ली। उस समय भरत ने बड़ी जबरदस्ती से राज्यभार संभाला।

रावण की मृत्यु—वनवास के प्रवास में किसी समय धोखे से रावण ने सीता का अपहरण कर लिया। तब हनुमान और सुग्रीव आदि विद्याधरों की सहायता से रामचन्द्र ने रावण से युद्ध प्रारंभ किया। रावण प्रतिनारायण था। उसके चक्ररत्न से ही लक्ष्मण के द्वारा उसकी युद्धभूमि में मृत्यु हो गई और लक्ष्मण उसी चक्ररत्न से 'नारायण' पदधारी हो गये।

नारायण के सात महारत्न—शक्ति, धनुष, गदा, चक्र, कृपाण, शंख और दण्ड ये सात महारत्न अर्द्धचक्रियों के पास शोभायमान रहते हैं।

बलभद्र के चार रत्न—मूसल, हल, रथ और रत्नावली ये चार रत्न प्रत्येक बलदेव के पास शोभित रहते हैं।

नौ प्रतिनारायण युद्ध में नव नारायण के हाथों से उन्हीं के चक्रों से मृत्यु को प्राप्त होकर नरक भूमि में जाते हैं। सब नारायण पूर्व भव में तपश्चरण करके निदान से सहित होकर मरकर देव होते हैं तथा वहाँ से आकर नारायण होकर भोगों की आसक्ति में ही मरकर अर्थात् राज्य में ही मरकर नरक जाते हैं। आठ बलदेव मोक्ष और अंतिम बलदेव ब्रह्म स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं। यह अंतिम बलदेव स्वर्ग से च्युत होकर कृष्ण के तीर्थ में सिद्ध पद को प्राप्त होंगे।

सीता का निष्कासन—बलभद्र पदधारी रामचन्द्र और लक्ष्मण नारायण बहुत काल तक अयोध्या में सुखपूर्वक राज्य करते हुए समय व्यतीत कर रहे थे कि एक समय अकारण ही सीता के अपवाद की चर्चा रामचन्द्र तक आई और राम ने उस निर्दोष गर्भवती सीता को धोखे से वन में भेज दिया। जब वन में विह्वलचित्त सीता विलाप कर रही थी, तब पुंडरीकपुर का स्वामी राजा वज्रजंघ वहाँ हाथी पकड़ने के लिए सेना सहित आया था। वह बड़े ही धर्मप्रेम से सीता को अपने साथ ले गया। वहीं सीता को युगल पुत्र उत्पन्न हुए जिनका अनंगलवण और मदनांकुश नाम रखा। बाल लीला से माता को प्रसन्न करते हुए ये बालक किशोर अवस्था को प्राप्त हुए। उनके पुण्य से प्रेरित 'सिद्धार्थ' नामक क्षुल्लक उन्हें विद्याध्ययन कराने लगे। वे क्षुल्लक जी प्रतिदिन तीनों संध्याओं में मेरुपर्वत के चैत्यालयों की वंदना करके क्षणभर में वापस आ जाते थे। थोड़े ही

समय में क्षुल्लक जी ने उस बालकों को सम्पूर्ण शस्त्र और शास्त्र विद्याएँ ग्रहण करा दीं।

रामचन्द्र का पुत्रों के साथ युद्ध—किसी समय घूमते-घूमते नारद क्षुल्लक वेष में वहाँ आ गये और नमस्कार करते हुए दोनों कुमारों को आशीर्वाद दिया कि 'राजा रामचन्द्र और लक्ष्मण जैसी विभूति शीघ्र ही आप दोनों को प्राप्त हो'। इसके उत्तर में उन्होंने कहा—हे भगवन्! वे राम-लक्ष्मण कौन हैं? नारद ने सीता के वन में छोड़ने तक का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब इन बालकों ने पूछा—यहाँ से अयोध्या कितनी दूर है? नारद ने कहा—साठ योजन दूर है। दोनों कुमार अयोध्या पर चढ़ाई करने के लिए उद्यत हो गये। माता ने बहुत कुछ समझाया कि हे पुत्रों! तुम विनय से जाकर पिता और चाचा को नमस्कार करो, यही न्यायसंगत है किन्तु वे बोले कि "इस समय वे रामचन्द्र हमारे शत्रु के स्थान को प्राप्त हैं।" इत्यादि कहकर वे जैसे-तैसे माता की आज्ञा लेकर और सिद्ध भगवान को नमस्कार कर युद्ध करने के लिए चल पड़े। वहाँ संग्राम भूमि में महा भयंकर युद्ध होने लगा।

अनन्तर कोपवश लक्ष्मण ने चक्ररत्न का स्मरण करके मदनांकुश को मारने के लिए चला दिया किन्तु वह चक्ररत्न वापस लक्ष्मण के पास आ गया। इसी बीच में सिद्धार्थ क्षुल्लक ने रामचन्द्र और लक्ष्मण को सच्ची घटना सुना दी। तब उन लोगों ने शस्त्र डाल दिये और पिछले शोक एवं वर्तमान के हर्ष से विह्वल हो पुत्रों से मिले। पुत्रों ने भी विनय से सिर झुकाकर पिता को नमस्कार किया।

सीता की अग्नि परीक्षा—अनंतर रामचन्द्र की आज्ञा से भामंडल, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव आदि बड़े-बड़े राजा पुंडरीकपुर से सीता को ले आये। सभा में रामचन्द्र की मुखाकृति को देख सीता किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी वहाँ खड़ी रहीं। तब राम ने कहा कि सीते! सामने क्यों खड़ी है? दूर हट, मैं तुझे देखने के लिए समर्थ नहीं हूँ। तब सीता ने कहा कि "आपके समान दूसरा कोई निष्ठुर नहीं है, दोहला के बहाने मुझ गर्भिणी को वन में भेजना क्या उचित था? यदि मेरे प्रति आपको थोड़ी भी कृपा होती तो आर्यिकाओं की वसति में मुझे छोड़ देते। अस्तु! हे देव! आप मुझ पर प्रसन्न हों और जो भी आज्ञा दें मैं पालने को तैयार हूँ। तब राम ने सोचकर अग्नि परीक्षा का निर्णय दिया। तब सीता ने हर्षयुक्त हो 'एवमस्तु' ऐसा कहकर स्वीकार किया। उस समय हनुमान, नारद आदि घबरा गये।

महाविकराल अग्निकुंड धधकने लगा। सीता पंचपरमेष्ठी की स्तुति-पूजा करके मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करके बोलीं 'मैंने स्वप्न में भी राम के सिवा किसी अन्य मनुष्य को मन, वचन, काय से चाहा हो तो हे अग्नि देवते! तू मुझे भस्मसात् कर दे अन्यथा नहीं जलावे' इतना कहकर वह सीता उस अग्निकुण्ड में कूद पड़ी। उसी समय उसके शील के प्रभाव से वह अग्नि

शीतल जल हो गयी और कल-कल ध्वनि करती हुई बावड़ी लहराने लगी। वह जल बाहर चारों तरफ फैल गया और लोक समुदाय घबराने लगा किन्तु वह जल रामचन्द्र के चरण स्पर्श करके सौम्य दशा को प्राप्त हो गया, तब लोग सुखी हुए। वापी के मध्य कमलासन पर सीता विराजमान थीं, आकाश से देव पुष्पवृष्टि कर रहे थे। देवदुंदुभि बाजे बज रहे थे। लवण और अंकुश आजू-बाजू खड़े थे।

ऐसी सीता को देखकर रामचन्द्र उसके पास गये और बोले—हे देवि! प्रसन्न होवो और मेरे अपराध क्षमा करो। इत्यादि वचनों को सुनकर सीता ने कहा—हे राजन्! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ आप विवाद को छोड़ो। इसमें आपका या अन्य किसी का दोष नहीं है, मेरे पूर्वकृत पाप कर्मों का ही यह विपाक था। अब मैं स्त्री पर्याय को प्राप्त न करूँ, ऐसा कार्य करना चाहती हूँ, ऐसा कहते हुए सीता ने निःस्पृह हो अपने केश उखाड़कर राम को दे दिये। यह देख रामचंद्र मूर्च्छित हो गये। इधर जब तक चन्दन आदि द्वारा राम को सचेत किया गया, तब तक सीता पृथ्वीमती आर्यिका से दीक्षित हो गई। जब रामचन्द्र सचेत हुए, तब सीता को न देखकर शोक और क्रोध में बहुत ही दुःखी हुए और सीता को वापस लाने के लिए देवों से व्याप्त उद्यान में पहुँचे। वहाँ मुनियों में श्रेष्ठ सर्वभूषण केवली को देखा और शांत होकर अंजलि जोड़कर नमस्कार करके मनुष्यों के कोठे में बैठ गये। वहीं पर आर्यिकाओं के कोठे में वस्त्रमात्र परिग्रह को धारण करने वाली आर्यिका सीता बैठी थीं। केवली भगवान का विशेष उपदेश सुनकर राम ने संतोष प्राप्त किया।

रामचन्द्र की दीक्षा और निर्वाणगमन—अनन्तर अनंगलवण के पुत्र अनन्तलवण को राज्य देकर रामचन्द्र ने आकाशगामी सुव्रत मुनि के समीप निर्ग्रन्थ दीक्षाधारण कर ली। उस समय शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव आदि कुछ अधिक सोलह हजार राजा साधु हुए और सत्ताईस हजार प्रमुख-प्रमुख स्त्रियाँ श्रीमती नामक साध्वी के पास आर्यिका हुईं। रामचन्द्र उत्तम चर्या से युक्त गुरु की आज्ञा लेकर एकाकी विहार करने लगे।

पाँच दिन का उपवास कर धीर वीर योगी रामचन्द्र पारणा के लिए नन्दस्थली नगरी में आये। उनकी दीप्ति और सुन्दरता को देखकर नगर में बड़ा भारी कोलाहल हो गया। पड़गाहन के समय हे स्वामिन्! यहाँ आइये! यहाँ ठहरिये! इत्यादि अनेकों शब्दों से आकाश व्याप्त हो गया, हाथियों ने भी खम्भे तोड़ डाले, घोड़े हिनहिनाने लगे और बंधन तोड़ डाले, उनके रक्षक दौड़ पड़े। प्रतिनन्दी ने भी क्षुभित हो वीरों को आज्ञा दी कि जाओ! इन मुनिराज को मेरे पास ले आओ। इस प्रकार भटों के कहने से महामुनि रामचन्द्र अन्तराय जानकर वापस चले गये, तब वहाँ और अधिक क्षोभ मच गया।

अनन्तर रामचन्द्र ने पाँच दिन का दूसरा उपवास ग्रहण कर यह प्रतिज्ञा ले ली कि मुझे वन में आहार मिलेगा तो ग्रहण करूँगा अन्यथा नहीं। कारणवश गये हुए इन्हीं राजा प्रतिनन्दी ने रानी सहित वन में रामचन्द्र को आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। रामचन्द्र को अक्षीणमहानस ऋद्धि थी अतः उस बर्तन का अन्न उस दिन अक्षीण हो गया। घोराघोर तपश्चरण करते हुए रामचन्द्र को माघ शुक्ल द्वादशी के दिन केवलज्ञान प्रगट हो गया। तब देवों ने आकर गंधकुटी की रचना की। रामचन्द्र की आयु सत्तर हजार वर्ष की और शरीर की ऊँचाई सोलह धनुष प्रमाण थी। ये रामचन्द्र सर्वकर्म रहित होकर तुंगी से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आज भी राम, लक्ष्मण और सीता का आदर्शजीवन सर्वत्र गाया जाता है।

दिगम्बर मुनि और आर्यिकाएं ही करपात्र में आहार लेते हैं

णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्ख मग्गो सेसा य अमग्गया
सव्वे।।10।।

अर्थ—तीर्थंकर परमदेव ने नग्न मुद्रा के धारी निर्ग्रंथ मुनि को ही पाणिपात्र में आहार लेने का उपदेश दिया है। यह एक निर्ग्रंथ मुद्रा ही मोक्षमार्ग है, इसके सिवाय सब अमार्ग हैं-मोक्ष के मार्ग नहीं है।

लिंगं इच्छीणं हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण
भुंजेई।।22।।

अर्थ—एक लिंग स्त्रियों का होता है, इस लिंग—आर्यिका वेष को धारण करने वाली स्त्री दिन में एक ही बार करपात्र से आहार ग्रहण करती है। वह आर्यिका एक वस्त्र—साड़ी धारण करती है और वस्त्रावरण सहित ही आहार ग्रहण करती है।

—भगवान कुंदकुंद देव, सूत्र पाहुड़

''णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं।''

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की कृतिकर्म विधिपूर्वक वन्दना

अमृतवर्षिणी टीका–

यहां श्री गौतमस्वामी ने ज्ञान, दर्शन और चारित्र की भी कृतिकर्म विधिपूर्वक वंदना की है।

ये पांच प्रकार के ज्ञान–सम्यग्ज्ञान और दर्शन–औपशमिक, क्षायोपशमिक व क्षायिक ये तीनों प्रकार के सम्यग्दर्शन तथा सामायिक, छदोपस्थापना आदि पांच प्रकार के सम्यक् चारित्र सदा ही पूज्य हैं–वंद्य हैं।

ये भी इन्हीं ढाई द्वीपों तक ही होते हैं अर्थात् इनके धारण करने वाले मनुष्य भी ढाई द्वीपों तक ही संभव है।। यद्यपि सम्यग्दर्शन चारों गतियों में होता है—सम्यग्दृष्टि चारों गतियों में व असंख्यात द्वीप समुद्रों तक विद्यमान हैं, फिर भी यहां उन अव्रतियों की कृतिकर्म विधिपूर्वक वंदना नहीं की गई है। ऐसा समझना।

कायोत्सर्ग का लक्षण

९ बार णमोकार मंत्र को २७ उच्छ्वासों में जपने को कायोत्सर्ग कहते हैं

कायोत्सर्ग के ३२ दोष

कायोत्सर्ग के ३२ दोष बतलाते हैं—

१. घोटक दोष—घोड़े के समान एक पैर उठाकर अर्थात् एक पैर से भूमि को स्पर्श न करते हुए खड़े होना।

२. लता दोष—वायु से हिलती लता के समान हिलते हुए कायोत्सर्ग करना।

३. स्तंभ दोष—स्तंभ का सहारा लेकर अथवा स्तंभ के समान शून्य हृदय होकर कायोत्सर्ग करना।

४. कुड्य दोष—दीवाल आदि का आश्रय लेकर कायोत्सर्ग करना।

५. माला दोष—पीठादि–पाटा आदि के ऊपर आरोहरण कर अथवा मस्तक के ऊपर कोई रज्जु वगैरह वस्तु का आश्रय लेकर खड़े होना।

६. शबरी दोष—भिल्लनी के समान गुह्य अंग को हाथों से ढककर या जंघा से जघन को पीड़ित करके खड़े होना।

७. निगड दोष—अपने दोनों पैरों को बेड़ी से जकड़े हुए की तरह पैरों में बहुत अंतराल करके खड़े होना।

८. लंबोत्तर दोष—नाभि से ऊर्ध्व भाग को लंबा करके अथवा कायोत्सर्ग में स्थित हुए अधिक ऊँचे होना या झुकाना।

९. स्तनदृष्टि दोष—अपने स्तन भाग पर दृष्टि रखना।

१०. वायस दोष—कौवे के समान इधर-उधर देखना।

११. खलीन दोष—जैसे घोड़ा लगाम लग जाने से दाँतों को घिसता—कटकट करता हुआ सिर को ऊपर-नीचे करता है, वैसे ही दाँतों को कट-कटाते हुए सिर को ऊपर नीचे करना।

१२. युग दोष—जैसे कंधे के जुए से पीड़ित बैल गर्दन फैला देता है, वैसे ही ग्रीवा को लम्बी करके कायोत्सर्ग करना।

१३. कपित्थ दोष—कैथ की तरह मुट्ठी बाँधकर कायोत्सर्ग करना।

१४. शिरःप्रकंपित दोष—कायोत्सर्ग करते समय सिर हिलाना।

१५. मूक दोष—मूक मनुष्य के समान मुख विकार करना, नाक सिकोड़ना।

१६. अंगुलि दोष—कायोत्सर्ग करते समय अंगुलियों से गणना करना।

१७. भ्रूविकार दोष—कायोत्सर्ग करते समय भृकुटियों को चढ़ाना या विकार युक्त करना।

१८. वारुणीपायी दोष—मदिरापायी के समान झूमते हुए कायोत्सर्ग करना।

१९. से २८ दिशावलोकन दोष—कायोत्सर्ग करते समय पूर्वादि दिशाओं का अवलोकन करना। इसमें दश दिशा संबंधी दश दोष हो जाते हैं।

२९. ग्रीवोन्नमन दोष—कायोत्सर्ग करते समय गर्दन को ऊँची उठाना।

३०. प्रणमन दोष—कायोत्सर्ग में गर्दन अधिक नीचे झुकाना।

३१. निष्ठीवन दोष—थूकना, श्लेष्मा आदि निकालना।

३२. अंगामर्श दोष—कायोत्सर्ग करने में शरीर का स्पर्श करना।

इन बत्तीस दोषों को छोड़कर धीर साधु—दुःखों का नाश करने के लिए माया से रहित, विशेषतासहित, अपनी शक्ति और अवस्था—उम्र के अनुरूप कायोत्सर्ग करते हैं।

वंदना के ३२ दोष

१. अनादृत—वंदना में आदर भाव नहीं रखना।

२. स्तब्ध—आठ प्रकार के मद में से किसी के वश हो जाना।

३. प्रविष्ट—अर्हंतादि के अत्यन्त निकट[1] होकर वंदना करना।

४. परिपीडित—अपने दोनों हाथों से दोनों जंघाओं या घुटनों का स्पर्श करना।

---

1. जिनप्रतिमा आदि से कम से कम एक हाथ दूर से हटकर वंदना की जाती है उससे अधिक निकट होने में यह दोष आयेगा। चूँकि उठने बैठने आदि क्रियाओं में अपने हाथ-पैर आदि का धक्का उनको लगने से आसादना दोष हो सकता है।

५. दोलायित—झूला पर बैठे हुए के समान अर्थात् हिलते हुए वंदना करना।

६. अंकुशित—अपने ललाट पर अपने हाथ के अंगुष्ठ को अंकुश की तरह रखना।

७. कच्छपरिंगित—बैठकर वंदना करते हुए कछुये के समान रेंगने की क्रिया करना।

८. मत्स्योद्वर्त—जिस प्रकार मछली एक भाग को ऊपर करके उछला करती है, उसी प्रकार कटिभाग को ऊपर निकालकर वंदना करना।

९. मनोदुष्ट—मन में गुरु आदि के प्रति द्वेष धारण कर वंदना करना अथवा संक्लेशयुक्त मन सहित वंदना करना।

१०. वेदिकाबद्ध—अपने स्तन भागों का मर्दन करते हुए वंदना करना या दोनों भुजाओं द्वारा अपने दोनों घुटनों को बाँध लेना।

११. भयदोष—सात प्रकार के भय से डरकर वंदना करना।

१२. विभ्यद्दोष—गुरु आदि से डरते हुए वंदना करना।

१३. ऋद्धिगौरव—चातुर्वर्ण्य संघ में भक्त हो जावेगा, इस अभिप्राय से वंदना करना।

१४. गौरव—अपना माहात्म्य आसन आदि द्वारा प्रगट करके अथवा सरस भोजन आदि की स्पृहा रखकर वंदना करना।

१५. स्तेनित—आचार्य आदि से छिपाकर वंदना करना या कोठरी आदि के भीतर छिपकर वंदना करना।

१६. प्रतिनीत—देव, गुरु आदि के प्रतिकूल होकर वंदना करना।

१७. प्रदुष्ट—अन्य के साथ द्वेष, वैर, कलह आदि करके पुनः क्षमा न कराकर वंदनादि क्रिया करना।

१८. तर्जित—अन्यों को तर्जित कर, डर दिखाकर वंदना करना अथवा आचार्यादि के द्वारा अंगुली आदि से तर्जित–अनुशासित किये जाने पर "यदि वन्दनादि नहीं करोगे, तो संघ से निकाल दूँगा" ऐसी फटकार सुनकर वंदना करना।

१९. शब्ददोष—शब्द बोलते हुए वंदना करना। अथवा "वंदना[1] करते समय बीच में बातचीत करते जाना।"

२०. हीलित—वचनों द्वारा आचार्यादि का पराभव करके वंदना करना।

२१. त्रिवलित—वंदना करते समय कमर, गर्दन और हृदय इन अंगों में भंग–बलि पड़ जाना या ललाट में तीन सल डाल कर वंदना करना।

२२. कुंचित—संकुचित हाथों से सिर का स्पर्श करना या घुटनों के बीच शिर रखकर संकुचित होकर वंदना करना।

---

1. "या जल्पक्रिया वार्तादिकथनं।" (अनगार धर्मामृत पृ. 614)

२३. दृष्ट—आचार्यादि यदि देख रहे हों तो ठीक से वंदनादि करना अन्यथा स्वेच्छा से दिशावलोकन करते हुए वंदना करना।

२४. अदृष्ट—आचार्यादि न देख सकें, ऐसे स्थान पर जाकर अथवा भूमि, शरीरादि का पिच्छी से परिमार्जन न कर वंदना में एकाग्रता न रखते हुए वंदना करना या आचार्यादि के पीछे जाकर वंदना करना।

२५. संघकरमोचन—यदि मैं संघ को वंदनारूपी कर भाग नहीं दूँगा, तो संघ मेरे ऊपर रुष्ट होगा, ऐसे भाव से वंदना करना।

२६. आलब्ध—उपकरण आदि प्राप्त करके वंदना करना।

२७. अनालब्ध—उपकरण आदि की आशा से वंदना करना।

२८. हीन—ग्रन्थ, अर्थ और काल के प्रमाण से रहित वंदना करना।

२९. उत्तर चूलिका—वंदना को थोड़े काल में पूर्णकर उसकी चूलिकारूप आलोचनादि पाठ को अधिक समय तक करना।

३०. मूकदोष—गूँगे के समान वंदना के पाठ को मुख के भीतर ही बोलना अथवा वंदना करते समय हुँकार, अंगुली आदि से इशारा करना।

३१. दर्दुर—वंदना के पाठ को इतनी जोर से बोलते हुए महाकलकल ध्वनि करना कि जिससे दूसरों की ध्वनि दब जाये।

३२. चुरुलित—एक ही स्थान में खड़े होकर हस्तांजलि को घुमाकर सबकी वंदना करना अथवा पंचम आदि स्वर से गा-गाकर वंदना करना।

इस प्रकार वंदना के ३२ दोष हैं। इन दोषों से रहित वंदना ही शुद्ध वंदना है जो कि विपुल निर्जरा का कारण है। इन ३२ दोषों में से किसी एक दोष को करता हुआ भी साधु कृतिकर्म करते हुए भी कृतिकर्म से निर्जरा को करने वाला नहीं होता है। एक हाथ के अन्तराल से, अपने शरीरादि के स्पर्श से देव का स्पर्श या गुरु को बाधा न करते हुए अपने अंगादि का पिच्छिका से प्रमार्जन करके साधु वंदना की प्रार्थना करके वंदना करता है अर्थात् मैं वंदना करता हूँ, ऐसी विज्ञापना करके यदि गुरु की वंदना करना है, तो उनकी स्वीकृति लेकर वंदना करता है[1]।"

---

1. किदियम्मं पि करंतो ण होदि किदियम्म णिज्जराभागी।
बत्तीसाणण्णदरं साहू ठणं विराधन्तो।।135।
हत्थंतरेण बाधे संफासपमज्जणं पउज्जन्तो।
जाएंतो वंदणयं इच्छाकारं कुणदि भिक्खू।।136।। (मूलाचार, पृ. 315)

''लोयस्सुज्जोययरे.....''

अमृतवर्षिणी टीका–

लोगुज्जोए धम्मतित्थयरे जिणवरे य अरहंते।
कित्तण केवलिमेव य उत्तमबोहिं मम दिसंतु।।५४१।।[1]

गाथार्थ—लोक में उद्योत करने वाले धर्म तीर्थ के कर्ता अर्हन्त केवली जिनेश्वर प्रशंसा के योग्य हैं। वे मुझे उत्तम बोधि प्रदान करें।।५४१।।

आचारवृत्ति—लोक अर्थात् जगत् में उद्योत अर्थात् प्रकाश को करने वाले लोकोद्योतकर कहलाते हैं। उत्तमक्षमादि को धर्म कहते हैं और संसार से पार होने के उपाय को तीर्थ कहते हैं अतः यह धर्म ही तीर्थ है। इस धर्मतीर्थ को करने वाले अर्थात् चलाने वाले धर्म तीर्थंकर कहलाते हैं। कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले को जिन कहते हैं और उनमें वर अर्थात् जो प्रधान हैं वे जिनवर कहलाते हैं। सर्वज्ञदेव को अर्हंत कहते हैं। तथा सर्व को प्रत्यक्ष करने वाला जिनका ज्ञान है वे केवली हैं। इस विशेषणों में विशिष्ट अर्हन्त भगवान् उत्तम हैं, प्रकृष्ट हैं, सर्व पूज्य हैं। ऐसे जिनेन्द्र भगवान् मुझे संसार से पार होने के लिए उपायभूत ऐसी बोधि को प्रदान करें। इस प्रकार से यह स्तव किया जाता है।

तात्पर्य यह है कि लोक में उद्योतकारी, धर्मतीर्थंकर, जिनवर, केवली, अर्हन्त भगवान् उत्तम हैं। इस प्रकार से उनका कीर्तन करना, उनकी प्रशंसा करना तथा 'वे मुझे बोधि प्रदान करें' ऐसा कहना ही स्तव है। अथवा ये अर्हंत, धर्मतीर्थंकर, लोकोद्योतकर, जिनवर, कीर्तनीय, उत्तम, केवली भगवान् मुझे बोधि प्रदान करें। अथवा अर्हंत भगवान् सर्व विशेषणों से विशिष्ट हैं वे मुझे बोधि प्रदान करें ऐसा केवली भगवान् का स्तवन ही स्तव है।

लोक शब्द की निरुक्ति करते हुए आचार्य कहते हैं–

लोयदि आलोयदि पल्लोयदि सल्लोयदित्ति एगत्थो।
जह्मा जिणेहिं कसिणं तेणेसो वुच्चदे लोओ।।५४२।।

गाथार्थ—लोकित किया जाता है, आलोकित किया जाता है, प्रलोकित किया जाता है और संलोकित किया जाता है, ये चारों क्रियाएँ एक अर्थवाली हैं। जिस हेतु से जिनेन्द्रदेव द्वारा यह सब कुछ अवलोकित किया जाता है इसीलिए यह 'लोक' कहा जाता है।।५४२।।

आचारवृत्ति—लोकन करना–(अवलोकन करना), आलोकन करना, प्रलोकन करना, संलोकन करना और देखना ये शब्द पर्यायवाची शब्द हैं। जिनेन्द्रदेव द्वारा यह सर्वजगत् लोकित—अवलोकित

1. मूलाचार भाग–1 पृ. 409 से 411 तक।

कर लिया जाता है इसीलिए इसकी 'लोक' यह संज्ञा सार्थक है। यहाँ पर इन चारों क्रियाओं का पृथक्करण करते हुए भी टीकाकार स्पष्ट करते हैं। छद्मस्थ अवस्था में मति और श्रुत इन दो ज्ञानों के द्वारा यह सर्व 'लोक्यते' अर्थात् देखा जाता है इसीलिए इसे 'लोक' कहते हैं अथवा अवधिज्ञान द्वारा मर्यादारूप से यह 'आलोक्यते' आलोकित किया जाता है इसलिए यह 'लोक' कहलाता है। अथवा मनःपर्ययज्ञान के द्वारा 'प्रलोक्यते' विशेषरूप से यह देखा जाता है अतः 'लोक' कहलाता है। अथवा केवलज्ञान के द्वारा श्री जिनेन्द्र भगवान् इस सम्पूर्ण जगत् को जैसा है वैसा ही 'संलोक्यते' संलोकन करते हैं अर्थात् सर्व द्रव्य पर्यायों को सम्यक् प्रकार से उपलब्ध कर लेते हैं—जान लेते हैं इसलिए इसको 'लोक' इस नाम से कहा गया है।

-सूक्तिवचन-

अभ्यास से कर्मों में कुशलता आती है क्योंकि पत्थर पर पड़ने वाली बूंद एक बार में पत्थर में निशान नहीं कर सकती है, किन्तु बार-बार पड़ने से ही निशान करती है इसलिए मुनियों, यतियों और त्यागियों को सतत विद्या अभ्यास करते रहना चाहिए।

''उसहमजियं च वंदे.....।''

अमृतवर्षिणी टीका–

थोस्सामिस्तव में चौबीस तीर्थंकरों की वंदना की गई है।

चौबीस तीर्थंकर का संक्षिप्त परिचय

भगवान ऋषभदेव

जन्मभूमि–अयोध्या। पिता–महाराज नाभिराय। माता–महारानी मरुदेवी।

गर्भ–आषाढ़ कृ. षष्ठी। जन्म एवं तपकल्याणक–चैत्र कृ. नवमी। केवलज्ञान–फाल्गुन कृ. एकादशी मोक्ष–माघ कृ. चतुर्दशी।

भगवान अजितनाथ

जन्मभूमि–अयोध्या। पिता–महाराजा जितशत्रु। माता–महारानी विजया। गर्भ–ज्येष्ठ कृ. अमावस जन्म–माघ शु. दशमी। तप–माघ शु. नवमी। केवलज्ञान–पौष शु. एकादशी। मोक्ष–चैत्र शु. पंचमी।

भगवान संभवनाथ

जन्मभूमि–श्रावस्ती। पिता–महाराजा दृढ़राज। माता–महारानी सुषेणा। गर्भ–फाल्गुन शु. अष्टमी जन्म–कार्तिक शु. पूर्णिमा। तप–मगसिर शु. पूर्णिमा। केवलज्ञान–कार्तिक कृ. चतुर्थी। मोक्ष–चैत्र शु. षष्ठी।

भगवान अभिनंदननाथ

जन्मभूमि–अयोध्या। पिता–महाराजा स्वयंवरराज। माता–महारानी सिद्धार्था। जन्म एवं तप–माघ शु. द्वादशी। केवलज्ञान–पौष शु. चतुर्दशी। मोक्ष–वैशाख शु. षष्ठी।

भगवान सुमतिनाथ

जन्मभूमि–अयोध्या। पिता–महाराजा मेघरथ। माता–महारानी सुमंगलादेवी। गर्भ–श्रावण शु. दूज। जन्म–चैत्र शु. एकादशी। तप–वैशाख शु. नवमी। केवलज्ञान एवं मोक्ष–चैत्र शु. एकादशी।

भगवान पद्मप्रभु

जन्मभूमि–कौशाम्बी। पिता–महाराजा धरणराज। माता–महारानी सुसीमा। गर्भ–माघ कृ. षष्ठी। जन्म एवं तप–कार्तिक कृ. त्रयोदशी। केवलज्ञान–चैत्र शु. पूर्णिमा। मोक्ष–फाल्गुन कृ. चतुर्थी।

भगवान सुपार्श्वनाथ

जन्मभूमि–बनारस। पिता–महाराजा सुप्रतिष्ठ। माता–महारानी पृथ्वीषेणा। गर्भ–भाद्रपद शु.षष्ठी। जन्म एवं तप–ज्येष्ठ शु. द्वादशी। केवलज्ञान–फाल्गुन कृ. षष्ठी। मोक्ष–फाल्गुन कृ. सप्तमी।

भगवान चन्द्रप्रभ

जन्मभूमि–चन्द्रपुरी। पिता–महाराज महासेन। माता–महारानी लक्ष्मणा। गर्भ–चैत्र कृ. पंचमी। जन्म एवं तप–पौष कृ. एकादशी। केवलज्ञान–फाल्गुन कृ. सप्तमी। मोक्ष–फाल्गुन शु. पंचमी।

भगवान पुष्पदंतनाथ

जन्मभूमि–काकन्दी। पिता–महाराज सुग्रीव। माता–महारानी जयरामा। गर्भ–फाल्गुन कृ. नवमी। जन्म एवं तप–मगसिर शु. एकम्। केवलज्ञान–कार्तिक शु. दूज। मोक्ष–भाद्रपद शु. अष्टमी।

भगवान शीतलनाथ

जन्मभूमि–भद्रपुरी। पिता–महाराज दृढ़रथ। माता–महारानी सुनन्दा। गर्भ–चैत्र कृ. अष्टमी। जन्म एवं तप–माघ कृ. द्वादशी। केवलज्ञान–पौष कृ. चतुर्दशी। मोक्ष–आश्विन शु. अष्टमी।

भगवान श्रेयांसनाथ

जन्मभूमि–सिंहपुरी। पिता–महाराजा विष्णुमित्र। माता–महारानी नन्दा। गर्भ–ज्येष्ठ कृ. षष्ठी। जन्म एवं तप–फाल्गुन कृ. एकादशी। केवलज्ञान–माघ कृ. अमावस। मोक्ष–श्रावण शु. पूर्णिमा।

भगवान वासुपूज्यनाथ

जन्मभूमि–चम्पापुर। पिता–महाराज वसुपूज्य। माता–महारानी जयावती। गर्भ–आषाढ़ कृ. षष्ठी।

जन्म एवं तप–फाल्गुन कृ. चतुर्दशी। केवलज्ञान–माघ शु. दूज। मोक्ष–भाद्रपद शु. चतुर्दशी।

भगवान विमलनाथ

जन्मभूमि–कांपिल्यपुरी। पिता–महाराजा कृतवर्मा। माता–महारानी जयश्यामा। गर्भ–ज्येष्ठ कृ. दशमी। जन्म एवं तप–माघ शु. चतुर्थी। केवलज्ञान–माघ शु. षष्ठी। मोक्ष–आषाढ़ कृ. अष्टमी।

भगवान अनन्तनाथ

जन्मभूमि–अयोध्या। पिता–महाराजा सिंहसेन। माता–महारानी जयश्यामा। गर्भ–कार्तिक कृ. एकम्। जन्म एवं तप–ज्येष्ठ कृ. द्वादशी। केवलाान एवं मोक्ष–चैत्र कृ. अमावस।

भगवान धर्मनाथ

जन्मभूमि–रत्नपुरी। पिता–महाराजा भानुराज। माता–महारानी सुप्रभा। गर्भ–वैशाख शु. त्रयोदशी। जन्म एवं तप–माघ शु. त्रयोदशी। केवलज्ञान–पौष शु. पूर्णिमा। मोक्ष–ज्येष्ठ शु. चतुर्थी।

भगवान शान्तिनाथ

जन्मभूमि–हस्तिनापुर। पिता–महाराजा विश्वसेन। माता–महारानी ऐरादेवी।
गर्भ–भाद्रपद कृ. सप्तमी। जन्म एवं तप–ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी। केवलज्ञान–पौष शु. दशमी।
मोक्ष–ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी।

भगवान कुंथुनाथ

जन्मभूमि–हस्तिनापुर। पिता–महाराज सूरसेन। माता–महारानी श्रीकांता।
गर्भ–श्रावण कृ. दशमी। जन्म एवं तप–वैशाख शु. एकम्। केवलज्ञान–चैत्र शु. तृतीया।
मोक्ष–वैशाख शु. एकम्।

भगवान अरनाथ

जन्मभूमि–हस्तिनापुर। पिता–महाराजा सुदर्शन। माता–महारानी मित्रसेना।
गर्भ–फाल्गुन कृ. तृतीया। जन्म–मगसिर शु. चतुर्दशी। तप–मगसिर शु. दशमी।
केवलज्ञान–कार्तिक शु. द्वादशी। मोक्ष–चैत्र कृ. अमावस।

भगवान मल्लिनाथ

जन्मभूमि–मिथिलानगरी। पिता–महाराजा कुंभराज। माता–महारानी प्रज्ञावती।
गर्भ–चैत्र शु. एकम्। जन्म एवं तप–मगसिर शु. एकादशी। केवलज्ञान–पौष कृ. दूज।
मोक्ष–फाल्गुन शु. पंचमी।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ

जन्मभूमि–राजगृही। पिता–महाराजा सुमित्र। माता–महारानी सोमा।
गर्भ–श्रावक कृ. दूज। जन्म–वैशाख कृ. द्वादशी। तप–वैशाख कृ. दशमी।
केवलज्ञान–वैशाख कृ. नवमी। मोक्ष–फाल्गुन कृ. द्वादशी।

भगवान नमिनाथ

जन्मभूमि–मिथिलानगरी। पिता–महाराजा विजय। माता–महारानी वप्पिला (वर्मिला)

गर्भ–आश्विन कृ. दूज। जन्म एवं तप–आषाढ़ कृ. दशमी। केवलज्ञान–मगसिर शु. एकादशी। मोक्ष–वैशाख कृ. चतुर्दशी।

भगवान नेमिनाथ

जन्मभूमि–शौरीपुर। पिता–महाराजा समुद्रविजय। माता–महारानी शिवादेवी।
गर्भ–कार्तिक शु. षष्ठी। जन्म एवं तप–श्रावण शु. षष्ठी। केवलज्ञान–आश्विन शु. एकम्।
मोक्ष–आषाढ़ शु. सप्तमी।

भगवान पार्श्वनाथ

जन्मभूमि–वनारस। पिता–महाराजा अश्वसेन। माता–महारानी ब्राह्मी (वामा देवी) गर्भ–वैशाख कृ. दूज। जन्म एवं तप–पौष कृ. एकादशी। केवलज्ञान–चैत्र कृ. चतुर्दशी (चतुर्थी)। मोक्ष–श्रावण शु. सप्तमी।

भगवान महावीर स्वामी

जन्मभूमि–कुण्डलपुर। पिता–महाराजा सिद्धार्थ। माता–महारानी प्रियकारिणी (त्रिशला)
गर्भ–आषाढ़ शु. षष्ठी। जन्म–चैत्र त्रयोदशी। तप–मगसिर कृ दशमी
केवलज्ञान–वैशाख शु. दशमी। मोक्ष–कार्तिक कृ. अमावस।

भावार्थ—ये चौबीस तीर्थंकरों का जीवनदर्शन उत्तरपुराण ग्रंथ के आधार से हैं।

चारित्र के दो भेद

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं, पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।
विदियं संजमचरणं, जिणणाणसदेसियं तं पि।16।।

(श्री कुंदकुंददेवकृत–चारित्रपाहुड़ गाथा-5)

अर्थ–जिनेन्द्रदेव भाषित ज्ञान दर्शन से शुद्ध पहला सम्यक्त्व चरण चारित्र है और दूसरा संयमचरण चारित्र है वह भी जिनेन्द्रदेव के ज्ञान से उपदेशित शुद्ध है।

कृतिकर्म विधि का सार

अंगबाह्य के १४ भेदों में से 'कृतिकर्म' नाम का अंगबाह्य अनादि निधन है। अतः कृतिकर्मविधि पूर्वक वंदना आदि करना अनादि व्यवस्था है।

इसमें णमोकार मंत्र व चत्तारिमंगल अनादि हैं। सामायिक दण्डक में '**अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु**' जो पद है उस पर प्रकाश डाला है। प्रथम जंबूद्वीप, द्वितीय धातकीखंडद्वीप, तृतीय पुष्करद्वीप में बीचों बीच में मानुषोत्तर पर्वत हैं। इसमें इधर के आधे द्वीप तक कर्मभूमि है आगे मानुषोत्तर पर्वत से परे भोगभूमि है। अतः कर्मभूमि ढाईद्वीप तक ही हैं। ये जंबूद्वीप में एक भरत, एक ऐरावत व एक महाविदेह ऐसी तीन कर्मभूमि हैं। धातकीखंड में दो भरत, दो ऐरावत, दो महाविदेह ऐसी छह कर्मभूमियाँ हैं। इसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में दो भरत, दो ऐरावत व दो महाविदेह ऐसी छह कर्मभूमियाँ हैं। ये ३ + ६ + ६ = १५ कर्मभूमियाँ हैं। इन्हीं में तीर्थंकर भगवान, सामान्य केवली भगवान, अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु ये पांच परमेष्ठी होते हैं, इनकी वंदना है पुनः ज्ञान दर्शन और चारित्र की वंदना है।

इन पंचपरमेष्ठी व रत्नत्रय की कृतिकर्म विधिपूर्वक वंदना है।

पुनः विधिवत् कायोत्सर्ग के बाद "थोस्सामि स्तव" में वर्तमानकालीन ऋषभदेव से महावीरस्वामी तक चौबीस तीर्थंकरों की वंदना है।

प्रत्येक चतुर्थ कालों में भिन्न–भिन्न चौबीसी के नाम भिन्न भिन्न हो जावेंगे, यह ध्यान में रखना है तथा विदेह क्षेत्रों में चौबीस तीर्थंकर का नियम न होने से वहां पर सामान्यरूप से तीर्थंकर प्रभु की वंदना होती है ऐसा मूलाचार में आया है।

यहाँ कृतिकर्म विधि में १२ आवर्त, ४ शिरोनति व २ प्रणाम यथास्थान किये जाते हैं। उस विधि को अच्छी तरह समझना व समझाना है।

इति श्रीगौतमस्वामीप्रणीत–श्रीगौतमगणधरवाण्यां गणिनीज्ञानमती-
विरचित–अमृतवर्षिणीटीकायां कृतिकर्मविधिनामा
द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।

सामायिक प्रयोग विधि

त्रिकाल में विधिवत् देववंदना करना ही सामायिक है

त्रिसंध्यं वन्दने युंज्याच्चैत्यपंचगुरुस्तुती।
प्रियभक्ति वृहद्भक्तिष्वन्ते दोषविशुद्धये।।१।।

(अनगार धर्मामृत)

तीनों संध्यासंबंधी जिनवंदना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति तथा सभी वृहद्भक्तियों के अन्त में वंदना पाठ की हीनाधिकतारूप दोषों की विशुद्धि के लिए प्रियभक्ति (समाधिभक्ति) करना चाहिए।

इस देववंदना में छह प्रकार का कृतिकर्म भी होता है। यथा—

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः।
द्वादश चत्वारि शिरांस्येव कृतिकर्म षोढेष्टम्।।२।।

तथा—आदाहीणं, पदाहीणं, तिक्खुत्तं, तिऊणदं, चदुस्सिरं, वारसावत्तं, चेदि।

(१) वंदना करने वाले की स्वाधीनता (२) तीन प्रदक्षिणा (३) तीन भक्तिसंबंधी तीन कायोत्सर्ग (४) तीन निषद्या-१. ईर्यापथ कायोत्सर्ग के अनन्तर बैठकर आलोचना करना और चैत्यभक्तिसंबंधी क्रिया-विज्ञापन करना, २. चैत्यभक्ति के अन्त में बैठकर आलोचना करना और पंचमहागुरुभक्ति संबंधी क्रिया-विज्ञापन करना, ३. पंचमहागुरुभक्ति के अंत में बैठकर आलोचना करना (५) चार शिरोनति (६) बारह आवर्त। यही सब आगे सामायिक विधि में आता है।

वंदना योग्य मुद्रा

मुद्रा के ४ भेद हैं—जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दनामुद्रा, मुक्ताशुक्तिमुद्रा। इन चारों मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं—

जिन मुद्रा—दोनों पैरों में चार अंगुल प्रमाण अन्तर रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटकाकर कायोत्सर्गरूप से खड़े होना सो जिनमुद्रा है।

योग मुद्रा—पद्मासन, पर्यंकासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित्त रखने को जिनेन्द्रदेव योग मुद्रा कहते हैं।

वन्दना मुद्रा—दोनों हाथों को मुकुलितकर और कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए पुरुष के वंदना मुद्रा होती है।

मुक्ताशुक्ति मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए को आचार्य मुक्ताशुक्ति मुद्रा कहते हैं।

इस प्रकार सामायिक विधि में चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति पढ़ने का विधान मुनियों के आचारशास्त्र — अनगारधर्मामृत, चारित्रसार, धवला के वेदनाखण्ड आदि ग्रंथों में लिखा है। तथैव श्रावकों के लिए भी इसी तरह षट्प्राभृत, भावसंग्रह, वसुनंदिश्रावकाचार आदि ग्रंथों में लिखा है अतः यही विधि प्रामाणिक है।

देववंदना के लिए जिनमंदिर में पहुँचकर हाथ-पैर धोकर 'निःसहि' का तीन बार उच्चारण कर जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करें। अनन्तर "**दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि**" इत्यादि स्तोत्र को पढ़ते हुए चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा देवें। पुनः 'निःसंगोऽहं जिनानां' इत्यादि दर्शनस्तोत्र पढ़कर यदि बैठकर सामायिक करना है तो बैठकर अथवा खड़े होकर 'ईर्यापथ शुद्धि पाठ' से सामायिक शुरू करें।

24 तीर्थंकरों के साथ मोक्ष प्राप्त मुनियों की संख्या

वीरस्यैकस्य निर्वाणं षड्विंशतिसहितस्य तु।
पार्श्वस्य सह नेमेः षट्त्रिंशता पञ्चभिः शतैः।।२८२।।

मल्लिःपञ्चशतैः सिद्धः शान्तिर्नवशतैःसह।
सैकैरष्टशतैर्धर्मो द्वादशः सैकषट्शतैः।।२८३।।

सहस्त्रैर्विमलःषड्भिरनन्तस्तैस्तु सप्तभिः।
सप्तमःपञ्चशत्यामा पद्माभोऽष्टशतैस्त्रिभिः।।२८४।।

वृषो दशसहस्त्रैस्तु मुनिभिर्मुक्तिमाश्रितः।
प्रत्येकं तु जिनाः शेषाः सहस्त्रेण समन्विताः।।२८५।।

महावीर भगवान् का एकाकी—अकेले का, पार्श्वनाथ का छब्बीस मुनियों के साथ, नेमिनाथ का पाँच सौ छत्तीस मुनियों के साथ निर्वाण हुआ है।

मल्लिनाथ पाँच सौ, शान्तिनाथ नौ सौ, धर्मनाथ आठ सौ एक, वासुपूज्य छह सौ एक, विमलनाथ छह हजार, अनन्तनाथ सात हजार, सुपार्श्वनाथ पाँच सौ, पद्मप्रभ तीन हजार आठ सौ,वृषभनाथ दश हजार और शेष तीर्थंकर एक-एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ।।२८३-२८५।। (हरिवंशपुराण सर्ग-६०, पृ. ७२६-७२७)

सामायिक

(देववंदना)

ईर्यापथ शुद्धि

(खड़े होकर वंदनामुद्रा से यह पाठ पढ़ें)

—दोहा—

हे भगवन् ! ईर्यापथिक, दोष विशोधन हेतु।
प्रतिक्रमण विधि मैं करूँ, श्रद्धा भक्ति समेत।।१।।

—चौबोल छंद—

गुप्ति रहित हो षट्कायों की, मैं विराधना जो करता।
शीघ्र गमन प्रस्थान ठहरने, चलने में अरु भ्रमण किया।।२।।

प्राणीगण पर गमन, बीज पर गमन, हरित पर चला कहीं।
मल मूत्रादि नासिका मल कफ, थूक विकृति को तजा कहीं।।३।।

एकेन्द्रिय द्वीइन्द्रिय त्रय-इन्द्रिय चउइन्द्रिय पंचेंद्री।
जीवों को स्वस्थान गमन से, रोका या अन्यत्र कहीं।।४।।

रखा परस्पर पीड़ित कीना, एकत्रित कीना घाता।
ताप दिया या चूर्ण किया, कूटा मूर्च्छित कीना काटा।।५।।

ठहरे चलते फिरते को छिन्न-भिन्न विराधित किया प्रभो।
गुणहेतू प्रायश्चित हेतू, उन्हें विशोधन हेतु प्रभो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हत् के, णवकार मंत्र का जाप्य करूँ।
तब तक पापक्रिया अरु दुश्चरित्र का बिल्कुल त्याग करूँ।।७।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

आलोचना

(गवासन से बैठकर वंदनामुद्रा से यह पाठ पढ़ें)

—दोहा—

ईर्यापथ से गमन में, मैंने किया प्रमाद।
एकेन्द्रिय आदिक सभी, जीवों का जो घात।।१।।

किया यदी चउ हाथप्रम, नहीं भूमि को देख।
गुरु भक्ती से पाप सब, हों मिथ्या मम देव!।।२।।

भगवन्! ईर्यापथ आलोचन, करना चाहूँ मैं रुचि से।
पूर्वोत्तर दक्षिण पश्चिम, चउदिस विदिशा में चलने से।।३।।

चउकर देख गमन भव्यों का, होता पर प्रमाद से मैं।
शीघ्र गमन से प्राण भूत अरु, जीव सत्त्व को दुःख दीने।।४।।

यदी किया उपघात कराया, अथवा अनुमति दी रुचि से।
श्रीजिनवर की कृपा दृष्टि से, सब दुष्कृत मिथ्या होवें।।५।।

नमोस्तु भगवन् ! देववंदनां करिष्यामि।

सभी भव्य की अर्थ सिद्धि के, कारण उत्तम सिद्धसमूह।
प्रशस्त दर्शन ज्ञान चरित के, प्रतिपादक मैं तुम्हें नमूँ।।१।।

सुरपति के शेखर से चुम्बित, पादपद्म अरुणित केशर।
तीन लोक के मंगल जिनवर, महावीर का करूँ नमन।।२।।

सभी जीव पर क्षमा करूँ मैं, सब मुझ पर भी क्षमा करो।
सभी प्राणियों से मैत्री हो, बैर किसी से कभी न हो।।३।।

राग बंध अरु प्रदोष हर्ष, दीन भाव उत्सुकता को।
भय अरु शोक रती अरती को, त्याग करूँ दुर्भावों को।।४।।

हा! दृष्कृत किये हा! दुर्श्चिते, हा! दुर्वचन कहे मैंने।
कर-कर पश्चाताप हृदय में, झुलस रहा हूँ मैं मन में।।५।।

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से, कृत अपराध विशोधन को।
निन्दा गर्हा से युत हो, प्रतिक्रमण करूँ मन-वच-तन सों।।६।।

सभी प्राणियों में समता हो, संयम हो शुभ भाव रहे।
आर्तरौद्र दुर्ध्यान त्याग हो, यही श्रेष्ठ सामायिक है।।७।।

भगवन् नमोस्तु! प्रसीदंतु प्रभुपादौ वंदिष्येऽहं एषोऽहं सर्वसावद्ययोगाद् विरतोऽस्मि।

अथ पौर्वाह्णिक[1] देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करें, खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा के द्वारा सामायिक दंडक पढ़ें।)

---

1. मध्याह्न सामायिक के समय 'माध्यान्हिक' बोले और सायंकाल के समय 'अपराह्निक बोलें।

सामायिक दंडक

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्मदेशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान्।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन-ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।
भगवन् ! सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन कायमन, त्रिकरण से न करूँ दुःखकर।।५।।

नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूं निंदूं गर्हूं, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में **९ बार महामंत्र का जाप्य**, पुनः पंचांग नमस्कार-तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा द्वारा हाथ जोड़कर 'थोस्सामिस्तव' पढ़ें)-

थोस्सामि स्तवन

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।
लोकोद्योतक धर्म तीर्थकर, श्रीजिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउबीस अर्हंत तथा, केवलि-गण का गुणगान करूँ।।१।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।
सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्मप्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।२।।

जिनवर कुन्थु अरह मल्लिप्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्टनेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।
इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।३।।

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।
चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।४।।

(३ आवर्त १ शिरोनति करें)

चैत्यभक्ति

(खड़े होकर वंदनामुद्रा से)

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।

जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।

जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।
अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।

अर्हत सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परम गुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।४।।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।
मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।५।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।
भुवनत्रय में जितने जिनगृह,भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।६।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।७।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभवहेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।
आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।८।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।
दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।९।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।
श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिन मूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१०।।

इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभवहेतु, सब जिन चैत्य जिनालय को।।

व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।११।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।
सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।१२।।

इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।
अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।१३।।

लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शीलरु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।
शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।१४।।

क्षमादि हैं आवर्त सहस्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।
रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।१५।।

ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं, आस्रव रोध निर्जरा जल निःसृत।।
गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।१६।।

इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।१७।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अतः प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।

मद विषाद से रहित अतः, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंतःकरण शुद्धि पूरण।।१८।।

रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।१९।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभू! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।२०।।

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।
अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।२१।।

अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।२२।।

अंचलिका

(गवासन से बैठकर वंदना मुद्रा से)

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वदूँ नमूँ सतत।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अथ पौर्वाह्णिक-देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर ३ आवर्त एक शिरोनति करें, मुक्ताशुक्तिमुद्रा से पूर्ववत् 'सामायिक दंडक' पढ़कर ३ आवर्त १ शिरोनतिपूर्वक कायोत्सर्ग (९ जाप्य) करें पुनः साष्टांग नमस्कार करके खड़े होकर ३ आवर्त १ शिरोनति कर मुक्ताशुक्तिमुद्रा से 'थोस्सामि स्तवन' पढ़कर पुनरपि ३ आवर्त १ शिरोनति करें।)

पंचमहागुरु भक्ति

(खड़े होकर वंदना मुद्रा से)

सुरपति नरपति नागइन्द्र मिल, तीन छत्र धारें प्रभु पर।
पंचमहाकल्याणक सुख के, स्वामी मंगलमय जिनवर।।
अनंत दर्शन ज्ञान वीर्य सुख, चार चतुष्टय के धारी।
ऐसे श्री अर्हंत परमगुरु, हमें सदा मंगलकारी।।१।।

ध्यान अग्निमय बाण चलाकर, कर्मशत्रु को भस्म किये।
जन्म जरा अरु मरणरूप-त्रय नगर जला त्रिपुरारि हुए।।
प्राप्त किये शाश्वत शिवपुर को, नित्य निरंजन सिद्ध बने।
ऐसे सिद्धसमूह हमें नित, उत्तम ज्ञान प्रदान करें।।२।।

पंचाचारमयी पंचाग्नी में जो तप तपते रहते।
द्वादश अंगमयी श्रुतसागर, में नित अवगाहन करते।।
मुक्तिश्री के उत्तम वर हैं, ऐसे श्री आचार्य प्रवर।
महाशीलव्रत ज्ञान-ध्यानरत, देवें हमें मुक्ति सुखकर।।३।।

यह संसार भयंकर दुखकर, घोर महावन है विकराल।
दुखमय सिंह व्याघ्र अति तीक्षण, नख अरु डाढ़ सहित विकराल।।
ऐसे वन में मार्गभ्रष्ट, जीवों को मोक्षमार्ग दर्शक।
हित उपदेशी उपाध्याय गुरु, का मैं वंदन करूँ सतत।।४।।

उग्र-उग्र तप करें त्रयोदश-क्रिया चरित में सदा कुशल।
क्षीण शरीरी धर्मध्यान अरु, शुक्लध्यान में नित तत्पर।।
अतिशय तप लक्ष्मी के धारी, महासाधुगण इस जग में।
महा मोक्षपथगामी गुरुवर, हमको रत्नत्रय निधि दें।।५।।

इस संस्तव से जो जन पंच-परमगुरु का वंदन करते।
वे गुरुतर भव-लता काटकर, सिद्ध सौख्य संपत् लभते।।
कर्मेन्धन के पुंज जलाकर, जग में मान्य पुरुष बनते।
पूर्ण ज्ञानमय परमाह्लादक, स्वात्म सुधारस को चखते।।६।।

—दोहा —

अर्हत् सिद्धाचार्य अरु, पाठक साधु महान।
पंचपरमगुरु हों मुझे, भव - भव में सुखखान।।७।।

अंचलिका

(गवासन से बैठकर वंदना मुद्रा से)

—दोहा —

भगवन् पंचमहागुरु, भक्ति कायोत्सर्ग।
करके आलोचन विधि, करना चाहूँ सर्व।।१।।

अष्ट महाशुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हंत जिनेश्वर हैं।
अष्ट गुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराज रहे।।
अठ प्रवचन माता संयुत हैं, श्री आचार्य प्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत, उपदेशी पाठकगण हैं।।२।।

रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूँ वंदूँ, नमस्कार मैं करूँ उन्हें।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अथ पौर्वाह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तव-समेतं चैत्य-पंचगुरुभक्ती कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधि-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पंचांग नमस्कार, सामायिक दंडक, ९ जाप्य। थोस्सामि स्तवन करके समाधिभक्ति पढ़ें।)

समाधिभक्ति *(खड़े होकर वंदना मुद्रा से)*

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्रों का अभ्यास जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्र के गुण गाऊँ अरु, दोष कथन में मौन सतत।।

सबसे प्रिय हित वचन कहूँ, निज आत्मतत्त्व को नित भाऊँ।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव-भव में इन सबको पाऊँ।।१।।

तव चरणांबुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरण युग में।
तावत् रहे जिनेश्वर यावत्, मोक्ष प्राप्ति नहिं हो जग में।।
अक्षर पद से हीन अर्थ, मात्रा से हीन कहा जो मैं।
हे श्रुत मातः! क्षमा करो सब, मम दुःखों का क्षय होवे।।२।।

अंचलिका

(गवासन से बैठकर वंदना मुद्रा से)

—दोहा —

भगवन् ! समाधि भक्ति अरु, करके कायोत्सर्ग।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेतु।।१।।

रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ उसे।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।

(अनन्तर यथावकाश आत्मध्यान, जाप्य आदि करें।)

सूक्तिवचन

''गुरु बिना सर्वे भवन्ति पशु सन्निभा।''

गुरु के बिना सभी पशु के समान होते हैं।

मराठी में-गुरु बिन कोण दिखावे वाट'' गुरु के बिना यथार्थ आत्म-कल्याण का मार्ग कौन दिखा सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

धर्मतीर्थ की उत्पत्ति

"वर्धमान भगवान ने तीर्थ की उत्पत्ति की है।[१]" अठारह भाषा और सात सौ क्षुद्र भाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीज पदों के प्ररूपक अर्थकर्ता हैं" तथा बीज पदों में लीन अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्ता गणधर भट्टारक ग्रंथकर्ता हैं।।[२]"

संपहि वड्ढमाणतित्थगंधकत्तारो वुच्चदे–

दिव्यध्वनि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में आया है।

जोयणपमाणसंट्ठिद–तिरियामरमणुव णिवहपडिबोधो। मिदमधुरगभीतरा–विसदविसयसयल भासाहिं।।६०।। अट्ठरसमहाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसयसंखा। अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओ।।६१।। एदासिं भासाणं तालुवंदतोट्ठकंठवावारं। परिहरिय एक्ककालं भव्वजणाणंदकर–भासो।।६२।।[३]

एक योजन प्रमाण तक स्थित तिर्यंच देव और मनुष्यों के समूह को बोध प्रदान करने वाली भगवान की दिव्यध्वनि होती है। यह दिव्यध्वनि मृदु–मधुर, अतिगंभीर और विशद–स्पष्ट विषयों को कहने वाली संपूर्ण भाषामय होती है। यह संज्ञी जीवों की अक्षर और अनक्षररूप अठारह भाषा और सात सौ लघु भाषाओं में परिणत होती हुई, तालु–ओंठ–दाँत तथा कंठ के हलन–चलनरूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्यजीवों को आनंदित करने वाली होती हैं ऐसी दिव्यध्वनि के स्वामी तीर्थंकर भगवान होते हैं।।६०–६१–६२।।

अब वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता को कहते हैं–

"उक्त पाँच अस्तिकायादिक क्या हैं ?" ऐसे सौधर्मेन्द्र के प्रश्न से सन्देह को प्राप्त हुए, पाँच सौ, पाँच सौ शिष्यों से सहित तीन भ्राताओं से वेष्टित, मानस्तंभ के देखने से गर्व रहित हुए, बुद्धि को प्राप्त होने वाली विशुद्धि से संयुक्त वर्धमान भगवान् के दर्शन करने पर असंख्यात भवों में अर्जित महान् कर्मों को नष्ट करने वाले, जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा करके पाँच अंगों द्वारा भूमिस्पर्श पूर्वक वंदना करके एवं हृदय से जिनभगवान् का ध्यान कर संयम को प्राप्त हुए, विशुद्धि के बल से मुहूर्त के भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधर के लक्षणों से संयुक्त तथा जिनमुख से निकले हुए बीजपदों के ज्ञान से सहित ऐसे गौतम गोत्रवाले इन्द्रभूति ब्राह्मण द्वारा चूँकि आचारांग आदि बारह अंगों तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका, इन अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकों की श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में युग की आदि में प्रतिपदा के पूर्व दिन में रचना की थी, अतएव इन्द्रभूति गणधर देव भट्टारक श्री वर्धमान स्वामी के तीर्थ में ग्रंथकर्ता हुए। कहा भी है–

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले। पडिवदुपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि।।४०।।

"वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई[४]।

षट्खंडागम ग्रंथ में श्रीवीरसेनस्वामी कहते हैं–

"तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम–जणिदचउ–

1. वड्ढमाण भडारएण तित्थमुप्पइदं (धवला पु. 9, पृ. 113)। 2. धवला पु. 9, पृ. 127।
3. तिलोयपण्णत्ति अध्याय 1, गाथा 60-61। 4. षट्खंडागम धवलाटीका समन्वित पुस्तक–1 पृ. 64-65।

रमलबुद्धिसंपण्णेण ब्रह्मणेण गोदमगोत्तेण सयलदुस्सुदि–पारएण जीवाजीवविसयसंदेह–विणासणट्ठ मुवगयवड्ढमाण–पादमूलेण इंदिभूदिणावहारिदो[1]।।२।।

इस प्रकार केवलज्ञानी भगवान महावीर के द्वारा कहे गये पदार्थ को उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशम विशेष से उत्पन्न चार प्रकार के–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययरूप निर्मल ज्ञान से युक्त संपूर्ण अन्यमतावलंबी वेद–वेदांग में पारंगत, गौतमगोत्रीय ऐसे इन्द्रभूति ब्राह्मण ने जीव–अजीव विषयक संदेह को दूर करने के लिए श्रीवर्द्धमान भगवान के चरणकमल का आश्रय लेकर ग्रहण किया अर्थात् प्रभु की दिव्यध्वनि को सुना।

इसीलिए भगवान महावीर 'अर्थकर्ता' कहलाये हैं।

'पुणो तेणिंदभूदिणा भावसुदपज्जय–परिणदेण बारहंगाणं चोद्दसपुव्वाणं च गंथणमेक्केण चेव मुहूत्तेण रयणा कदा।।[2]

पुनः उन इन्द्रभूति गौतमस्वामी ने भावश्रुत पर्याय से परिणत होकर बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की रचना एक ही मुहूर्त में कर दी।

सारांश यह है कि आज से पच्चीस सौ सत्तर (२५७१)[3] वर्ष पूर्व श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर की दिव्यध्वनि खिरी थी यही प्रथम देशना दिवस–'वीरशासन जयंती' के नाम से प्रसिद्ध है। उसी दिन श्री गौतमस्वामी ने गणधर पद प्राप्त करके द्वादशांग श्रुत की रचना की थी जो कि मौखिक मानी गई है उसे लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता है।

दिगम्बर जैन ग्रंथों के अनुसार आज कोई भी द्वादशांग या अंगबाह्य के ग्रंथ नहीं हैं क्योंकि इनको लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता था। परम्परागत आचार्यों ने जो कुछ मौखिक श्रुतज्ञान गुरुवों से प्राप्त किया, कालांतर में श्रीधरसेनाचार्य के शिष्य पुष्पदंत–भूतबलि नाम के दो आचार्यों ने षट्खंडागम ग्रंथ को लिपिबद्ध करके रचना की है। ऐसा इन्द्रनंदि आचार्य आदि ने श्रुतावतार आदि ग्रंथों में लिखा है।

इसी प्रकार श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत ये महान रचनायें आज वर्तमान में भी उपलब्ध हैं। **चैत्यभक्ति, प्रतिक्रमणदण्डकसूत्रादि**। ये ग्रंथ मौखिकरूप से आचार्यों को प्राप्त होते रहे हैं पुनः किन्हीं महान आचार्यों ने इन्हें लिपिबद्ध करके हमें और आप सभी भव्यात्माओं के लिये सुरक्षित रखा है।

इस प्रकार संक्षेप में श्री गौतमस्वामी का परिचय दिया गया है। अब आगे इसी ग्रंथ में उनके द्वारा रचित चैत्यभक्ति, निषीधिका दण्डक, वीरभक्ति और गणधरवलय मंत्रों को अर्थ सहित दिया जावेगा।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में **''णमो जिणाणं''** आदि गणधरवलयमंत्र हैं एवं दैवसिक–पाक्षिक प्रतिक्रमण में **''यः सर्वाणि चराचराणि''** वीरभक्ति पाठ है। इन **'णमो जिणाणं'**। आदि गणधरवलय मंत्रों को श्रीभूतबलि आचार्यदेव ने षट्खंडागम के अंतर्गत तृतीय 'वेदनाखंड' के रचते समय मंगलाचरणरूप में लिया है। जिनकी विस्तृत टीका (पुस्तक नवमी में) टीकाकार श्री वीरसेनाचार्यदेव ने की है।

एवं श्री प्रभाचंद्राचार्य ने भी चैत्यभक्ति व प्रतिक्रमण दण्डकसूत्रों की संस्कृत टीका की है।

---

1. षट्खंडागम धवलाटीका समन्वित पुस्तक–1 पृ. 64-65। 2. षट्खण्डागम धवला टीका समन्वित, पुस्तक 1, पृ. 66। 3. वर्तमान में वीर निर्वाण संवत् 2541 है, इससे तीस वर्ष पूर्व श्री महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि खिरी थी।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में तथा अन्य ग्रंथों में समानता व अन्तर

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में जो "नव पदार्थ", "द्वादशतप", "बंध के कारण", "श्रावक के बारह व्रत" व "पच्चीस भावनाएँ" वर्णित हैं। इन्हीं के अनुसार षट्खण्डागम ग्रंथ व श्री कुंदकुंददेव द्वारा विरचित समयसार, प्रवचनसार, मूलाचार आदि ग्रंथों में समानता है। आगे के "तत्त्वार्थसूत्र" आदि ग्रंथों से अन्तर आया है। उसे यहाँ दिखाते हैं—

१. नव पदार्थ—

श्री गौतमस्वामी कथित नवपदार्थ—

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्ख-महिकुसले[1]।

इसमें अभिमत जीव रु अजीव उपलब्ध पुण्य अरु पाप कहे।
आस्रव संवर निर्जर व बंध अरु मोक्ष कुशल नव तत्त्व रहें।।

षट्खण्डागम धवला टीका पुस्तक १३ में नवपदार्थ—

"जीवाजीवपुण्ण-पाव-आसव-संवर-णिज्जरा-बंध-मोक्खेहि णवहि पयत्थेहि वदिरित्तमण्णं ण किं पि अत्थि, अणुवलंभादो।"[2]

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, इन नौ पदार्थों के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि इनके सिवा अन्य कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं होता।

यहाँ इन्हें नौ पदार्थ कहा है।

समयसार में श्री कुंदकुंददेव ने कहा है—

(१५ ज.) भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं[3]।।१३ अ.।।

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रवसंवरनिर्जरा बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्।।१३।।

---

1. क्रियाकलाप, मुनिचर्या, पृ. 292। 2. षट्खण्डागम धवला टीका पु. 13, पृ. 64।
3. समयसार पूर्वार्ध, पृ. 63, गा. (अ. 13, ज. 15)।

पद्यानुवाद-शेर छंद-

(१५ ज.) भूतार्थ से जाने गए जो जीवाजीव हैं।
जो पुण्यपाप आस्रव संवर भी तत्त्व हैं।।
निर्जर व बंध मोक्ष ये सम्यक्त्व कहे हैं।
व्यवहार से ये मुक्ति के साधक भी हुए हैं।।१२ अ.।।

उत्थानिका—शुद्धनय से जानना ही सम्यक्त्व है, ऐसा सूत्रकार कहते हैं—

अन्वयार्थ—(भूतार्थेन अभिगताः जीवाजीवौ च पुण्यपापं च आस्रवसंवर-निर्जराः बंधः च मोक्षः सम्यक्त्वं) भूतार्थ से जाने हुए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नवतत्त्व ही सम्यक्त्व हैं।।१२।।

आत्मख्याति—अमूनि हि जीवादीनि नवतत्त्वानि भूतार्थेनाभिगतानि सम्यग्दर्शनं संपद्यंत एवामीषु तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तभूतार्थनयेन व्यपदिश्यमानेषु जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवर-निर्जराबंधमोक्षलक्षणेषु नवतत्त्वेष्वेकत्वद्योतिना भूतार्थनयेनैकत्वमुपानीय शुद्धनयत्वेन व्यवस्थापितस्यात्मनोनुभूतेरात्मख्याति-लक्षणायाः संपद्यमानत्वात्।

आत्मख्याति—ये जीव आदि नवतत्त्व भूतार्थनय से जाने हुए सम्यग्दर्शन ही हो जाते हैं, क्योंकि तीर्थ प्रवृत्ति के लिए अभूतार्थनय से कहे गये जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष लक्षण वाले ये नवतत्त्व हैं। उन तत्त्वों में एकत्व को प्रकट करने वाले, भूतार्थनय से एकत्व को प्राप्त कर शुद्धनय से व्यवस्थापित जो आत्मा है उसकी आत्मख्याति लक्षण वाली अनुभूति उत्पन्न हो जाती है अर्थात् शुद्धनय से नवतत्त्वों को जानने से आत्मा की ही अनूभूति होती है।

भूमिका—अथ कश्चिदासन्नभव्यः पीठिकाव्याख्यानमात्रेणैव हेयोपादेयतत्त्वं परिज्ञाय विशुद्धज्ञान-दर्शनस्वभावं निजस्वरूपं भावयति। विस्तररुचिः पुनर्नवभिरधिकारैः समयसारं ज्ञात्वा पश्चाद्भावनां करोति। तद्यथा-विस्तररुचिशिष्यं प्रति जीवादिनवपदार्थाधिकारैः समयसारव्याख्यानं क्रियते।

उत्थानिका—तत्रादौ नवपदार्थाधिकारगाथाया आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षण-निर्विकल्प-सामायिकस्थितानां यच्छुद्धात्मरूपस्य दर्शनमनुभवनमवलोकनमुपलब्धिः संवित्तिः प्रतीतिः ख्यातिरनुभूतिस्तदेव निश्चयनयेन निश्चयचारित्रा-विनाभावि निश्चयसम्यक्त्वं भण्यते। तदेव च गुणगुण्यभेदरूपनिश्चनयेन शुद्धात्मस्वरूपं भवतीत्येका पातनिका। अथवा नवपदार्था भूतार्थेन ज्ञाताः संतस्त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वाद् व्यवहारसम्यक्त्वनिमित्तं भवंति, निश्चयनयेन तु स्वकीयशुद्धपरिणाम एव सम्यक्त्वमिति द्वितीया चेति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्ररूपयति—

भूदत्थेणाभिगदा, जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर-बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।१५।।

भूतार्थेनाऽभिगता जीवाऽजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रव-संवर-निर्जरा-बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्।।१५।।

तात्पर्यवृत्ति—भूदत्थेण भूतार्थेन निश्चयनयेन शुद्धनयेन अभिगदा अभिगता निर्णीता निश्चिता ज्ञाताः संतः। के ते। जीवाजीवा य पुण्यपावं च आसवसंवर-णिज्जरबंधो मोक्खो य जीवाजीव-पुण्यपापास्रवसंवर-निर्जराबंधमोक्षस्वरूपा नवपदार्थाः सम्मत्तं त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वात्कारणत्वात्सम्यक्त्वं भवंति। निश्चयेन परिणाम एव सम्यक्त्वमिति।[1]

भूमिका—कोई आसन्न भव्य जीव इस पीठिका के व्याख्यानमात्र से ही हेय-उपादेय तत्त्वों को जानकर विशुद्धज्ञानदर्शन स्वभाव वाले अपने स्वरूप की भावना करता है उसका अनुभव करता है किन्तु पुनः विस्तार-रुचिवाला कोई शिष्य आगे कहे जाने वाले नव अधिकारों के द्वारा समयसारस्वरूप-अपनी शुद्ध आत्मा को समझकर अनंतर उसकी भावना करता है। उसी विस्तार-रुचि वाले शिष्य के प्रति जीवादि नव पदार्थ के नव अधिकारों से इस समयसार का व्याख्यान किया जा रहा है।

उत्थानिका—उनमें सर्वप्रथम नवपदार्थ के अधिकाररूप गाथा में आर्त, रौद्रध्यान के परित्याग लक्षण, निर्विकल्पसामायिक में जो स्थित हैं, ऐसे मुनियों के जो शुद्ध आत्मा के स्वरूप का दर्शन है, अनुभवन है, अवलोकन है, उपलब्धि है, संवित्ति है, प्रतीति है, ख्याति है और अनुभूति है वही निश्चयनय से निश्चयचारित्र के साथ अविनाभाव संबंध रखने वाला ऐसा निश्चयसम्यक्त्व या वीतरागसम्यक्त्व कहलाता है और वही सम्यक्त्व गुण-गुणी में अभेद को कहने वाले ऐसे निश्चयनय से शुद्धात्मा का स्वरूप है। इस प्रकार से यह एक पातनिका अर्थात् उत्थानिका हुई।

अथवा भूतार्थ से जाने गये जो जीवादि नव पदार्थ हैं वे ही अभेदोपचार से सम्यक्त्व का विषय होने से व्यवहारसम्यक्त्व के निमित्त होते हैं, किन्तु निश्चयनय से अपनी आत्मा का शुद्ध परिणाम ही सम्यक्त्व है, इस प्रकार से यह दूसरी उत्थानिका हुई। इस तरह इन दोनों उत्थानिकाओं को मन में रखकर आगे का सूत्र प्ररूपित करते हैं—

अन्वयार्थ—(भूयत्थेण अभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च आसव-संवरणिज्जर बंधो य मोक्खो सम्मत्तं) भूतार्थ से—अशुद्ध निश्चयनय से जाने गये जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये ही सम्यक्त्व हैं।।१५।।

---

1. समयसार पूर्वार्ध, पृ. 77 से 79 संस्कृत व हिन्दी।

तात्पर्यवृत्ति— भूतार्थ अर्थात् निश्चयनय या शुद्धनय, इस शुद्धनय के द्वारा निर्णय किये गये—निश्चित किये गये—जाने गये जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नव पदार्थ हैं, वे ही अभेद के उपचार के द्वारा सम्यक्त्व होते हैं, क्योंकि ये नव पदार्थ ही सम्यक्त्व के विषय हैं और सम्यक्त्व के लिए कारण हैं। निश्चयनय से आत्मा का श्रद्धानरूप परिणाम ही सम्यक्त्व है।

इसी गाथा को श्री कुंदकुंद स्वामी ने अपने मूलाचार ग्रंथ में लिया है—

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं[1]।।२०३।।

गोम्मटसार जीवकाण्ड के अनुसार देखें—

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य होंतित्ति।।६२१।।
जीवदुगं उत्तत्थं जीवा पुण्णा हु सम्मगुण सहिदा।
वदसहिदा वि य पावा तव्विवरीया हवंतित्ति[2]।।६२२।।

जीवा अजीवाः तेषां पुण्यपापद्वयं आस्रवः संवरो निर्जरा बन्धो मोक्षश्चेति नवपदार्था भवन्ति। पदार्थशब्दः सर्वत्र सम्बन्धनीयः,-जीवपदार्थः इत्यादिः।।६२१।।

जीवाजीवपदार्थौ द्वौ पूर्व जीवसमासे षड्द्रव्याधिकारे चोक्तार्थौ। पुण्यजीवाः सम्यक्त्वगुणयुक्ता व्रतयुक्ताश्च स्युः। तद्विपरीतलक्षणाः पापजीवाः खलु नियमेन।।६२२।।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में इनका क्रम बदला है। सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में देखिए–

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तम्। अथ किं तत्त्वमित्यत इदमाह–

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्[3]।।४।।

तत्र चेतनालक्षणो जीवः। सा च ज्ञानादिभेदादनेकधा भिद्यते। तद्विपर्ययलक्षणोऽजीवः। शुभाशुभकर्मागमद्वाररूपं आस्रवः। आत्म-कर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः। आस्रवनिरोधलक्षणः संवरः। एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणा निर्जरा। कृत्स्नकर्म वियोगलक्षणो मोक्षः। एषां प्रपञ्च उत्तरत्र वक्ष्यते। सर्वस्य फलस्यात्माधीनत्वादादौ जीवग्रहणम्। तदुपकारार्थ त्वात्तदनन्तरमजीवाभिधानम्। तदुभयविषयत्वात्तदनन्तरमास्रवग्रहणम्। तत्पूर्वकत्वातदनन्तरं बन्धाभिधानम्। संवृतस्य बन्धाभावात्तत्प्रत्यनीक-प्रतिपत्त्यर्थं तदनन्तरं संवरवचनम्। संवरे सति निर्जरोपपत्तेस्तदन्तिके निर्जरावचनम्। अन्ते प्राप्यत्वान्मोक्षस्यान्ते वचनम्।

इह पुण्यपापग्रहणं कर्त्तव्यम्। 'नवपदार्थाः' इत्यन्यैरप्युक्तत्वात्। न कर्त्तव्यम् आस्रवे बंधे चान्तर्भावात्।

---

1. मूलाचार पूर्वार्ध, पृ. 168, गाथा 203, टीका संस्कृत 168 से 169, संस्कृत, हिन्दी। 2. गोम्मटसार जीवकाण्ड, पृ. 861 से गाथा 621, 622, जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका, पृ. 862, ज्ञानपीठ से प्रकाशित। 3. सर्वार्थसिद्धि, पृ. 10, 11, 12।

जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अब तत्त्व कौन-कौन हैं, इस बात को बतलाने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं—

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं।।४।।

इनमें से जीव का लक्षण चेतना है जो ज्ञानादिक के भेद से अनेक प्रकार की है। जीव से विपरीत लक्षण वाला अजीव है। शुभ और अशुभ कर्मों के आने के द्वाररूप आस्रव है। आत्मा और कर्म के प्रदेशों का परस्पर मिल जाना बंध है। आस्रव का रोकना संवर है। कर्मों का एकदेश अलग होना निर्जरा है और सब कर्मों का आत्मा से अलग हो जाना मोक्ष है। सब फल जीव को मिलता है, अतः सूत्र के प्रारंभ में जीव का ग्रहण किया है। अजीव-जीव का उपकारी है यह दिखलाने के लिए जीव के बाद अजीव का कथन किया है। आस्रव जीव और अजीव दोनों को विषय करता है अतः इन दोनों के बाद आस्रव का ग्रहण किया है। बंध आस्रवपूर्वक होता है, इसलिए आस्रव के बाद बंध का कथन किया है। संवृत जीव के बंध नहीं होता, अतः संवर बंध का उलटा हुआ इस बात का ज्ञान कराने के लिए बंध के बाद संवर का कथन किया है। संवर के होने पर निर्जरा होती है, इसलिए संवर के पास निर्जरा कही है। मोक्ष अन्त में प्राप्त होता है, इसलिए उसका अन्त में कथन किया है।

तत्त्वार्थराजवार्तिक के कतिपय अंश—

त्रिकालविषयजीवनानुभवनात् जीवः[1]।।७।। दशसु प्राणेषु यथोपात्त-प्राणापर्यायेण त्रिषु कालेषु जीवनानुभवनात् 'जीवति, अजीवीत्, जीविष्यति' इति वा जीव। तथा सति सिद्धानामपि जीवत्वं सिद्धं जीवितपूर्वत्वात्। संप्रति न जीवन्ति सिद्धाः, भूतपूर्वगत्या जीवत्वमेषाम् इत्यौपचारिकत्वं स्यात्, मुख्यं चेष्यतेः, नैष दोषः, भावप्राणज्ञानदर्शनानुभवनात् सांप्रतिकमपि जीवत्वमस्ति। अथवा रूढिशब्दोऽयम्। रूढौ च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थेवेति कदाचित्कं जीवनमपेक्ष्य सर्वदा वर्तते गोशब्दवत्।

तद्विपर्ययोऽजीवः।।८।। यस्य जीवनमुक्तलक्षणं नास्त्यसौ तद्विपर्ययाद् अजीव इत्युच्यते।

आस्रवत्यनेन आस्रवणमात्रं वा आस्रवः।।९।। येन कर्मास्रवति यद्वा आस्रवणमात्रं वा स आस्रवः।

बध्यतेऽनेन बंधनमात्रं वा बन्धः।।१०।। बध्यते येन अस्वतन्त्रीक्रियते येन, अस्वतन्त्रीकरणमात्रं वा बन्धः।

संव्रियतेऽनेन संवरणमात्रं वा संवरः।।११।। येन संव्रियते येन संरुध्यते, संरोधनमात्रं वा संवरः।

निर्जीर्यते यया निर्जरणमात्रं वा निर्जरा।।१२।। निर्जीर्यते निरस्यते यया, निरसनमात्रं वा निर्जरा।

---

1. तत्त्वार्थराजवार्तिक पृ. 68 से 69 एवं 73 से 74।

मोक्ष्यते येन मोक्षणमात्रं वा मोक्षः।।१३।। मोक्ष्यते अस्यते येन असनमात्रं वा मोक्षः।

द्रव्यसंग्रह में देखिए—

जीवो उवओगमओ, अमुत्तिकत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई[1]।।२।।

—शंभुछंद–(पद्यानुवाद)—

जो जीता है सो जीव कहा, उपयोगमयी वह होता है।
मूर्ती विरहित कर्ता स्वदेह, परिमाण कहा औ भोक्ता है।।
संसारी है औ सिद्ध कहा, स्वाभाविक ऊर्ध्वगमनशाली।
इन नौ अधिकारों से वर्णित, है जीव द्रव्य गुणमणिमाली।।२।।

अर्थ—प्रत्येक प्राणी जीव है, उपयोगमयी है, अमूर्तिक है, कर्ता है, स्वदेह परिमाण रहने वाला है, भोक्ता है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है। ये जीव के नव विशेष लक्षण हैं।

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु।।१५।।

पुद्गल औ धर्म, अधर्म तथा, आकाश काल ये हैं अजीव।
इन पाँचों में पुद्गल मूर्तिक, रूपादि गुणों से युत सदीव।।
बाकी के चार अमूर्तिक हैं, स्पर्श वर्ण रस गंध रहित।
चैतन्य प्राण से शून्य अतः, ये द्रव्य अचेतन ही हैं नित।।१५।।

अर्थ—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अजीव द्रव्य पाँच प्रकार का है ऐसा जानो। इनमें से पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, क्योंकि वह रूप, रस, गंध और स्पर्श गुण वाला है, बाकी शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं।

आसव बंधणसंवर-णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीव-विसेसा, तेवि समासेण पभणामो।।२८।।

हैं जीव अजीव इन्हीं दो के, सब भेद विशेष कहे जाते।
वे आस्रव बंध तथा संवर, निर्जरा मोक्ष हैं कहलाते।।
ये सात तत्त्व हो जाते हैं, इनमें जब मिलते पुण्य पाप।
तब नौ पदार्थ होते इनको, संक्षेप विधि से कहूँ आज।।२८।।

अर्थ—जीव और अजीव के विशेष भेदरूप आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष होते हैं। ये पुण्य और पाप से सहित भी हैं।

---

1. द्रव्यसंग्रह, गाथा 2, गाथा 15, गाथा 28।

२. द्वादश तप

(पाक्षिक प्रतिक्रमण से)

तवायारो बारसविहो अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो, पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण, पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं[1]।।३।।

(प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी से)

।।तत्थ।। तत्र तयोर्द्वयोर्मध्ये।। बाहिरो।। बाह्यस्तप–आचारः।। अणसणं।। अशनं भोजनं। तदभावोऽनशनमुपवासः।। आमोदरियं।। अवमोदर्यमर्धभुक्त्यादि।। वित्तिपरिसंखा।। वृत्तिपरिसंख्यानं गृहग्रासादिकं परिगण्य वृत्तिः।। रसपरिच्चाओ।। रसपरित्यागो घृतादिरसपरित्यागः।। सरीरपरिच्चाओ।। आतपनादिकायक्लेशः।। विवित्तसयणासणं च।। विविक्ते स्त्रीपशुषंढवर्जिते प्रदेशे शय्यासनमिति। एवमुक्तषट्प्रकारो बाह्यस्तप–आचारः।। अथ 'अब्भंतर' इत्याह — तत्थेत्यादि।। तत्र तयोर्द्वयोर्मध्येऽभ्यंतर-स्तप–आचारः — पायच्छित्तं।। आगमोक्तविधिना दोषनिर्हरणं प्रायश्चित्तं। तन्नवविधमालोचन-प्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेद-परिहारोपस्थापना–भेदात् ।। विणओ।। विनयो गुणाधिकेषु नीचैवृत्तिः स चतुर्विधो ज्ञानदर्शन-चारित्रोपचारभेदात्-वेज्जा-(आ) वच्चं।। वैयावृत्त्यं गुणवत्सु दुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना कायचेष्टया द्रव्यांतरेण वा तदपनयनं। तद्दशविधमाचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लान-गणकुलसंघसाधुमनोज्ञविषयभेदात्।। सज्झाओ।। शोभन आध्यायः पाठः स्वाध्यायः। स पंचविधो, वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशभेदात् ।। झाणं।। ध्यानं चिंतानिरोधलक्षणं। तच्चतुर्विधमार्तरौद्र-धर्म्यशुक्लभेदात्। तत्र धर्म्यशुक्लरूपं ध्यानमिह गृह्यते; नार्तरौद्ररूपं, तस्य दुर्गतिहेतुत्वेन तपोरूपतानुपपत्तेः।। विउस्सग्गो चेदि।। व्युत्सर्जनं। व्युत्सर्गश्च बाह्याभ्यंतरपरिग्रहत्याग इति। एवमुक्तप्रकारेणाभ्यंतर–बाह्यं समुदितं।। बारसविहं।। द्वादशप्रकारं।। तवोकम्मं।। तप–आचारः।। ण कदं।। न कृतं नानुष्ठितं। मया किंविशिष्टेन? णिसण्णेण।। परीषहादिभिः पीडितेन। किंतु।। पडिक्कंतं।। निषण्णेन मया प्रतिक्रांतं परित्यक्तं।। तस्स मिच्छा मे दुक्कडे।। तस्य द्वादशविधतप–आचारपरिहापनस्य संबंधिनि दुष्कृते मिथ्या विफलता मे भवतु।।[2]

—(पद्यानुवाद)—

छह अभ्यंतर छः बाहिर से बारहविध तप आचार कहा।
उनमें से अनशन अमोदर्य वृतपरिसंख्या रसत्याग कहा।।

---

1. पाक्षिक प्रतिक्रमण, मुनिचर्या, पृ. 202। 2. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी, पृ. 77-78।

तनुपरित्याग-तनुक्लेश विविक्त शयनासन तप बाह्य कहे।
प्रायश्चित विनय सुवैयावृत स्वाध्याय ध्यान व्युत्सर्ग कहे।।
इन बारह तप को नहीं किया परिषह से पीड़ित छोड़ दिया।
तप किरिया में जो हानी की, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।३।।

तप आचार बारह प्रकार का है—छह बाह्य तपाचार और छह आभ्यन्तर तपाचार। उनमें से बाह्य तपाचार के अनशन (उपवास), अवमौदर्य (अर्धोदर या अर्धभुक्ति आदि), वृत्तिपरिसंख्यान, घृतदुग्ध आदि रसों का त्याग, शरीरपरित्याग आतापनादि द्वारा कायक्लेश और विविक्त शय्यासन ये छह भेद हैं तथा आभ्यन्तर तपाचार के प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग छह भेद हैं। उक्त बारह प्रकार का तप कर्म परिषह आदिकों से पीड़ित होकर मैंने नहीं किया किन्तु परीषह आदि से पीड़ित होकर छोड़ दिया। उस बारह प्रकार के तपाचार के परिहापन सम्बन्धी मेरे दुष्कृत में विफलता होवे या मेरा दुष्कृत विफल होवे।।३।।

(षट्खण्डागम ग्रन्थ से)

जं तं तवोकम्मं णामे[1]।।२५।।

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो—

तं सब्भंतरबाहिरं बारसविहं तं सव्वं तवोकम्मं णाम।।२६।।

तं तवोकम्मं बाहिरमब्भंतरेण सह बारसविहं। को तवो णाम ? तिण्णं रयणाण-माविब्भावट्ठ-मिच्छाणिरोहो। तत्थ चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरेसु एसणपरिच्चाओ अणेसणं णाम तवो। किमेसणं ? असण-पाण-खादिय-सादियं। किमट्ठमेसो कीरदे ? पाणिंदियसंजमट्ठं, भुत्तीए उहयासंजमअविणाभावदंसणादो। ण च चउव्विहआहारपरिच्चागो चेव अणेसणं, रागादीहि सह तच्चागस्स अणेसणभावब्भुव-गमादो। अत्र श्लोकः—

अप्रवृत्तस्य दोषेभ्यस्सहवासो गुणैः सह। उपवासस्स विज्ञेयो न शरीरविशोषणम् ।।६।।

अब तपःकर्म का अधिकार है।।२५।।

उसके अर्थ का खुलासा करते हैं—

वह आभ्यन्तर और बाह्य के भेद से बारह प्रकार का है। वह सब तपःकर्म है।।२६।।

वह तपःकर्म बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से बारह प्रकार का है।

शंका—तप किसे कहते हैं ?

समाधान—तीन रत्नों को प्रकट करने के लिए इच्छानिरोध को तप कहते हैं।

---

1. षट्खण्डागम (धवला) पुस्तक-13 पृ. 54।

उसमें चौथे, छठे, आठवें, दसवें और बारहवें एषण का ग्रहण करना तथा एक पक्ष, एक मास, एक ऋतु, एक अयन अथवा एक वर्ष तक एषण का त्याग करना अनेषण नाम का तप है।

शंका—एषण किसे कहते हैं ?

समाधान—अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य, इनका नाम एषण है।

शंका—यह किसलिए किया जाता है ?

समाधान—यह प्राणिसंयम और इन्द्रियसंयम की सिद्धि के लिए किया जाता है क्योंकि भोजन के साथ दोनों प्रकार के असंयम का अविनाभाव देखा जाता है।

पर इसका यह अर्थ नहीं कि चारों प्रकार के आहार का त्याग ही अनेषण कहलाता है क्योंकि रागादिकों के त्याग के साथ ही उन चारों के त्याग को अनेषणरूप से स्वीकार किया है। इस विषय में एक श्लोक है—

उपवास में प्रवृत्ति नहीं करने वाले जीव को अनेक दोष प्राप्त होते हैं और उपवास करने वाले को अनेक गुण, ऐसा यहाँ जानना चाहिए। शरीर के शोषण करने को उपवास नहीं कहते ।।६।।

भावार्थ—इस षट्खण्डागम धवला टीका पु. १३ में पृ. ५४ से ८८ तक विस्तार से यही गौतमस्वामी प्रणीत क्रम को लिया है। जैसे कि—

(१) अनशन, (२) अवमौदर्य, (३) वृत्तपरिसंख्यान, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्लेश और (६) विविक्तशयनासन ये ६ बाह्य तप हैं।

(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान और (६) कायोत्सर्ग ये ६ अभ्यंतर तप हैं।

मूलाचार में भी बाह्य तप में विविक्तशयनासन को छठे तप में व अभ्यंतर तप में व्युत्सर्ग–कायोत्सर्ग को छठे तप में लिया है। यथा—

अणसण अवमोदरियं रसपरिचाओ य वुत्तिपरिसंखा।
कायस्स वि परितावो विवित्तसयणासणं छट्ठं[1]।।३४६।।

गाथार्थ—अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, कायक्लेश और विविक्तशयनासन ये छः बाह्य तप हैं।।३४६।।

पायच्छित्तं विणयं वेज्जावच्चं तहेव सज्झायं।
झाणं च विउस्सग्गो अब्भंतरओ तवो एसो।।३६०।।

गाथार्थ—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग, ये अभ्यन्तर तप हैं।।३६०।।

---

1. मूलाचार पूर्वार्ध–पृ. 283, 292।

पुनश्च तत्त्वार्थसूत्र में क्रम बदला है।यथा—

अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासन कायक्लेशा बाह्यं तपः।।१९।।[1]

अर्थ—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश, ये छह बहिरंग तप हैं।।१९।।

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।।२०।।

अर्थ—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान, ये उत्तर यानी अन्तरंग तप हैं।।२०।।

३. बंध के कारण

बंध प्रत्यय अर्थात् बंध के कारण चार माने हैं।

श्री गौतमस्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में अनेक बार–

चउण्णं पच्चयाणं[2]। **''चउसु पच्चएसु**[3]।।''

टीकाकारों ने मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ऐसे नाम दिये हैं।

षट्खण्डागम में तो अनेक स्थलों पर ये प्रत्यय चार ही माने हैं। षट्खण्डागम में तृतीय खण्ड का नाम ही ''बंधस्वामित्व-विचय'' है। धवला पु. ८ में देखिए–

'मिच्छत्तासंजमकसाय-जोगा इदि एदे चत्तारि मूलपच्चया।[4]

अर्थात् मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार मूल प्रत्यय हैं।

इनके भेद ५७ हैं। मिथ्यात्व के ५, अविरति के १२, कषाय के २५ एवं योग के १५ भेद होते हैं।

विशेष—यहाँ यह बात ध्यान में रखना है कि–जो बन्ध के कारण हैं वे ही कर्म के आस्रव के कारण हैं। 'आस्रव त्रिभंगी' में भी इन्हीं चार भेद के ५७ भेद करके गुणस्थान और मार्गणाओं में आस्रव, अनास्रव व आस्रव व्युच्छित्ति को अच्छी तरह समझाया गया है।

समयसार ग्रंथ में श्री कुंदकुंददेव ने भी कहा है–

सामण्णपच्चया खलु, चउरो भण्णंति बंध कत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं, कसायजोगा य बोद्धव्वा[5]**।।१०९।।**

अर्थ—सामान्य से बंध के करने वाले प्रत्यय—कारण चार हैं।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग। ऐसा जानना चाहिये।

मूलाचार में भी चार प्रत्यय माने हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग।

मिच्छत्तं अविरमणं कषाय जोगा य आसवा होंति।
अरिहंत वुत्तअत्थेसु विमोहो होइ मिच्छत्तं।।२३६।।[6]

---

1. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 9, सूत्र 19-20। 2. मुनिचर्या पृ. 25। 3. मुनिचर्या पृ. 135-169।
4. धवला पुस्तक-8 पृ. 19-20। 5. समयसार पृ. 393। 6. मूलाचार, पृ. 200।

आगे श्री उमास्वामी आचार्यदेव ने बंध के पांच कारण माने हैं। देखिये–तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ८ का प्रथम सूत्र—

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमादकषाययोगा बंधहेतवः[1]।।१।।

सूत्रार्थ—**मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं।।१।।**

४. पच्चीस भावना

श्री गौतमगणधर स्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में पच्चीस भावनाओं के नाम दिए हैं—

चूलियं तु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी।
पंच पंच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे[2]।।१।।

मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया - कायसंयदो।
एसणा- समिदि - संजुत्तो पढमं वदमस्सिदो।।२।।

अकोहणो अलोहो य, भय - हस्स - विवज्जिदो।
अणुवीचि - भास - कुसलो, विदियं वदमस्सिदो।।३।।

अदेहणं भावणं चावि, उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु, तिदियं वदमस्सिदो।।४।।

इत्थिकहा इत्थिसंसग्ग - हास - खेड - पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य, चउत्थं वदमस्सिदो।।५।।

सचित्ताचित्त - दव्वेसु, बज्झंब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो, पंचमं वदमस्सिदो।।६।।

पद्यानुवाद

पच्चीस भावना है जिसमें ऐसी चूलिका कहूँगा मैं।
मानी हैं पाँच पाँच ये भी जो हैं एक एक महाव्रत में।।१।।

मनगुप्ति वचनगुप्ति ईर्यासमिती व कायसंयत रखना।
एषणसमिती ये पाँच भावना प्रथम महाव्रत की धरना।।२।।

क्रुध लोभ और भय हास्य त्याग अनुवीचीभाषा कुशल कही।
आगम अनुकूलवचन दूजे व्रत की ये पाँच भावना ही।।३।।

---

1. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 8 सूत्र–1। 2. मुनिचर्या पृ. 283-284।

अदेहनं – यह तन ही धन है यह देह अशुचि आदी भावन।
अवग्रह- गतपरिग्रह अशन पान में संतुष्टी व्रत की तृतियन।।४।।
स्त्री की कथा व संसर्ग अरु हास्य व क्रीडा अवलोकन।
इन सबको राग से नहिं करना चौथे व्रत में स्थिरीकरण।।५।।
सचित्त अचित्त द्रव्य अरु बाह्य अभ्यंतर द्रव्य व परिग्रह से।
विरती ये पांच भावनाएं, पाँचवें महाव्रत की ही हैं।।६।।

भावार्थ—उक्त और अनुक्त अर्थ का चिन्तन करना चूलिका है। उसका अर्थ कहता हूँ। उसमें पच्चीस भावनाएँ हैं, जो कि एक एक महाव्रत में पाँच-पाँच स्वीकार की गई हैं।।१।।[1]

मन से गुप्त, वचन से गुप्त, गमन करते समय काय से प्राणियों की पीड़ा के परिहार में तत्पर तथा एषणा समिति से संयुक्त होता हूँ। अन्यत्र भावना कही गई हैं यहाँ उन भावनाओं से सहित व्यक्ति कहा गया है। जो कि अभिन्न होने से भावना ही है, क्योंकि भावनाओं से युक्त व्यक्ति के ही अहिंसा व्रत निर्मल होता है।।२।।

क्रोध से रहित, लोभ से रहित, भय से वर्जित, हास्य से वर्जित और आगमानुकूल बोलने में कुशल होऊं। ये पांच सत्य महाव्रत की भावनाएँ हैं। इनसे युक्त के सत्यमहाव्रत निर्मल होता है।।३।।

तृतीय अचौर्य व्रत को आश्रित मैं पांच भावनाओं में तत्पर होता हूँ। वे भावनाएं ये हैं अदेहन अर्थात् कर्मवश जो मैंने देह का उपार्जन किया है, वह ही मेरे धन है, अन्य परिग्रह नहीं है। ऐसी भावना भाता हूँ। यहां पृषोदरादि इत्यादि वाक्य से ध का लोप होकर अदेहधन के स्थान में अदेहन बन गया है। देह में ही अशुचित्व, अनित्यत्व आदि भावना है उसको भी भाता हूँ। परिग्रह में अवग्रह अर्थात् निवृत्ति की भावना भाता हूँ। भक्त, पान आदि चतुर्विध आहार में सन्तुष्ट अर्थात् गृद्धि-रहित होता हूँ। इन भावनाओं को भाने वाले के तीसरा महाव्रत निर्मल होता है।।४।।

मैथुन से विरति लक्षण चतुर्थ ब्रह्मव्रत को मैं आश्रित हुआ हूँ। मैं स्त्री कथा, स्त्री संसर्ग, स्त्रियों के साथ हास्य विनोद, स्त्रियों के साथ क्रीडन और उनके मुखादि अंगों का रागभाव से अवलोकन इन सब ब्रह्मचर्य के विघातकों में चूँकि नियम से स्थित हूँ इसलिए निवृत्त होता हूँ। इन भावनाओं से चतुर्थ व्रत निर्मल होता है।।५।।

परिग्रह से विरति लक्षण पंचम व्रताश्रित मैं दासी, दास आदि सचित्त द्रव्य में और धन-धान्य आदि अचित्त द्रव्य में तथा वस्त्र, आभरण आदि बाह्य द्रव्य में और ज्ञानावरणादि आभ्यन्तर द्रव्य में तथा गृह क्षेत्र आदि अन्य सब परिग्रह से विरत होता हूँ। इस प्रकार की पाँच भावनाओं को भाने वाले के परिग्रह विरति व्रत निर्मल ठहरता है। (ये पाँचों व्रत प्रतिज्ञारूप हैं, क्योंकि अभिसन्धि-पूर्वक किया हुआ नियम व्रत होता है ऐसा कहा गया है)।।६।।

---

1. यतिप्रतिक्रमण पृ. 150-151 (हिन्दी अनुवादक-पं. श्री पन्नालाल जी सोनी सिद्धान्त शास्त्री, ब्यावर)

तत्त्वार्थसूत्र में २५ भावना का वर्णन निम्न प्रकार हैं—

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्[1]।।१।।

अर्थ—हिंसा, अनृत (झूठ), स्तेय (चोरी) अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहलाता है।

व्रत के कितने भेद हैं ?

देशसर्वतोऽणुमहती।।२।।

अर्थ—व्रत के दो भेद हैं—अणुव्रत, महाव्रत। हिंसा आदि पाँच पापों का एकदेश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है और सर्वदेश त्याग करना महाव्रत कहलाता है।

व्रतों की स्थिरता के लिए क्या करना चाहिए ?

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च।।३।।

अर्थ–उन व्रतों की स्थिरता के लिए प्रत्येक की पाँच-पाँच भावनाएं हैं। किसी वस्तु का बार-बार चिन्तन करना सो भावना है।

अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ कौन सी हैं?

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।।४।।

अर्थ–वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईयासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपान भोजन (सूर्य के प्रकाश में देखकर खाना, पीना) ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ क्या हैं ?

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च।।५।।

अर्थ–क्रोध, लोभ, भय, हास्य का त्याग करना और अनुवीचि भाषण (शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना) ये सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

अचौर्य व्रत की भावनाएँ कौन सी हैं ?

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च।।६।।

अर्थ–शून्यागार अर्थात् पर्वत, गुफा, नदी, तट आदि स्थानों में निवास करना, विमोचितावास अर्थात् राजा आदि के द्वारा छुड़वाए हुए स्वामित्वहीन स्थानों में रहना, परोपरोधाकरण अर्थात् अपने स्थान में ठहरने से किसी को न रोकना, भैक्ष्यशुद्धि अर्थात् शास्त्रानुसार भिक्षा की शुद्धि रखना और सहधर्मी भाइयों से विसंवाद नहीं करना ये पाँच अचौर्यव्रत की भावनाएँ हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ क्या हैं ?

स्त्रीरागकथाश्रवण-तन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरसस्वशरीर-संस्कारत्यागाः पञ्च।।७।।

---

1. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय-7 पृ. 83-84 सूत्र 1 से 8 तक।

अर्थ—स्त्री राग की कथा-कहानी सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पहले भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग, कामवर्धक गरिष्ट भोजन का त्याग और अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना, ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

परिग्रह त्याग व्रत की भावनाएँ क्या हैं ?

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च।।८।।

अर्थ—पाँचों इन्द्रियों के मनोज्ञ (इष्ट) विषय में राग तथा अमनोज्ञ (अनिष्ट) विषयों में द्वेष का त्याग करना, ये पाँच परिग्रहत्याग व्रत की भावनाएँ हैं।

विशेष—यहाँ श्री गौतमस्वामी की भावनाओं से अचौर्यव्रत व अपरिग्रह व्रत की भावनाओं में अन्तर है।

५. श्रावक के १२ व्रत

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्ह-णाणेण सव्व-लोय-दरसिणा सावयाणं सावियाणं खुड्डुयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादि-वादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्ता-दाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे सदारसंतोस-परदारा-गमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविध-अणत्थ-दण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहो-वासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं[1] चेदि।

—(पद्यानुवाद)—

हे आयुष्मन्तों! पहले ही यहां मैंने सुना वीर प्रभु से।
उन महाश्रमण भगवान् महतिमहावीर महाकाश्यप जिनसे।।
सर्वज्ञज्ञानयुत सर्वलोकदर्शी उनने उपदेश दिया।
श्रावक व श्राविका क्षुल्लक अरु क्षुल्लिका इन्हों के लिए कहा।।

---

1. 'तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि' इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है।

ये पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चउ शिक्षाव्रत बारह विध।
हैं सम्यक् श्रावक धर्म इन्हीं, में जो ये अणुव्रत पांच कथित।।
पहला अणुव्रत स्थूलतया, प्राणीवध से विरती होना।
दूजा अणुव्रत स्थूलतया, असत्यवच से विरती होना।।
तीजा अणुव्रत स्थूलतया, बिन दी वस्तू को नहिं लेना।
चौथा अणुव्रत स्थूलतया परदारा से विरती होना।।
निजपत्नी में संतुष्टी या सब स्त्रीमात्र से रति तजना।
पंचम अणुव्रत स्थूलतया इच्छाकृत परीमाण धरना।।
त्रय गुणव्रत में पहला गुणव्रत, दिश विदिशा का प्रमाण करना।
दूजा गुणव्रत नाना अनर्थ दण्डों से नित विरती धरना।।
तीजा गुणव्रत भोगोपभोग, वस्तू की संख्या कर लेना।
ये तीन गुणव्रत कहे, पुनः चारों शिक्षाव्रत को सुनना।।
पहला शिक्षाव्रत सामायिक दूजा प्रोषध उपवास कहा।
तीजा है अतिथि संविभाग चौथा सल्लेखनमरण कहा।।
शिक्षाव्रत चार कहे पुनरपि, अभ्रावकाश तृतीयव्रत है।
जघन्य श्रावक से उत्तम तक, ये बारह व्रत तरतममय हैं।।[1]

चारित्र पाहुड़ में श्रावक के १२ व्रत—

दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि[2]।।२४।।

दिग्विदिग्माणं प्रथमं अनर्थदण्डस्य वर्जनं द्वितीयम्।
भोगोपभोगपरिमाणं इदमेव गुणव्रतानि त्रीणि।।२४।।

गाथार्थ—दिशाओं और विदिशाओं का प्रमाण करना पहला गुणव्रत है। अनर्थदण्ड का त्याग करना दूसरा गुणव्रत है और भोग तथा उपभोग का परिमाण करना तीसरा गुणव्रत है। इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं।।२४।।

सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते।।२५।।

---

1. मुनिचर्या पृ. 291-292।
2. अष्टपाहुड ग्रंथ में 85-86 पृ. पर चारित्र पाहुड़ में गाथा–24-25।

सामायिकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोषधो भणितः।
तृतीयमतिथि-पूज्यं चतुर्थं सल्लेखना अन्ते।।२५।।

गाथार्थ—पहला सामायिक, दूसरा प्रोषध, तीसरा अतिथि-पूज्य और चौथा मरणकाल में सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत हैं।।२५।।

विशेषार्थ—सामायिक नाम का पहला शिक्षाव्रत है। इसमें चैत्यभक्ति, पञ्चपरमेष्ठी भक्ति और समाधि भक्ति करना चाहिए। व्रत प्रतिमा में जो सामायिक होता है वह दिन में एक बार, दो बार अथवा तीन बार होता है। परन्तु सामायिक प्रतिमा में जो सामायिक कहा गया है, वह नियम से तीन बार करना चाहिए।

भावसंग्रह ग्रंथ में श्रावक के १२ व्रत—

दिसिविदिसि पच्चखाणं अणत्थदंडाण होइ परिहारो।
भोओपभोयसंखा ए एह गुणव्वया तिण्णि[1]।।३५४।।

दिग्विदिक् प्रत्याख्यानं अनर्थदण्डानां भवति परिहारः।
भोगोपभोगे संख्या एतानि हि गुणव्रतानि त्रीणि।।३५४।।

अर्थ—दिशा-विदिशाओं में आने जाने का नियम धारण कर उनकी सीमा नियत कर शेष दिशा विदिशा में आने जाने त्याग करना, पाँचों प्रकार के अनर्थ दंडों का त्याग करना, भोगोपभोगपदार्थों की संख्या नियत कर शेष भोगोपभोग पदार्थों का त्याग कर देना ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं।

देवे थुवइ तियाले पव्वे पव्वे सुपोसहोवासं।
अति हीण संविभागो मरणंते कुणइ सल्लिहणं।।३५५।।

देवान् स्तौति त्रिकाले पर्वणि पर्वणि सुप्रोषधोपवासः।
अतिथीनां संविभागः मरणान्ते करोति सल्लेखनाम।।३५५।।

अर्थ—प्रातःकाल, मध्यान्ह काल, संध्याकाल इन तीनों समय में पंचपरमेष्ठी की स्तुति करना, प्रत्येक महीने की दो अष्टमी, दो चतुर्दशी इन चारों पर्वों में प्रोषधोपवास करना, प्रतिदिन अतिथियों को दान देना और सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं। इस प्रकार पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह अणुव्रत कहलाते हैं। देशव्रती श्रावक को आठ मूलगुण और ये बारह व्रत अवश्य धारण करने चाहिए। इन बारह व्रतों को उत्तर गुण भी कहते हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र में बारह व्रत—

व्रत किसे कहते हैं ?

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्[2]।।१।।

---

1. भावसंग्रह पृ 227-228, गाथा-354, 355। 2. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 7 सूत्र 1,2,21,22।

अर्थ—हिंसा, अनृत (झूठ), स्तेय (चोरी) अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहलाता है।

व्रत के कितने भेद हैं ?

देशसर्वतोऽणुमहती।।२।।

अर्थ—व्रत के दो भेद हैं—अणुव्रत, महाव्रत। हिंसा आदि पांच पापों का एकदेश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है और सर्वदेश त्याग करना महाव्रत कहलाता है।

अणुव्रती के और भी कोई व्रत होते हैं ?

दिग्देशानर्थदण्डविरति–सामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथि–संविभागव्रतसम्पन्नश्च।।२१।।

अर्थ—अणुव्रती को दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत (३ गुणव्रतों) और सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग-परिभोग परिमाण और अतिथिसंविभागव्रत (ये चार शिक्षाव्रत) और पालने होते हैं।

मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता।।२२।।

अर्थ—अव्रती को मरण के समय सल्लेखना ग्रहण करनी चाहिए। समतापूर्वक काय और कषायों को कृश करना सल्लेखना कहलाता है।

विशेषार्थ—पांच अणुव्रत सर्वत्र समान हैं। तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत श्रीगौतमस्वामी, श्रीकुंदकुंददेव व भावसंग्रह के कर्ता श्री देवसेन आचार्य के एक सदृश–समान है। श्री उमास्वामी आचार्य के तत्त्वार्थसूत्र में अंतर है और आगे अनेक श्रावकाचारों में इन सातों में कहीं समानता है कहीं–कहीं अंतर है। इसे–'जिनागम रहस्य' ग्रंथ में मैंने संकलित किया है।

(६) गाथाएँ या सूत्र अपरिवर्तनीय हैं

कोई-कोई गाथाएँ श्री गौतम स्वामी आदि महान् गणधर देव व आचार्यों के मुखकमल से निर्गत हैं उनकी विभक्ति आदि का संशोधन नहीं करना चाहिये। जैसे कि–

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

यह श्री गौतमस्वामी के मुख से निर्गत गाथासूत्र आज बदलकर ऐसा कर रहे हैं कि–''**देवा वि तं णमंस्संति**[१] यह अनुचित है क्योंकि टीकाकार श्रीप्रभाचंद्राचार्य तक यह गाथा ऐसी ही चली आ रही थी उन्होंने इसकी टीका इस प्रकार की है यथा—

''इदानीं धर्मादीनां मलगालनादिहेतुतया परममंगलत्वं प्ररूपयन्नाह। **धम्मो** इत्यादि। धर्म उक्तलक्षणः। **मंगलं**। मलं पापं गालयति विध्वंसयति वा मंगलम्। मंगं वा परमसुखं लात्यादत्त इति

१. श्रमणचर्या-पृ. १६४।

मंगलम्। **उक्किट्ठं।** उत्कृष्टमनुपचरितं परमम्। न केवलं धर्म एव मंगलमपि **तु अहिंसा संजमो तवो** अहिंसा संयमस्तपश्च। न केवलं मलगालनहेतुरेवायमपि तु पूजादिहेतुरपि। यतः **देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो** देवा अपि तस्य प्रणमंति यस्य धर्मे सदा मनः।।[१]"

ऐसे ही पाक्षिक और अष्टमी के प्रतिक्रमण में दण्डक सूत्रों का ऐसा क्रम है। यह दण्डकसूत्र श्री गौतमस्वामी द्वारा विरचित हैं। इन्हें बदल देना अनुचित है। इन दण्डक सूत्रों का क्रम टीकाकारों तक इसी प्रकार रहा है और ऐसे ही क्रम रखकर उन्होंने टीका की है। यथा—

"णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, दोसु अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ-संकिलेसपरिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु सुद्धीसु, दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुण-सयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अट्ठमियम्मि अइक्कमो वदिक्कम्मो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो जो तं पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं, तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ती होउ मज्झं।"[२]

पद्यानुवाद

नव ब्रह्मचर्य गुप्ती चउ संज्ञा चार हि आस्रव कारण हैं।
दो आर्तरौद्र संक्लेश भाव त्रय अप्रशस्तसंक्लेश कहें।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्या चरित्र चउ उपसर्गा।
चारित्र पाँच छह जीवकाय छह आवश्यक किरिया उक्ता।।
भय सात आठ शुद्धी दश विध हैं श्रमण धर्म दश धर्म ध्यान।
दश मुंडन बारह संयम बाइस परिषह भावना बीस पांच।।
पच्चीस क्रिया अठरह हजार हैं शील व गुण चौरासि लाख।
अठबीस मूलगुण बहु उत्तरगुण इन सबमें कीना विघात।।
इन आठ दिनों में अष्टमि में अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अरू।
जो अनाचार आभोग अनाभोग उन सबका प्रतिक्रमण करूं।।
प्रतिक्रमण सुकरते हुए मेरा सम्यक्त्वमरण व समाधिमरण।
हो पंडितमरण व वीरमरण जिससे नहिं होवे पुनः मरण।।

---

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी-पृ. ८०। २. मुनिचर्या पृ. १७०-१७१।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय होवे मम बोधिलाभ होवे।।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण मम जिनगुणसंपति होवे।।

प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी में टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य ने भी यही क्रम लिया है[१]–

णवसु इत्यादि। **णवसु बंभचेरगुत्तीसु।।** नवप्रकारासु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु। कथं पुनस्तासां नवप्रकारतेति चेत्, उच्यते–तिर्यङ्मनुष्यदेवस्त्रीणां प्रत्येकं मनोवचनकायैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यं। अथवा स्त्रीसामान्यस्य मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतविशेषैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यं। तस्य च गुप्तयो रक्षणानि पालनानि नवप्रकाराणि भवंतीति नव ब्रह्मचर्यगुप्तयः। **चउसु सण्णासु**।। चतसृषु संज्ञास्वाहारभयमैथुनपरिग्रहलक्षणासु।। **चउसु पच्चएसु**।। चतुर्षु प्रत्ययेषु कर्मबंधकारणेषु मिथ्यादर्शनाविरतिकषाययोगलक्षणेषु। प्रमादस्य पंचमस्य तत्कारणस्य सद्भावात्कथं चत्वारः प्रत्यया इति नाशंकनीयं, तस्याविरतावंतर्भावात्।। **दोसु अट्टरुद्दसंकिलेस-परिणामेसु**।। द्वयोरार्तरौद्रलक्षण–संश्लेष–परिणामयोः।। **तिसु अप्पसत्थसंकिलेस–परिणामेसु**।। त्रिषु मायामिथ्यानिदानस्वरूपेष्वप्रशस्तेषु पापोपार्जनहेतुभूतेषु संक्लेशपरिणामेषु।। **मिच्छणाणमिच्छदंसणमिच्छचरित्तेसु।।** मिथ्याज्ञानमिथ्यादर्शन–मिथ्याचारित्रेषु। अथवा मिथ्यादर्शन–ज्ञानचारित्राण्येव संक्लेशपरिणामाः, संक्लिष्टात्मनामेव तत्प्रादुर्भावात्।। **चउसु उवसग्गेसु**।। चतुर्षूपसर्गेषु देवमनुष्यतिर्यगचेतन–कृतोपसर्गलक्षणेषु।। **पंचसु चरित्तेसु**।। सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातलक्षणेषु।। **छसु आवासएसु**।। प्रागेव व्याख्यातरूपेषु।। **सत्तसु भएसु**।। "इहपरलोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणा कस्स।। भय–"मित्येतल्लक्षणलक्षितेषु।। **अट्ठसु सुद्धीसु**।। "मनोवाक्कायभैक्ष्येर्यासूत्सर्गे शयनासने विनये च यतेः शुद्धिः शुद्धयष्टक–मुदाहृतं।।" इत्येवं रूपासु।। **दससु समणधम्मेसु**।। दशप्रकारेषु श्रमणधर्मेषु। श्रमणानां मुनीनां धर्माः श्रमणधर्मास्तेषूत्तम–क्षमामार्दवार्जवसत्यशौच–संयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्य–लक्षणेषु।। **दससु धम्मज्झाणेसु**।। दशप्रकारेषु धर्म्यध्यानेष्वपायविचयोपायविचयविपाक–विचयविरागविचयलोकविचयभवविचयजीवविचयाज्ञाविचयसंस्थानविचयसंसारविचयलक्षणेषु। विचयो हि परीक्षा। सन्मार्गान्मिथ्यादृष्टयो, दूरमेवापेता इति चिंतनमपायविचयः। अथवा मिथ्यादर्शन–ज्ञानचारित्रेभ्यो, जीवस्य कथमपायः स्यादितिचिंतनमपायविचयः।।१।। उपायविचयो दर्शनमोहोदयादि–कारणवशाज्जीवाः सम्यग्दर्शनादिभ्यः पराङ्मुखा इति चिंतनं।।२।। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकाल भवभावप्रत्ययं फलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः।।३।। संसारदेहविषयेषु दुःखहेतुत्वानित्यत्व–चिंतनं विरागविचयः।।४।। ऊर्ध्वाधोमध्यलोकविभागेनानाद्यनिधनादिस्वरूपेण वा लोकस्वरूपचिंतनं लोकविचयः।।५।। चतुर्गतिनारकतिर्यङ्मानुषदेवनिकायभवचिंतनं भवविचयः।।६।। संति जीवा उपयोगस्वभावा अनादिनिधना मुक्तेतररूपा इत्यादि जीवस्वरूपचिंतनं जीवविचयः।।७।। सर्वज्ञागमं

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १८६ से १९४ तक।

प्रमाणीकृत्यात्यंतपरोक्षार्थावधारणमाज्ञाविचयः। सर्वज्ञज्ञातार्थसमर्थनं वा हेतुसामर्थ्यात्।।८।। अधोमध्योर्ध्वलोकस्य शरावव्रजमृदंगाद्याकारचिंतनं संस्थानविचयः।।९।। स्वोपात्तकर्मविपाकवशादात्मनो भवांतरावाप्तिः संसारः। तच्चिंतनं संसारविचयः।।१०।। **दससु मुंडेसु**।। मुंडनं निरोधनं मुंडः। स दशप्रकारो भवति–पंच वि इंदियमुंडा वचिमुंडा हत्थपायतणुमुंडा। मणमुंडेण य सहिया दसमुंडा वण्णिदा समये।।" इति वचनात्।। **बारसेसु संजमेसु**।। द्वादशप्रकारो हि संयमः षड्विध इंद्रियसंयमः षड्विधः प्राणिसंयमश्चेति। तत्रेंद्रियसंयमः षड्विधः, पंचानामिंद्रियाणां षष्ठस्य च मनसः संयमनात्स्वविषये गच्छतामेतेषां नियंत्रणात्। प्राणिसंयमश्च षड्विधः पंचानां स्थावराणां त्रसानां चाविराधनात्।। **बावीसाए परीसहेसु**।। द्वाविंशतिसंख्येषु परीषहेषु। कर्मक्षयार्थं ये परिषह्यंते ते परीषहाः क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्या–रतिस्त्रीचर्या–निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्श–मलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनलक्षणाः। तेषु।। **पणवीसाए भावनासु**।। पंचविंशतिसंख्यासु भावनासु। व्रतानां स्थैर्यार्थं हि भाव्यंत इति भावनाः पंचविंशतिः। तथाहि—हिंसाविरतिव्रत–स्थैर्यार्थं तावद्वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण–समित्यालोकितपानभोजनानि पंच, तथाऽनृतविरतिव्रत-स्थैर्यार्थं क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच, स्तेयविरतिव्रतस्थैर्यार्थं शून्यागारविमोचिता–वासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच, अब्रह्मचर्यविरतिव्रतस्थैर्यार्थं स्त्रीरागकथाश्रवण–तन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच, परिग्रह–विरतिस्थैर्यार्थं मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंचेति।। **पणवीसाए किरियासु**।। पंचविंशतिसंख्यासु क्रियासु। क्रियंत इति क्रियाः शुभाशुभकर्मादानहेतवो व्यापाराः पंचविंशतिः। तथाहि–चैत्यगुरुप्रवचन–पूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया। अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्तिर्मिथ्यात्व–क्रिया। गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया (प्रायोगिकी क्रिया)। संयतस्य सतोऽविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया। ईर्यापथनिमित्ता ईर्यापथक्रिया। एताः पंच क्रियाः।। क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया। प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः कायिकी क्रिया। हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकी क्रिया। दुःखोत्पत्तितंत्रत्वात्पारितापिकी क्रिया। आयुरिंद्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया। एताः पंच क्रियाः।। रागाद्रीकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशा–त्स्प्रष्टव्यसचेतनानुबंधः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया। स्त्रीपशुषंढसं–पातिदेशेऽतर्मलोत्सर्गकरणं समंतानुपातक्रिया। अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया। एताः पंच क्रियाः।। यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तादानक्रिया। पापादानादिप्रवृत्ति–विशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया। पराचरितसावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया। यथोक्तामाज्ञामावश्यकादिषु चारित्रमोहोदयात्कर्तुमशक्नुवतोऽन्यथा–प्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया। शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनो–पदिष्टविधिकर्तव्यतानादरोऽनाकांक्षक्रिया। एताः पंचक्रियाः।। छेदनभेदनविशसनादिक्रियापरत्वमन्येन

चारंभे क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारंभक्रिया। परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी क्रिया। ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वंचना मायाक्रिया। अन्यं मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्टं प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा 'साधु करोषीति' सा मिथ्यादर्शनक्रिया। संयमघातिकर्मोदयवशादनिवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया। ता एताः पंचविंशतिक्रियाः।। **अट्ठारससील–सहस्सेसु, चउरासीदिगुणसदसहस्सेसु।।** अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिगुणशतसहस्राणि लक्षाः परमागमे प्रतिपादितस्वरूपाः। तेषु।। **मूलगुणेसु**।। पंचमहाव्रत–पंचसमितिपंचेंद्रिय–निरोधादिलक्षणेष्वष्टाविंशतिसंख्येषु।। **उत्तरगुणेसु।।** वृक्षमूलातापनाद्यनेक–प्रकारेष्वेतेषु।। प्राक्प्रतिपादितस्वरूपेषु नवब्रह्मचर्यगुप्त्यादिषूत्तरगुणपर्यंतेषु यः कश्चिदतिक्रमादिदोष आष्टमिकाद्यनुष्ठाने जातस्तं प्रतिक्रमातीति संबंधः। किंलक्षणोऽयमतिक्रमादिरिति चेत्, उच्चते–"अतिक्रमो मानसशुद्धिहानिर्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः। तथातिचारः करणालसत्वं भंगो ह्यनाचार इह व्रतानां"।।१।। अथवा।। **अदिक्कमो**।। कुतश्चिद्–व्यासंगाच्चित्तसंक्लेशाद्वाऽऽगमोक्तानुष्ठानकालादधिक–कालआवश्यकादि–क्रियाकरणमतिक्रमः। **वदिक्कमो**।। विगतोऽतिक्रमो यस्मिन्नसौ व्यतिक्रमो विषयव्यासंगादिनाऽऽगमोक्त–क्रियाकालाद्धीनकाले क्रियाकरणं।। **अइचारो**।। आवश्यकादिक्रिया–करणालसत्वं।। **अणाचारो**।। व्रतसमित्यादीनामनाचरणं खण्डनं वा।। **आभोगो**।। कापोतलेश्या–वशात्पूजामहत्त्वाभिलाषेणातिप्रकटानुष्ठानकरणं।। **अणाभोगो**।। लज्जादिवशाल्लोकानाम–प्रकटानुष्ठानकरणं। अयमतिक्रमादिदोषो नवब्रह्मचर्यादिगुप्त्यादिगोचरः क्व जात इत्याह–**अट्ठमियम्हि** इत्यादि।। अष्टम्यामष्टदिनावच्छिन्ने काले भवमाष्टमिकमनुष्ठानं। तस्मिन्।। **पक्खियम्हि।।** पक्षे भवं पाक्षिकमनुष्ठानं। तस्मिन्।। **चाउम्मासियम्हि**।। चतुर्षु मासेषु भवं चातुर्मासिकमनुष्ठानं। तस्मिन्। **सांवच्छरियम्हि**।। संवत्सरे भवं सांवत्सरिकमनुष्ठानं। तस्मिन्। एतस्मिन्नाष्टमिकाद्यनुष्ठाने षडावश्यकादिगोचरोऽतिक्रमादिर्यो दोषो जातस्तं प्रतिक्रमाम्युक्तालोचनाद्वारेण निराकरोमि।। **मए पडिक्कंतं**।। अतिक्रमादिदूषणं मया प्रतिक्रांतं शोधितं यदा भवति तदा।। **सम्मत्तमरणं**।। सम्यक्त्व–युक्तस्यापरित्यक्तसम्यक्त्वस्य मरणं।। **होउ मज्झं**।। भवतु मम।। **पंडियमरणं**।। भक्तप्रत्याख्या–नेंगिनीपादोपयानमरणभेदात् त्रिविधं पंडितमरणं मम भवतु।। **वीरियमरणं**।। वीर्ययुक्तस्याक्लीबस्य मरणं मम भवतु।। **दुक्खक्खओ**।। दुःखानां चातुर्गतिकानां क्षयो विनाशः। **कम्मक्खओ**।। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां क्षयः प्रलयो भवतु।। **बोहिलाहो।।** बोधेः रत्नत्रयस्य लाभो मम भवतु।। **सुगइगमणं**।। शोभनायां गतौ मोक्षगतौ गमनं मम भवतु।। **जिणगुणसंपत्ति**।। जिनस्य प्रक्षीणाशेषकर्मणो भगवतो गुणा अनंतज्ञानादयः। तेषां संप्राप्तिर्मम भवतु।।

यन्नो कैश्चिदपि प्रसन्नवचनैर्निःशेषशुद्धिप्रदं। व्याख्यातं प्रवरं प्रतिक्रमणसद्ग्रंथत्रयं धीमतां।।

तद्योन प्रकटीकृतं भवहरं शब्दार्थतो निर्मलं।स श्रीमान्निखिलोपकारनिरतो जीयात्प्रभेंदुर्जिनः।।

नव प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्ति में, चार संज्ञाओं में, कर्मबंध के कारण चार मिथ्यात्वादि प्रत्ययों में, दो आर्त्तरौद्रसंक्लेशपरिणामों में, माया मिथ्या निदानरूप तीन अप्रशस्त परिणामों में, चार उपसर्गों में, पाँच सामायिक चारित्रों में, छह जीव निकायों में, छह आवश्यकों में, सात भयों में, आठ शुद्धियों में, नव ब्रह्मचर्य गुप्तियों में, दश श्रमण धर्मों में, दश धर्मध्यानों में, दश मुंडों में, बारह संयमों में, बाइस परिषहों में, पच्चीस भावनाओं में, पच्चीस क्रियाओं में, अठारह हजार शीलों में, चौरासी लाख गुणों में, मूलगुणों में और उत्तर गुणों में इत्यादि विधि निषेध स्वरूप यत्याचारों में आष्टमिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक अनुष्ठानों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग और अनाभोग ये जो दोष हुआ है, उसका प्रतिक्रमण–निराकरण करता हूँ। मेरे दोष दूर किये उसको मेरा सम्यक्त्वमरण, समाधिमरण, पंडितमरण, वीर्यमरण, दुःखक्षय, कर्मक्षय, बोधिलाभ, सुगतिगमन और जिनेन्द्रगुणों की प्राप्ति हो।[१]

अब श्रमणचर्या पुस्तक में परिवर्तित पाठ देखिए—

दोसु अट्ट–रुद्द–संकिलेस–परिणामेसु, तीसु अप्प–सत्थसंकिलेस–परिणामेसु, मिच्छाणाण–मिच्छादंसण–मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, **चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु,** पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, **अट्ठसु मएसु,** अट्ठसु सुद्धीसु, **णवसु बंभचेर–गुत्तीसु,** दससु समण–धम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मंडेसु, **दसविहेसु, भत्तिसु,** बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारह–सील–सहस्सेसु, चउरासीदि–गुण–सय–सहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु अट्ठमियम्मि अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो जो **जादो** तं पडिक्कमामि। **तस्स** मए पडिक्कंतं, मे सम्मत्त–मरणं, पंडिय–मरणं, वीरिय–मरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ–गमणं, समाहि–मरणं, जिणगुण–संपत्ति होदु मज्झं।[२]

नोट—श्रमणचर्या, विमलभक्ति संग्रह आदि पुस्तकों में उपरोक्त प्रकरण में पाठ आगे, पीछे किया गया है और थोड़ा बढ़ाया गया है। चार ज्ञानधारी श्रीगौतमस्वामी की कृति में यह परिवर्तन अनुचित कार्य है। अतः पाठकगण ध्यान दें–प्राचीन एवं शुद्ध पाठ ही पढ़ें। परिवर्तित पाठ न पढ़े।

१. यतिप्रतिक्रमण, पृ. ९६। २. श्रमणचर्या पृ. २०१–२०२।

श्री गौतम स्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन उचित नहीं है।

(१) करोम्यहं — आजकल कुछ साधु-साध्वियां ''**कुर्वेऽहं**'' क्रिया को पढ़ने लगे हैं किंतु मुझे यह संशोधन नहीं जँचा है अतः मैंने यहाँ ''**करोम्यहं**'' ऐसा आचार्य प्रणीत प्राचीनपाठ ही सर्वत्र रखा है।

सिद्धांतचक्रवर्ती श्रीवीरनंदि आचार्य ने आचारसार ग्रंथ में ''**करोम्यहं**'' पाठ ही लिया है। यथा- ''**क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहं**[१]।''

अनगार धर्मामृत में पाक्षिक प्रतिक्रमण के लक्षण की स्वोपज्ञटीका में ''**करोम्यहं**'' क्रिया का प्रयोग पंद्रह बार आया है। उदाहरण के लिये देखिये-

''**सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां..... सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं**[२]।'' इत्यादि।

क्रियाकलाप में देववंदना, दैवसिक प्रतिक्रमण, पाक्षिकप्रतिक्रमण एवं अन्य क्रियाओं की प्रयोगविधि में ''**करोम्यहं**'' पाठ ही उपलब्ध है।

चारित्रसार ग्रंथ में भी-"**चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्य** .....इत्यादि पाठों में ''**करोमि**'' क्रिया ही है। ऐसा ही सामायिक भाष्य ग्रंथ एवं प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में भी ''**करोमि, करोम्यहं**'' पाठ ही उपलब्ध हो रहे हैं। कुल मिलाकर सभी ग्रंथों में इस परस्मैपदी ''**करोमि**'' क्रिया ही उपलब्ध हो रही है पुनः इसे बदलकर ''**कुर्वेऽहं**'' पाठ क्यों रखा गया? यह विचारणीय है।

(२) ''**णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं**' पाठ सामायिक दण्डक में है यहाँ 'तवाणं' पाठ बढ़ाया है सो उचित नहीं है देखिये प्रमाण-

''**णाणाणमित्यादि-ज्ञानदर्शनचारित्राणां सदा करोमि क्रियाकर्म। गुणानामानन्त्य-संभवेऽपि रत्नत्रयस्य प्राधान्येन मोक्षोपायभूतत्वात्तदेव स्तुतम्।**''

(क्रियाकलाप पृ. १४६)

इससे स्पष्ट है कि '**तवाणं**' पद मूल में नहीं है। टीकाकारों ने भी नहीं माना है।

(३) ऐसे ''**कीरंतं पि ण समणुमणामि**'' पाठ के स्थान पर-

''**अण्णं कंरंतं पि ण समणुमणामि**'' पाठ श्री गौतमस्वामी की कृति में सुधारना सर्वथा अनुचित है।

---

१. आचारसार पृ. १९१। २. अनगार धर्मामृत मूल संस्कृत अ. ९ पृ. ६५७।

(४) इसी प्रकार–

''**वंदामि रिट्ठणेमिं**'' पाठ ही थोस्सामि स्तव में सर्वत्र मान्य है।

श्रमणचर्या के प्रथम संस्करण में–

'**वंदाम्यरिट्ठणेमिं**' किया है। पुनः द्वितीय संस्करण में ''**वंदे अरिट्ठणेमिं**'' किया है।

इस परिवर्तन पाठ को पढ़ना उचित नहीं है।

(५) सामायिक भाष्य में चैत्यभक्ति की अंचलिका की टीका में देखिए–

''**अंचेमि अर्चामि। पूजेमि पूजयामि। वंदामि स्तौमि। णमंसामि नमस्यामि प्रणिपतामि।**''

(सामायिक भाष्य पृ. १७५)

टीकाकार ने भी प्राचीन पाठ ही लिया '**अंचेमि**' आदि। अतः–

श्रमणचर्या में पृ. १०२ पर–

''**अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि।**'' पाठ सुधारना कहाँ तक उचित है।

(६) इसी तरह ''**सल्लेहणामरणं**'' के अनंतर ''**तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि**'' पाठ हटाकर ''**इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि**'' बढ़ाना उचित नहीं है। मूल पाठ जो क्रियाकलाप' आदि ग्रंथों में चला आ रहा है। उसे ही पढ़ना चाहिये।

(७) '**जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया साविआओ वा खुड्ढय खुड्ढियाओ वा अट्ठदहभवणवासिय-वाणविंतरजोइसियसोहम्मीसाणदेवीओ वदिक्कमित्तउवरिम-अण्णदरमहड्ढियासु देवेसु उववज्जंति।**'

जो श्रावक या श्राविका अथवा क्षुल्लक या क्षुल्लिका इन उपर्युक्त बारह व्रतों को या ग्यारह प्रतिमाओं को धारण करते हैं वे अठारह स्थान को, भवनवासी, वान व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म–ईशान स्वर्ग की देवियों को छोड़कर ऊपर के स्वर्गों में से किसी भी स्वर्ग में महर्द्धिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

सन् १९५८ में एक विद्वान ने कहा कि '**अट्ठदह**' पाठ का अर्थ समझ में नहीं आता है अतः इसके स्थान में '**णट्ठदेहा**' पाठ हो सकता है।'

कुछ पुस्तकों में उन्होंने ऐसा संशोधन करा दिया किन्तु उनसे कहा गया कि–पंडित जी! श्रावक-श्राविका और क्षुल्लक-क्षुल्लिका '**नष्टदेहाः**'–देहरहित तो होते नहीं हैं। अतः यह संशोधन मुझे संगत नहीं लगता है। चर्चा के प्रसंग में ऐसी बात आई——

'अठारह स्थान ऐसे ढूंढने चाहिये जहाँ व्रती नहीं जाता हो तथा उन अठारह स्थानों में ये भवनत्रिक और सौधर्म-ईशान की देवियाँ नहीं आनी चाहिए चूँकि इन्हें पृथक् से लिया है। तभी उमास्वामी श्रावकाचार के दो श्लोक स्मृतिपथ में आ गये, वे ये हैं——

सम्यक्त्वसंयुतः प्राणी, मिथ्यावासेन जायते।
द्वादशेषु च तिर्यक्षु, नारकेषु नपुँसके।।८८।।
स्त्रीत्वे च दुष्कृताल्पायु-दारिद्र्यादिकवर्जितः।
भवनत्रिषु षट्भूषु, तद्देवीषु न जायते।।८९।।

सम्यक्त्व से सहित जीव मिथ्यात्व के निम्नस्थानों में नहीं जाता है—

१. पृथ्वीकायिक २. जलकायिक ३. अग्निकायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. दो इंद्रिय ७. तीन इंद्रिय ८. चार इंद्रिय ९. निगोद १०. असंज्ञीपंचेन्द्रिय ११. कुभोगभूमि और १२. म्लेच्छखंड, मिथ्यात्व के इन बारह स्थानों में उत्पन्न नहीं होता है। तथा १३. तिर्यचों में १४. नरकों में १५. नपुंसक में और १६. स्त्रीवेद में उत्पन्न नहीं होता है।

पुनः पापी, अल्पायु, दारिद्रादि से वर्जित रहता है। यह सम्यग्दृष्टी भवनत्रिकों में, प्रथम नरक से अतिरिक्त छह नरकभूमियों में व स्वर्ग की देवियों में भी नहीं जाता है।

चर्चा में यह बात और आई कि यहाँ प्रतिक्रमण में तो व्रतिक श्रावकों के लिए कथन है अतः व्रतीजन तो सुभोगभूमि और मनुष्य पर्याय में भी नहीं जाते हैं क्योंकि गाथा है कि—

अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं। (गोम्मटसार कर्मकांड)

अणुव्रती और महाव्रती तो देवायु के सिवाय अन्य किसी आयु का बंध ही नहीं कर सकता है। इसलिये उपर्युक्त १६ स्थानों में, १७. सुभोगभूमि और १८. मनुष्य इन दो स्थानों को मिला देने से अठारह स्थान हो जाते हैं। व्रतिक व क्षुल्लक-क्षुल्लिका इनमें नहीं जाते हैं।

ये अठारह स्थान आ. श्रीशिवसागरजी महाराज को भी बहुत ही संगत प्रतीत हुये थे। तब विद्वान द्वारा संशोधित पाठ 'णट्ठदेहा' हटा दिया गया था।

उसके बाद वह चर्चा वहीं समाप्त हो गई थी।

कुछ दिन पूर्व श्रमणचर्या में '**अट्ठदह**' पाठ को उलट कर '**दहअट्ठ**' पाठ लिया गया जिसका अर्थ यह निकाला गया-'दश प्रकार के भवनवासी और आठ प्रकार के वानव्यंतर। पुनः 'श्रमणचर्या' में छपा है-'**दह-अट्ठ-पंच**' जिसे भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिषी देवों के भेदरूप से माना गया।

जो भी हो मेरी विचारधारा तो यही है कि यदि कुछ पाठ संशोधित भी करना है तो पुराने विद्वानों के समान उस मूलपाठ को न हटाकर टिप्पण में 'संभावित है' ऐसा लिखकर उसे देना चाहिए।

ऐसे ही एक पाठ परिवर्तन और है जो कि अतीव विचारणीय है-मूल पाठ है-'**से अभिमदजीवाजीवउवलद्धपुण्णपाव-आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले।**'

अब इसे बदल कर ऐसा पाठ रखा गया है—'**से अभिमदजीवाजीवउवलद्ध-पुण्णपावआसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले।**'

मूलपाठ में नवतत्त्वों का क्रम यह था–जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

परिवर्तित पाठ का क्रम ऐसा हो गया है जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

विचार करने से यह समझ में आता है कि——इस मूलपाठ के क्रम के अनुसार ही कुंदकुंददेव ने समयसार में गाथा रखी है——

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।१३।।

और इसी गाथा के क्रम के अनुसार ही श्रीकुंदकुंददेव ने समयसार में अधिकार विभक्त किये हैं। जीवाजीवाधिकार के बाद पुण्य–पापाधिकार है पुनः आस्रव अधिकार, संवर अधिकार, निर्जरा अधिकार लेकर तब बंध अधिकार है इसके बाद मोक्ष अधिकार है।

(८)

क्रियाकलाप	**पृ.**	**श्रमणचर्या**	**पृ.**
देवा वि तस्स पणमंति	**६६**	**देवा वि तं णमंसंति**	**४०**

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में टीकाकार ने यही क्रियाकलाप वाला पाठ रखकर इसी की टीका की है। जैसे–

''**देवा वि तस्स पणमंति-देवा अपि तस्य प्रणमंति।**'' इस प्रकार अनेक संशोधन वर्तमान में किये जा रहे हैं किन्तु विचार करने की बात है कि इन टीकाकार प्रभाचंद्राचार्य तक तो यह प्राचीन पाठ ही प्रमाणभूत माना गया है और श्रीटीकाकार भी प्राकृत–संस्कृत व्याकरण व छंद शास्त्रादि के ज्ञाता अवश्य थे फिर भी उन्होंने यह पाठ नहीं बदला है। आजकल ऐसे ही अनेक संशोधन हुये हैं जो कि हमें इष्ट नहीं हैं।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(१)	(२)	(३)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	प्रतिष्ठापनसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. ७०)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं... (पृ. ८९)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ९०)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. २००)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं... (पृ. २२४)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २२४)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् (पृ. २११)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. २३०)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २३०)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. ११९)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १४१)	कीरतं वि ण समणुमणामि (पृ. १४२)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं। (पृ. २४६)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. ८)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २९८)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	कुर्वेऽहं (पृ. ९१, ९३)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १०)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ११६)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	कुर्वेऽहम् (पृ. ९५)	चरित्ताणं तवाणं सदा करेमि..... (पृ. ९७)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ९७)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	कुर्वेऽहं (पृ. ३४७)	**चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं** (पृ. ३७४)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ३४८)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	कुर्वेऽहं (पृ. ११४)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १४५)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ११६)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	कुर्वेऽहं (पृ. २६२) करोम्यहं (पृ. २६७)	चरित्ताणं तवाणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. २६८)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २५०)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	करोम्यहम् (पृ. ७९)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. ८०)	कीरंतं पि, ण समणुमणामि (पृ. ८०)

नोट–पाठकगण ध्यान दें–जिन पुस्तकों में श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में जो परिवर्तित, परिवर्धित पाठ हैं चार्ट में उनके नीचे अंडरलाईन हैं, जो अनुचित है अतः आप परिवर्तित एवं परिवर्धित पाठ न पढ़े। शुद्ध, प्राचीन पाठ ही पढ़ें।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(४)	(५)	(६)	(७)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. ९०)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ७४)	झाणं विउस्सग्गो चेदि। (पृ. ७८, ११९)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. ८१)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. २२५)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २०३)	झाणं विउस्सग्गो चेदि। (पृ. २६५)	पोथवं वा कमंडलुं वा (पृ. २१२)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. २३१)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २१३)	झाणं विउस्सग्गो चेदि	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. २२१)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. १४२)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. १२२)	झाणं विउस्सग्गो चेदि (पृ. १७८)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. १३१)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. १०)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २८२)	झाणं विउस्सग्गो चेदि (पृ. ४३२)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. २७४)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ११)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ९१)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. २११)	पोत्थयं वा, पीढं वा कमण्डलुं वा (पृ. १३१)
वंदे अरिट्ठणेमिं (पृ. ९८)	अच्चेमि पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि (पृ. १०२)	विउस्सग्गो झाणं चेदि (पृ. १७५, १९६)	पोत्थयं वा पीढं वा कमंडलुं वा (पृ. १११, २००)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ३७५)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ३५६)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. ३५८)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वां (पृ. ३६३)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. १४६)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. १२४)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. २११)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वां (पृ. १३१)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. २६९)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २४८)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. ३११)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वा (पृ. २६०)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ८१)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ७२)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. १२०)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वा (पृ. ६९)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(८)	(९)	(१०)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु..... (पृ. ८२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. ८६)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. ८९)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु... (पृ. २१४)	लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टा-विंशति-मूलगुणाः (पृ. २१९)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां.. (पृ. २२३)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु...(पृ. २२२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. २२९)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां.... (पृ. २२९)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु... (पृ. १३२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः... (पृ. १३७)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. १४१)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु..... (पृ. २७८)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. २८८)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. २९६)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६,) (सन् १९८०)	दोसु अट्ठ-रुद्द संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ.. (पृ. १३३)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. १४३)	पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. १४४)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	दोसु अट्ठरुद्दसंकिलेसपरिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ... (पृ. ११२, २०१)	रोधषडावश्यकक्रियालोचादयोऽष्टा-विंशतिमूलगुणाः (पृ. १२०)	पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. १२१)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	दोसु अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ (पृ. ३६४)	रोध-लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. ३६९)	पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां (पृ. ३७३)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	दोसु अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ..... (पृ. १३३)	रोध-लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. १३९)	पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां (पृ. १४४)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	दोसु अट्ठ-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ (पृ. २६१)	रोध-षडावश्यकक्रियालोचादयो-ऽष्टाविंशतिमूलगुणाः.... (पृ. २६७)	**पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां** (पृ. २६७)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	दोसु अट्ठरुद्दसंकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ... (पृ. ७१)	रोध-षडावश्यक-क्रिया-लोचादयोऽष्टा-विंशति मूलगुणाः (पृ. ७५)	पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. ५५)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(११)	(१२)	(१३)	(१४)
राइभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ९३)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. ९४)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवा–भोयणमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. ९५)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ९८)
राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. २२८)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. २३०)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभो–यणमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. २३१)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. २३६)
राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. २३४)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. २३५)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. २३६)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. २४०)
राइभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. १४४)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. १४६)	राईभोयणं वोस्सरामि दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १४७)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १५१)
राइभोयणवेरमण–छट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ३०६)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. ३१०)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयण मेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. ३१४)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ३३४)
राईभोयण–वेरमणछट्ठाणि, स–भाववाणि (पृ. १५०)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. १५२)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं–फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १५३)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १६२)
राइभोयणवेरमण–छट्ठाणि, अणुव्वदाणि सभावणाणि (पृ. १२६)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. १२८)	राइभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयणं अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि, एगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १२८) पृ. १३३, १३७, १४२, १४७, १५१ पर भी यही बढ़ाया हुआ पाठ है।	वियडिं वा मट्टियं वा (पृ. १३६)
राइभोयण–वेरमण–छट्ठाणि, स–भावणाणि (पृ. ३७९)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. ३८१)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयण–मेगभत्तं पच्चुप्पणं–फासुगं–अब्भुट्ठेमि (पृ. ३८२)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ३९०)
राइभोयण–वेरमण–छट्ठाणि स–भावणाणि (पृ. १५०)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. १५२)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयणमेगभत्तं–पच्चुप्पणं–फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १५३)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १६२)
राइभोयण–वेरमण–छट्ठाणि अणुव्वदाणि (पृ. २७१)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. २७३)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवा–भोयण–अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि ऐगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं–अब्भुट्ठेमि (पृ. २७३)	वियडिं वा मट्टियं वा (पृ. २७९)
राइभोयणवेरमण–छट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ८४)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. ८६)	राइभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयण–मेयभत्तं अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि एगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमिं (पृ. ८७)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ९१)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(१५)	(१६)	(१७)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	दंतंतर सोहणमित्तं पि (पृ. ९८)	मणुणामणुणेसु (पृ. ९९)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. १०७)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	दंतंतरसोहणमित्तं पि (पृ. २३६)	मणुणामणुणेसु (पृ. २३८)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. २४९)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	दंतंतर सोहणमित्तं पि (पृ. २४०)	मणुणामणुणेसु (पृ. २४२)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. २५१)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	दंतंतरसोहणमित्तं पि (पृ. १५१)	मणुणामणुणेसु (पृ. १५३)	पच्छिम-सल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. १६१)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	दंतंतर-सोहणमित्तं पि (पृ. ३३४)	मणुणामणुणेसु (पृ. ३४६)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. ३९४)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	दंतंतर-सोहणं णिमित्तं, वि (पृ. १६२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १६८)	पच्छिम-सल्लेहणामरणं चेदि। इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १९२)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	दंतंतरसोहणणिमित्तं वि (पृ. १३६)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १४०)	पच्छिमसल्लेहणामरणं चेदि, इच्छेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १५९)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	दंतंतर-सोहणणिमित्तं, वि (पृ. ३९०)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. ३९५)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. ४१७)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	दंतंतर-सोहणं-णिमित्तं वि (पृ. १६२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १६८)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १९२)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	दंतंतर-सोहणणिमित्तं, वि (पृ. २७९)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. २८३)	पच्छिम-सल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. २९९)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	दंतंतरसोहणणिमित्तं वि (पृ. ९२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. ९३)	पच्छिम-सल्लेहणामरणं से ..... (पृ. १०४)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(१८)	(१९)	(२०)	(२१)
आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. १०७)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १०८)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १११)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं (पृ. १११)
आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. २४९)	अट्ठदहभवणवासिय (पृ. २५०)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १९४)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचारमालो-चेउं (पृ. १९४)
आसवसंवर-णिज्जरबंधमोक्खमहि-कुसले... (पृ. २५१)	अट्ठदहभवणवासिय..... (पृ. २५२)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १८८)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. १८८)
आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. १६४)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १६४)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १६८)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. १६८)
आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. ३९६)	अट्ठदहभवणवासिय... (पृ. ३९८)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. ५०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचारमालो-चेउं (पृ. ५०)
आसंव-बंध-संवर-णिज्जर-मोक्खमहि-कुसले (पृ. १९२)	दह-अट्ठ-पंचभवणवासिय.... (पृ. १९३)	देवा वि तं णमंसंति.... (पृ. ४०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. ४०)
आसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. १५९)	दहअट्ठपंचभवणवासिय... (पृ. १६०)	देवा वि तं णमस्संति (पृ. १६४)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गोकओ तस्सालोचेउं (पृ. १६५)
आसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. ४१७)	दहअट्ठपंचभवणवासिय..... (पृ. ४१८)	देवा वि तं णमंसंति (पृ. ३०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचउं. (पृ. ३०)
आसवबंध-संवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. १९२)	दहअट्ठपंचभवणवासिय.... (पृ. १९३)	देवा वि तं णमंसंति (पृ. ४०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं..... (पृ. ४०)
आसवबंध-संवरणिज्जर-मोक्खमहि-कुसले (पृ. २९९)	दहअट्ठपंचभवणवासिय..... (पृ. २९९)	देवा वि तं णमंस्संति (पृ. २८)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो, सम्मणाण.... (पृ. २९)
आसवबंधसंवरणिज्जर-मोक्खमहि कुसले (पृ. १०४)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १०५)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १०८)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणाइचारमालोचेउं सम्मणाण..... (पृ. १०८)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(२२)	(२३)	(२४)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	इच्छामि भंते ! वीरभत्ति-काउस्सग्गो जो मे देवसिओ राईओ.... (पृ. ६४)	चत्तारिमंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं.... (पृ. ८९)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय)... (पृ. ९७)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ राईओ..... (पृ. १९१)		पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय (पृ. २३५)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. १८६)	चत्तारिमंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं (पृ. २२९)	पण्णत्तो जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय.... (पृ. २३८)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. १८६)	चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं.... (पृ. १४१)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १५०)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. ४६)	चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं..... (पृ. २९८)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ३३२)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे राइओ (देवसिओ....) (पृ. ३५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं..... (पृ. ५६)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १६१)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	इच्छामि भंते ! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं, जो मे राइओ (देवसिओ) अइचारो.... (पृ. ३१)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं... (पृ. ५७)	पण्णत्तो, जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १३५)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे राईओ (देवसिओ) (पृ. २५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. ३४७)	पण्णत्तो, जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ३८८)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे राइओ (देवसिओ) (पृ. ३५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं.... (पृ. ११५)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १६१)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	इच्छामि भंते ! पडिक्कमणादि-चार-मालोचेउं जो मे (देवसिओ) राईओ (पृ. २५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. २६७)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. २७८)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सगो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. ४५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. ७९)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ९१)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(२५)	(२६)	(२७)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंत्ते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहि– मरणं पंडियमरणं..(पृ. ८८)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. १०४)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १०४)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं.... (पृ. २२२)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. २४४)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. २४५)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहि– मरणं पंडियमरणं... (पृ. २२८)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. २४७)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. २४८)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिकमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं.... (पृ. १४०)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. १५९)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १५९)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्त–मरणं समाहिमरणं पंडियमरण.... (पृ. २९४)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. ३८२)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. ३८४)
आभोगो अणाभोगो, तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मतमरणं (पृ. १४३)	बज्झमब्भंतरेसु य (पृ. १८५)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १८६)
आभोगो अणाभोगो जादो, तं पडिक्कमामि। तस्स मए पडिक्कंतं मे सम्मत्तमरणं (पृ. १२०)	बाहिरमब्भंतरेसु य (पृ. १५५)	पाणादिवादं जहि मोसगं च (पृ. १५५)
आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मतमरणं (पृ. ३७२)	बज्झमब्भंतरेषु य (पृ. ४११)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. ४१२)
आभोगो, अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं (पृ. १४३)	बज्झमब्भंतरेसु य (पृ. १८५)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १८६)
आभोगो, अणाभोगो, जादो पडिक्क– मामि तस्समए पडिक्कंतं मे सम्मत्त– मरणं (पृ. २६६)	बाहिरमब्भंतरेसु य (पृ. २९४)	पाणादिवादं जहि मोसगं च (पृ. २९५)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं (पृ. ७८)	बज्झमब्भंतरेसु य। (पृ. १००)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १००)

पं. श्री लालाराम जी के चैत्यभक्ति के विषय में उद्गार[1]

पूज्यवर आचार्यश्री 108 शांतिसागर जी महाराज ने अपने मुनिसंघ सहित वीर निर्वाण संवत् 2457 (सन् 1931) का चातुर्मास देहली नगर में किया था। उनके पुण्यमय दर्शन करने के लिए मैं भी देहली गया था।

उस संघ में मुनिराज श्री 108 श्रुतसागर जी भी हैं। इन समस्त मुनिराजों को इन भक्तियों से सदा काम पड़ता रहता है कितनी ही भक्तियाँ तो प्रतिदिन बोलनी पड़ती हैं तथा कितनी ही विशेष-विशेष समय पर पढ़ी जाती हैं। इन भक्तियों के पढ़ते समय यदि इनका अर्थज्ञान हो, तो फिर और भी विशेष आनन्द आता है। इसीलिए इनके अर्थ जानने की मुनिराज श्री 108 श्रुतसागर जी की प्रबल इच्छा थी। मुनियों की इच्छाएँ और प्रवृत्तियाँ सब धार्मिक ही होती हैं इसीलिए इन इच्छाओं की पूर्ति करना विशेष पुण्य का कारण समझा जाता है। यही समझकर मैंने वहाँ से आकर अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यह हिन्दी टीका लिखी है।

इन भक्तियों में अधिकतर भक्तियाँ पूज्यपाद आचार्यश्री 108 पूज्यपाद स्वामी की लिखी हुई हैं। आचार्य पूज्यपाद स्वामी कितने प्रौढ़ और प्राचीन उद्भट विद्वान् आचार्य थे, यह बात प्रायः समाज के समस्त जनसाधारण तक जानते हैं।

इन भक्तियों की एक संस्कृत टीका है जो आचार्य प्रभाचंद्र स्वामी की बनाई हुई है। उस टीका में चैत्यभक्ति की टीका के प्रारंभ में लिखा है कि—

श्री वर्द्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी "जयति भगवान्" इत्यादि स्तुतिमाह।

अर्थ—गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी के प्रत्यक्ष दर्शन कर **'जयति भगवान्'** इन शब्दों से प्रारंभ करते हुए स्तुति की।

बृहद्द्रव्यसंग्रह की संस्कृत टीका में भी लिखा है :—

ततश्च जयति भगवान् इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचनानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोपि (गौतम-अग्निभूत-वायुभूत-नामानः) गणधरदेवाः संजाताः। गौतमस्वामी भव्योपकारार्थैः द्वादशांगश्रुतरचनां कृतवान्।

तदनन्तर गौतम-अग्निभूति-वायुभूति इन तीनों विद्वानों ने "जयति भगवान्" इत्यादि शब्दों से स्तुति करते हुए भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया। जिनदीक्षा ग्रहण की और केशलोच करने के अनन्तर ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान चारों ज्ञान उनको प्रगट हो गये तथा सातों प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं। इस प्रकार वे तीनों ही मुनि उसी समय भगवान् महावीर स्वामी के गणधर हुए। उनमें से गौतमस्वामी ने भव्य जीवों का उपकार करने के लिए द्वादशांग श्रुतज्ञान की रचना की।

इन दोनों कथनों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि इन भक्तियों में से चैत्यभक्ति भगवान् महावीर स्वामी के मुख्य गणधर भगवान् गौतम स्वामी की बनाई हुई है। इससे इसकी प्राचीनता और प्रौढ़ प्रमाणता भी स्वयं सिद्ध हो जाती है।

इस स्तुति में कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है। जिसमें भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी आदि सब देवों के चैत्यालयों का तथा मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि यह मूर्ति पूजा जैनियों ने ब्राह्मणों से नहीं ली है किन्तु अनादिकाल से चली आ रही है। जो लोग मूर्तिपूजा आदि को ब्राह्मणों से ली हुई बतलाते हैं, उनको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। साथ में जो लोग जैन भूगोल को अप्रमाण और टीलों पर बैठकर लिखे हुए बतलाते हैं, उन्हें भी अपने नेत्र खोल लेना चाहिए।

इस ऊपर के कथन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि यह चैत्यभक्ति महावीर स्वामी के केवलज्ञान के समय की बनी हुई है, अर्थात् चतुर्थकाल में जब तेतीस वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रह गये थे, उस समय की यह रचना है। ऐसी-ऐसी चतुर्थकाल की रचनाएँ न जाने कितनी हैं, जो अज्ञानता के कारण हमें मालूम नहीं हैं। बहुत से लोग कहा करते हैं कि "वर्तमान के समस्त शास्त्र पंचमकाल के बने हुए हैं इसलिए उनमें कहा हुआ विषय भगवान महावीर स्वामी का कहा हुआ नहीं माना जा सकता" ऐसे लोगों को भी अनर्गल बोलना बंद कर कुछ दिन तक जानकार विद्वानों से अध्ययन करना चाहिए।

यह हिन्दी टीका मैंने संस्कृत टीका के आधार से की है। तथापि प्रमादवश या अज्ञानवश इसमें जो कुछ स्खलन हुआ हो, उसे विद्वानों को सुधार कर बाँच लेना चाहिए।

-लालाराम जैन शास्त्री, मोरेना (म.प्र.)
फाल्गुन शु. 12, वी. नि. सं. 2458
(सन् 1932)

---

१. दशभक्ति संग्रह पुस्तक की प्रस्तावना से पृ. ३ से ६ तक।

प्रशस्ति

श्री शांतिनाथ श्री कुंथुनाथ, अरनाथ प्रभू को नमन करूँ।
तीर्थंकर चक्री कामदेव, त्रयपद धर का संस्तवन करूँ।।
जिनके शासन में ज्ञान मिला, उन महावीर प्रभु को प्रणमूँ।
श्री गौतम स्वामी गणधर गुरु, उनकी वाणी को नित्य नमूँ।।१।।

श्री चैत्यभक्ति, प्रतिक्रमण तीन, श्री गौतम गुरु की रचना हैं।
इनमें से कुछ कुछ सार लिया संकलन किया यह रचना है।।
श्री कुंदकुंद आचार्यवर्य की, परम्परा अक्षुण्ण रहे।
आचार्यों की मणिमाला को, नित नमूँ भक्ति अक्षुण्ण रहे।।२।।

श्री मूलसंघ में कुंदकुंद, आम्नाय जगत में मान्य रहे।
सरस्वतीगच्छ गण बलात्कार, सम्पूर्ण विश्व में ख्यात रहे।।
इस परम्परा में सदी बीसवीं-में गुरु प्रथमाचार्य हुए।
चारित्रचक्रवर्ती यतिपति, श्री शांतिसागराचार्य हुए।।३।।

इनके जो प्रथम शिष्य ही प्रथमहि, पट्टाधीश मान्य मुनिवर।
श्री वीरसागराचार्य गुरू, उनको नित वन्दूँ अंजलिकर।।
वैशाख वदी द्वितिया उनसे, आर्यिका व्रतों को प्राप्त किया।
गुरुद्वय को प्रणमूँ बार-बार, जिनसे शिवमार्ग प्रशस्त किया।।४।।

ईसवी सन् उन्नीस सौ छप्पन में बनी आर्यिका ज्ञानमती।
इस पूर्व उन्नीस सौ बावन में, श्री शरदपूर्णिमा जन्मतिथी।।
इस दिन गृहत्याग दिया मैंने, अतएव बनी यह त्याग तिथी।
माँ मोहिनी का अवलंब मिला, फिर धन्य हो गई जन्म तिथी।।५।।

ईसवी सन् उन्नीस सौ त्रेपन, में चैत्र वदी तिथि थी एकम्।
श्री देशभूषणाचार्य गुरू, श्री महावीर जी तीर्थ उत्तम।।
मैं वीरमती क्षुल्लिका बनी, अतिशायी ज्ञानाभ्यास किया।
माँ सरस्वती का ही प्रसाद, फिर नाम 'ज्ञानमति' सार्थ किया।।६।।

वीराब्द पचीस शतक चालिस, शुभ ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी धन्य।
"श्री गौतमगणधर वाणी" में, कृतिकर्म विधि हुई पूर्ण मान्य।।

इस पर "अमृतवर्षिणी" नाम टीका से अतिशय ग्रंथ बना।
इसमें संकलित अध्याय दोय, जिनवचनामृतमय पूर्ण घना।।७।।

यह ग्रंथ युगों युग तक भव्यों, को अमृतवर्षा से पुष्ट करे।
जब तक इस हस्तिनागपुर में, श्रीशांतिनाथ के गुण उचरें।।
जब तक यहाँ जम्बूद्वीप सुमेरु, तेरहद्वीप तीर्थ उत्तम।
यहाँ तीनलोक रचना सुंदर, तब तक यह ग्रंथ रहे शुभतम।।८।।

-दोहा-

नमूँ नमूँ गणधर वचन, करूँ सतत अभ्यास।
ज्ञानमती कैवल्य हो, पाऊँ मोक्ष निवास।।९।।

श्री गौतम गणधर वाणी

(श्री गौतमस्वामी प्रणीत)

(प्रतिदिन पढ़ने हेतु दशों अध्याय का मूलपाठ)

पद्यानुवाद (गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी)

मंगलाचरण

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

(१) चैत्यभक्ति :

हरिणीछंद —

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गी- भावाद्विविक्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।

मंगलाचरण–चौबोल छंद–

श्रीमन् वर्द्धमान को प्रणमूँ, जिनने अरि को नमित किया।
जिनके पूर्ण ज्ञान में त्रिभुवन, गौखुर सम दिखलाई दिया।।
ऐसे अंतिम तीर्थंकर श्री–महावीर को नित्य नमूं।
वीर महतिमहावीर सन्मती–प्रभु को कोटि कोटि प्रणमूँ।।१।।

(१) चैत्यभक्ति

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।

जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।

जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्य।।५।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।

मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।

अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।

अर्हत सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परम गुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।४।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।५।।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।

मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।७।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।८।।

भुवनत्रय में जितने जिनगृह,भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।११।।

द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।
विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।
कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।
यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।
अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।
श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम्।।१७।।
यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।
ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।
ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान्।।२०।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभवहेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।
आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।
परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।
दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।
सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।
श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिन मूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।
इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभवहेतु, सब जिन चैत्य जिनालय को।।१८।।
व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।
ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।

वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।
इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।
अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहककतीर्थमुत्तमतीर्थम्।।२३।।
लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामल विशालकूलद्वितयम्।।२४।।
शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्ति सिकतासुभगम्।।२५।।
क्षान्त्यावर्तसहस्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम्।
दुःसहपरीषहाख्य- द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम्।।२६।।
व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम्।।२७।।
ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रो-द्रेकितनिर्घोषविविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणं।।२८।।
गणधरचक्रधरेन्द्र- प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैःपुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम्।।२९।।

सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।
इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्त्रव का हो रोधन।।२२।।
अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।२३।।
लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शील रु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।२४।।
शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।२५।।
क्षमादि हैं आवर्त सहस्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।२६।।
रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।२७।।
ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं, आस्रव रोध निर्जरा जल निःसृत।।२८।।
गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।२९।।

अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

—पृथ्वी छंद—

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात् ,
कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकतः।।
विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम्।।३१।।

निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात्।।३२।।

मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचन्दन - प्रतिमदिव्यगन्धोदयम्।
रवीन्दुकुलिशादि - दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुर - मपीक्षणानां प्रियम्।।३३।।

हितार्थपरिपंथिभिः, प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।

इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।३०।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अतः प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अतः, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंतःकरण शुद्धि पूरण।।३१।।

रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।३२।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभू! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।३३।।

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।
अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।३४।।

सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडल - मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

तदेतदमरेश्वर - प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीय - चरणारविन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

आलोचना या अंचलिका —**इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमा-किट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।**

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां प्रथमोऽध्यायः।।१।।

अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।३५।।

अंचलिका (बैठकर)

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वदूँ नमूँ सतत।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां प्रथमोऽध्यायः।।१।।

(२) कृतिकर्म विधि

(सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गश्चतुर्विंशतिस्तवपर्यंतःकृतिकर्मेत्युच्यते[१]।

"सामायिक स्तवपूर्वक कायोत्सर्ग करके चतुर्विंशतिस्तवपर्यन्त जो विधि है उसे कृतिकर्म कहते हैं।"

दोणदं तु जधाजादं वारसावत्तमेव य।
चदुस्सिरं तिसुद्धिं च किदियम्मं पउंजदे[२]।।६०३।।

"यथाजात मुद्राधारी साधु मनवचनकाय की शुद्धि करके दो प्रणाम, बारह आवर्त और चार शिरोनतिपूर्वक कृतिकर्म का प्रयोग करें।")

सिद्ध वंदना के लिए कृतिकर्म प्रयोगविधि

अथ सिद्धवंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर सामायिक दण्डक पढ़ें।)

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

---

(२) कृतिकर्म विधि

अथ सिद्धवंदनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर सामायिक दण्डक पढ़ें।)

—सामायिक दण्डक —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

---

१. मूलाचार गाथा ६०२ की टीका। २. मूलाचार गा. ६०३।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(९ बार महामंत्र जप)

(मुकुलित हाथ जोड़े हुए ही तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से सत्ताइस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके 'थोस्सामिस्तव" पढ़ें।)

—थोस्सामि स्तव—

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।१।।

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्म देशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान्।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन, ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।

भगवन् सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन काय मन, त्रिकरण से न करूँ दुःखकर।।५।।

नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूँ निंदूँ गर्हूं, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

(९ बार महामंत्र जप)

(मुकुलित हाथ जोड़े हुए ही तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से सत्ताइस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके 'थोस्सामिस्तव" पढ़ें।)

थोस्सामि स्तव

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।

उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वन्दामि।।४।।

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।

चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपहा सत्ता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

(पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से खड़े-खड़े ही जिस भक्ति की प्रतिज्ञा की थी उस भक्ति को पढ़कर गवासन से बैठकर उस भक्ति की अंचलिका पढ़ें। यह उपर्युक्त कृतिकर्म विधि सभी भक्तियों के पढ़ने में करनी चाहिए, ऐसा विधान है।)

लोकोद्योतक धर्म तीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउवीस अर्हंत तथा, केवलि गण का गुणगान करूँ।।२।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।३।।

सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्म प्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।४।।

जिनवर कुन्थु अरह मल्लि प्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्ट नेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।५।।

इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान्।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।

चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।

(पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से खड़े-खड़े ही जिस भक्ति की प्रतिज्ञा की थी उस भक्ति को पढ़कर गवासन से बैठकर उस भक्ति की अंचलिका पढ़ें। यह उपर्युक्त कृतिकर्म विधि सभी भक्तियों के पढ़ने में करनी चाहिए, ऐसा विधान है।)

(कदाचित् खड़े होकर कृतिकर्म नहीं करना हो तो बैठकर ही सारी विधि करें। अन्तर इतना ही है कि बैठकर कृतिकर्म करने में ९ बार महामंत्र का जाप्य योगमुद्रा से करना होता है।)

लघु सिद्धभक्ति

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

–अंचलिका–

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पयिट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीदाणागदवट्टमाण–कालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।[१]

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

(कदाचित् खड़े होकर कृतिकर्म नहीं करना हो तो बैठकर ही सारी विधि करें। अन्तर इतना ही है कि बैठकर कृतिकर्म करने में ९ बार महामंत्र का जाप्य योगमुद्रा से करना होता है।)

—लघु सिद्धभक्ति —

श्रीमन् वर्द्धमान को प्रणमूँ, जिनने अरि को नमित किया।
जिनके पूर्ण ज्ञान में त्रिभुवन, गोखुर सम दिखलाई दिया।।१।।

तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

—अंचलिका —

हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग् रत्नत्रय युक्ता।।१।।

अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।

भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(३) सुदं मे आउस्संतो!

(श्रावक धर्म)

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्ह-णाणेण सव्व-लोय-दरसिणा सावयाणं सावियाणं खुड्डयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खा-वदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादि-वादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्ता-दाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे सदारसंतोस-परदारा-गमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविध-अणत्थ-दण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

---

(३) सुदं मे आउस्संतो!

(श्रावक धर्म)

हे आयुष्मन्तों! पहले ही यहां मैंने सुना वीर प्रभु से।
उन महाश्रमण भगवान् महतिमहावीर महाकाश्यप जिनसे।।
सर्वज्ञज्ञानयुत सर्वलोकदर्शी उनने उपदेश दिया।
श्रावक व श्राविका क्षुल्लक अरु क्षुल्लिका इन्हों के लिए कहा।।१।।

ये पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चउ शिक्षाव्रत बारह विध।
हैं सम्यक् श्रावक धर्म इन्हीं, में जो ये अणुव्रत पांच कथित।।
पहला अणुव्रत स्थूलतया, प्राणीवध से विरती होना।
दूजा अणुव्रत स्थूलतया, असत्यवच से विरती होना।।२।।

तीजा अणुव्रत स्थूलतया, बिन दी वस्तू को नहिं लेना।
चौथा अणुव्रत स्थूलतया परदारा से विरती होना।।
निजपत्नी में संतुष्टी या सब स्त्रीमात्र से रति तजना।
पंचम अणुव्रत स्थूलतया इच्छाकृत परीमाण धरना।।३।।

त्रय गुणव्रत में पहला गुणव्रत, दिश विदिशा का प्रमाण करना।
दूजा गुणव्रत नाना अनर्थ दण्डों से नित विरती धरना।।
तीजा गुणव्रत भोगोपभोग, वस्तू की संख्या कर लेना।
ये तीन गुणव्रत कहे, पुनः चारों शिक्षाव्रत को सुनना।।४।।

पहला शिक्षाव्रत सामायिक दूजा प्रोषध उपवास कहा।
तीजा है अतिथि संविभाग चौथा सल्लेखनमरण कहा।।
शिक्षाव्रत चार कहे पुनरपि, अभ्रावकाश तृतीयव्रत है।
जघन्य श्रावक से उत्तम तक, ये बारह व्रत तरतममय हैं।।५।।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहो-वासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि।

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्ख-महिकुसले धम्माणु-रायरत्तो पि माणु-रागरत्तो (पेम्माणुरागरत्तो) अट्ठि-मज्जाणुरायरत्तो मुच्छिदट्ठे गिहिदट्ठे विहिदट्ठे पालिदट्ठे सेविदट्ठे इणमेव णिग्गंथपावयणे अणुत्तरे सेअट्ठे सेवणट्ठे-

णिस्संकिय-णिक्कंखिय, णिव्विदिगिंछी य अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ट्ठिदिकरणं, वच्छल्ल-पहावणा य ते अट्ठ।।१।।

सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि वारसविहं गिहत्थधम्म-मणुपाल-इत्ता-

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमण-मुद्दिट्ठ देसविरदो य।।१।।
महु-मंस-मज्ज-जूआ, वेसादि-विवज्जणासीलो।
पंचाणुव्वय-जुत्तो, सत्तेहिं सिक्खावएहिं संपुण्णो।।२।।

जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया साावियाओ वा खुड्डुय खुड्डियाओ वा अट्ठदह-भवण-वासिय-वाणविंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण-देवीओ वदिक्क-मित्तउवरिम-अण्णदर-महड्ढियासु देवेसु उव्वज्जंति।

इसमें अभिमत जीव रु अजीव उपलब्ध पुण्य अरु पाप कहे।
आस्रव संवर निर्जर व बंध अरु मोक्ष कुशल नव तत्त्व रहें।।
इनमें धर्मानुराग से रत प्रेमानुराग में रागी हो।
अस्थीमज्जा के सदृश धर्म के, अनुराग में रागी हो।।६।।

ममतापूर्वक गृहीत वस्तु में, गृहीत वस्तु अरु कृतवस्तू में।
अपने पालन किये पदार्थ में, अपने सेवित सुपदारथ में।।
निर्ग्रंथों के भी प्रवचन में, उत्तम अरु हितकर पदार्थ में।
सेवन की प्रवृत्ती रूप क्रिया में दोष हुए सो मिथ्या हों।।७।।

निःशंकित निःकांक्षित अरु निर्विचिकित्सा अमूढ़दृष्टी हैं।
उपगूहन स्थितीकरण वात्सल प्रभावना अठ अंग कहे।।
ये सभी पांच अणुव्रत त्रयगुणव्रत चउ शिक्षाव्रत माने हैं।
बारहविध गृहस्थधर्मों का अनुपालन श्रावक करते हैं।।८।।

दर्शनव्रत सामायिक प्रोषध सचित्तत्याग निशिभुक्ति त्यजी।
ब्रह्मचर्य व आरंभ परिग्रह अनुमति उद्दिष्ट त्याग ये देशव्रती।।
मधु मांस मद्य जुआ वेश्यादिक व्यसनविवर्जनशील गृही।
पंचाणुव्रतयुत शिक्षाव्रत आदिक सातों से जो पूर्ण वही।।९।।

जो श्रावक और श्राविका या क्षुल्लक व क्षुल्लिका इन व्रत को।
धारण कर अठरहस्थान व भावन व्यंतर में नहिं जाते वो।
ज्योतिषियों में सौधर्म ईशान देवियों में नहिं जाते हैं।
उपरिम वैमानिक देवों में वे महाऋद्धिधर होते हैं।।१०।।

तं जहा—सोहम्मी-साण-सणक्कुमार-माहिंद-बंभबंभुत्तर-लांतवकापिट्ठ-सुक्क-महासुक्क-सतार-सहस्सार-आणत-पाणत-आरण-अच्चुत-कप्पेसु उववज्जंति।

अडयंबर-सत्थधरा, कडयंगद-बद्धनउड-कयसोहा।
भासुर - वर - बोहिधरा, देवा य महड्ढिया होंति।।१।।

उक्कस्सेण दोतिण्णि-भव-गहणाणि जहण्णेण सत्तट्ठभव-गहणाणि तदो सुमणु-सुत्तादो सुदेवत्तं सुदेवत्तादो सुमाणुसत्तं तदो साइहत्था[1] पच्छा णिग्गंथा होऊण सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वाणयंति सव्व-दुक्खाणमंतं करेंति।[2]

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां तृतीयोऽध्यायः।।३।।

(४) एकादश प्रतिमा

इच्छामि भंत्ते! देवसियं आलोचेउं। तत्थ-

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सच्चित्त-रायभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमण-मुद्दिट्ठ देसविरदे य।।
पंचुंबर-सहियाइं सत्त वि वसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्त-विसुद्धमई सो दंसण-सावओ भणियो।।१।।

वह यह सौधर्मैशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म दिव में।
ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ रु शुक्र अरु महाशुक्र दिव में।।
पुनि शतार सहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत दिव में।
इन सोलह स्वर्गों मे ही ये सदृष्टि सचेलक उपजत हैं।।११।।

वे कटक व बाजूबन्द मुकुट से युत आडंबर शस्त्र धरें।
भासुरवर बोधि धरें बहु ऋद्धी सहित महर्द्धिक देव बनें।।
उत्कृष्टपने से दो त्रय भव व जघन्य से सात आठ भव लें।
फिर मानव से देवपद ले सुदेवपद से सुमनुष्य भव लें।।१२।।

फिर सद्गृहस्थ निर्ग्रंथ मुनी हो सिद्ध-बुद्ध हो जाते हैं।
मुक्ती पाते कृतकृत्य बने सब दुःखों का क्षय करते हैं।।
जब तक अर्हत भगवंत नमन कर पर्युपासना करता हूँ।
तब तक सब पापकर्म अरु दुश्चारित को मैं परिहरता हूँ।।१३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां तृतीयोऽध्यायः।।३।।

(४) एकादश प्रतिमा

–दोहा–

हे भगवन्! दिन भर हुये, दोष विशोधन हेत।
करता आलोचन विधी, श्रद्धा भक्ति समेत।।

–शंभु छंद–

दर्शन व्रत सामायिक प्रोषध, सचित्तत्याग निशिमुक्ति त्यजी।
ब्रह्मचर्य व आरम्भ परिग्रह अनुमति उद्दिष्टत्यागि ये देशव्रती।।
जो पंच उदुंबुर फल तजता, अरु सप्त व्यसन को तजता है।
सम्यक्त्व शुद्धमति वह श्रावक, दर्शनप्रतिमायुत होता है।।१।।

---

१. साधितार्थाः इति वा पाठः छायायां। २. यतिप्रतिक्रमण–पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

पंच य अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि जाण विदियम्मि ठाणम्मि।।२।।

जिणवयण–धम्म–चेइय–परमेट्ठि–जिणालयाणं णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तं खु।।३।।

उत्तम–मज्झ–जहण्णं तिविहं पोसह–विहाण–मुद्दिट्ठं।
सगसत्तीए मासम्मि चउसु पव्वेसु कायव्वं।।४।।

जं वज्जिजदि हरिदं तय–पत्त–पवाल–कंद–फल–बीयं।
अप्पासुगं च सलिलं सच्चित्त–णिव्वत्तिमं ठाणं।।५।।

मण–वयण–काय–कदकारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा।
दिवसम्मि जो विवज्जदि गुणम्मि सो सावओ छट्ठो।।६।।

पुव्वुत्त–णवविहाणं णि (वि) मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो।
इत्थिकहादि–णिवित्ती सत्तम–गुणबंभचारी सो।।७।।

जं किं पि गिहारंभं बहु थोवं वा सया विवज्जेदि।
आरंभ–णिवित्तमदी सो अट्ठम–सावओ भणिओ।।८।।

मोत्तूण वत्थमित्तं परिग्गहं जो विवज्जदे सेसं।
तत्थ वि मुच्छं ण करदि वियाण सो सावओ णवमो।।९।।

अणुव्रत सुपाँच गुणव्रत त्रय अरु, शिक्षाव्रत चार कहे जाते।
इन बारहव्रत को व्रतप्रतिमा–धारी श्रावक धारण करते।।२।।

जिनवचन धर्म प्रतिमा जिनगृह परमेष्ठी पाँच इनको नित ही।
जो त्रय कालिक वंदन करते उनके सामायिक प्रतिमा ही।।३।।

उत्तम मध्यम जघन्य त्रयविध भाषित प्रोषध निजशक्ति से।
प्रति महिने चारों पर्वों में करते वे प्रोषध व्रत धरते।।४।।

जो हरित छाल पत्ते कोंपल फल कंद बीज को हैं तजते।
प्रासुक कर हरित व जल लेते वे सचित्त त्याग प्रतिमा धरते।।५।।

मन वचन काय कृत कारित अनुमति नवविध से जो मैथुन को।
दिन में तजते वे भव्य दिवा–मैथुन विरती प्रतिमाधर हों।।६।।

इन नवविध भी मैथुन को जो, तजकर ब्रह्मचर्य पूर्ण धरते।
स्त्री विकथादि रहित होकर, वे सप्तम प्रतिमाधारी बनते।।७।।

जो अल्प बहुत या कुछ भी गृह, आरम्भ सदा हैं तज देते।
आरंभ त्याग अष्टमप्रतिमाधारी वे ही श्रावक होते।।८।।

जो वस्त्रमात्र परिग्रह रखकर अवशेष परिग्रह तजते हैं।
जो है उसमें नहिं ममत करें, वे नवमी प्रतिमा धरते हैं।।९।।

पुट्ठो वापुट्ठो वा णियगेहिं परेहिं सग्गिह–कज्जे।
अणु–मणणं जो ण कुणदि वियाण सो सावओ दसमो।।१०।।

णवकोडीसु विसुद्धं भिक्खा–यरणेण भुंजदे भुंजं।
जायण–रहियं जोग्गं एयारस सावओ सो दु।।११।।

एयारसम्मि ठाणे उक्किट्ठो सावओ हवे दुविहो।
वत्थेयधरो पढमो कोवीणपरिग्गहो विदिओ।।१२।।

तव–वय–णियमा–वासय–लोचं कारेदि पिच्छ गिण्हेदि।
अणुवेहा– धम्मझाणं करपत्ते एयठाणम्मि।।१३।।

इत्थ मे जो कोई देवसिओ अइचारो अणाचारो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंत्तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।[१]

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

जो स्वपर जनों द्वारा पूछे या नहिं पूछे गृह कार्यों में।
अनुमति नहिं देते वे अनुमतित्यागी प्रतिमाधारी श्रुत में।।१०।।

नवकोटिशुद्ध याचनारहित आहार योग्य परघर में जो।
भिक्षावृत्ति से ग्रहण करें ग्यारहवीं प्रतिमाधारी वो।।११।।

उद्दिष्टत्यागप्रतिमाधारी उत्तम श्रावक दो विध जानो।
कौपीन दुपट्टाधर क्षुल्लक कौपीनमात्र ऐलक मानो।।१२।।

तप व्रत नियमावश्यक व लोच करते ऐलक पिच्छी धरते।
करपात्राहारी एक बार अनुप्रेक्षा धर्मध्यान करते।।१३।।

इनमें जो कुछ भी दिनभर में अतिचार अनाचार दोष हुये।
(इनमें जो कुछ पन्द्रह दिन में अतिचार अनाचार दोष हुये)
हे भगवन्! उसका प्रतिक्रमण करता हूँ शोधन हेतु लिये।।१।।

प्रतिक्रम करते हुए मेरा प्रभु! सम्यक्त्वमरण व समाधिमरण।
हो पंडितमरण व वीर्यमरण जिससे नहिं होवे पुनर्जनम।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे मम बोधिलाभ होवे।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण, मम जिनगुण संपत्ती होवे।।३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

---

१. श्रावक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(५) निषीधिका दण्डक

—प्रतिक्रमणभक्ति—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।२।।

णमो जिणाणं ३, णमो णिस्सिहीए ३, णमोत्थु दे ३, अरहंत! सिद्ध! बुद्ध! णीरय! णिम्मल! सममण! सुभमण! सुसमत्थ! समजोग! समभाव! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताण! णिब्भय! णीराय! णिद्दोस! णिम्मोह! णिम्मम! णिस्संग! णिस्सल्ल! माण-माय-मोस-मूरण! तवप्पहावण! गुणरयणसीलसायर! अणंत! अप्पमेय! महदिमहावीर-वड्ढमाण-बुद्धरिसिणो चेदि णमोत्थु ए णमोत्थु ए णमोत्थु ए।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जवणाणिणो चउदसपुव्वंगमिणो सुदसमिदिसमिद्धा य तवो य वारहविहो तवस्सी, गुणा य गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थंकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणीओ विणदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, ससमयपर-समयविदू, खंतिक्खवगा य खंतिवंतो य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खा य चेइयाणि।

---

(५) निषीधिका दण्डक

—प्रतिक्रमणभक्ति—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।
नमो जिनेभ्यः ३, नमो निषीधिकायै ३, नमोऽस्तु ते ३।

—चौबोल छंद—

हे अर्हंत सिद्ध बुद्धा, नीरज निर्मलसम मन सुमना।
हे सुसमर्थ परम शमयोग, शमभावी हे भवशमना।।
शल्यदुखित के शल्यविनाशन, हे निर्भय निराग निर्दोष।
हे निर्मोह विगत ममता निःसंग तथा निःशल्य विरोष।।१।।

मद माया असत्य के मर्दक, तपःप्रभावी हे परमेश।
गुण-शीलादिरत्नत्रयसागर, हे अनंत अप्रमेय महेश।।
महति पूज्य महावीर वीर, हे वर्धमान हे बुद्धि ऋषीश।
नमस्कार हो नमस्कार हो, नमस्कार हो तुम्हें हमेश।।२।।

मेरा मंगल करें सर्व, अर्हंत सिद्ध बुद्धा जिनराज।
केवलि जिन अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी ऋषिराज।।
चौदश पूर्व अंग पारंगत, अंगबाह्य श्रुतसंपन्ना।
बारह तप तपसी गुण और, गुणोंयुत महाऋद्धि शरणा।।३।।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्धणि-सीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि, इसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं, गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पव्वत्तित्थेर-कुलयराणं, चाउवण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु। जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं! एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, तिविहं तियरणसुद्धो[१]।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां पंचमोऽध्यायः।।५।।

तीर्थ और तीर्थंकर प्रवचन, प्रवचनयुत व ज्ञान ज्ञानी।
सद्दर्शन सम्यग्दृष्टी, संयम व संयमी मुनिध्यानी।।
विनय तथा सुविनययुत साधू, ब्रह्मचर्य व्रत ब्रह्मचारी।
गुप्ति गुप्तिधर मुक्ति मुक्तियुत, समिति और समितिधारी।।४।।

स्वमत और परमत के ज्ञाता, क्षमाशील अरु क्षपक मुनी।
क्षीणमोह यति बोधितबुद्ध, बुद्धिऋद्धीयुत परममुनी।।
चैत्यवृक्ष जिनबिम्ब अकृत्रिम-कृत्रिम जितने त्रिभुवन में।
मेरा मंगल करें सभी ये, ये मंगलप्रद तिहुँजग में।।५।।

ऊर्ध्व अधो अरु मध्यलोक में, सिद्धायतन नमूँ उनको।
सिद्धक्षेत्र अष्टापद सम्मेदाचल ऊर्जयन्त गिरि को।।
चंपा पावा नगरि मध्यमा, हस्तिबालिका मंडप में।
और अन्य भी मनुज लोक में, तीर्थ क्षेत्र सबको प्रणमें।।६।।

मोक्षशिला को प्राप्त सिद्ध, जिनबुद्ध कर्म से मुक्त महान।
विगत कर्मरज नीरज विरहित, भावकर्ममल से अमलान।।
पांच भरत पांच ऐरावत, पांचों महाविदेहों में।
सूरि उपाध्याय गुरू प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर जितने।।७।।

चतुर्वर्णयुत श्रमण संघ के, साधू जितने इस जग में।
संयम तपसी ये सब मेरे, पावन मंगल हेतु बनें।।
भावसहित मैं त्रिविधशुद्धियुत, अंजलि मस्तक पर धरके।
त्रिविधक्रिया में शीश झुकाकर, सबको वंदूँ रुचि करके।।८।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां पंचमोऽध्यायः।।५।।

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(६) गणधरवलय मंत्र

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहिजिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहिजिणाणं, णमो कोट्ठ-बुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं, णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाणं, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो चउदस-पुव्वीणं, णमो अट्ठंग-महा-णिमित्त-कुसलाणं, णमो विउव्व-इड्ढि-पत्ताणं, णमो विज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो पण्णसमणाणं, णमो आगास-गामीणं, णमो आसीविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं, णमो उग्गतवाणं, णमो दित्ततवाणं, णमो तत्ततवाणं, णमो महातवाणं, णमो घोरतवाणं, णमो घोरगुणाणं, णमो घोर-परक्कमाणं, णमो घोरगुण-बंभयारीणं, णमो आमोसहि-पत्ताणं, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं, णमो विप्पोसहि-पत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताणं, णमो मणबलीणं, णमो वचिबलीणं, णमो कायबलीणं, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीणं,

---

(६) गणधरवलय मंत्र

—शंभु छंद—

मैं नमूं जिनों को जो अर्हन् अवधीजिन मुनि को नमूं नमूं।
परमावधिजिन को नमूँ तथा, सर्वावधि जिन को नमूं नमूं।।
मैं नमूं अनंतावधिजिन को, अरु कोष्ठबुद्धियुत साधु नमूं।
मैं नमूं बीजबुद्धीयुतमुनि, पादानुसारियुत साधु नमूं।।१।।

संभिन्नश्रोतृयुत साधु नमूं, मैं स्वयंबुद्ध मुनिराज नमूं।
प्रत्येक बुद्ध ऋषिराज नमूं, पुनि बोधित बुद्ध मुनीश नमूं।।
ऋजुमतिमनपर्यय साधु नमूं, मैं विपुलमतीयुत साधु नमूं।
मैं नमूं अभिन्न[१] सुदशपूर्वी, चौदशपूर्वी मुनिराज नमूं।।२।।

अष्टांगमहानिमित्तकुशली, नमूं नमूं विक्रियाऋद्धि प्राप्त।
विद्याधरऋषि को नमूं नमूं मैं, संयत चारणऋद्धि प्राप्त।।
मैं प्रज्ञाश्रमणमुनीश नमूं, आकाशगामि मुनिराज नमूं।
आशीविषयुत ऋषिराज नमूं दृष्टीविषयुतमुनिराज नमूं।।३।।

मैं उग्रतपस्वी नमूं दीप्ततपि नमूं तप्ततपसाधु नमूं।
मैं नमूं महातपधारी को, अरु घोरतपोयुत साधु नमूं।।
मैं नमूं घोरगुणयुत साधु, मैं घोरपराक्रम साधु नमूं।
मैं नमूं घोरगुणब्रह्मचारि, आमौषधिप्राप्त मुनीश नमूं।।४।।

क्ष्वेलौषधिप्राप्त मुनीश नमूं, जल्लौषधि प्राप्त मुनीश नमूं।
विप्रुष औषधियुत साधु नमूं, सर्वौषधिप्राप्त मुनीश नमूं।
मैं नमूं मनोबलि मुनिवर को, मैं वचनबली ऋद्धीश नमूं।
मैं कायबली मुनिनाथ नमूं, मैं क्षीरस्रावी साधु नमूं।।५।।

---

१. टीका के आधार से अभिन्न पद है।

णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं, णमो अक्खीण-महाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदि महावीर-वड्ढमाण-बुद्धरिसीणो चेदि।

जस्संतियं धम्मपहं णियच्छे तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
काएण वाचा मणसावि णिच्चं, सक्कारए तं सिर-पंचमेण[१]।।१।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां षष्ठोऽध्यायः।।६।।

(७) सुदं मे आउस्संतो!

(मुनिधर्म)

सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्हुणा सव्वलोगदरिसिणा सदेवासुर-माणुसस्स लोयस्स आगदि-गदि-चवणो-ववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं मणो-माणसियं भूतं कयं पडिसेवियं आदिकम्मं अरुह-कम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणंता पस्संता विहरमाणेण समणाणं पंचमहव्वदाणि राइभोयणवेरमण-छट्ठाणि सभावणाणि समाउग-पदाणि सउत्तर-पदाणि सम्मं धम्मं उवदेसिदाणि।

मैं घृतस्रावी मुनिराज नमूं, मैं मधुरस्रावी साधु नमूं।
मैं अमृतस्रावी साधु नमूं, अक्षीणमहानस साधु नमूं।।
मैं वर्धमान ऋद्धीश नमूँ, मैं सिद्धायतन समस्त नमूं।
मैं भगवत् महति महावीर, -श्री वर्धमान बुद्धर्षि नमूं।।६।।

—शेर छंद —

जिनके निकट मैं धर्म पथ को प्राप्त किया हूँ।
उनके निकट ही विनयवृत्ति धार रहा हूँ।।
नित काय से वचन से और मन से उन्हीं को।
पंचांग नमस्कार करूं भक्तिभाव सो।।१।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां षष्ठोऽध्यायः।।६।।

(७) सुदं मे आउस्संतो!

(मुनिधर्म)

हे आयुष्मन्तों! वीर प्रभु की ध्वनि से मैंने सुना यहीं।
वे महाश्रमण भगवान महति, महावीर महाकाश्यपगोत्री।।१।।

सर्वज्ञ सर्वलोकदर्शी, युगपत् सबको जानते हुए।
सब देव असुर मानवयुत इस तिहुंजग को भी देखते हुए।।२।।

सबकी आगति गति च्यवन जन्म, अरु बंध मोक्ष ऋद्धी स्थिति।
द्युति अनुभाग अरु तर्कशास्त्र, सब कला मनो अरु मानसीक।।३।।

अनुभूत भूत कृत प्रतिसेवित, कृषि आदिकर्म अकृतिमकर्म।
सम्पूर्ण लोक सब जीव सर्व भावों को भी युगपत् जानन्।।४।।

वे श्री विहार करते भगवन् जब समवसरण में राजे हैं।
मुनियों के लिए धर्म सम्यक् उसको उनने उपदेशा है।।५।।

---

१. पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(२८ मूलगुण)

वद-समिदिंदिय-रोधो लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदिसयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेयभत्तं च।।१।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

(पच्चीस भावना)

चूलियं तु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी।
पंच पंच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे।।१।।

मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया - कायसंयदो।
एसणा - समिदि - संजुत्तो पढमं वदमस्सिदो।।२।।

अकोहणो अलोहो य, भय - हस्स - विवज्जिदो।
अणुवीचि-भास-कुसलो, विदियं वदमस्सिदो।।३।।

अदेहणं भावणं चावि, उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु, तिदियं वदमस्सिदो।।४।।

इत्थिकहा इत्थिसंसग्ग - हास - खेड - पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य, चउत्थं वदमस्सिदो।।५।।

(२८ मूलगुण)

व्रत समिती इंद्रियनिरोध छह, आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंत-धावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।१।।

जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ।।२।।

(पच्चीस भावना)

पच्चीस भावना है जिसमें ऐसी चूलिका कहूँगा मैं।
मानी हैं पाँच पाँच ये भी जो हैं एक एक महाव्रत में।।१।।

मनगुप्ति वचनगुप्ति ईर्यासमिती व कायसंयत रखना।
एषणसमिती ये पाँच भावना प्रथम महाव्रत की धरना।।२।।

क्रुध लोभ और भय हास्य त्याग अनुवीचीभाषा कुशल कही।
आगम अनुकूलवचन दूजे व्रत की ये पाँच भावना ही।।३।।

अदेहनं-यह तन ही धन है यह देह अशुचि आदी भावन।
अवग्रह-गतपरिग्रह अशन पान में संतुष्टी व्रत की तृतियन।।४।।

स्त्री की कथा व संसर्ग अरु हास्य व क्रीडा अवलोकन।
इन सबको राग से नहिं करना चौथे व्रत में स्थिरीकरण।।५।।

सचित्ताचित्त - दव्वेसु, बज्झंब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो, पंचमं वदमस्सिदो।।६।।

धिदिमंतो खमाजुत्तो, झाणजोग-परिट्ठिदो।
परीसहाणउरं देंत्तो, उत्तमं वदमस्सिदो।।७।।

जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोयम।।
सारं झाणंति णामेण, सव्वं बुद्धेहिं देसिदं।।८।।

इच्चेदाणि पंचमहव्वयाणि राईभोयणादो वेरमणछट्ठाणि सभावणाणि समाउग्ग-पदाणि सउत्तर-पदाणि सम्मं धम्मं अणुपालइत्ता समणा भयवंता णिग्गंथादोओण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणियंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति परिविज्जाणंति[१]।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां सप्तमोऽध्यायः।।७।।

सचित्त अचित्त द्रव्य अरु बाह्य अभ्यंतर द्रव्य व परिग्रह से।
विरती ये पांच भावनाएं, पाँचवें महाव्रत की ही हैं।।६।।

उत्तमव्रत है वो ही जो धैर्य सहित अरु क्षमायुक्त होता।
जो ध्यान योग में स्थित परिषह सहने में अभिमुख रहता।।७।।

सब सारों में जो सार अहो गौतम! वह सार सर्व उत्तम।
जो "ध्यान" नाम से कहा वही है सार सर्वकेवलि भणितं।।८।।

ये पांच महाव्रत रात्रीभोजनविरति छठे अणुव्रतयुत हैं।
भावनासहित मातृकापदों युत उत्तरपदयुत-गुणयुत हैं।।९।।

इस सम्यक् धर्म का अनुपालन करके भगवान श्रमण मुनिवर।
निर्ग्रंथलिंग से सिद्ध बुद्ध होते व मुक्त होते सुखकर।।१०।।

परिनिर्वृत होते सर्वदुखों का अंत करें त्रिभुवन जानें।
यह श्रमणधर्म ही शिवप्रद है इसको धारें भव दुख हाने।।११।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां सप्तमोऽध्यायः।।७।।

---

१. पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(८) पडिक्कमामि भंते!

पडिक्कमामि भंते! एक्के भावे अणाचारे, वेसु रायदोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वएसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु, एयारसविहेसु उवासयपडिमासु, वारसविहेसु भिक्खुपडिमासु, तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु, चउदसविहेसु भूदगामेसु, पण्णरसविहेसु पमायठाणेसु, सोलसविहेसु पवयणेसु, सत्तारसविहेसु असंजमेसु, अट्ठारसविहेसु असंपराएसु, उणवीसाए णाहज्झाणेसु*, वीसाए असमाहिट्ठाणेसु, एक्कवीसाए सबलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु, चउवीसाए अरिहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियट्ठाणेसु, छव्वीसाए पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगारगुणेसु, अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु, एउणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु, तीसाए मोहणीयठाणेसु, एक्कत्तीसाए कम्मविवाएसु, बत्तीसाए जिणोवएसेसु, तेत्तीसाए अच्चासणदाए, संखेवेण जीवाणं अच्चासणदाए, अजीवाणं अच्चासणदाए, णाणस्स अच्चासणदाए, दंसणस्स

---

(८) पडिक्कमामि भंते!

हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करूँ, है एक भाव जो अनाचार।
दो रागद्वेष त्रय गुप्ति त्रिदंड, त्रिगारव और कषाय चार।।१।।

चउ संज्ञा पांच महाव्रत पण, समिती छह जीव निकाय कहे।
छह आवश्यक भय सात आठ-मद ब्रह्मचर्यगुप्ती नव हैं।।२।।

दश श्रमण धर्म ग्यारह प्रतिमा, बारहविध भिक्षू प्रतिमा हैं।
तेरह विध क्रियास्थान चतुर्दश, भूत व प्रमाद पंद्रह हैं।।३।।

सोलह प्रवचन सत्रहों असंयम असंपराय अठारह हैं।
उन्नीस नाथ अध्ययन कथा असमाधिस्थान सुबीस कहें।।४।।

इक्कीस सबल बाइस परिषह तेईस सूत्रकृत अध्ययन हैं।
चौबिस अरहंतदेव पचीस भावना पृथ्वी छब्बिस हैं।।५।।

सत्ताइस विध अनगार सुगुण अरु मूलसुगुण अट्ठाइस हैं।
उनतीस पापसूत्रं प्रसंग मोहनीय थान भी तीस कहे।।६।।

इकतीसहिं कर्मोदय विपाक बत्तिस विध जिन उपदेश कहे।
तेतिस अत्यासादना दोष इन सबमें जो कुछ दोष हुए।।७।।

संक्षेप से आसादना सात में जीवों के आसादन से।
अजीव के आसादन ज्ञानासादन दर्शन सादन से।।८।।

चारित आसादन तप का आसादन वीर्यासादन से भी।
मैं सबकी गर्हा करता हूँ दुश्चरित किये पहले जो भी।।९।।

मैं वर्तमान के दोषों को प्रतिक्रमण विधी से दूर करूँ।
आगे होने वाले दोषों का भी मैं प्रत्याख्यान करूँ।।१०।।

जिन दोषों की गर्हा नहिं की, मैं उनकी गर्हा करता हूँ।
जिन दोषों की निंदा नहिं की, अब उनकी निंदा करता हूँ।।११।।

अच्चासणदाए, चरित्तस्स अच्चासणदाए, तवस्स अच्चासणदाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुपण्णं इक्कंतं पडिक्कमामि, अणागयं पच्चक्खामि, अगरहियं गरहामि, अणिंदियं णिंदामि, अणालोचियं आलोचेमि, आराहणमब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं[1]।।९।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां अष्टमोऽध्यायः।।८।।

(९) इच्छामि भंते!

इच्छामि भंते! पडिक्कमणमिदं, सुत्तस्स मूलपदाणं उत्तरपदाणमच्चासणदाए। तं जहा-

णमोक्कारपदे अरहंतपदे सिद्धपदे आइरियपदे उवज्झायपदे साहुपदे मंगलपदे लोगोत्तमपदे सरणपदे सामाइयपदे चउवीस-तित्थयरपदे वंदणपदे पडिक्कमणपदे पच्चक्खाणपदे काउसग्गपदे असीहियपदे णिसीहियपदे अंगंगेसु पुव्वंगेसु पइण्णएसु पाहुडेसु पाहुडपाहुडेसु कदकम्मेसु वा भूदकम्मेसु वा णाणस्स अइक्कमणदाए दंसणस्स अइक्कमणदाए चरित्तस्स अइक्कमणदाए तवस्स अइक्कमणदाए वीरियस्स अइक्कमणदाए, से अक्खरहीणं वा पदहीणं वा सरहीणं वा वंजणहीणं वा अत्थहीणं वा गंथहीणं वा थएसु वा थुईसु वा अट्ठक्खाणेसु वा अणियोगेसु वा अणियोगद्दारेसु वा

जिनका आलोचन नहीं किया, उनका आलोचन करता हूँ।
आराधन चउ स्वीकार करूँ विराधन का प्रतिक्रम करता हूँ।।१२।।

मुझ से इन सबमें जो कुछ भी दिनभर में (रात्री में) अतीचार हुए हों।
या अनाचार भी हुए प्रभो! वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१३।।

।।इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां अष्टमोऽध्यायः।।

(९) इच्छामि भंते!

हे भगवन्! सूत्र के मूलपदों उत्तरपद के आसादन से।
जो दोष हुए उनका प्रतिक्रमण करूं मैं सो वह इस विध से।।१।।

जो नमस्कारपद अर्हत् पद अरु सिद्धपदाचार्यपद में।
उपाध्यायपद साधूपद मंगलपद लोकोत्तम पद में।।२।।

शरणंपद सामायिकपद चौबिस तीर्थंकर पद वंदनपद में।
प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान रु कायोत्सर्ग असहि निसहि पद में।।३।।

अंगों में पूर्वों में व प्रकीर्णक प्राभृत प्राभृतप्राभृत में।
कृतकर्मों भूतकर्म में आसादन से दोष विशोधूं मैं।।४।।

ज्ञान में जो आसादन की दर्शन चरित्र तप वीरज में।
आसादन कर जो दोष किये उन सबका शोधन करता मैं।।५।।

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

जे भावा पण्णत्ता अरहंतेहिं भयवंतेहिं तित्थयरेहिं आदियरेहिं तिलोगणाहेहिं तिलोग-बुद्धेहिं तिलोग-दरसीहिं ते सद्दहामि ते पत्तियामि ते रोचेमि ते फासेमि, ते सद्दहंतस्स ते पत्तयंतस्स ते रोचयंतस्स ते फासयंतस्स जो मए देवसिओ राईओ अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो अकाले सज्झाओ कओ काले वा परिहाविदो अत्थाकारिदं मिच्छामेलिदं (आमेलिदं) वामेलिदं अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छदं आवासएसु पडिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं[१]।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां नवमोऽध्यायः।।९।।

इनमें अक्षर से हीन व पद से हीन व स्वर से हीन पढ़ा।
व्यंजन से हीन व अर्थहीन या ग्रंथहीन जु अशुद्ध पढ़ा।।६।।

स्तव स्तुति अर्थाख्यानों के अनुयोगों के पढ़ने में।
अनुयोगद्वार में हीन आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता मैं।।७।।

अर्हंतदेव भगवंत तीर्थंकर आदीकर त्रैलोक्यनाथ।
त्रिभुवनज्ञानी त्रिभुवनदर्शी ने प्रतिपादे हैं जो पदार्थ।।८।।

उनकी मैं श्रद्धा करता हूँ उनकी ही प्राप्ती करता हूँ।
उनमें ही में रुचि रखता हूं उनका ही स्पर्श करता हूँ।।९।।

इनकी श्रद्धा करते हुए अरु इनकी प्राप्ती करते हुए जो।
इनमें रुचि रखते हुए तथा इनका स्पर्श करते हुए जो।।१०।।

मैंने दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक आदिक में जो दोष किये।
अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अनाचार आभोग अनाभोग किये।।११।।

जो अकाल में स्वाध्याय किया अरु काल में स्वाध्याय नहीं किया।
सहसा किया बिना विवेक किया मिथ्या के साथ मिलाय दिया।।१२।।

अन्यथा पढ़ा अन्यथा कहा अन्यथा ग्रहण कीया भी जो।
आवश्यक में परिहानी की सब दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१३।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां नवमोऽध्यायः।।९।।

---

१. पाक्षिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

(१०) वीरभक्तिः

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्-द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।।१।।

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधाः संश्रिताः
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य वीरं तपो
वीरे श्री द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो, हे वीर! भद्रं त्वयि।।२।।

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरंति।।३।।

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो, यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः।।४।।

---

(१०) वीरभक्ति

—चौबोल छंद—

जो विधिवत् सब लोक चराचर, द्रव्यों को उनके गुण को।
भूत भविष्यत् वर्तमान, पर्यायों को भी नित सबको।।
युगपत समय-समय प्रति जाने, अतः हुए सर्वज्ञ प्रथित।
उन सर्वज्ञ जिनेश्वर महति, वीर प्रभु को नमूँ सतत।।१।।

वीर सभी सुर असुर इन्द्र से, पूज्य वीर को बुध सेवें।
निज कर्मों को हता वीर ने, नमः वीर प्रभु को मुद से।।
अतुल प्रवर्ता तीर्थ वीर से, घोर वीर प्रभु का तप है।
वीर में श्री द्युति कांति कीर्ति, धृति हैं हे वीर! भद्र तुममें।।२।।

जो नित वीर प्रभू के चरणों, में प्रणमन करते रुचि से।
संयम योग समाधीयुत हो, ध्यान लीन होते मुद से।।
इस जग में वे शोक रहित हो, जाते हैं निश्चित भगवन्।
यह संसार दुर्ग विषमाटवि, इसको पार करें तत्क्षण।।३।।

व्रत समुदाय मूल है जिसका, संयममय स्कंध महान्।
यम अरु नियम नीर से सिंचित, बढ़ी सुशाखाशील प्रधान।।
समिति कली से भरित गुप्तिमय, कोंपल से सुन्दर तरु है।
गुण कुसुमों से सुरभित सत्तप, चित्रमयी पत्तों युत है।।४।।

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोद्यः (द्घः) शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः।।५।।

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचमचारित्रलाभाय।।६।।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।।७।।

धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं (मुक्किट्ठं), अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो[१]।।८।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां दशमोऽध्यायः।।१०।।

शिवसुख फलदायी यह तरुवर, दयामयी छाया से युत।
शुभजन पथिक जनों के खेद, दूर करने में समरथ नित।।
दुरित सूर्य के हुए ताप का, अन्त करे यह श्रेष्ठ महान्।
वर चारित्र वृक्ष कल्पद्रुम, करे हमारे भव की हान।।५।।

सभी जिनेश्वर ने भवदुःखहर, चारित को पाला रुचि से।
सब शिष्यों को भी उपदेशा, विधिवत् सम्यक् चारित ये।।
पाँच भेद युत सम्यक् चारित, को प्रणमूँ मैं भक्ती से।
पंचम यथाख्यात चारित की, प्राप्ति हेतु वंदूँ मुद से।।६।।

धर्म सर्वसुख खानि हितंकर, बुधजन करें धर्म संचय।
शिवसुखप्राप्त धर्म से होता, उसी धर्म के लिए नमन।।
धर्म से अन्य मित्र नहिं जग में, दयाधर्म का मूल कहा।
मन को धरूँ धर्म में नित, हे धर्म! करो मेरी रक्षा।।७।।

धर्म महा मंगलमय है यह, कहा वीर प्रभु ने जग में।
प्रमुख अहिंसा संयम तपमय, धर्म सदा उत्तम सब में।।
जिसके मन में सदा धर्म है, सुरगण भी उसको प्रणमें।
मैं भी नमूं धर्म को संतत, धर्म बसो मेरे मन में।।८।।

इति श्रीगौतमगणधरवाण्यां दशमोऽध्यायः।।१०।।

---

१. दैवसिक प्रतिक्रमण से उद्धृत।

अन्त्य प्रार्थना

अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा।।१।।

धर्मतीर्थस्य कर्तारं, महावीरजिनं नुमः।
द्वादशांगस्य कर्तारं, नौमि गौतमस्वामिनम्।।२।।

वीरदिव्यध्वनेः प्राप्ता, वाणी श्रीगौतमस्य या।
सारं सारं गृहीत्वात्र, मनाक् संकलितं मया।।३।।

यद्हीनाधिक-दोषादि-जातं मातः! सरस्वति!।
मां क्षमस्व कृपां कृत्वा, भावश्रुतं प्रयच्छ मे।।४।।

यः पठति दशाध्यायं, श्रीगौतमवचोऽमृतम्।
सः श्रुतज्ञानमत्यामा, पूर्णज्ञानश्रियं श्रयेत्।।५।।

दोहा–पद्यानुवाद

अर्हन्भाषित अर्थमय, गणधर गुंफित ग्रंथ।
श्रुतज्ञानाब्धी को नमूँ, भक्ती युक्त शिर नम्य।।।१।।

धर्मतीर्थ कर्ता नमूं, महावीर भगवान्।
द्वादशांग कर्ता नमूं, गौतम गणी महान्।।२।।

वीर दिव्यध्वनि से प्रगट, श्री गौतम की वाणि।
सार सार को संकलन, किया सुगणधर वाणि।।३।।

हीनाधिकादि दोष जो, हुये सरस्वति मात!।।
क्षमा करो कर कृपा मम, देवो भावश्रुत मात!।।४।।

श्रीगौतमवच सुधा जो, पढ़े दशाध्याय पूर्ण।
वे श्रुतज्ञानमती सहित, लहें ज्ञानश्री पूर्ण।।५।।

।।समाप्तम्।।

प्रशस्तिः

महावीर ! नमस्तुभ्यं, महाकल्पद्रुमाय ते।
अचिन्त्यफलदात्रे नो, नमस्तुभ्यमनन्तशः।।1।।

वीरदिव्यध्वनिं श्रुत्वा, द्वादशांगविधायिने।
ग्रंथकर्त्रे गणीन्द्राय, नमो गौतमस्वामिने।।2।।

श्री वीरशासने सूरिः, कुन्दकुन्दगुरुर्महान्।
मूलसंघे च तन्नाम्ना, कुंदकुंदान्वयोऽभवत्।।3।।

गच्छे सरस्वती नाम्नि, वलात्कारगणे शुभे।
चारित्रचक्रभृत्सूरिः प्रथमः शांतिसागरः।।4।।

श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य पट्टाधिपोऽभवत्।
महाव्रतप्रदातारं गुरुं गुरोर्गुरुं नुवे।।5।।

त्र्येकषट्द्वितमे वीर-जयंतीदिवसे शुभे।
चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां, ग्रन्थोऽयं पूर्यते मया।।6।।

श्री गौतमगणीन्द्रस्य, वाणी ह्यमृतवर्षिणी।
संकलितामृतं दद्यात्, स्यान्नोऽमृतपदाप्तये।।7।।

यावज्जैनेंद्रधर्मोऽयं, वर्तते भुवि क्षेमकृत्।
पूर्णां ज्ञानमती कुर्यात्, तावत्स्थेयादयं कृतिः।।8।।

हिंदी पद्य-प्रशस्ति

महाकल्पद्रुम वीर प्रभु, फल अचिन्त्य दातार।
महावीर भगवान को, नमूं अनन्तों बार।।1।।

वीर दिव्यध्वनि श्रवण कर, द्वादशांग करतार।
गौतम गणधर ग्रंथकृत्, नमूं उन्हें शत बार।।2।।

श्री वीरशासन प्रथित, कुंदकुंद आचार्य।
मूलसंघ में नाम से, कुंदकुंद आम्नाय।।3।।

गच्छ सरस्वती गण कहा, बलात्कार शुभ मान्य।
चारितचक्री प्रथम गुरू, शांतिसागराचार्य।।4।।

उनके पट्टाचार्य गुरू, वीरसागराचार्य।
महाव्रत दातागुरू, नमूं उभय आचार्य।।5।।

छब्बीस सौ तेरह तमी, वीरजयंती वंद्य।
चैत्रशुक्ल तेरस तिथी, पूर्ण किया यह ग्रंथ।।6।।

अमृतवर्षाकारिणी, गौतमस्वामी वाणि।
अमृतपद देवे हमें, यह संकलिता वाणि।।7।।

जब तक जिनवर धर्म है, जग में सुखकर पूर्ण।
तब तक 'कृति' स्थायि हो, करे ज्ञानमति पूर्ण।।8।।

इति श्रीगौतमगणधरवाणी प्रशस्ति समाप्ता।

श्री गौतमस्वामी स्तोत्र

रचयित्री—गणिनी ज्ञानमती

अर्हत्प्रभुकथितार्थं, ग्रथितं गणनायकैः।
भक्त्याहं शिरसा नौमि, श्रुतज्ञानमहोदधिम्।।1।।

धर्मतीर्थस्य कर्तारं, महावीरजिनं नुमः।
द्वादशांगस्य कर्तारं, नौमि गौतमस्वामिनम्।।2।।

इंद्रभूति गणीन्द्र! त्वं, वीरस्य प्रथमो भवेः।
सप्तर्द्धीश! चतुर्ज्ञान–धारिन् ! त्वां नौम्यहं मुदा।।3।।

मुहुर्मुहुर्नमामि त्वां, वीरप्रभोर्गणीश्वरम्।
वीरदिव्यध्वनेर्हेतुं, गणेशं गणनायकम्।।4।।

प्रभोर्दिव्यध्वनिं श्रुत्वा, द्वादशांगविधायिने।
ग्रंथकर्त्रे गणीन्द्राय, नमो गौतमस्वामिने।।5।।

श्रीगणधर स्वामिन्! ते, चैत्यभक्त्यादिभारती।
प्रतिक्रमणसूत्राणि, प्राप्य धन्या वयं भुवि।।6।।

पायं पायं गणाधीश–वाणी–ममृतसदृशीम्।
पुष्टास्तुष्टाश्च तृप्ताश्च, जाताः स्वस्था अपि वयं।।7।।

श्री गौतमगणीन्द्रस्य, वाणी ह्यमृतवर्षिणी।
पूर्णां ज्ञानमतीं कुर्यात् , स्यान्नोऽमृतपदाप्तये।।8।।

जिनवाणी स्तुति

रचयित्री—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

हे सरस्वती माता, अज्ञान दूर कर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।

श्रुत का भण्डार भरा, तेरे ज्ञान की गंगा में।
जन मन श्रृंगार करा, गुरुवर मुनि चन्दा ने।।
श्रृंगार सहित माता, श्रुत ज्ञान पूर्ण कर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।१।।

प्रभुवीर की वाणी सुन, गणधर ने संवारा है।
मुनिगण उस पथ पर चल, निज ज्ञान सुधारा है।।
निज ज्ञान किरण दाता, आलोक ज्ञान भर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।२।।

चंदन चंदा गंगा, तन शीतल कर सकते।
मुक्ता मालाएं भी, नहिं मन को हर सकते।।
''चन्दना'' सभी जग को, शारद मां का वर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।३।।